समर्पण

महात्मना श्रद्धेय श्री पण्डित मदनमोहन
मालवीय जी के आदेशानुसार
इस ग्रन्थ की रचना आरम्भ
की गई थी। उन पूज्य-
पाद की स्मृति में।

लेखक

प्रकाशकीय

भारत धर्म प्रधान देश है। ऐसे देश में, जहाँ आध्यात्मिक भावना को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है, जिसकी संस्कृति अत्यन्त पुरानी और सुविस्तृत है—'तपोभूमि' जैसी पुस्तक की परम आवश्यकता थी। इस प्रकार के ग्रन्थों से धार्मिक स्थानों का परिचय प्राप्त होता है, साथ ही पाठक को भारत की प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति का भी सम्यक् ज्ञान हो जाता है तथा भारतीय सदाचार एवं परंपराओं से भी परिचय हो जाता है। संक्षेप में यह पुस्तक इतिहास, पुराण, गाथा भूगोल सब कुछ है। निःसंदेह श्रीरामगोपाल मिश्र तपोभूमि जैसी उपादेय और रोचक पुस्तक लिखने के कारण बधाई के पात्र हैं। सम्मेलन को विश्वास है कि धार्मिक वृत्ति के पाठक विशेष रूप से और भारतीय सभ्यता के प्रेमी सामान्य रूप से इस ग्रंथ का समादर करेंगे।

अक्षय तीज, २००७ साहित्य मंत्री

विषय-सूची

दो शब्द

पचीस साल से अधिक हुआ जब भारतवर्ष के सब प्रान्तों के प्रमुख पत्रों में निकला था:—

भारतवर्ष के उन प्राचीन स्थानों पर जो सनातन, बौद्ध, जैन, सिक्ख अथवा अन्य मतों के द्वारा पवित्र माने जाते हैं, मैं एक पुस्तक लिख रहा हूँ जिससे उन स्थानों के वर्तमान नाम, जगह और उनके महत्व का परिचय हो सके। इस विषय पर जो सज्जन मुझे सूचनाएँ भेज सकेंगे उनका मैं कृतज्ञ होऊँगा। देखने से पता चलता है कि बहुतेरे स्थान जिनका सम्बन्ध पूर्व काल के महापुरुषों से है या जो किसी अन्य कारण से श्रद्धा योग्य हैं उनको वहाँ के लोग जानते हैं, पर बाहर वाले उनसे अपरिचित हैं। सूचना के साथ यदि सप्रमाण संक्षिप्त वर्णन भी लिखा आवेगा तो बड़ी कृपा होगी क्योंकि बिना उसके उस स्थान की पहचान सम्बन्धी सत्यता का निश्चय न हो सकेगा। आशा है कि जिन सज्जनों के पास ऐसी सूचना देने को होगी वे कृपया लिखेंगे। यह न विचार करें कि कोई सूचना निरर्थक होगी, क्योंकि उसके बहुत कुछ उपयोगी होने की सम्भावना हो सकती है।

राम गोपाल मिश्र

अक्टूबर १०, १६२३] बी० एस० सी०, एम० आर० ए० एस०

डिप्टी कलेक्टर, सीतापूर

इस पर कुछ पत्रों, जैसे "लीडर" इलाहाबाद (अक्टूबर १४, १६२३) ने अपना मत प्रकट किया कि यह 'History of Sacred Places in India' (अर्थात् भारतवर्ष के पवित्र स्थानों का इतिहास) होगा; और कुछ पत्रों, जैसे "हिन्दू", मद्रास (अक्टूबर, १६२३), ने कहा था कि यह 'Dictionary of Ancient Indian Cities' (अर्थात् भारतवर्ष के प्राचीन नगरों का कोष) होगा।

अध्ययन और संग्रह समाप्त करके अब यह ग्रन्थ देश-बन्धुओं की सेवा में उपस्थित किया जाता है। प्रयत्न यह किया गया है कि यह इतिहास और कोष

दोनों से अधिक हो, और पवित्र स्थानों के महाकोष (Encyclopaedia) का काम दे। इसी से जो प्राचीन स्थान खोज से निकले उनके सम्बन्ध में जिन-जिन पुराने ग्रन्थों में उनका वर्णन है उनसे उद्धृत वाक्य (quotations) भी लिख दिए गए हैं, और जिन महात्माओं का उनसे सम्बन्ध है उनका संक्षिप्त परिचय भी दे दिया गया है। स्थानों की वर्तमान दशा का भी उल्लेख कर दिया गया है।

लेखक.

लेखक

भूमिका

उन्नति-चक्र

आर्य जाति के रहने के कारण हमारा देश आर्यावर्त कहलाता था। इसमें स्थान-स्थान पर आर्यों की बस्तियाँ फैली थीं जिनमें एक स्थान से दूसरे स्थान का जाना दूरी, घने जंगलों और नदियों के कारण कठिन था। जब शकुन्तला के पुत्र दौष्यन्ति भरत ने देश को एक शासन प्रणाली में बाँधा तब देश का नाम भरत के नाम पर 'भारत' और 'भारतवर्ष' हो गया। कुछ काल बीतने पर इन्दु—Indus (जो सिन्धु से इन्दु कही जाने लगी थी)—के पूर्व की हरी-भरी-भूमि 'इन्दु' कहलाने लगी। यहाँ के निवासी 'इन्दू' कहलाते थे, और पीछे इन्दु नदी के पूर्व का भाग ही देश इन्दु नाम से पुकारा जाने लगा। बाहर वाले इन्दु को हिन्द और इसके निवासियों को हिन्दू कहने लगे। विलायत वालों ने इन्दु या हिन्द से इसे 'इण्डिया' कर दिया है। और आजकल यह पुण्यभूमि प्रायः इसी नाम से पुकारी जाने लगी है।

संसार जानता है कि जिस समय भारतवर्ष के ज्ञान-विज्ञान का सितारा चमक रहा था और जब यहाँ के ऋषियों और मुनियों ने ब्रह्म-ज्ञान की निर्मल सलिल धारा से भूमण्डल को पवित्र किया था उस समय शेष पृथिवी के अधिकांश लोग पशुओं की भाँति जीवन व्यतीत किया करते थे। केवल चीन सभ्य हो चुका था।

काल की गति से उन्नति का चक्र पश्चिम की ओर चला और सातवीं शताब्दी ई० पू० में ईरान में जागृति हुई। भारतवर्ष का तारा पूर्ववत् ज्योतिर्मय न रहा। ईरान से और पश्चिम चलकर उन्नति चक्र यूनान में पहुँचा और ईरान शिथिल पड़ गया। कुछ समय तक यूनान का भाग्य उदय रहा। चक्र और पश्चिम रोम पहुँचा तथा कुछ काल के लिए रोम का प्रभाव संसार के एक बड़े भाग पर छा गया। वहां से उन्नति चक्र और पश्चिम चलकर स्पेन आदिक देशों में होता हुआ इङ्गलैण्ड पहुँचा। जिस-जिस प्रदेश से वह आगे बढ़ता गया उस-उस प्रदेश में वह क्रमशः उदासीनता छोड़ता गया

और जितना जिस देश से दूर होता गया उतना ही वहाँ का पतन अधोगति को पहुँचता गया।

इङ्गलैण्ड से भाग्य चक्र और पश्चिम, अमेरिका पहुँच चुका है। आजकल अमेरिका के उदय का समय है। इसके पश्चात् फिर चीन और भारतवर्ष के भाग्योदय की बारी है। ऐसा इस चक्र की गति से प्रतीत होता है। भारतवर्ष का खोई हुई स्वतन्त्रता को प्राप्त करना इसका लक्षण है।

यह एक विचित्र बात है कि जब कोई देश उन्नतिशील होता है तो वह ईश्वर के आगे सिर झुकाने और अपनी जिम्मेदारी निबाहने के बदले कुछ समय के बाद कपटाचारी हो जाता है और अपने आप को संसार का भाग्य-विधाता समझने लगता है। मानो वह सदा उन्नति के शिखर पर ही बैठा रहेगा : उसका कभी पतन ही न होगा। यह मनोवृत्ति उसमें सैकड़ों अवगुण उत्पन्न कर देती है और यही चारित्र-हीनता उसके पतन का कारण होती है। जब तक उसमें यह बात नहीं आती उसका उदय स्थिर रहता है। कारण यह है कि जब तक किसी से संसार का उपकार होता है तभी तक दैवी शक्ति उसकी सहायक रहती है।

एक प्रभावशाली जाति चरित्रहीन हो जाती है तब भी दूसरे दबे हुए देश जो स्वभावतः उसकी नक़ल करते हैं उसके बिगड़े हुए चरित्र की बुरी बातों की ही नक़ल करते रहते हैं। ऐसी अवस्था में उस उन्नतिशील जाति से संसार को भारी हानि पहुँचने लगती है। एक तो वह जाति स्वार्थवश धोखा, झूठ और कपट से सब को हानि पहुँचाती है, और दूसरे अन्य जातियाँ इन सब बातों के होते हुए भी उसको उन्नतिशील देख इन्हीं बातों को आदरणीय समझती और उनका अनुकरण करने लगती हैं। इस दशा में उस प्रभावशाली जाति का पतन ही संसार का कल्याण कर सकता है और इससे चक्र उस स्थान को छोड़कर आगे बढ़ता रहा है। बड़ी विचित्र बात यह है कि ऐसे काल चक्र को देखकर भी संसार की जातियाँ अपनी बारी पर मदान्ध होती गईं और आप अपने पतन का कारण बनीं।

इस समय भारतवासियों की यह दशा हो गई है कि हमको यह जानने की भी चिन्ता नहीं कि जिन प्राचीन स्थानों से हमारे पुरातन स्वर्ण-युग का सम्बन्ध है वे अब कहाँ हैं। इस पुस्तक में यह प्रयत्न किया गया है कि महर्षियों, ऋषियों, मुनियों तथा महात्माओं से महान भारत के जिन स्थानों का सम्बन्ध है और जिनका वर्णन वेद, पुराण, महाभारत, रामायणादि में

आया है, तथा जो स्थान पीछे के महात्माओं द्वारा पवित्र किये गये हैं उनका वर्तमान नाम, पता और इतिहास जनता के सम्मुख रक्खा जावे जिससे यह जानकारी हो सके कि इस पुण्य भूमि पर प्राचीन पवित्र क्षेत्र कहाँ हैं और उनका इतिहास क्या है। आर्यावर्त में और अन्य देशों में यह अन्तर है कि यहाँ के उन्नति-काल में भारतीय परम ज्ञान और आनन्दमय शान्ति की ओर प्रवृत्त हुए थे। यद्यपि पीछे उनमें बुराइयाँ आ गईं। परन्तु अन्य देश इस ओर प्रयत्नशील न होकर सदा केवल ऐहिक उन्नति के प्रयत्न में रहे। भारतीय ऋषियों की ही वह शिक्षा है जो सनातन है, सत्य है, अमर है, और जिससे आत्मा को शान्ति और मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए जिन प्रमुख स्थानों से यह शिक्षा गूंजी थी अपने उन पवित्र स्थानों का ज्ञान समुचित है और इन महान क्षेत्रों की रज माथे चढ़ाने योग्य है।

ग्रन्थों का मर्म

जो ग्रन्थ हमारे आधार हैं उनके तत्व के जानने के लिए थोड़े विचार की जरूरत है। साधारण जनता के बताने को इन ग्रन्थों में बहुत सी बातें रूपक (allegory) में कही गई हैं। बहुत सी बातें ऐतिहासिक हैं, पर वे दूसरे ही रूप में लिखी गई हैं। इस प्रकार प्राचीन साहित्य में रूपकों का चलन सा हो गया था।

जहाँ रागों की शाखाओं और उपशाखाओं का कथन करना था वहाँ स्कन्द पुराण में कहा गया है कि "श्री महादेव जी ने छः रागों को उत्पन्न किया। एक-एक राग की पाँच-पाँच स्त्रियाँ और आठ-आठ पुत्र तथा आठ-आठ पुत्र वधुएँ हुईं।"

जहाँ कहना था कि घटाओं के सहित पवन वेग से चली और देवयानी तथा शर्मिष्ठा के वस्त्र अनायास मिल गये, वहाँ महाभारत में दिया है कि "इन्द्र ने वायु रूप होकर उनके वस्त्रों को एक दूसरे से मिला दिया।"

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण कहता है कि "केदार की वृन्दा नामक पुत्री कमला के अंश से थी। उसने किसी से विवाह नहीं किया और गृह को छोड़ वन में जाकर तपस्या करने लगी। सहस्र वर्ष तपस्या करने के उपरान्त भगवान प्रकट हुए। वृन्दा ने यही वर माँगा कि मेरे पति आप होइए। वृन्दा ऐसा वरदान पाकर भगवान् के सहित गोलोक में गई।" इसमें विवाह कोई सची घटना नहीं है इसका यही अर्थ है कि वृन्दा ने संसार को त्याग केवल ब्रह्म से नाता जोड़ा था, और ब्रह्मज्ञान को प्राप्त किया।

इसी प्रकार महाभारत में दिया है कि "हिमाचल के पुत्र अर्बुदगिरि हैं।" तात्पर्य यह है कि दोनों एक ही वस्तु अर्थात् पत्थर के बने हैं और छुटाई-बड़ाई में पिता पुत्र के समान हैं।

शिव पुराण कहता है कि "शिव पार्वती के पुत्र कार्त्तिकेय और गणेश दोनों कुमार अपना विवाह पहले करने के लिए विवाद करने लगे। उनके माता पिता उनसे बोले कि 'तुम दोनों में से सम्पूर्ण पृथिवी की प्रदक्षिणा करके जो पहले लौट आएगा उसी का विवाद प्रथम होगा।' यह सुनकर

कीर्तिकेय पृथिवी की परिक्रमा करने के लिए वहाँ से चले गए। गणेश जी ने माता पिता की परिक्रमा करके कहा कि 'लीजिए पृथिवी की परिक्रमा हो गई।' शिव-पार्वती ने गणेश जी की चतुरता देखकर उनको बहुत सराहा और विश्व-रूप की कन्याओं सिद्धि और बुद्धि से उनका विवाह कर दिया। कार्तिकेय जी जब एक काल के पश्चात् लौटे तो रुष्ट होकर शिव जी से दूर रहने लगे।"

ऊपर की कथा का केवल यह अर्थ है कि जो लोग संसार भर में एक ही आत्मा समझते हैं और यह जानते हैं, कि जो एक रूप में है वही सब संसार में व्यापक है उनको परम पिता से बुद्धि और सिद्धि प्राप्त है। जो लोग यह न समझकर सबको पृथक्-पृथक् समझते हैं वे परमब्रह्म से दूर रहते हैं। इस प्रकार की लेख-शैली से धार्मिक ग्रन्थ भरे पड़े हैं।

पद्म पुराण में कहा गया है कि "महादेव जी सब देशों में पर्यटन करते हुए काञ्चीपुरी में गए।" इसका मतलब यह हुआ कि शैव-मत और स्थानों में फैलता हुआ काञ्चीपुरी पहुँचा, यह नहीं कि शिव जी स्वयं घूमते हुए वहाँ पहुँचे।

जहाँ लिखा गया है कि "शिवजी विराजमान हैं" उससे मतलब है, कि वहाँ शैव-मत फैला है, और शैव-मत के प्रवीण उपदेशक, लोगों की शंका निवारण करने को मौजूद हैं। इसी प्रकार जहाँ लिखा गया है कि "विष्णु विराजते हैं", वहाँ यह मतलब है कि वैष्णव मत का प्रचार है और वैष्णव आचार्य पधार रहे हैं। जहाँ कहा गया है कि "शिव और विष्णु में घोर संग्राम हुआ" (जैसे तेज पुर, आसाम, में), वहाँ तात्पर्य है कि शैव और वैष्णव मतों में भारी धर्मयुद्ध हुआ। प्रायः सभी जगह जहाँ ऐसा 'युद्ध' लिखा है वहाँ यह भी लिखा है कि एक ने दूसरे के बड़प्पन को मान लिया अर्थात् आपस में मिलकर रहने का समझौता हो गया। जब कहा गया है कि "धर्म ने तप किया" वहाँ मतलब है कि धर्मात्मा और धर्म प्रचारक उस जगह हुए।

वर्णन है कि "राजा रुक्माङ्गद अप्सरा विश्वमोहिनी पर आसक्त हो गये थे, और उसके नाम से विश्वनगर (बेस नगर, भूपाल राज्य) बसाकर उसके साथ वहाँ निवास करते थे। एक दिन विष्णु भगवान का विमान वहीं काँटों में रुक गया और यह कहा गया कि जिसने एकादशी का व्रत किया हो वही उसे काँटों से छुड़ा पाएगा। वह दिन एकादशी का था। एक तेलिन जो

अपने पति से लड़ कर भूखी रह गई थी उस विमान को छू सकी, और विष्णु की आज्ञा से विमान का एक पाया पकड़ कर उनके साथ स्वर्ग को चलने लगी। इस पर राजा रुक्माङ्गद और समस्त नगरवासी विमान के पायों को पकड़कर स्वर्ग को चले गये"।

इस कथा से ऐसा जान पड़ता है कि वैष्णव-मत वहाँ पहले न था और न लोग एकादशी का व्रत रखते थे। एक तेलिन द्वारा वह प्रचलित हुआ और बाद को राजा और प्रजा सब-वैष्णव हो गये और वैष्णवों के मतानुसार स्वर्ग के भागी हुए।

जहाँ कहा गया है कि शिवजी ने या विष्णु भगवान् ने किसी स्थान पर अमुक दैत्य या दानव को मारा—जैसे लिखा है कि माही नदी के मुहाने पर शिवजी ने अन्धक दैत्य का वध किया। वहाँ मतलब है कि शैव का वैष्णव मत के फैलाने से वहाँ का अन्धकार दूर हुआ, और जो उस अन्धकार व अज्ञान का कारण था वह मिट गया। यह अर्थ नहीं है कि भगवान् शिव या विष्णु किसी के प्राण लेते थे। ऐसा करते तो उनमें व आजकल के मनुष्य में अन्तर ही क्या होता!

महाभारत के आदि पर्व में लिखा है कि "चेदिराज वसु की सेवा सारे गन्धर्व और अप्सरायें करती थीं। उनके पाँच पुत्र थे जिनमें बृहद्रथ (जरा-सन्ध के पिता) मगध देश में प्रसिद्ध थे। उनके नगर के समीप शुक्तिमती नदी बहती थी कोलाहल नाम के पर्वत ने काम वश होकर उसका मार्ग रोक लिया। जब राजा वसु ने इस व्यवहार का समाचार सुना तो पर्वत में एक ठोकर मारी जिससे वह फट गया और उसमें से शुक्तिमती बह निकली। शुक्तिमती और कोलाहल के समागम से जो पुत्र वसुप्रद उत्पन्न हुआ था उसे राजा ने अपना सेनापति बना लिया और जो कन्या गिरिका उत्पन्न हुई उससे ब्याह कर लिया।"

राजा वसु के द्वारा शुक्तिमती नदी और कोलाहल पर्वत की पुत्री गिरिका से ब्याह करने का अर्थ यह हुआ कि नदी के आगे पर्वत के आ जाने से नदी की एक शाखा दूसरी तरफ को भी बह निकली जिससे राजा की खेती में पानी मिलने की सुविधा हो गई और इस प्रकार पर्वत और नदी के मिलने से जो धारा बनी थी वह राजा वसु की होकर उनका कार्य साधन करने लगी, मानो उनसे विवाहित हो गई; और जो पर्वत का एक खण्ड हुआ वह

ऐसे मौके से हुआ कि उससे राजा ने अपने राज्य की रक्षा में सहायता का काम लिया। इसी से कहा गया है कि उसको सेना पति बना दिया गया।

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों से विदित होगा कि अपने धर्म-ग्रन्थों के तत्व को समझने में दृष्टि को संकुचित रखना धोखा देगा। शुद्ध तार्किक दृष्टि से विचार करने पर ही इन ग्रन्थों के मर्म को समझा और जाना जा सकता है।

धार्मिक पुस्तकों में इतिहास के रत्न

प्राचीन काल के आर्य इतिहास तथा भूगोल सम्बन्धी पुस्तकें लिखने की अपेक्षा तत्व ज्ञान में अधिक दत्तचित्त थे। सांसारिक वस्तुओं में बहुत कम मन लगा कर विद्वान लोग आत्म ज्ञान तथा तद्विषयक साहित्य पर ध्यान देते और उसी के सम्बन्ध में रचना करते थे। वे सामाजिक प्रतिष्ठा और विभूति को तुच्छ समझते थे जिसका यही प्रमाण है कि बहुत से धार्मिक ग्रन्थों के लेखकों ने अपना नाम तक नहीं दिया है जिससे विदित हो सकता कि वे किस महापुरुष की रचनाएं हैं।

जिस संस्कृत ग्रन्थ को वाल्मीकीय रामायण के नाम से पुकारा जाता है और जिसको भारतवर्ष के सर्वोत्तम ग्रन्थों में से माना जाता है उसके भी लेखक ने अपना नाम नहीं दिया है। आगे चल कर 'कालपरिचय' के पढ़ने से विदित होगा कि आदि-कवि श्री वाल्मीकि जी की बनाई हुई यह आदि-कविता नहीं है। इसकी भाषा महाभारत से भी पीछे की है। इसमें बुद्ध और बौद्ध भिक्षुओं तक का वर्णन है। यदि कहा जावे कि गौतम बुद्ध से पहले भी कई बुद्ध हुए हैं तो इसका उल्लेख हमारी किसी पुस्तक में नहीं है, यह भी केवल गौतम बुद्ध की कही हुई बात है। ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि वाल्मीकि का बनाया हुआ कोई छोटा मूल ग्रन्थ था जो अब लोप है और जिसके आधार पर वर्तमान पुस्तक लिखी गई है, जैसे कि अब उस पुस्तक के आधार पर तुलसीकृत रामायण की रचना हुई है।

जो लोग ऐसे ऐसे ग्रन्थों को लिख कर भी अपना नाम छिपाकर प्रतिष्ठा से बचते थे उनकी दृष्टि में इतिहास या भूगोल का क्या मूल्य हो सकता था ? परन्तु कहीं-कहीं हमें ऐतिहासिक वार्ताएं धार्मिक पुस्तकों में छिपी हुई मिल जाती हैं और छान-बीन करने पर अन्य बहुत सी बातें मिलेंगी जिनके आधार पर अच्छी खोज की जा सकती है। उदाहरणार्थ यहाँ कुछ का उल्लेख किया जाता है।

(१) ब्रह्मा की वेदी किसे कहते हैं

वामन पुराण कहता है कि "ब्रह्मा की पाँच वेदियाँ हैं जिनमें उन्होंने यज्ञ किया। इनमें से मध्यवेदी प्रयाग (इलाहाबाद) है, पूर्व वेदी गया,

दक्षिण वेदी विरजा (जाजपुर-उड़ीसा में), पश्चिमी वेदी पुष्कर (अजमेर) और उत्तर वेदी समन्त पंचक (कुरुक्षेत्र) है।"

जान पड़ता है कि ये पाँच स्थान प्राचीन आर्यसभ्यता के केन्द्र थे। इनको ब्रह्मा की वेदी इसलिए कहा गया है कि आर्यों ने कठिनाइयों को झेल कर इन स्थानों को आर्य संस्कृति से परिपूर्ण किया था। ब्रह्मा का काम निर्माण करने का है और क्योंकि इन स्थानों को संस्कृति से पूर्ण करके उनकी कायापलट की गई थी इसलिए उनको ब्रह्मा की वेदी कहा गया कि ब्रह्मा की तपस्या से इनका निर्माण इस प्रकार हुआ। कदाचित् यह आर्यावर्त (जहां तक आर्य फैल गये थे) की उस समय सीमाएं थीं, और मध्य में उनका केन्द्र-स्थल प्रयागराज था जो इसी कारण तीर्थों का राजा माना गया है।

वामन पुराण में उत्तर वेदी का वर्णन है जिससे पता चलेगा कि ब्रह्मा की वेदी की पवित्रता का क्या अर्थ है। यह पुराण कहता है कि "राजा संवरण के पुत्र कुरु ब्रह्मा की उत्तर वेदी को गए वहां बीस-बीस कोस चारों ओर समन्त पंचक नामक क्षेत्र है। राजा कुरु ने उस क्षेत्र को उत्तम माना और कीर्ति के लिए सोने का हल महादेव जी के वृष और धर्मराज के भैंसे को हल में लगाया। वह प्रति दिन उसी हल से पृथिवी को सात कोस चारों तरफ़ वाहने लगे। इसके अनन्तर राजा कुरु ने विष्णु के प्रसन्न होने पर वरदान माँगा कि जहाँ तक मैंने यह पृथिवी वाही है वह धर्मक्षेत्र हो जाय। यज्ञ, दान, उपवास, स्नान, जप, होम आदि शुभ और जो भी अशुभ काम इस क्षेत्र में किए जायं वे अक्षय हो जायँ और आप तथा महादेव सब देवताओं के साथ यहाँ वास करें।"

इस कथा से प्रतीत होता है कि पहले यह स्थान बसने योग्य न था, पीछे बसने योग्य हो पाया। भैंसों और बैलों को जोत कर खेती की गई, देव स्थान बनाए गये। आर्य्य-संस्कृति का यह निवास-स्थान बना और इस कारण पुण्य क्षेत्र हुआ। ऐसा ही इतिहास अन्य वेदियों के विषय में है।

ब्रह्मा की पुष्कर वेदी (अजमेर) की कथा बड़ी रुचिकर है। सबसे श्रेष्ठ और बड़ी वेदी यही है। पौराणिक वर्णन से प्रतीत होता है कि इस स्थान के समीप की भूमि जल से डूबी हुई थी और पृथिवी में उथल-पुथल होने से यह जल से ऊपर आई है। पद्म पुराण में इसकी कथा इस प्रकार है :—

"ब्रह्मा जी ने विचार किया कि हम सबसे आदि देव हैं। इसमें अपने यज्ञ करने के लिए एक अपूर्व तीर्थ बनावें। इसके उपरान्त ब्रह्मा जी पुष्कर

तीर्थ में आए और सहस्र वर्ष पर्यन्त वहाँ रहे। उन्होंने अपने हाथ का कमल वहीं फेंक दिया। उस पुष्प की धमक से सब पृथिवी काँप उठी। समुद्र में लहरें बड़े वेग से उठने लगीं। ब्रह्मा के मुख से वाराह जी उत्पन्न हुए और उन्होंने ब्रह्मा के हित के लिये प्रलय के जल के भीतर से पृथिवी को लाकर जहाँ पुष्कर तीर्थ बना है वहाँ स्थापित किया और फिर अन्तर्धान हो गए।"

इससे भली भाँति विदित होता है कि किसी काल में यह भूमि समुद्र के नीचे थी और कोई ऐसी भारी और भयङ्कर घटना हुई है कि जिससे पृथिवी का रूप बदल गया और यह भूमि जल के भीतर से पानी के ऊपर हो गई। पौराणिक शब्दों में ब्रह्मा ने यहाँ रह कर इसके समीप के देश का निर्माण किया। आर्य सभ्यता के पुष्कर क्षेत्र तक फैलने के पश्चात यह घटना हुई प्रतीत होती है। यह वही राजपूताने की भूमि है जिसकी बालू अब तक इस बात की साक्षी है कि यह स्थल समुद्र के नीचे से निकल कर आया है। ऐसा भास होता है कि भारतवर्ष में सबसे पीछे जो भूमि समुद्र से ऊपर आई है वह यही है। इसलिये यहीं ब्रह्मा की सबसे प्रतिष्ठित वेदी भी है।

(२) रावण की लङ्का का स्थान कहाँ प्रतीत होत है

'ज्ञान संहिता' की कथा है कि "चारों ओर से १६ योजन विस्तीर्ण दारुका नामक राक्षसी का वन था। उसमें वह अपने पति दारुक सहित रहती थी। यह दोनों वहाँ के लोगों को कष्ट देते थे। इसपर वे लोग दुखी होकर और्व ऋषि की शरण में गए। उन्होंने शाप दिया कि यदि राक्षस लोग प्राणियों को दुख देंगे तो प्राण-रहित होंगे। देवता लोग राक्षसों से युद्ध की तैयारी करने लगे। दारुका को पार्वती का वरदान था कि जहाँ वह जाने की इच्छा करे वहीं उसका वन, महल और सब सामग्री सहित चला जावे। दारुका ने इस वरदान के प्रभाव से स्थल सहित अपने वन को पश्चिम के समुद्र में स्थापित किया। राक्षस लोग स्थल पर न आते थे परन्तु जो मनुष्य नौका से समुद्र में जाते उन्हें पकड़ ले जाते थे और दण्ड देते थे। एक बेर इसी प्रकार एक वैश्य के नेतृत्व में बहुत से लोग नौकाओं में गए थे और उन सब को राक्षसों ने कारागार में बन्द कर दिया। वैश्य बड़ा शिव-भक्त था और बिना शिव का पूजन किये भोजन नहीं करता था। कारागार में बन्द हुए इन लोगों को छ मास व्यतीत हो गए। राक्षसों ने एक दिन शिव जी का सुन्दर रूप वैश्य के सामने देख कर अपने राजा से सब समाचार कह सुनाया। राजा ने आकर वैश्य को मारने की आज्ञा दी।

भयभीत होकर वैश्य ने शङ्कर को स्मरण किया। शिवजी अपने ज्योतिर्लिङ्ग और सब परिवार के सहित प्रकट हुए। शिव जी ने वहाँ के राक्षसों को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और वैश्य को वर दिया कि उस वन में अपने धर्म के सहित विद्यमान रहेगा। दारुका ने पार्वती से अपने वंश की रक्षा के निमित्त प्रार्थना की। पार्वती जी के कहने से शिवजी ने स्वीकार किया कि कुछ काल तक दारुका वहाँ रह कर राज्य करे, और पार्वती का वचन स्वीकार करके उन्होंने कहा कि मैं इस वन में निवास करूँगा। जो पुरुष अपने वर्णाश्रम में स्थित रह कर यहाँ मेरा दर्शन करेगा वह चक्रवर्ती राजा होगा। ऐसा कह कर पार्वती जी सहित महादेव जी नागेश नाम से यहाँ स्थित हो गये"।

इस कथा से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में यह स्थान (नागेश और दारुका का वन) एक टापू था। राक्षस लोग आर्यों से निकाले जाकर यहाँ आ बसे थे। कोई वैश्य वहाँ व्यापार के लिए पहुँच गया और राक्षसों से उसे कष्ट पहुँचा। परन्तु उसने दृढ़ता-पूर्वक वहाँ शैव धर्म का प्रचार किया और उसकी उन्नति की। राक्षसों का राज्य वहाँ कुछ दिनों स्थिर रहा और फिर जाता रहा, अन्त में शैव धर्म की प्रतिष्ठा स्थापित हो गई।

शिवपुराण में लिखा है कि "१२ ज्योतिर्लिंगों में नागेश लिंग दारुका वन में स्थित है।" यह दारुका का स्थान और नागेश ज्योतिर्लिङ्ग आज कल 'नागेस' नाम से ही प्रसिद्ध है और हैदराबाद राज्य के अन्तर्गत है।

इसके साथ विचारने योग्य बात यह भी है कि वाल्मीकीय रामायण के अनुसार हनुमान जी सीता जी की खोज में पम्पापुर से उत्तर की ओर गए थे। वहाँ विंध्या पर्वत से कूद कर वे लंका में पहुँचे थे। इधर ज्ञान-संहिता की यह कथा बताती है कि इस भाग में समुद्र था। बीच में टापू भी थे। तो रावण की लंका को यहीं कहीं होना चाहिए। रावण का नासिक आदि के समीप के स्थानों में बराबर पहुँचते रहना, जैसा कि वाल्मीकीय रामायण से स्पष्ट सिद्ध है, यह अनुमान दृढ़ कराता है कि रावण का स्थान मध्य प्रदेश के समीप ही रहा होगा। उसकी स्त्री मन्दोदरी भी मयराष्ट्र (मेरठ) के मयदानव की पुत्री थी। यदि लङ्का दक्षिण में होती तो हनुमान जी सीता की खोज में उत्तर को आकर विन्ध्या पर्वत से कूद कर उनको वहाँ कैसे पाते? समय के हेर-फेर से इस ओर की भूमि पर समुद्र न रहा, लङ्का टापू का समुद्र में होना ज़रूरी था, अतः जो सब से नज़दीक का टापू लोगों ने

समुद्र में पाया उसको लङ्का समझ लिया। अन्य स्थान भी फिर उसी के अनुसार मान लिए गये। यह तो सम्भव ही नहीं है कि वे रामचन्द्र जी के समय से अटूट वैसे ही माने जा रहे हैं क्योंकि अयोध्या कालांतर में स्वयं लुप्त हो गई थी, और महाराज विक्रमादित्य ने नपवा नपवा कर उसके वर्तमान स्थान को नियत किया।

(३) द्वारिकापुरी का निर्माण और विनाश कैसे हुआ

महाभारत सभापर्व कहता है कि "कृष्ण ने मथुरा से भागने का विचार किया। सब मथुरावासी अनन्त ऐश्वर्य को आपस में बाँट कर स्वल्प भार ले लेकर पश्चिम दिशा में भाग गये। वे लोग भारतवर्ष के पश्चिमी भाग में रैवत पर्वत की चोटियों से सुशोभित कुशस्थली अर्थात् द्वारिका में जा बसे।"

देवी भागवत के सातवें स्कन्ध में है कि "राजा रैवत द्वारिका में आए और रेवती नामक अपनी कन्या बलदेवजी को समर्पण करके बद्रिकाश्रम चले गए।" आदि ब्रह्म पुराण के सातवें अध्याय का कहना है कि "राजा आनर्त का रैवत नामक पुत्र आनर्त देश का राजा हुआ। कुशस्थली उसकी राजधानी थी।"

इन सबके मिलाने से पता चलता है कि जिस देश में श्रीकृष्ण और यदुवंशियों ने जाकर द्वारिका बसाई वह स्थान आनर्त देश में कुशस्थली या उसके समीप था, और वहाँ का पुराना राजा रैवत था। उसको इन लोगों ने हराकर निकाल दिया। और वह वहाँ से चला गया। उसकी पुत्री रेवती को बलदेव जी ने व्याह लिया।

श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध का कहना है कि "कुछ प्यासे मनुष्यों ने जल को ढूंढते हुए द्वारिका के एक स्थान में तृण-लताओं से परिपूर्ण एक बड़ा कूप पाया। उसमें उन्होंने एक बड़ा गिरगिट देखा जिसको वे उद्योग करने पर भी कूप से बाहर न निकाल सके। यह समाचार श्रीकृष्ण को पहुचा और उनके वहां पहुँच जाने पर गिरगिट ने कहा कि मैं यथार्थ में राजा नृग हूं। एक पाप के कारण इस अवस्था को प्राप्त हुआ हूँ। धर्मराज ने मुझसे कहा था कि सहस्र वर्ष पूर्ण होने पर तुम्हारा पाप कर्म नष्ट होगा और कृष्ण-भगवान तुम्हारा उद्धार करेंगे। ऐसा कह राजा नृग गिरगिट रूप छोड़ दिव्य विमान में बैठ सुरलोक में चले गए।"

इससे प्रतीत होता है कि जब श्रीकृष्ण यहाँ आए थे उन दिनों यह स्थान झाड़ झंखड़ और कीड़े-मकोड़ों से भरा था और कुश आदि के आधिक्य के कारण इसे कुशस्थली कहते थे। इस देश को साफ और आबाद करते समय एक स्थान पर यदुवंशियों को कीड़ों और जन्तुओं से भरी जगह मिली। वेलोग वहां से एक गिरगिट के समान बहुत बड़े विचित्र जीव को न निकाल सके और उनके नेता श्रीकृष्ण चन्द्र ने आकर उसका परलोक-गमन करा दिया।

इस प्रकार इस स्थान को साफ करके जो द्वारिकापुरी बसाई गई थी उसके चारों ओर एक तरह की मदार दीवारी थी जिसमें द्वार लगे थे। स्कन्दपुराण का काशीखण्ड कहता है कि "द्वारिका के चारों ओर चारों वर्णों के प्रवेश करने के लिये द्वार बने हुए थे। इसी कारण तत्ववेत्ताओं ने इसे द्वारावती कहा है।"

यह नगर बड़ा सुन्दर और प्रसिद्ध होगया था और 'सप्त पुरियों' में गिना गया है। पर द्वारिका का वैभव बहुत दिनों नहीं रहा।

महाभारत के शान्ति पर्व में लिखा है कि "प्रभास में द्वारिका के क्षत्रियों के विनाश होने के पश्चात् द्वारिका-वासियों के अर्जुन के साथ जाने के लिए नगर से बाहर होने पर समुद्र ने समस्त नगरी को अपने जल में डुबो दिया।" पता चलता है कि किसी ज्वालामुखी दुर्घटना के कारण द्वारिका नगरी का विनाश हुआ है क्योंकि श्रीमद्भागवत् में लिखा है कि "मृत्यु सूचक घोर उत्पातों को देख श्री कृष्ण जी ने यादवों से कहा कि अब हम लोगों को दो घड़ी भी द्वारिका में रहना उचित नहीं है। सभी स्त्री, बालक और वृद्ध शंखोद्धार को चले जाओ।" इससे यह ज्ञात होता है कि कोई इस प्रकार की घटनाएं हुई थीं जिनसे मालूम होगया था कि वह स्थान शीघ्र ही नष्ट होने जा रहा है। ऐसी घटना ज्वालामुखी फटने के कुछ पूर्व आभासित होती है। महाभारत के वन-पर्व में लिखा मिलता है कि "प्रभास तीर्थ में भगवान अग्नि अपने आप निवास करते हैं।"

यह प्रभास तीर्थ द्वारिका से मिला हुआ है और वहां 'अग्नि का निवास' प्रतीत करता है कि ज्वालामुखी था। जब ज्वालामुखी समुद्र में या उसके तट पर फटता है तो समुद्र की लहरें वेग के साथ उठती और बढ़ती हैं और उन्हीं लहरों ने इस नगर को नष्ट कर दिया।

(४) गंगाजी क्या साधारण नदी है

श्री मद्भागवत, महा भारत और वाल्मीकीय रामायण के देखने से मालूम होता है कि गंगा जी एक विशाल नहर हैं जिसको राजा भगीरथ और उनके पूर्वजों ने तैयार किया था। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि "भगवान कपिल देव अपने पिता के आश्रम (सिद्धपुर) से माता की आज्ञा लेकर ईशान-कोण की ओर गए। वहाँ समुद्र ने उनका पूजन कर उनको रहने का स्थान दिया"। यह स्थान वर्तमान गंगा-सागर है।

महाभारत की कथा है कि "राजा सगर का यज्ञ-अश्व उनके ६० हजार-पुत्रों से रक्षित होकर जल-रहित समुद्र के तट पर आने पर अन्तर्धान हो गया। सगर के पुत्रों ने एक स्थान पर पृथिवी को फटा हुआ देखा। वे खोदने लगे और खोदते खोदते पाताल तक चले गये। वहाँ उन्होंने देखा कि कपिल जी के पास घोड़ा घूम रहा है। कपिल जी के तेज-रूपी अग्नि से सब लोग जल कर भस्म हो गए"। इस कथा से यह विदित होगा कि राजा सगर के साठ हजार वंशज या आदमी बहुत दूर से भूमि खोदते हुए समुद्र के तट तक पहुँचे और उसी में काम आए।

राजा सगर के पुत्र असमंजस, और असमंजस के अंशुमान्, अंशुमान् के दिलीप, और दिलीप के पुत्र राजा भगीरथ हुए। महाभारत फिर कहती है कि "भगीरथ ने जब सुना कि हमारे पितरों को महात्मा कपिल ने भस्म कर दिया था इस कारण उनको स्वर्ग नहीं मिला तब हिमाचल पर जाकर उन्होंने घोर तप किया। गंगा जी प्रकट होकर बोलीं कि हे राजन्! तुम क्या चाहते हो? भगीरथ बोले कि कपिल के क्रोध से जले हुए हमारे पुरुषों को तुम अपने जल में स्नान करा कर स्वर्ग में पहुँचाओ। गंगा ने कहा कि हे राजन्! तुम शिवजी को प्रसन्न करो स्वर्ग से गिरती हुई हमको वे ही अपने सिर पर धारण करेंगे। भगीरथ ने कैलाश में जाकर घोर तपस्या करके शिवजी को प्रसन्न किया और उनसे वरदान मांगा कि आप गंगा को अपने सिर पर धारण करें। जब भगवान् शिव ने राजा के वचन को स्वीकार किया तो हिमाचल की पुत्री गंगा बड़ीधारा से स्वर्ग से गिरी। उन्होंने राजा से कहा कि कहो अब मैं किस मार्ग से चलूँ? राजा भगीरथ जिधर राजा सगर के ६० हजार पुत्र मरे पड़े थे उधर ही चले। उन्होंने गंगा को समुद्र तक पहुँचा दिया।"

इसका यह अर्थ हुआ कि अपने पूर्वजों के परिश्रम को निष्फल देख राजा भगीरथ इस खुदे हुए मार्ग द्वारा जल ले जाने का उद्योग करने लगे और अन्त में उन्हें वह धारा प्राप्त हुई कि जिसको पाकर उनका मनोरथ सफल हुआ। परन्तु उसको पहाड़ की इतनी ऊँची चोटी से गिराने के लिए ऐसे स्थान की आवश्यकता थी जो महा घने जगंल से ऐसा परिपूर्ण हो कि उस विशाल धारा के गिरने को सह सके। सम्भव है कि उनके इष्ट-देव से भगीरथ को इस योग्य स्थान का परिचय मिला हो। ऐसे ही स्थान पर भगीरथ ने उस धारा को गिराया और फिर जो मार्ग बना दिया था उससे समुद्र तक उसे लेगए।

वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि "गंगा ने यह विचारा था कि मैं अपनी धारा के वेग से शिव को लिए हुए पाताल को चली जाऊँगी। गंगा के गर्व को जान शिवजी ने उन्हें अपनी जटा में छिपाने की इच्छा की और गंगा जी अनेक उपाय करने पर भी भूमि पर न जा सकीं, और अनेक वर्षों तक उसी जटा मण्डल में घूमती रह गईं। जब भगीरथ ने कठोरतप करके शिवजी को फिर प्रसन्न किया तब शिवजी ने हिमालय के विन्दु सरोवर के निकट गंगा को छोड़ा और उनकी धारा भगीरथ के रथ के पीछे पीछे चली"। इसका यह आशय हुआ कि उस भयंकर वन और घाटी में धारा का जल जब तक पूरा न भर गया तब तक वह बाहर न बह सका और वहाँ से बाहर निकालने को भगीरथ को पुनः उद्योग करना पड़ा, फिर जो मार्ग भगीरथ ने बना दिया था उस मार्ग से होकर वह बह निकला।

रुड़की के इंजिनियरिंग कालेज के एक पूर्व प्रिंसिपल महोदय ने गंगा जी के निकलने के स्थान (जो गंगोत्री से बहुत ऊपर है) तक की यात्रा की थी और कालेज में लाकर वहां के अनेक चित्र रक्खे। उनमें एक चित्र ऐसा है जिससे स्पष्ट ज्ञान होता है कि दूर तक घाटी को काट कर वहाँ से जल लाया गया है। तीन साल हुए मैंने रुड़की में सुना था कि उन प्रिंसिपल महोदय का भी गंगा जी के सम्बन्ध में मेरे जैसा विश्वास था कि वे पहाड़ काट कर बनाए हुए मार्ग से लाई गई हैं। कुछ धार्मिक लोग गंगाजी का आना आकाश से मानते हैं पर हमारे ही प्राचीन ग्रन्थ कहते हैं कि गंगाजी की उत्पत्ति आकाश से नहीं बल्कि हिमालय से है, क्योंकि वाल्मीकीय रामायण का कहना है कि "हिमाचल पर्वत की पहली कन्या गंगा है। जब देवताओं ने अपनी कार्य-सिद्धि के लिये हिमवान् से गंगा को माँगा तब उसने त्रैलोक्य की कामना के

हित से गंगा को देदिया। गंगा आकाश को गई"। अर्थात् गंगा जी की उत्पत्ति हिमालय से है, पर बहुत ऊपर (अर्थात् आकाश) से भगीरथ उनको नीचे लाए हैं। उनके आने से अन्य लाभों के अतिरिक्त लोक का यह भी हित स्पष्ट हुआ कि सारा उत्तरी भारत हरा-भरा हो गया।

(५) पूर्व काल में मनुष्य-कृत जलाशय

प्राचीन काल के आर्य खेती को बहुत प्रधान समझते थे और उसके लिये जल प्राप्ति के नाना उपाय करते थे। शिवपुराण के एक कथन से पता चलता कि वे जलाशय (Reservoirs) बनाकर भी खेती के लिये पानी एकत्रित करके रखते थे। शिवपुराण की कथा इस प्रकार है कि "एक समय सौ वर्ष तक वर्षा नहीं हुई। उस समय बहुतेरे जीव मर गए और बहुत से भागकर देशान्तरों में चले गए। तब गौतम जी ने जो इस स्थान पर रहते थे, वरुण देवता की तपस्या की। वरुण प्रसन्न हो प्रकट हुए। गौतम जी ने वरुण से यह वर माँगा कि यहाँ वर्षा होवे और मेघ का जल मुझको प्राप्त हो। उस समय वरुण की आज्ञानुसार गौतम ने एक गड्ढा खोदा। वरुण ने उसको अक्षय जल से परिपूर्ण कर दिया। वरुण जी के चले जाने पर गौतम भी अपना नित्य नैमित्यक कर्म करने लगे। उस स्थान पर अनेक प्रकार के वृक्ष, फल, फूल और धान्य उत्पन्न होने लगे। गौतम ने वहाँ खेती भी की"। इन कथाओं से ज्ञात होगा कि जिन दिनों अन्य देश खेती करना भी न जानते थे उन दिनों इस देश में नहरें और जलाशय तक बना करते थे।

(६) जनमेजय का सर्प-यज्ञ क्या था

महाभारत का कहना है कि पाण्डव लोग अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को राज्य देकर महा यात्रा को चले गए थे। कुछ काल उपरान्त तक्षक नाग ने, जो एक स्थान पर छिपा हुआ बैठा था, राजा परीक्षित को डस लिया। उनकी चिकित्सा को धन्वन्तरि जी आरहे थे, उनको भी रोकने के लिये उसने रास्ते में डस लिया। राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने नागों से बदला लेने को सर्प यज्ञ किया जिसमें सम्पूर्ण नागों को भस्म कर दिया गया।

इस कथा में नाग का अर्थ सर्प नहीं है। नाग एक मनुष्य जाति थी जो पंजाब में रहती थी पर महर्षि कश्यप के द्वारा उनकी पत्नी कद्रू से उत्पन्न हुई थी। कितने ही जगह पर नाग राजाओं की कथा है। पुराणों में नाग राजाओं की राजधानी कान्ती पुरी (वर्तमान कुतवार, ग्वालियर

राज्य) का वर्णन है । कितने ही स्थानों पर नाग कन्याओं से आर्यों के विवाह का उल्लेख है । अर्जुन ने उलूपी नामक नाग कन्या के साथ हरद्वार में विहार किया था । अहि क्षेत्र (राम नगर) में भगवान् बुद्ध ने नागराज को सात दिन तक उपदेश दिया था । राम ग्राम (रामपुर देवरिया) से नाग लोग भगवान बुद्ध का दाँत ले गये थे जो अब अनिरुद्धपुर (लङ्का) में है । इस नाग जाति के, सम्भवतः तक्षशिला के समीप के किसी व्यक्ति ने जिस कारण उसको तक्षक कहा गया है, छिपकर राजा परीक्षित का वध किया था और फिर उनकी चिकित्सा के लिए आने वाले को भी छिपकर मार डाला । इस पर जनमेजय ने उस जाति के जितने आदमी उसकी पकड़ में आ सके सबका वध करवा दिया था ।

(७) दधीचि ऋषि की मृत्यु का कारण

महात्मा दधीचि अपने समय के सबसे बड़े शैव आचार्य थे । जब दक्ष प्रजापति ने अपने यज्ञ में शिवजी की निन्दा की थी तो यह रुष्ट होकर वहाँ से चले आए थे । लिङ्गपुराण का कथन है कि "जिस युद्ध में शिव भक्त दधीचि से राजा क्षुप और विष्णु परास्त हुए उस स्थान का नाम स्थानेश्वर है ।"

महर्षि दधीचि का आश्रम मिश्रिक (ज़िला सीतापुर) में था । देवताओं ने वहां जाकर उनकी हड्डियां उनसे माँगी । इसका कारण पुराणों में यह दिया है कि देवासुर संग्राम में महात्मा दधीचि की हड्डियों ही के अस्त्र से देवता असुरों को मार सकते थे, अन्यथा असुरों ने उन्हें हरा दिया था । दधीचि ने कहा कि उनका प्रण सब तीर्थों में स्नान करने के बाद प्राण छोड़ने का है । इस पर देवताओं ने सब तीर्थों का जल लाकर महर्षि के तालाब में मिला दिया और उन्होंने उसमें स्नान करके देवताओं की इच्छा पूरी करने को अपना शरीर छोड़ दिया ।

यथार्थ बात यह प्रतीत होती है, जैसा लिङ्गपुराण में भी लिखा है, कि महर्षि दधीचि इतने भारी आचार्य थे कि 'विष्णु' (अर्थात् बड़े से बड़े वैष्णव तक) उनसे हार गए थे । इतने बड़े शैव आचार्य के रहते वैष्णव किसी प्रकार कहीं शैवों से पार नहीं पा रहे थे । उनकी एकमात्र आशा यही थी कि किसी प्रकार महात्मा दधीचि संसार से उठ जावें । देवता सदा वैष्णव रहे हैं । उन्होंने, अर्थात् वैष्णव आचार्यों ने, यह युक्ति निकाली कि

दधीचि को संसार से विदा किया जावे। इसमें सफल-मनोरथ होकर उन्होंने शैवों से जाकर मुकाबिला किया। इसी को कहा गया है कि दधीचि की हड्डियों ही के अस्त्र से देवता असुरों को परास्त कर सके थे अन्यथा नहीं।

शैव भी अवसर पाकर नहीं चूकते थे। स्कन्द-पुराण कहता है कि "पूर्व काल में शिवजी पार्वती के सहित अपने ससुर हिमालय के गृह में निवास करते थे। एक दिन उस नगर की कई स्त्रियां ने उपहास के साथ पार्वती से कहा कि हे देवि! तुम्हारे पति अपने ससुर के गृह में अनेक भाँति के सुख-भोग करते हैं। पार्वती ने लज्जित होकर महादेव जी के पास जाकर कहा कि हे स्वामिन्! आपको ससुराल में रहना उचित नहीं है। आप दूसरे स्थान में चलें। शिव जी पार्वती की बात का कारण समझ कर चलदिये और भागीरथी के उत्तर तट पर वाराणसी नगरी बसा कर उसमें रहने लगे।"

परन्तु आरम्भ में वहाँ बहुत कठिनाई से उनको सफलता प्राप्त हुई क्योंकि शिवपुराण कहता है कि "काशी में उन दिनों राजा दिवोदास राज्य करता था। शिवजी ने राजा दिवोदास को काशी से विरक्त करने के लिए ब्रह्मा को काशी में भेजा। ब्रह्मा ने काशी में जाकर दिवोदास की सहायता से १० अश्वमेध यज्ञ किये"। अर्थात् वैष्णव धर्म का प्रभाव और भी बढ़ा। फिर शिवपुराण का कहना है कि "शिवजी ने दिवोदास राजा से काशी छुड़ाने के निमित्त ६४ योगनियों को भेजा। जब योगनियां की युक्ति न चली तब वे मणिकर्णिका के आगे स्थित हो गईं।"

स्कन्द-पुराण कहता है कि "शिवजी ने राजा दिवोदास को काशी से विरक्त करने के लिए सूर्य को वहाँ भेजा। परन्तु उनसे भी कार्य सिद्ध न हुआ।" देवताओं के नाम आने से ऐसा जान पड़ता है कि कुछ बड़े वैष्णवों को बीच में डाल कर समझौते के प्रस्ताव भेजे गए। पर दिवोदास ने उन्हें स्वीकार नहीं किया।

शैवों के लगातार उद्योग ने किसी प्रकार दिवोदास को काशी से निकाल दिया। क्योंकि शिव-पुराण फिर लिखता है कि "राजा दिवोदास के काशी छोड़ने पर शिवजी काशी में पहुँचे।" इस प्रकार शैवों और वैष्णवों में पूर्वकाल में काफी लड़ाई रही है।

आरम्भ में वैष्णव और शैवों का वैमनस्य महा विकट रूप धारण किये रहता था। दक्ष प्रजापति के यज्ञ की कथा प्रसिद्ध है। यज्ञ में शिवजी की निन्दा होने पर सती ने अपने प्राण छोड़ दिये थे। सती हिमालय ही की पुत्री थीं। ज्ञात होता है पर्वतवासियों ने दक्ष के उद्योग में शैव-मत का परित्याग किया। शैवों ने यज्ञ ही विध्वंस कर डाला और दक्ष का सिर काट कर उसी में डाल दिया। उसी क्रोध और जोश में उन्होंने भारतवर्ष में नए नए स्थानों पर शैव और शाक्त मत के प्रचार के अड्डे बना डाले और वहाँ से उस मत का खूब प्रचार किया। ये वही स्थान हैं जिनके लिये कहा जाता है कि शिवजी सती के मरने पर क्रोध और क्षोभ के दुःख सागर में डूब कर उनके लाश को अपने शरीर में लपेटे घूमते फिरे और इन स्थानों में सती के शरीर के भिन्न भिन्न अंग कट कर गिरे। ये ही स्थान पीठ कहलाये।

एक युग बीतने पर इन मतों के मतावलम्बियों के इस व्यवहार में परिवर्तन हो गया और उनमें आपस में मिल कर रहने की इच्छा होने लगी। द्वारिका की कथा इस परिवर्तन की साक्षी है। रण-छोड़ जी के मन्दिर से दक्षिण त्रिविक्रम जी का शिखर द्वार मन्दिर है। पश्चिम में कुशेश्वर महादेव का मन्दिर है। पण्डे लोग कहते हैं कि जब कुश नामक दैत्य द्वारिका के लोगों को क्लेश देने लगा तब दुर्वासा ऋषि त्रिविक्रम भगवान् को राजा बलि से माँग लाए। जब कुश दैत्य किसी भाँति से नहीं मरा तब त्रिविक्रम जी ने उसको भूमि में गाड़ कर उसके ऊपर शिवलिङ्ग स्थापित कर दिया, जो कुशेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस समय कुश ने कहा कि जो द्वारिका के यात्री कुशेश्वर की पूजा न करें उनकी यात्रा का आधा फल मुझको मिले तब मैं इसके भीतर स्थिर रहूँगा। त्रिविक्रम जी ने कुश को यह वर दे दिया। कुश भूमि में स्थित हो गया।

इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीकृष्णचन्द्र के द्वारिका में रहने से वहाँ और उसके समीप देश में वैष्णव मत स्थापित हो ही चुका था पर पीछे शैवों ने उसे दबाना चाहा। वैष्णवों ने वैष्णव मत को बचाने का बड़ा प्रयत्न किया। वे बाहर से बड़े बड़े वैष्णवों को लाए। अन्त में आपस में समझौता हो गया कि दोनों मत आपस में बिना एक दूसरे से लड़े, रहें। वैष्णव लोग शैवों का आदर करें, यहाँ तक कि जो द्वारिका को आवें वे शिवजी का भी दर्शन करें। यात्रियों को कहा गया कि यदि वे ऐसा न करेंगे तो उनकी यात्रा का फल आधा रह जावेगा। यह भी निश्चित हो गया

कि शैव लोग अपनी जगह पर रहें, वैष्णवों का पीछा न करें। वे एक स्थान पर स्थित कर दिए गए।

आगे चल कर शैव और वैष्णव अपने भेद-भाव को भूल गए। विष्णु ने शिव की वन्दना की तो शिव ने विष्णु को मस्तक नवाया। स्वामी शङ्कराचार्य शैव थे, पर वैष्णव भी श्रद्धा और भक्ति की पुष्पांजलि उन्हें चढ़ाते हैं। और हम देखते हैं कि शैव और वैष्णव एक घर में भी आजकल हिलमिल कर आनन्द से रहते हैं। एक काल तक आपस में जो कलह थी उसका क्रमशः नाम तक मिट गया।

(८) अर्जुन ने पाशुपतास्त्र कहाँ से पाया

महाभारत का कहना है कि अर्जुन हिमालय पर जाकर रहे। वहाँ उनसे एक दिन भील-रूपधारी महाशिव से भारी युद्ध हुआ और लड़ाई बराबर की छूटी। इस पर प्रसन्न होकर शिव जी ने अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान किया। अर्जुन की अस्त्र-विद्या में यह अस्त्र सब से प्रबल था।

जान यह पड़ता है कि जहाँ अर्जुन गए थे उस पहाड़ के निवासी योद्धा-सरदार से अर्जुन की लड़ाई हो गई। अर्जुन वहाँ उसके देश में चले गए थे। सरदार भी जबरदस्त था, और दोनों का जोड़ बराबर का रहा। पर सरदार का यह घमण्ड कि उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता दूर हो गया। उसे नीचा देखना पड़ा कि उसके देश में जबरदस्ती घुस आए हुए एक व्यक्ति को वह निकाल न सका। जिस अस्त्र के द्वारा जङ्गल के भयङ्कर पशुओं पर भील-योद्धा अपना पूरा प्रभुत्व जमाए रहता था वह अस्त्र अर्जुन ने पाया और सीख लिया। इसी को कहा गया है कि भील-रूपधारी शिव ने अन्त में अर्जुन को पाशुपतास्त्र दिया। अब इस काल में वह अस्त्र लुप्त है।

महाभारत से पहले भारतवर्ष में ऐसी चमत्कार की बातें और भी बहुत थीं कि जिनका अनुमान करना कठिन है। महाभारत में भारतवर्ष की विद्या स्वाहा हो गई और धीरे-धीरे सब उसको भूल गए। अग्निबाण जिसका महाभारत आदि में वर्णन है बारूद जैसी वस्तु का अस्त्र था, पर बन्दूक बनने से पहले लोगों को उसका गुमान भी न था। विमान, जिसका रामायण में उल्लेख है, केवल एक कल्पित वस्तु समझी जाती थी। योरोपियन लोग उस पर हंसते थे पर अब वायुयान (aeroplane) बन गया है तब वह हँसी जाती रही।

इस देश की पुरानी विद्या की महत्ता का एक छोटा उदाहरण यह है कि यद्यपि आजकल के अपने देश के पण्डित इतना तक नहीं जानते कि पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा घूमते हैं या नहीं, पर केवल अपने पूर्वजों के बनाए हुए गणित से सारे नक्षत्रों का किसी भी समय का बिलकुल सही स्थान बता देते हैं। कब ग्रहण पड़ेगा, कितना पड़ेगा आदि को इतना ठीक बताते हैं, कि वैसा वर्तमान काल के बड़े से बड़े ज्योतिष यन्त्रालय वाले अपने यन्त्रों द्वारा भी नहीं बता पाते।

कुछ लोग विचार करते हैं कि जो हुनर, विद्या, एक बार आ गई वह कैसे लोप हो सकती है। उनके समझने को दो मोटे उदाहरण काफी होंगे।

जौनपुर शहर के मध्य में गोमती नदी पर सम्राट अकबर के समय का बनवाया हुआ एक पुल है। पुल पर दुकानें भी बनी हैं। बीसियों बार इस पुल पर होकर गोमती नदी बही है परन्तु पुल में तिनके की बराबर भी कभी फ़र्क नहीं आया। बिहार के पिछले भयङ्कर भूकम्प में उसमें एक दराज आ गई। उसकी महा परिश्रम और खर्च से मरम्मत की गई। पर मरम्मत क्या है मानो पुल को नासूर हो गया। जब देखिये फिर वही मरम्मत चाहिये ! जो कहीं आजकल के पुलों के ऊपर से नदी बह जावे, तब तो यह भी जानना कठिन हो कि पुल था कहाँ पर। तीन ही सौ वर्ष में वह मसालों का ज्ञान, जो एक साधारण बात थी, कहाँ चला गया ?

दूसरा उदाहरण विलायत ही का लीजिये। वहाँ की खोज और उन्नति दोनों ही सराहनीय है। पर वहीं के लोग देखिये क्या लिख रहे हैं। पुराने चित्रों के सुधारने का प्रश्न था, उस पर कहा गया है—

"He (restorer of old paintings) removes the dirt with a mixture of turpentine & spirits, and the original paints shine out as no new paints can ever shine to-day ; for the art of mixing them is lost."

अर्थात्—पुराने चित्रों का सुधारक तारपीन के तेल और स्प्रिट से चित्रों पर का केवल मैल हटा देता है और वे चित्र ऐसे चमक उठते हैं जैसे आज कल के कोई चित्र नहीं चमक सकते क्योंकि रङ्गों को मिलाने की वह विद्या अब लोप हो गई है।

जब कुछ शताब्दियों के हुनर यों लोप हो गये तो भारतवर्ष के सहस्रों वर्ष की पुरानी विद्या का लोप हो जाना कौन आश्चर्य की बात है? कैसे कोई कह सकता है कि वह विद्या थी ही नहीं, जब कि उसका वर्णन तक उपस्थित है।

अभी द्वितीय योरोपियन महाभारत हो रहा था। सम्भव था योरोप की विद्या उसमें भस्म हो जाती और एक समय ऐसा ही आ जाता जब आज कल की कला को लोग भूल जाते। कुछ काल में तीसरा योरोपियन महायुद्ध होगा। क्योंकि युद्ध समाप्त होते ही विजयी संसार की बेईमानी, झूठ और कपट फिर नीचतापूर्वक नङ्गे नाचने लगे हैं, और सम्भव है अबकी बार वहाँ की कला नष्ट हो जावे। पर इसकी आशंका कम है क्योंकि यह विद्या अब संसार व्यापी हो गई है और योरोप के नाश होने पर भी रह जायेगी। पहले की अनुपम विद्या केवल भारतवर्ष में थी और यहाँ भी ऊँची कोटि के इने गिने आदमी ही उसे जानते थे, इससे उनके साथ-साथ उसका उठ जाना आश्चर्य की बात नहीं है।

आज भी स्पष्ट देखने में आता है कि साँप आदि का विष उतारने को हमारे यहाँ ऐसे मन्त्र हैं कि मृत-प्राय मनुष्य जीवित हो जाता है। पर विरले ही कोई इन मन्त्रों को जानता है, और जानने वालों के साथ यह विद्या भी लोप हो जाय तो आश्चर्य नहीं। साँप के विष के इस प्रकार मन्त्र द्वारा दूर होने से विस्मित होकर सिकन्दर अपने साथ यहाँ से कई आदमियों को यूनान ले गया था।

अपने ग्रन्थों को देख कर, अपने पूर्व काल का स्मरण करके हममें स्वाभिमान और उत्साह होना चाहिये। अपने पूर्वजों के समान अपना स्थान संसार में बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। इसको चाहिये विचार शक्ति और ऐक्य।

नाना मत

देखा जाता है कि धार्मिक विचार लोगों को अलग अलग कर देता है। एक धर्म का मानने वाला अपने को दूसरे धर्म के मानने वालों से पृथक् समझने लगता है। जो लोग धर्मों के तत्त्वों को समझते हैं वे जानते हैं कि सृष्टि का कर्ता समय समय पर महापुरुषों को भिन्न भिन्न देशों में वहाँ की आवश्यकतानुसार उपदेश और ज्ञान शिक्षा देने को भेजता है, और भेजता रहेगा। निर्बुद्धि लोग उन महापुरुषों के जीवन काल में उनके विरोधी रहते हैं, और उनके मरने पर उनके नाम से नयामत निकाल कर उपद्रव मचाते हैं, और दूसरों से लड़ने का नया उपाय खड़ा कर लेते हैं।

भारतवर्ष के सारे महापुरुष तो एक ही मिट्टी से उठे हैं, एक ही वायु मण्डल में पले हैं। वे केवल अपने दिव्य विचारों को भिन्न भिन्न प्रकार से प्रकट करते रहे हैं।

श्रीकृष्ण चन्द्र, महात्मा बुद्ध, श्री ऋषभदेव, आदि शङ्कराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, सन्त ज्ञानेश्वर, श्रीवल्लभाचार्य, बाबा गोरखनाथ, श्री माध्वाचार्य, श्रीकबीर दास, गुरुनानक देव, राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द-सरस्वती, चैतन्य महाप्रभु, श्रीसमर्थ रामदास, स्वामी जी महाराज, अनेक ऋषि, अगणित मुनि और असंख्य महात्मा सब इसी जाति की उज्ज्वल ज्योति हैं। विष्णु ने शम्भु की और शम्भू ने विष्णु की प्रशंसा की। देवी महाशक्ति को सारे ही हिन्दू सिर नवाते हैं।

श्रीकबीर दास स्वामीरामानन्द जी के शिष्य थे। अन्तिम सिक्ख गुरु, शेर गोविन्द सिंह जी अपने "विचित्र नाटक" ग्रन्थ में अपने विषय में कहते हैं कि पूर्व जन्म में योग करके वे परमात्मा में लीन हो चुके थे। किन्तु परमात्मा ने फिर उन्हें संसार में आकर धर्म-प्रचार की आज्ञा दी-इससे गुरु गोविन्द सिंह के रूप में उनका अवतरण हुआ। वे कहते हैं:—

"अब मैं अपनी कथा बखानों, तप साधन जेहिविधि मुहि आनों।
हेमकुंट पर्वत है जहाँ। सप्त शृंग सोभित है तहाँ॥
सप्त शृंग तिह नामु कहावा। पंडुराज जंह जोग कमावा॥
तहँ हम अधिक तपस्या साधी। महाकाल कालका अराधी॥

इच्छानुसार मार्ग ग्रहण किये हुए हैं। कर्म और पुनर्जन्म सबका मूल मन्त्र है। इस मूल-मन्त्र के मानने वाले सभी व्यक्तियों को, आपस में एकता प्रकट करने के लिये अपने को एक नाम से पुकारना चाहिये। केवल हिन्दू कहना चाहिये। ऐसा न होने से ऐक्य नहीं होता और राजनैतिक क्षेत्र में अंग्रेज़ों ने हज़ारों चालें चली थीं। कुटिल नीति द्वारा एक-एक करके हिन्दुओं का विनाश करने की सोची जारही थी। उदाहरण के लिये जन-संख्या (मर्दुम-शुमारी) को लीजिए। यह युक्ति निकाली गई कि नाना मत होने के कारण हिन्दुओं का वर्ग-विच्छेद कर दिया जावे। कितने ही उपाय भाग करने के किये गये और यह कहा गया कि 'हिन्दू' की कोई परिभाषा (definition) ही नहीं है। यह निर्विवादसत्य है कि "हिन्दू" की परिभाषा सदा से चली आरही है। वह यह है कि 'जो कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास करे' व हिन्दू है।

एक बार सन् १६२२ ई० में जब महामना पण्डित मदनमोहन जी मालवीय से मुज़फ़्फ़र नगर में मुझसे बात-चीत हुई थी, उस समय मैंने निवेदन किया था कि हिन्दुओं ने जो बौद्धों को अपने से पृथक् समझ रक्खा है उनको उन्हें अपनाना चाहिये॥ हमारे विष्णु के एक अवतार ने उस मत को चलाया है। उस मत के भारतवर्ष में इस समय प्रचलित न होने से बौद्धों को हमें अपने से अलग न समझना चाहिये। श्रद्धेय मालवीय जी ने कहा कि "जो भारतवर्ष में हमारे नाना मत हैं वे तो मिल जुल लें बाहर की बात पीछे रहो।" उनका कहना सत्य ही था। पर मैंने सितम्बर ३, १६२२ के "लीडर" में एक लेख लिखा जिसका अनुवाद नीचे दिया जाता है:—

'क्या बौद्ध हिन्दू हैं ?

'इसका उत्तर देने के पूर्व यह जानना अनिवार्य है कि "हिंदू" किसे कहते हैं। कई साल हुए यह प्रश्न उठा था और उस पर विभिन्न अनुमतियाँ प्रकट की गई थीं। राय बहादुर के० रामानुजाचार्य ने तो जैनियों और सिक्खों को भी हिन्दू धर्म के घेरे से बाहर कर दिया था। पर यह विचार बिलकुल ही ग़लत है। और यद्यपि राजनैतिक कारणों से सिक्खों ने हाल ही में अपने को हिन्दुओं से अलग करने का प्रयत्न किया परन्तु वे दोनों दलों की सामाजिक मैत्री को विच्छेद करने में पूर्णतया सफल नहीं हो सके। सिक्खों के

गुरु (श्रीगुरुगोविन्द सिंह जी सहित) हिन्दू नहीं थे तो और क्या थे? यदि सिक्ख मत का प्रादुर्भाव भारत वर्ष में इसलाम के आने के पूर्व हुआ होता तो अब तक सिक्ख मत सर्वअंगीकारी हिन्दू धर्म में इतना मिश्रित हो चुका होता की उसके पृथक् होने के विचार तक की सम्भावना न रह जाती।

'रही जैनियों की बात, तो जैसा बाबू (अब डाक्टर) भगवान दास जी लिखते हैं —'उनके हिन्दू होने में कौन सवाल कर सकता है! वे वैष्णवों के उसी वर्ग में अन्तर्विवाह भी करते हैं।'

'भारतीय उद्‌गम के सारे मत हिन्दू धर्म में आ जाते हैं और इन सब मतों की विशेषता है कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास करना। जो कोई इनमें विश्वास करता है वह हिन्दू है और निस्सन्देह बौद्ध इन में विश्वास करते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कॉंग्रेस ऑफ रिलीजन्स (भिन्न धर्मों की सभा) में कहा था कि 'वैदान्तिक दर्शन के उच्च आध्यात्मिक विचारों से लेकर, जिन के आगे आजकल की वैज्ञानिक विश्लेषणाएँ अन्तर्नाद सी हैं, और बौद्धों के शून्यवाद तथा जैनियों की नास्तिकता से लेकर मूर्ति पूजन और अनगिनत पौराणिक कहानियों के (mythologies) के दलित विचार तक हिन्दू धर्म में स्थान रखते हैं।' यह सत्य भी है।

'बौद्ध मत का जन्म भारतवर्ष में हुआ है। वहीं उसका पोषण हुआ वह हिन्दू धर्म पर ही स्थित है तथा हिन्दू धर्म का एक अंश है। उसने एक समय भारतवर्ष से दूसरे प्रकार के हिन्दू आराधना के साधनों को हटा दिया था और अन्य प्रदेशों में भी फैल गया था, इससे लोग उसे एक दूसरा मत समझने लगे हैं। यह भ्रम दूर होना चाहिये। डाक्टर डेविड्स के शब्दों में 'बौद्ध मत हिन्दू धर्म की शाखा और उसी धर्म का फल है! बुद्ध सबसे महान, सब से उत्तम, और सबसे बुद्धिमान हिन्दू थे।'

'बुद्ध विष्णु भगवान् के अवतार थे और उन्होंने धर्म के चक्र को पवित्र काशी क्षेत्र में चलाया था। दुनिया के सारे बौद्ध भारतवर्ष को अपनी पवित्र भूमि मानते हैं और ब्राह्मणों को अपने देश में आदर की दृष्टि से देखते हैं। फिर भी भगवान् बुद्ध और अन्य अवतारों के अनुयायी अपनी धार्मिक एकता पर गम्भीरता पूर्वक विचार नहीं करते। हिन्दू और बौद्ध यह समझें कि वे एक हैं: तब उनकी शक्ति अतिशय, अनुपम अभेद्य हो जावेगी। उनकी

सँख्या विश्व की आधी जन-संख्या से अधिक है। वे पृथिवी की आबादी में ५४ प्रतिशत गिनती में हैं।

'हिन्दू प्रचारकों को बौद्ध-प्रदेशों में जाकर स्वामी विवेकानन्द के कथन को प्रमाणित करना चाहिये। काट-छाँट बहुत हो चुकी। अब पुनर्मिलन होना चाहिये।

'यह सामाजिक और धार्मिक कर्तव्य है जो हिन्दू सभा (अब हिन्दू महासभा) के अनुकूल है। क्या वह इस योग्य अपने को साबित कर सकेगी?

—रामगोपाल मिश्र'

इस लेख के छपने के कुछ ही दिन पश्चात—हिन्दू महासभा का अधिवेशन होने वाला था। उसको यह बात जंच गई और अधिवेशन में बौद्धों को अपनाने का प्रस्ताव बड़े जोरों से पास हुआ। क्योंकि यह बात प्रथम मुझसे उठी थी, अतः महासभा ने मुझे इस विचार को बर्मा, सीलोन, चीन और जापान में फैलाने को लिखा।

महासभा के प्रधान मन्त्री ऑनरेबिल लाला सुखबीर सिंह जी ने नवम्बर ३०, १९२२ में मेरे ३ सितम्बर के लेख का उत्तर "लीडर" में छापा जिसका अनुवाद निम्नलिखित है:—

'क्या बौद्ध हिन्दू हैं?

पं० राम गोपाल मिश्र के "क्या बौद्ध हिन्दू हैं" लेख के विषय में, जो ३ सितम्बर को छपा था मैं जनता को यह विदित करना चाहता हूँ कि यह प्रश्न मेरे और अन्य हिन्दू नेताओं के मस्तिष्क में घूम रहा है। हिन्दू जाति के लिए यह प्रश्न बड़े महत्त्व का है और उसका परिणाम बहुत दूर तक जावेगा।

'जैसा कि उस लेख के लेखक ने दिखाया है; यह निर्विवाद है कि बौद्ध हिन्दू हैं। अखिल भारतीय हिन्दू सभा के अधिवेशन में बौद्धों को हिन्दू मान लिया गया है। और उनमें और अपने में भ्रातृभाव स्थापित करने का प्रयत्न आवश्यकीय है। मैं चीन और जापान के बौद्धों से, जो सारनाथ के नवीन विहार के उद्घाटन के सम्बन्ध में आए हुए हैं, पत्र व्यवहार कर रहा हूँ। और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यदि आवश्यकता हुई तो भारतवर्ष के बाहर भी जाने को तैयार हूँ।

'जैसा कि पं० राम गोपाल मिश्र ने दिखाया है हिन्दू और बौद्ध संसार की मनुष्य-गणना में ५४ फ़ी सदी हैं। और इसका यह अर्थ है कि बौद्ध ४० करोड़ से कम नहीं हैं। हम दोनों को एक होना ही पड़ेगा और उस ओर प्रयत्न-शील होना ज़रूरी है। श्रीमान् मिश्र जी लिखते हैं: 'यह सामाजिक और धार्मिक कर्त्तव्य-हिन्दू सभा के अनुकूल है। क्या यह इस योग्य अपने को साबित कर सकेगी?' मैं इसके उत्तर में यह कहूँगा कि हिन्दू सभा ने ठीक दिशा में क़दम उठाया है। क्या हिन्दू जनता अपना कर्तव्य पूरा करेगी? यदि करेगी तो मैं इस मामले में पूरी कोशिश करने को तैयार हूँ।

मुलवीर सिन्हा
प्रधान मन्त्री अखिल भारतीय
हिन्दू सभा'

मुज़फ़्फ़रनगर
२५ नवम्बर

यह बात पत्रों में भी चल निकली। खासा वाद-विवाद लोगों में हो गया और कितने ही लेख निकले। इनमें से एक, दिसम्बर ११, १९२२ के "लीडर" में छापे गये पत्र का अनुवाद नीचे दिया जाता है। एक सज्जन ने 'ऐन्टी हमबग' (anti humbug) के नाम से बौद्धों के हिन्दू होने का विरोध किया था इस पर किन्हीं दूसरे सज्जन ने "एक हिन्दू" (A Hindu) के नाम से यह पत्र निकाला था—

'क्या बौद्ध हिन्दू हैं?—एक प्रतिरोध

'महाशय,—आपके संवाददाता जो अपने आपको "ऐन्टी हम्बग" कहते हैं और जिन्होंने हिन्दू सभा के प्रधान मन्त्री तथा पण्डित राम गोपाल मिश्र को इस प्रश्न के उठाने पर कि "क्या बौद्ध हिन्दू हैं"? भला बुरा कहा है, विदित होता है कि हिन्दू धर्म का दर्शन, उसकी विशाल हृदयता और सर्व व्यापकता को नहीं समझते। वे इतिहास को तिलाञ्जलि देना चाहते हैं और भूल जाना चाहते हैं कि बौद्ध-मत हिन्दू दर्शन से निकला है और भारत में जन्मा है जो हिन्दुओं की भूमि है। एक समय था जब हमारे देश का बहुत बड़ा भाग बौद्ध-धर्म को मानता था। बहुत से ऐसे राजा और उनकी करोड़ों प्रजा थी जिनको बौद्ध-धर्म में विश्वास था, और यह धर्म इसी देश से चीन और जापान में फैला था। अतएव इसमें कोई शंका नहीं कि धर्म के विचार से बौद्ध उतने ही हिन्दू हैं जितने आर्यसमाजी और राधास्वामी। यह हिन्दू धर्म की विशाल-हृदयता को संकुचित करना और अपनी आँखों

को अस्तित्व से बन्द करना होगा यदि हम लोग भी, विशेष कर हिन्दू, ऐसा विचार करें जैसा कि "ऐन्टी हम्बग" करते हैं।

'सब कोई जानता है कि इस काल में जापान एक बहुत बढ़ा-चढ़ा देश है और एक से अधिक बातों में विलायत तथा अमेरिका से समता रखता है। जो लाभ हिन्दुस्तान को, और विशेषकर हिन्दुओं को, जापान से धार्मिक और सामाजिक नाता जोड़ने में होगा उसका अनुमान नहीं किया जा सकता। जापान हिन्दुस्तानियों को औद्योगिक उन्नति में भी मदद दे सकता है, और हमारी नेक सरकार ने कई हिन्दुस्तानी युवकों को रङ्ग व दूसरी कलाओं में शिक्षा प्राप्त करने जापान भेजा। चीन भी अपनी निद्रा वेग से त्याग रहा है। अतएव हिन्दुओं और बौद्धों को एक सामाजिक और धार्मिक सूत्र में बँध जाने से हमारा लाभ ही लाभ है, हानि कोई नहीं है। इस लिए हम आपके संवाददाता "ऐन्टी हम्बग" से यही प्रार्थना करेंगे कि वह ऐसी 'हम्बग' (ऊल जलूल) बातें "ऐन्टी हम्बग" की आड़ में लिख कर हिन्दू जाति को क्षति न पहुँचावें।

एक हिन्दू,

मामला आगे चलता चला और सन् १६३६ की हिन्दू महासभा के सभापतित्व के लिये बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध नेता भिक्षु उत्तम को चुन कर हिन्दुओं ने दिखा दिया कि वे और बौद्ध अलग अलग नहीं हैं, एक ही हैं। और इस प्रवीण बौद्ध नेता ने इस सभापतित्व को स्वीकार करके जता दिया कि बौद्ध भी इस विषय में यही विचार रखते हैं और हिन्दू हैं।

अपना कर्त्तव्य

पृथिवी पर भारत वर्ष ही एक स्थान है जहाँ आत्म-ज्ञान का निर्मल सरोवर अनन्त काल से बहता रहा है, जहाँ विशाल हृदय और सहन शीलता है, सूक्ष्म दृष्टि नहीं है। आत्मज्ञानी सांसारिक लोभ को तुच्छ समझता है और अपने संसर्ग में आने वालों को भी वैसी ही शिक्षा देता है। इससे इस देश के निवासियों के हृदय में वैराग, संतोष और अहिंसा के भाव समा गए हैं। परिणाम यह हुआ कि पिशाच वृत्ति वालों के लिए, जिनकी वृद्धि कलियुग के साथ-साथ होती रही है, यह देश हलवा बन गया है। इसी बुराई को दूर करने को चार वर्णों की रचना हुई थी, जिनमें क्षत्रियों का धर्म बलप्राप्ति और शासन द्वारा देश की रक्षा करना था। क्षत्रिय संसार के किसी भी देश वाले का मुँह अपनी वीरता से मोड़ दे सकता है। मेवाड़ का इतिहास इसका साक्षी है। पर धर्म युक्त देश में धर्म युद्ध ही की शिक्षा उसकी नसों में भरी जाती थी, कपट, झूठ और दग़ा वह नहीं कर सकता था, और दूसरों द्वारा उसी का शिकार हो गया। विदेशियों ने कपट और छल से आपस में खूब फूट डाली और लाभ उठाया। अपना संगठन नष्ट-भ्रष्ट हो गया। परिणाम-स्वरूप भारतवर्ष उथल-पुथल हो गया। मार्ग नहीं सूझता। उधर पुराने धर्म के विचार हृदय से नहीं निकले हैं और इधर हिंसा मक्कारी और कूट के बिना सफलता नहीं होती दिखाई देती।

हिन्दू का चित्त मक्कारी करता है तब भी पुराने संस्कार के कारण, दबता है, और बुराई की मात्रा बढ़ने देने से खिंचा रहता है। वह हाथ उठाता है पर अहिंसा का भाव हाथ पकड़ लेता है। उधर दूसरी जाति वाला पूर्ण मक्कारी, निर्दयता और चालबाज़ी द्वारा दाँव मार ले जाता है।

इस कशमकश (संघर्ष) के समय परमात्मा ने एक ऐसा दृश्य सामने रख दिया है जिससे हृदय को सान्त्वना हो सकती है। वह दृश्य है पिछले महायुद्ध का, जो साबित करता है कि कुटिल प्रकृति की माया थोड़े दिन चलती है, फल फूल नहीं सकती। भूलोक और परलोक कहीं वह कल्याण नहीं कर सकती। एक कुटिल प्रकृति वाला ही दूसरे कुटिल प्रकृति वाले का भक्षक बनता रहता है और बनता रहेगा। इसलिये धर्म का आधार ही टाक

है। वहाँ शान्ति है। सत्धर्मी जीवन और धर्म को अलग अलग नहीं कर सकता। उसके जीवन का प्रत्येक कार्य धर्ममय होगा। वह समझता है कि सब स्वरूपों में एक ब्रह्म है। पुरुष और प्रकृति के समागम से गुण और अवगुण उत्पन्न हो गए हैं यह नाशवान हैं क्योंकि यह बदलते रहते हैं और एक समय आवेगा जब बुद्धि के प्रकाश में यह नष्ट हो जावेंगे और ब्रह्म-स्वरूप रह जावेगा। इस ज्ञान को रखते हुए कर्मयोगी किसी से द्वेष नहीं रख सकता पर अवगुण का यह परम शत्रु होगा और उसको जहाँ देखेगा दूर करेगा। यही देवासुर संग्राम है।

पूर्व काल में भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को इसी कर्मयोग और सत्कर्म की शिक्षा प्रदान की थी। और पीछे गुरु गोविन्दसिंह जी ने वह शिक्षा खालसा को दी। इस काल में हम उस शिक्षा से गिर गये हैं। उसे ग्रहण करना होगा। उसमें हृदय की शान्ति और कल्याण दोनों हैं। सत्कर्मी असत्य और अत्याचार को नहीं देख सकता। इन्हीं से उसका युद्ध है।

सत्कर्मी चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलान और चाहे ईसाई, अन्याय की बात सहन नहीं करेगा। केवल सत्याग्रह ही एक मार्ग है जिससे दुनिया से विकार दूर किया जा सकता है। अन्याय को सह लेना उस विकार की वृद्धि कराना है, अर्थात् स्वयं दुष्कर्म करना है।

हम आज असत्य को भी सहते हैं। मानो देवासुर संग्राम मे देव बन कर असुर का काम करते हैं। कुछ लोग कह लेते हैं कि अंग्रेजों ने मुसलमानों से भारतवर्ष का राज्य पाया था। क्या यह सत्य है? पर लोग उसे सुन लेते हैं और मौन रहते हैं मानो उसे सत्य मान लेते हैं। बम्बई प्रान्त, मध्य प्रदेश, मध्य भारत, दक्षिण मद्रास प्रान्त पर तो मरहठों का साम्राज्य छाया ही हुआ था और निज़ाम हैदराबाद उनके अधीन उन्हें चौथ देते थे। पर बङ्गाल (जिसमें विहार, उड़ीसा सम्मिलित थे) पर भी मरहठों का प्रभाव जम चुका था, नहीं तो अंग्रेजों ने मरहठों से अपना बचाव करने के लिये अपनी कलकत्ते की फ़ैक्टरी और फ़ोर्ट विलियम के चारों ओर 'मरहठा डिच' क्यों खोदी थी? यदि बङ्गाल के नवाब में ज़रा भी दम बाक़ी था तो अंग्रेज़ों को बङ्गाल के एक कोने में मरहठों से अपने बचाव को इतनी फ़िक्र क्यों पड़ गई थी? पञ्जाब, काश्मीर और क़ाबुल पर सिक्खों का साम्राज्य था। राजपूताना सदा हिन्दू नरेशों के पास रहा है और है। राजपूताना मे मारवाड़ के वीर दुर्गादास

और मेवाड़ के महाराणा राजसिंह ने औरङ्गजेब के छक्के छुड़ा दिये थे। औरङ्गजेब के उत्तराधिकारी किस गिनती में थे ? मुग़ल-साम्राज्य की राजधानी आगरा पर भरतपुर नरेश महाराज सूरजमल चढ़ आए थे और उसे लूट तक ले गये। दिल्ली में बादशाह बहादुरशाह महाराजा सिंधिया के वश में उनके आधीन थे और वहाँ ग्वालियर की सेना रहती थी। अब कौन सा हिन्दोस्तान था जो अंग्रेजों ने मुसलमानों से पाया ? इसका यह आशय नहीं है कि मुसलमानों और हिन्दुओं में द्वेष हो। द्वेष करना मूर्खता है, पर हिन्दुओं के असत्य और अन्याय को सहन करके पाप के भागी बनने का कारण क्या है ? उनमें ऐक्य, भुजबल और स्वाभिमान का न होना।

यह अवश्य है कि कर्म व्यक्तिगत है, पर एक से दूसरे को सहायता मिलती है, हिम्मत बढ़ती है, और सङ्गठित असत्य और अत्याचारिक क्रूरता का मुकाबिला करने को धर्म सङ्गठन अत्यन्त आवश्यक है।

स्वतन्त्र भारत की सरकार का कर्तव्य है कि प्रत्येक बड़े गाँव में, और छोटे गाँव हों तो कुछ को एक में मिलाकर, अखाड़े खोले। नवयुवकों को कसरत और लाठी के खेल के अतिरिक्त स्थानानुकूल कर्तव्य की शिक्षा दे जिसका ये लोग अपने-अपने गाँव में प्रचार करें। यह केवल काग़जी शिक्षा न हो। इस प्रकार गाँव की नीव पर जो सङ्गठन खड़ा होकर फैलेगा वही जन-समाज का उपकार कर सकेगा। चरित्र परायणता बिना स्वतन्त्रता का उपभोग नहीं हो सकता।

हमारे यहाँ लाखों सन्यासी और वैरागी हैं जिनका संसार से कोई नाता नहीं है। उनको इस काम में लगाना चाहिए। जनता में उनके प्रति श्रद्धा पहिले ही से उपस्थित है, और इनको अपने आगे या पीछे किसी के लिये चिन्ता करना नहीं है। सारे देश में उनकी सहायता से सहज में एक ऐसा विशाल सङ्गठन बन सकता है जिससे जनता का उपकार हो सके, वह अपने बल पर आप खड़ी हो सके और पग पग पर अपनी रक्षा के लिये सरकार का मुँह न तके। स्वतन्त्र भारत की सरकार को स्वयम् अपने हित के लिए इसे तुरन्त करना आवश्यक है। पशुबल होना उचित है जिससे कोई दुर्व्यवहार का साहस न कर सके, पर उस पशुबल का पशु के समान प्रयोग करना अनुचित है। शक्तिहीन होना पाप है पर शक्ति पाकर उसका सदुपयोग न जानना महापाप है। हममें चाहिये यह शक्ति, और जानना चाहिये हमें इस शक्ति का उपयोग। समाज की नींव दृढ़ नहीं है तो उसके नीचे पोल रह जायेगा।

सबसे पहिले देशवासी के हृदय में उसका कर्तव्य-ज्ञान जमाना चाहिए— हरिजनों को सच्चे जी से हृदय से लगाना, स्त्रियों को शिक्षित करके उनको साथ-साथ चलाना, अपने पूर्वजों की कीर्ति का स्मरण करना, कर्मवीर बनना—फिर किसी क्षेत्र में उसके आगे कौन बाँध बाँध सकेगा ?

जन-समूह में जान फूँकने के लिये विद्वानों को उचित है कि विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त, अशोक, हर्षवर्धन, शालिवाहन, समुद्रगुप्त आदि के इतिहास को उपन्यास रूप में लिखें ! जिन वीरों ने कठिनाइयाँ झेल कर सफलता प्राप्त की है—जैसे छत्रपति शिवाजी, पञ्जाब केसरी रणजीत सिंह, क्षत्रिय-कुल-तिलक राणा प्रताप सिंह—उनकी जीवनी लोगों के सन्मुख रखें।

बालकों के पढ़ने के लिये छोटी-छोटी शिक्षाप्रद धार्मिक कहानियों की ज़रूरत है जिस से बालकों को अपने धर्म और कर्त्तव्य का बचपन से ही परिचय होने लगे। ईसाई लोग जैसे छोटी छोटी कहानियाँ धार्मिक पुस्तकों से बच्चों के लिये लिखते हैं उसका हमें अनुकरण करना चाहिये। इसी उद्देश से मैंने एक पुस्तक "बाल शिक्षा माला" (Moral Tales from the Mahabharat with Couplets from the Ramayan) लिखी थी। उसका तीसरे संस्करण में जाना प्रतीत कराता है कि उससे कुछ लाभ हुआ। पर मेरा मतलब लिखने से केवल यह था कि वैसी और पुस्तकें लिखी जावें। इसी प्रकार स्त्रियों की दशा का चित्र खींचने को मैं "चन्द्र भवन" लिख चुका हूँ। यह निवेदन ज़रूर है कि उसको पढ़ा जावे, क्योंकि आशा है कि स्त्रियों के प्रति जिन अन्यायों पर हमारा ध्यान नहीं जाता, इस उपन्यास को पढ़ कर हमारे जी में वे आपसे आप चुभेंगे। अपने में कौन से अवगुण हैं जिनको दूर करना होगा और हिंदू मुसलमानों का मेल कैसे होगा इसके जताने को एक नाटक "भारतोदय" में लिख चुका हूँ। कदाचित् सब इस बात को स्वीकार करेंगे कि मेल होने का यही एक तरीका है जो 'भारतोदय' में दिया है, और यह भी निश्चय है कि बिना अपने अवगुणों को दूर किये हम पनप नहीं सकते। देश-भाइयों को "चन्द्रभवन" और "भारतोदय" दोनों ही की बातों पर विचार करना उपयुक्त होगा। हम अपने जीवन के आरम्भ में महान उद्देश लेकर उठते हैं, पर उस पर स्थिर नहीं रह पाते अपितु उससे नीचे आ जाते हैं। यह दुर्भाग्य है ! अपने को ऊँचा रखने का उपाय करना चाहिए। इसका दृश्य यदि कोई सज्जन देखना चाहेंगे तो मेरे "माया" नामक उपन्यास में मिल जायगा। यह ग्रन्थ और अन्य जो

मेरी लेखनी से निकले हैं उन सब के लिखने का कोई न कोई उद्देश है। जैसे साधारणतः पुस्तक बिकने के लिए लिखी जाती है वैसे यह नहीं लिखे गये हैं। मेरी इच्छा है कि उन ग्रन्थों के समान और ग्रन्थ निकलें जिनसे मनोरञ्जन और उतना ही लाभ भी हो।

इन सारे ग्रन्थों का द्वितीय संस्करण निकल चुकना विदित करता है कि यदि विद्वान सज्जन इस प्रकार की पुस्तकें लिखेंगे तो समाज-सेवा के अतिरिक्त उनको और भी लाभ होगा।

"Shivaji the robber" (शिवाजी डाकू) हमें स्कूल में पढ़ाया गया था। यह अंग्रेजों की राजनीति थी। हमारे वे दिन भी बीत गये! अब Shivaji the great (शिवा जी महान) पढ़ने का समय है। इसी उद्देश से एक नाटक "महाराजा छत्रपति" भी सिनेमा (Cinema) के लिए लिख कर मैं सेवा में उपस्थित कर चुका हूँ।

हमें अपने त्यौहारों और उनके वैज्ञानिक गुणों को भली भाँति जानना चाहिये। यह प्रत्येक हिन्दू के लिये उतना ही आवश्यक है जितना अपने प्राचीन स्थानों को जानना। "तपोभूमि" को समाप्त करके मेरा विचार "व्रतावली" को हाथ मे लेने का है। देवताओं, ऋषियों, महात्माओं और महापुरुषों के चित्र एकत्रित करके "हिन्दू एलबम" भी बनाने का विचार है।

अपने पवित्र स्थानो की रक्षा अपना पहला कर्त्तव्य है। यह हमारे मानसिक और शारीरिक बल, दोनों की कसौटी है। यदि उनकी रक्षा हमसे न हुई तो हम अपने मन में चाहे जो समझें, पर अपने किसी हक़ की रक्षा कभी नहीं कर सकते। महाराज अशोक ने पवित्र बौद्ध स्थानों पर स्तम्भ व स्तूप बनाकर अमरत्व प्राप्त कर लिया है। क्या कोई वर्तमान नरेश, अवतारों, महर्षियों, महात्माओं के स्थानों पर स्मारक स्तम्भ खड़े करके यह अमरत्व न पाना चाहेगा? इसमें अधिक धन की आवश्यकता नहीं। ऐसे लाखों रुपये प्रतिवर्ष इधर से उधर होते हैं पर यह अवसर किसी को सदा नहीं मिलता। उसका नाम भारतवर्ष के पत्थरों में स्वर्णाक्षर में सदा के लिए जगमगा जाएगा।

काल परिचय

वेद भगवान आदि हैं और उनकी रचना का कोई समय नहीं कहा जा सकता। रामायण, महाभारत तथा पुराण की रचना का भी कोई निश्चित समय नहीं है। परन्तु कलियुग के आरम्भ में महाभारत का युद्ध हुआ था और उसे (विक्रमी सम्वत् २००६ में) आज से ५०५० वर्ष हो गए। यह युग-परिवर्तन का समय था। महर्षि व्यास उन दिनों जीवित थे और युद्ध के थोड़े ही दिन पश्चात् उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की थी। व्यास जी ने उसे अपने पुत्र शुकदेव तथा वैशम्पायन को पढ़ाया। वैशम्पायन ने पाण्डवों के प्रपौत्र जनमेजय की सभा में उसे सुनाया। वहीं रोमहर्षण ऋषि ने उसे जाना और अपने पुत्र उग्रश्रवा को पढ़ाया, और उग्रश्रवा ने नैमिषारण्य (नीम सार, जिला सीतापुर) में उसे ऋषियों को सुनाया। यह ऋषि गण शौनक कुल पति के यज्ञ में जो बारह वर्ष तक जारी रहा था, एकत्रित हुए थे। उस समय इस ग्रन्थ का नाम "जय" था और इससे ८८०० श्लोक थे।

समय बीतने पर "जय" में नए नए अंश जुड़ते गए और वह २४,००० श्लोकों का एक बड़ा ग्रन्थ बन गया। उस समय उसका नाम "भारत" था।

आगे चल कर इन श्लोकों में और भी वृद्धि होती गई और वर्तमान 'महाभारत' की विभिन्न प्रतियों में ९८,५४५ तक श्लोक मिलते हैं, अर्थात् वर्तमान पुस्तक महर्षि व्यास के लिखे हुए ग्रन्थ से ग्यारह गुने से भी अधिक होगई है।

वर्तमान पुराण इतने पुराने नहीं जितना महाभारत है परन्तु इनसे पहले दूसरे पुराण थे। उनके लोप होजाने पर उनके आधार पर नए पुराणों की रचना हुई है। पर वे पुराने पुराण बहुत प्राचीन थे और वेद के समकालीन कहे जा सकते हैं, अथर्व वेद तक में पुराणों का अस्पष्ट उल्लेख है, और ब्राह्मण ग्रन्थों में तो इतिहास पुराण का साफ उल्लेख है। रोमहर्षण ऋषि के समय में एक पुराण संहिता थी जिसका उन्होंने संग्रह किया था। उन्होंने उसे अपने तीन शिष्यों को पढ़ाया और उन्होंने अपनी अपनी अलग संहिता तैयार कर ली। फिर यह तीन से छः हुई और अब १८ पुराण और २६ उप-पुराण हैं।

रामायण का वर्तमान ग्रन्थ महाभारत के भी पीछे का लिखा हुआ है। उसकी भाषा ही यह बताती है। उसमें भगवान बुद्ध, बौद्ध मन्दिर तथा बौद्ध भिक्षुओं तक का उल्लेख है। पर महाराज रामचन्द्र जी के समकालीन महर्षि वाल्मीकि का लिखा हुआ एक अति प्राचीन काव्य ग्रन्थ था जिसे महाराज रामचन्द्र के दरबार में उनके पुत्र लव और कुश ने उन्हें सुनाया था। उस प्राचीन काव्य के आधार पर वर्तमान वाल्मीकीय रामायण लिखी गई है, जैसे इस वर्तमान ग्रन्थ के आधार पर अब रामचरित मानस की रचना हुई है। प्रतीत होता है कि महर्षि वाल्मीकि का काव्य ग्रन्थ सदा के लिये लुप्त होगया है। वह संसार का प्रथम काव्य था। उसी ग्रन्थ के आधार पर जान पड़ता है, महाराज रामचन्द्रजी की कथा महाभारत में लिखी गई है।

भगवान गौतम बुद्ध का जन्म ईसवी संवत् से ६२४ साल पहले कपिल वस्तु (भुइलाडीह, बस्ती) के महाराज शुद्धोधन के यहाँ हुआ था। बोध गया में ३५ साल की अवस्था में बोधि प्राप्त करके भगवान ने ४५ साल धर्मोपदेश दिया और ईसवी से ५४४ साल पहले कुशीनरा (कसिया, गोरखपुर) में शरीर छोड़ा। इसी भगवान बुद्ध के महा परि निर्वाण के वर्ष से बौद्ध सम्वत आरम्भ होती है।

सम्राट अशोक जिन्हें पृथिवी का सबसे महान और श्रेष्ठ सम्राट माना गया है, भारतवर्ष की गद्दी पर पाटलिपुत्र (पटना) में ईसवी संवत से २६६ वर्ष पहले बैठे थे। और संवत २३२ बी०सी० में शरीर छोड़ा था। बौद्ध महात्मा उपगुप्त की परामर्श से उन्होंने पवित्र बौद्ध स्थानों पर स्मारक, स्तूप और स्तम्भ बनवाए थे जिसके कारण आज भी उन स्थानों का पता चल रहा है।

अन्तिम जैन तीर्थङ्कर **श्री महावीरस्वामी** का जन्म ईसवी संवत से ५९९ वर्ष पूर्व कुण्डल पुर (जिला पटना) में हुआ था और उन्होंने पावा पुरी में ५२७ बी० सी० में शरीर छोड़ा। अन्य तीर्थङ्करों का समय, अन्य बुद्धों व शेष अवतारों व महर्षियों और ऋषियों के समय के समान इतना पुराना है कि अनन्त काल में उसका खोजना असम्भव है।

सिक्ख गुरुओं के जन्म, गद्दी ग्रहण करने और चोला छोड़ने की सम्वतें निम्न लिखित हैं :—

	जन्म	सिखधर्म का आरम्भ	परलोक गमन
गुरु नानक जी	१४६६ ई०	१४६७ ई०	१५३६ ई०
		गद्दी ग्रहण करने का साल	
गुरु अंगद देव	१५०४ ई०	१५३६ ई०	१५५२ ई०
गुरु अमरदास	१४७६ ई०	१५५२ ई०	१५७४ ई०
गुरु रामदास	१५३४ ई०	१५७४ ई०	१५८१ ई०
गुरु अर्जुन देव	१५६३ ई०	१५८१ ई०	१६०६ ई०
गुरु हरि गोविन्द	१५६५ ई०	१६०६ ई०	१६४४ ई०
गुरु हरि राइ	१६३० ई०	१६४४ ई०	१६६१ ई०
गुरु हरि कृष्ण	१६५६ ई०	१६६१ ई०	१६६४ ई०
गुरु तेगबहादुर	१६२१ ई०	१६६५ ई०	१६७५ ई०
गुरु गोविन्द सिंह	१६६६ ई०	१६७५ ई०	१७०८ ई०

विक्रमी संवत् जो महाराज विक्रमादित्य से चली, ईसवी संवत् से ५७ वर्ष पहिले आरम्भ हुई है। इससे विक्रमी संवत् में से ५७ घटाने से ईसवी संवत् निकल आती है। और इसी तरह ईस्वी संवत् में ५७ जोड़ देने से विक्रमी संवत् बनजाती है।

जैनी संवत महावीर स्वामी के निर्वाण से आरम्भ हुई है और विक्रमी संवत के ४७० वर्ष पहिले शुरू हुई है। विक्रमी संवत में ४७० जोड़ने से जैन संवत निकल आती है और इसी प्रकार जैन संवत में से ४७० घटाने से विक्रमी संवत बन जाती है। जैन सम्वत् व ईसवी में ५२७ वर्ष का अन्तर है।

शक संवत् कुशाण सम्राट कनिष्क की राज्यारोहण तिथि से शुरू होती है और इसका आरम्भ ईसवी सन् ७८ से होता है। अतः ईस्वी सन् से ७८ वर्ष घटाने तथा विक्रमी संवत् से १३५ वर्ष घटाने से, शक संवत निकल आती है। इसका प्रयोग पहले दक्षिण भारत में अधिक होता था।

तपोभूमि में पुराने समय के चीनी यात्रियों की तथा और पश्चिमी विद्वानों की पुस्तकों का भी जगह जगह पर उल्लेख है। उनकी यात्रा व पुस्तकों का समय निम्नलिखित है :—

(१)—फाहियान (Fa-hian) ने अपनी यात्रा ३६६ ई० में आरम्भ की, और ४०० ई० के शुरू में पश्चिम दिशा से भारतवर्ष में प्रवेश किया था। ४११ ई० में उनकी यात्रा समाप्त हुई।

(२)—सुंग-युन (Sung-yun) व हुई सेन (Hwuiseng Seng) इस दोनों चीनी यात्रियों ने काबुल व पश्चिमी पञ्जाब का भ्रमण ५०२ ई० में किया था।

(३)—प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यांन चांग (Hieun Tsang) ने ६२६ ई० में चीन को छोड़ा और ६४५ ई० में फिर वहां लौट कर पहुँचे। इन्होंने ६३१ ई० में पश्चिम दिशा से सिन्धु नदी को पार किया था और पञ्जाब व कश्मीर का भ्रमण करके ६३५ ई० में सतलज पार किया। छः साल तक पूर्व के देशों में बिहार तक घूम फिर कर यह मुल्तान लौट गए और फिर वहाँ से चल कर चार मास नालन्दा (राजगृह के समीप) महाविद्यालय में अपनी रही सही शंकाओं का निवारण करने को ठहरे। ६४३ ई० में वे सम्राट हर्षवर्धन के साथ बौद्धों के विशाल सम्मेलन में प्रयाग में शरीक हुए और उसी साल जालन्धर जाकर तक्षशिला (शाह ढेरी, जिला रावलपिण्डी) होते हुए ६४४ ई० में भारतवर्ष से बाहर चले गये। भारत के चक्रवर्ती सम्राट, हर्षवर्धन, जिनके राज्य काल में ह्यांन चांग ने भारत भ्रमण किया था और जिन्होंने ह्यान चांग का भारी स्वागत किया था, सन् ६०६ ई० में कन्नौज की गद्दी पर बैठे थे और ६४८ ईसवी में उन्होंने शरीर छोड़ा था। यह सम्राट हर पाँचवे साल अपना सारा धन प्रयागराज में बाँट दिया करते थे।

(४)—सिकन्दर आजम ने ३२७ बी० सी० इन्दु नदी के पश्चिम में बिताई थी। ३२६ बी० सी० में उन्होंने इन्दु नदी पार की और तक्षशिला में निवास किया। उसी साल उनका महाराज पुरु से युद्ध हुआ और साल के अन्त में पहली अक्टूबर ३२६ बी० सी० को जल द्वारा वे अपने देश को लौट पड़े।

(५)—यूनानी तत्वज्ञानी अपोलोनियस ऑफ़त्याना (Appolonius of Tyana) ने ४२ ई० से ४५ ई० तक पञ्जाब का भ्रमण किया था।

(६)—सुप्रसिद्ध यूनानी भूगोल लेखक टालिमी (Ptolemy) की पुस्तक की रचना १४० ई० से १६६ तक हुई है। इन्होंने भारतवर्ष के बहुत से स्थानों का वर्णन किया है।

नं०	नाम
१००	कलपेश्वर (केदार नाथ)
१०१	कलाप ग्राम
१०२	कलियानी (कल्याणपुर)
१०३	कल्पिनाक (बड़गावा)
१०४	कल्याणपुर
१०५	कश्मीर
१०६	कसिया
१०७	कसूर (लाहौर)
१०८	कहसावन (गिरनार पर्वत)
१०९	काँगड़ा
११०	काकन्दी (खुखुन्धो)
१११	काञ्ची
११२	काटली
११३	काठ मांडू
११४	काठसुरे
११५	कातवा
११६	कामरूप (गोहाटी)
११७	कामाँ
११८	कामाख्या
११९	कामार पुकुर
१२०	कामोद
१२१	कारों
१२२	कालिञ्जर
१२३	कालीदह (मथुरा)
१२४	काल्पी
१२५	काशी (बनारस)
१२६	काशीपुर
१२७	किरीट कोण
१२८	किष्किन्धा (आनागन्दी)
१२९	कीर्तिपुर (देहरा पातालपुरी)
१३०	कुड़की ग्राम
१३१	कुण्डलपुर
१३२	कुंडापुर (कुण्डलपुर)
१३३	कुण्डिनपुर
१३४	कुतवार
१३५	कुद्रमाल
१३६	कुद्रवा नाला (महाथानडीह)
१३७	कुनिन्द
१३८	कुन्थल गिरि (रामकुंड)
१३९	कुमायूं वगढ़वाल
१४०	कुमार स्वामी (मल्लिकार्जुन)
१४१	कुमारी तीर्थ
१४२	कुम्भकोणम
१४३	कुर किदार
१४४	कुरुक्षेत्र
१४५	कुलुहा पहाड़
१४६	कुशीनगर वा कुशीनारा (कसिया)
१४७	केदार नाथ
१४८	केन्दुली
१४९	केशी तीर्थ (मथुरा)
१५०	केसगढ़ (आनन्दपुर)
१५१	केसरिया (विसाढ़)
१५२	कैलास गिरि
१५३	कोडँवीर (कुण्डिनपुर)
१५४	कोग्राम
१५५	कोटवा
१५६	कोटि तीर्थ (चित्रकूट व रामेश्वर)
१५७	कोरूर

नं० नाम
१५८ कोल गाँव (गोलगढ़)
१५६ कोलर
१६० कोल्हापुर
१६१ कोसम
१६२ कोसम इनाम (कोसम)
१६३ कोसम खिराज (कोसम)
१६४ कौआ कोल पहाड़
१६५ कौशाम्बी (कोसम)
१६६ क्रौंच पर्वत (मल्लिकार्जुन)

ख

१६७ खड्डूर साहेब
१६८ खरोद (नासिक)
१६६ खीर ग्राम
१७० खुखुन्धो
१७१ खुपुआडीह
१७२ खेमराजपुर (नगरा)
१७३ खैराडीह (जमनिया)
१७४ खैराबाद
१७५ खोजकी पुर (बिठूर)

ग

१७६ गगासों
१७७ गङ्गा सागर
१७८ गङ्गेश्वरी घाट
१७६ गङ्गोत्री
१८० गजपन्था
१८१ गण्डकी (मुक्तिनाथ)
१८२ गया
१८३ गर्ग आश्रम (कुल)(गगासों)
१८४ गलता
१८५ गहमर
१८६ गालव आश्रम (कुल) (गलता)

नं० नाम
१८७ गिरनार पर्वत
१८८ गिरियक
१८६ गिरि व्रज (राजगृह)
१६० गुजँरा वाला (लाहौर)
१६१ गुटौवा (नगरा)
१६२ गुड़ गांव
१६३ गुणावा
१६४ गुप्तेश्वर महादेव (तीर्थपुरी)
१६५ गुरपा पहाड़ी (कुरकिहार)
१६६ गृद्धकूट पर्वत (राजगृह)
१६७ गोंडा (अयोध्या)
१६८ गोइँद वाल
१६६ गोकर्ण
२०० गोकुल (मथुरा)
२०१ गोदना
२०२ गोपेश्वर
२०३ गोमती द्वारिका (द्वारिका)
२०४ गोमन्त गिरि
२०५ गोरखपुर
२०६ गोलकुण्डा (उदयपुर)
२०७ गोलगढ़
२०८ गोला गोकर्णनाथ
२०६ गोवर्धन (मथुरा)
२१० गोहाटी
२११ गौड़ (लखनौती)
२१२ गौतम आश्रम (कुल)(त्र्यम्बक)
२१३ गौरी कुण्ड (त्रियुगीनारायण)
२१४ ग्वालियर

घ

२१५ घुश्मेश्वर

नं० नाम

ध

३२० धनुषकोटि (रामेश्वर)
३२१ धनुषा (सीतामढ़ी)
३२२ धरणीकोटा
३२३ धवलकूट (सम्मेद शिखर)
३२४ धाड़
३२५ धाम (चारों)
३२६ धोपाप
३२७ धोसो (चौसा)

न

३२८ नगर
३२९ नगर खास (भुइलाडीह)
३३० नगरा
३३१ नगरिया
३३२ नगरीवा (चन्देरी)
३३३ नदिया
३३४ नन्द प्रयाग
३३५ नन्दिग्राम (अयोध्या)
३३६ नरवार
३३७ नरसी ब्राह्मणी (पण्ढरपुर)
३३८ नवल
३३९ नागार्जुनी पर्वत
३४० नागोश
३४१ नागौर
३४२ नाटक कूट (सम्मेद शिखर)
३४३ नाथ द्वारा
३४४ नाथ नगर
३४५ नानकाना साहेब
३४६ नानुर (कातवा)

नं० नाम

३४७ नारायण सर
३४८ नालन्दा (बड़गाँवा)
३४९ नासिक
३५० निकुम्भिला (लङ्का)
३५१ निगलीवा (भुइलाडीह)
३५२ निधिवन (मथुरा)
३५३ निम्बपुर (आनागन्दी)
३५४ निर्जरा कूट (सम्मेद शिखर)
३५५ नीमसार
३५६ नूरलिया (लङ्का)
३५७ नेवाँसे (आलन्दी)
३५८ नैनागिरि
३५९ नोलास (सरहिन्द)
३६० नौराही

प

३६१ पञ्चनद
३६२ पञ्चसरोवर (पुष्कर)
३६३ पटना
३६४ पड़रौना
३६५ पण्ढरपुर
३६६ पपोसा (फ़फोसा)
३६७ पप्पोर (पड़रौना)
३६८ पम्पासर (आनागन्दी व पवित्र-सरोवर)
३६९ परली ग्राम (वैद्यनाथ)
३७० परली (जाम्ब गाँव)
३७१ परसा गाँव (भुइलाडीह)
३७२ पराछन (काल्पी)
३७३ पवित्र सरोवर (कुल)

नं० नाम
६९६ सेदँप्पा
६९७ सेमर खेड़ी
६९८ सेवरी नारायण (नासिक)
६९९ सोन पत (कुरुक्षेत्र)
७०० सोनपुर
७०१ सोनागिरि
७०२ सोमनाथ पट्टन
७०३ सोरय्या (शाहढेरी)
७०४ सोराव
७०५ सोरों
७०६ स्वयम्भू कूट (सम्मेद शिखर)
७०७ स्यालकोट
७०८ स्वर्गारोहिणी (गङ्गोत्री)
७०९ स्वर्णभद्रकूट (सम्मेद शिखर)

ह

७१० हत्याहरण (नीमसार)

नं० नाम
७११ हरद्वार
७१२ हरिपर्वत (कश्मीर)
७१३ हरिहरक्षेत्र (सोनपुर)
७१४ हस्तिनापुर
७१५ हाजीपुर
७१६ हारित आश्रम (यकलिङ्ग)
७१७ हिंडौन (मुल्तान)
७१८ हिङ्गुलाज
७१९ हुगला पीक (लङ्का)
७२० हुसेन जोत (सहेट महेट)
७२१ हृषीकेश

त्र

७२२ त्र्यम्बक
७२३ त्रिचिनापल्ली
७२४ त्रियुगी नारायण

ज्ञ

७२५ ज्ञान भर कूट

अ

१ अकोल्हा—(देखिए नासिक)

२ अगस्त्य आश्रम (कुल)—(देखिए नासिक)

३ अगस्त्य कुटी—(देखिए नासिक)

४ अगस्त्य कूट—(देखिए नासिक)

५ अगस्त्य पुरी—(देखिए नासिक)

६ अगस्त्यमुनि—(देखिए नासिक)

७ अग्नितीर्थ—(देखिए रामेश्वर)

८ अजन्ता—(हैदराबाद राज्य में एक प्रसिद्ध स्थान)

अजन्ता का पुराना नाम अचिन्ता है ।

यहाँके एक संघाराम में आर्य्य असङ्ग का निवास थाजिन्होंने बौद्ध धर्म में योगाचार्य्य चलाया ।

अजन्ता अपनी गुफाओं के लिए जो पाँचवीं और छठी शताब्दी ईस्वी में पहाड़ काट कर बनाई गई हैं, जगत् प्रसिद्ध है ।

९ अजमेर—(राजपूताने में एक नगर)

स्वामीदयानन्द सरस्वी का यहाँ देहान्त हुआ था ।

अजमेर के समीप तारागढ़ पहाड़ी है और इसके पश्चिम पुराने अजमेर के खण्डहर है । यह पुराना अजमेर सुप्रसिद्ध महाराज पृथ्वीराज के पिता की राजधानी था और तारागढ़ उस का पहाड़ी किला था ।

१० अदूयार—(देखिए मद्रास)

११ अनन्त नाग—(देखिए कश्मीर)

१२ अनुरुद्धपुर—(देखिए लङ्का)

१३ अनहिल पट्टन—(उत्तरी गुजरात में एक नगर)

प्रसिद्ध विद्वान हेमचन्द्राचार्य, कुमार पाल के दरबार में यहीं रहे थे ।

इस नगर की नींव विक्रमीय सम्वत् ८०२ (७४६ ई०) में पड़ी थी। वल्लभी के ध्वंस के बाद यह नगर गुजरात का सर्व प्रधान नगर हुआ और कई शताब्दियों तक इसे चालुक्य सम्राटों की राजधानी होने का गौरव प्राप्त रहा। इस का दूसरा नाम अनहिल वाड़ा भी है।

१४ अनुसुइया—(देखिए चित्रकूट)

१५ अविचल नगर—(हैदराबाद राज्य में नंदेड के समीप एक स्थान।)

इस नगर को सिक्ख गुरु शेर गोविन्द सिंह ने बसाया था और यहीं उन्होंने शरीर छोड़ा था।

सिक्खों के चार तख्तों में से एक तख्त 'श्री हजूर साहबी' यहाँ है। (तख्तों के विवरण के लिये देखिए अमृतसर)

१६ अमरकण्टक—(मध्य प्रदेश मे रींवा राज्य के अन्तर्गत पहाड़ का शिखर)

इस स्थान से पवित्र नर्मदा नदी निकली है।

इसका दूसरा नाम अम्रकूट पर्वत है।

प्राचीन कथा (गरुड़ पुराण, ८१ वाँ अध्याय) अमरकण्टक उत्तम तीर्थ है।

(शंख स्मृति—१४वां अध्याय) अमर कण्टक और नर्मदा का दान अनंत फल देता है।

(महाभारत, वन पर्व—८६वां अध्याय) ब्रह्मा के सहि सम्पूर्ण देवता नर्मदा के पवित्र जल मे स्नान करने आते हैं।

(मत्स्यपुराण—१८५वां अध्याय) कनखल में गंगा और कुरुक्षेत्र में सरस्वती प्रधान हैं। नर्मदा नदी ग्राम अथवा वन में सर्वत्र उत्तम है। सरस्वती का जल ५ दिनों में, यमुना का जल ७ दिनों में, और गंगा जल तत्काल ही पवित्र करता है। परन्तु नर्मदा के दर्शन मात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है। (कूर्म और अग्निपुराण में भी यह वर्णन है।)

(शिव पुराण—ज्ञान संहिता ३५वां अध्याय) नर्मदा नदी शिव का तरू है। इसके तट पर असंख्य शिवलिंग स्थित हैं।

(पद्मपुराण—सृष्टि खण्ड ६वाँ अध्याय) पितरों की कन्या नर्मदा नदी भरत खण्ड में बहती हुई पश्चिम समुद्र में जा मिली है।

(भूमि खण्ड, २०वाँ व २१वाँ अध्याय) सोम शर्मा नर्मदा के तट पर कपिला संगम पुण्य तीर्थ (मान्धाता के समीप) में स्नान करके तप करने लगा। जब विष्णु भगवान् उसको वरदान देकर चले गये तब वह नर्मदा के तीर पुण्यदायक तीर्थ में जिसका नाम अमरकण्टक है, दान पुण्य करने लगा।

वर्तमान दशा—विन्ध्याचल के अमरकण्टक शिखर पर बहुत से पुराने देव मंदिर हैं। इसी शिखर मे नर्मदा नदी निकली है। मंदिरों से घिरा हुआ एक कुंड बना हुआ है जिससे पश्चिम की ओर एक छिद्र में से पानी गिरता है। यही नर्मदा नदी का आरम्भ है। एक मंदिर में नर्मदा माई की मूर्त्ति विराजमान है। यह शिखर समुद्र के जल से लगभग ३४०० फ़ीट ऊँचा सुन्दर वृक्ष लताओं से परिपूर्ण है। इस स्थान से थोड़ी दूर पर शोण (सोन) नदी भी निकली है। रीवाँ दरबार की ओर से मंदिरों को भोग राग का प्रबंध रहता है। बहुतेरे यात्री नर्मदा के निकास स्थान से मुहाने तक (७५० मील) जाकर इस पवित्र नदी की परिक्रमा करते हैं।

१७ अमरनाथ—(देखिए कश्मीर)

१८ अमिन—(पंजाब प्रांत में थानेसर से ५ मील दक्षिण-पूर्व एक स्थान) इसका पुराना नाम अभिमन्यु खेड़ा था। इसे चक्रमू भी कहते हैं।

महाभारत में यहाँ चक्र व्यूह को रचना, और अभिमन्यु का वध हुआ था।

अदिति ने यहाँ तप किया था और सूर्य को जन्म दिया था।

प्रा० क०—महाभारत युद्ध में कौरवों की सेना के विनाश से दुर्योधन घबड़ा उठा था और अपने महारथियों को धर्म युद्ध छोड़ अधर्म युद्ध के लिये उकसाता था। एक दिन अर्जुन दूसरी ओर युद्ध कर रहे थे इस अवसर को पाकर चक्रव्यूह की रचना कौरवों ने की, जिसको सिवाय अर्जुन के कोई नहीं भेद सकता था। अर्जुन का १६ वर्ष का पुत्र अभिमन्यु अपने पक्ष को संकट में देख व्यूह में घुस गया। अकेले उसने व्यूह को तोड़ लिया होता, पर ऐसा होते देख सात महारथियों ने मिल उस बालक से लड़ कर उसका वध किया था।

[अभिमन्यु का जन्म श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा के गर्भ से हुआ था। वे अर्जुन को ब्याही थीं। विराट की राजकुमारी उत्तरा से अभिमन्यु का

का विवाह हुआ था। राजा परीक्षित इन्हीं के पुत्र थे, जिनको राज्य देकर पांडव लोग महायात्रा को चले गये थे। १६ वर्ष की अवस्था में द्रोणाचार्य, कर्ण आदि सात महारथियों से अकेले अभिमन्यु ने युद्ध करके वीर गति पाई थी।]

प्र० द०—अमिन २००० फ़ीट लम्बा और ८०० फ़ीट चौड़ा एक खेड़ा है, जिसकी ऊँचाई २५ से ३० फ़ीट तक है। खेड़े के ऊपर एक छोटा सा गाँव बसा हुआ है। यहाँ अदिति और सूर्य के मंदिर तथा सूर्यकुंड बने हुए हैं। कहा जाता है सूर्यकुंड उस स्थान पर है जहाँ सूर्य का जन्म हुआ था। जो स्त्रियाँ पुत्र प्राप्ति की इच्छा रखती हैं वे इतवार को अदिति के मंदिर में पूजन करके सूर्यकुंड में स्नान करती हैं।

१९ अम्रकूट—(देखिए अमरकण्टक)

२० अमृत वाहिनी नदी तीर्थ—(देखिए नासिक)

२१ अमृतसर—(पंजाब में एक ज़िले का सदर स्थान)

यह सिक्ख धर्म का केन्द्र स्थान है। सिक्ख धर्म के चार तख्तों में से एक तख्त 'श्री अकाल तख्त साहिबों' यहाँ है। यहाँ अन्तिम सिक्ख गुरु गोविन्द सिंह जी की तलवार है।

(सिक्ख धर्म के अन्य तीन तख्त निम्नलिखित हैं :—

'श्री पटना साहिबों' जहाँ गुरु गोविन्द सिंह जी का जन्म हुआ था।

'श्री आनंदपुर साहिबों' जहाँ उन्होंने खालसा स्थापित की थी और पाँच 'प्यारे' बनाये थे।

'श्री हज़ूर साहिबों' अविचल नगर, जहाँ उन्होंने शरीर छोड़ा था।)

चौथे गुरु रामदास जी, पाँचवें गुरु अर्जुन जी तथा छठें, सातवें और आठवें गुरु हर गोविन्द सिंह जी, हरिराय जी तथा हरि कृष्ण जी ने अमृतसर में निवास किया था।

अमृतसर नगर से ३ मील दूर पर छहरटा गाँव में 'गुरु द्वारा साहेब जी' है। यहाँ छठे गुरु श्री हरगोविन्द सिंह जी का जन्म हुआ था।

अमृतसर के रामदासपुरा में गुरु द्वारा 'गुरु के महल साहेब' के स्थान पर नवें सिक्ख गुरु तेगबहादुर जी का जन्म हुआ था।

प्रा० क०—अमृतसर का पुराना नाम 'चक' है। सिक्खों के चौथे गुरु रामदास जी ने इसको बसाया। तब इसका नाम रामदासपुर हुआ। फिर

उन्होंने उनके भीतर बड़ा तालाब बनवा कर उसका नाम 'अमृतसर' रक्खा। महाराजा रणजीतसिंह के समय में यह पंजाब में अद्वितीय होगया, और आज सिक्ख धर्म का केन्द्र स्थान है। महाराजा रणजीतसिंह ने मन्दिर पर सोने के पत्तर जड़वा दिये, और जहाँगीर के तथा अन्य मुसलमानी मकबरों से सामान ला लाकर मन्दिर तालाब, तथा अन्य २ स्थानों को सजाया।

(सिक्खों के दस गुरु इस प्रकार हैं:—

गुरु नानक, गुरु अङ्गद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन, गुरु हरगोविन्द सिंह, गुरु हरिराय, गुरु हरिकृष्ण, गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्द सिंह।)

[गुरु हरगोविन्दसिंह जी—पाँचवें सिक्ख गुरु अर्जुनदेव जी के इकलौते पुत्र थे। आपका जन्म माता गङ्गा जी के उदर से १४ जून १५६५ ई०में हुआ था। आपके पिता अर्जुनदेव जी के शहीद हो जाने पर २५ मई १६०६ ई० को आपको गुरु आई का कार्य सँभालना पड़ा।

मुग़लों के कोप की वृद्धि सिक्खों पर होती जाती थी, इससे आपने सब सिक्खों को शस्त्र धारण करने की आज्ञा दी, और अपने गले में दो खड्ग धारण किये एक मीरी का दूसरा पीरी का। १६६५ ई० में आपने श्री हरि मन्दिर साहेब (अमृतसर का सुनहरा सिक्ख गुरुद्वारा) के सम्मुख एक राज-सिंहासन बनाया और अपना ठाठ-बाट पूरा राजाओं का सा बना लिया। यह स्थान अब भी अकाल तख्त के नाम से प्रसिद्ध है। अमृतसर को सुरक्षित करने को आपने एक क़िला बनवाया जो अब लोहगढ़ कहलाता है। आपकी बढ़ती ताक़त को देखकर जहाँगीर ने आपको ग्वालियर के क़िले में बन्द कर दिया पर पीछे छोड़ दिया। उस क़िले में ६० और राजा बन्दी थे। गुरु जी ने बिना उनके छूटे बाहर आने से इन्कार किया। इसपर जहाँगीर ने उनको भी छोड़ दिया। गुरु हरगोविन्द जी ने ६० पल्लों का एक जामा बनवा कर पहिना और प्रत्येक आदमी एक-एक पल्ला पकड़ कर उनके साथ बाहर निकल आया। तभी से गुरु हरगोविन्द जी का नाम 'बन्दीछोर' प्रसिद्ध होगया। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने पर तीन बार गुरु जी को उसकी सेना से युद्ध करना पड़ा और अन्त में करतारपुर में उन्होंने अपना निवास बनाया। ३ मार्च १६४४ ई० को यहाँ से आपने परलोक गमन किया। यह स्थान पातालपुरी के नाम से विद्यमान है। कहते हैं कि इस स्थान से गुरु जी अपने घोड़े सहित पातालपुरी को सिधार गये।]

[गुरु तेगबहादुर का जन्म गुरु हरगोविन्द जी के घर माता नानकी जी के उदर से पहिली एप्रिल १६२१ ई० को हुआ। २० मार्च १६६५ ई० से आपने गुरुआई का काम सँभाला। आपके भाई गुरु दित्ता के लड़के धीरमल ने इसका विरोध किया और एक आदमी आपके मार डालने को भेजा। उसने गोली से आपको घायल कर दिया और आपका सारा सामान लूट ले गया। पर सिक्ख लोग उसको और धीरमल दोनों को पकड़ लाये। आपने उन्हें क्षमा कर दिया।

सन् १६६६ ई० में आपने सतलज के किनारे पहाड़ी राजाओं से भूमि लेकर आनन्दपुर नगर बसाया। धर्मप्रचार के लिए आसाम तक आपने यात्रा की। औरङ्गजेब के अत्याचार से पीड़ित हिन्दू गुरु तेगबहादुर के पास रक्षा के लिए गये। उन्होंने कहा कि आप लोगों की रक्षा तभी हो सकती है जब कोई महान तथा पवित्र आत्मा प्रसन्नता पूर्वक अपना शीश निछावर करे। नौ साल के बालक गोविन्द सिंह ने कहा पिता जी आपसे बढ़कर महान और पवित्र आत्मा कौन है। गुरु जी बालक की बात पर बहुत प्रसन्न हुए और हिन्दुओं से कहा कि औरङ्गजेब से कह दें कि यदि गुरु तेगबहादुर मुसलमान हो जावें तो वे सब मुसलमान हो जावेंगे। औरङ्गजेब ने गुरु जी को बुला भेजा। नाना प्रकार के प्रलोभन मुसलमान होने को दिये, और न होने पर ११ नवम्बर १६७५ ई० को उनका वध दिल्ली में करवा डाला। गुरु जी के अन्तिम स्थान का नाम शीशगंज है जोकि दिल्ली के चाँदनी चौक में विद्यमान है।]

द० द०—शहर के मध्य भाग में अमृतसर नामक पवित्र तालाब है जो ४७५ फीट लम्बा और इतना ही चौड़ा है। तालाब के चारों ओर ऊपर से नीचे तक सफेद संगमरमर की सीढ़ियाँ हैं और बीच में गुरुद्वारा और स्वर्ण मन्दिर है जिसे 'दरबार साहेब' भी कहते हैं। तालाब के पश्चिम किनारे से मन्दिर तक २०० फीट लम्बा सुन्दर पुल है जिसके दोनों ओर सुनहरे खम्भों पर लालटेनें हैं। भारतवर्ष के किसी मन्दिर में इस मन्दिर के समान सोना नहीं लगा है। मन्दिर के ऊपर की मंजिल में एक छोटा परन्तु उत्तम प्रकार से सँवारा हुआ शीशमहल है जहाँ गुरु बैठते थे।

मन्दिर के एक चाँदी के पत्तर से मढ़े हुए दरवाजे से खजाने को सीढ़ियाँ गई हैं जिसमें ६ फीट लम्बे ४२ इंच व्यास के चाँदी के ११ खोल, ४ डण्डे

भी बड़े चोब, सुनहले डाट लगे हुए मुलम्मेदार ३ सोंटे, १ पंखा, १ चँवर, पाँचखालिस सोने के शेर, एक चाँदनी (जिसमें लाल, हीरे और पन्ने जड़े हैं) और एक सोने के डब्बे के अतिरिक्त मोतियों की झालर लगा हुआ हीरों का एक सुन्दर मुकुट है जिसको गुरु नवनिहालसिंह पहनते थे।

अमृतसर तालाब के पश्चिम किनारे पर पुल के पास पाँचवें गुरु अर्जुन के समय का एक सुनहले गुम्बद का मन्दिर है जिसमें सुनहले सिंहासन पर वस्त्र से छिपाये हुए कई असबाब, गुरु गोविन्द सिंह की चार फ़ीट लम्बी तलवार और एक गुरु का सोंटा है।

अमृतसर तालाब के दक्षिण १३१ फीट ऊँचा सुन्दर 'अटल मीनार' है। जिसको लोग 'बाबा अटल' भी कहते हैं। यह मीनार छठें गुरु हरगोविन्द सिंह जी के छोटे पुत्र 'अटल राय' के समाधि मन्दिर के स्थान पर बना है।

अमृतसर में कार्तिक की दीवाली के समय विशेष उत्सव होता है। यह नगर पंजाब का परम प्रसिद्ध उन्नतशाली नगर है।

२२ अम्बर—(जयपुर राज में एक स्थान)

अम्बर को मान्धाता के पुत्र अम्बरीष ने बसाया था और यह उनकी राजधानी था। मान्धाता ने ढूँढिया में अश्वमेध यज्ञ किया था।

प्रा० क०—[भक्तवर अम्बरीष एक विशाल साम्राज्य के अधीश्वर थे और न्यायपूर्वक राज्य का पालन करते थे। भारतवर्ष के प्राचीन काल के परम प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजाओं में से अम्बरीष एक हैं। यह वैवस्वत मनु के प्रपौत्र थे।]

[सूर्य-वंश में एक युवनाश्व नाम के बड़े पराक्रमी राजा हो गये हैं। संतान न होने से वे दुखी थे और ऋषियों ही के आश्रम में निवास किया करते थे। ऋषियों ने एक पुत्रेष्टि यज्ञ का आयोजन किया। एक घड़े में यज्ञ पूत जल अभिमंत्रित करके उसमें उन्होंने ऐसी शक्ति स्थापित कर दी कि जो उस जल को पीवे उसके परम पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हो। धोके से राजा स्वयम् उसे पी गये और उनकी कोख फाड़कर एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका पालन इन्द्र ने "माँ धाता" कहकर अपने ऊपर ले लिया। इससे उस बालक का नाम मान्धाता पड़ गया। अपने बाहुबल से इन्होंने पृथिवी पर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया और पृथिवी का नाम "मान्धाता क्षेत्र" हो गया। अाम्बरीष, मुचकुन्द और पुरुकुत्स महाराज मान्धाता के पुत्र थे।]

च० द०—जयपुर कायम होने से पहिले अम्बर जयपुर राज्य की राजधानी था। जयपुर राज्य का पुराना क़िला और ख़ज़ाना अब भी अम्बर में है और यह देखने योग्य स्थान है। आजकल इसे आमेर कहते हैं। ढूँदिया जहाँ मान्धाता ने अश्वमेध यज्ञ किया था चित्तौड़ के दक्षिण में है।

२३ अम्बाला—(पंजाब प्रांत में एक ज़िले का सदर स्थान)

यहाँ राधास्वामियों के पाँचवे गुरु 'साहेब जी महाराजा' सर आनन्द स्वरूप का जन्म हुआ था।

[६ अगस्त १८८१ ई० को सर आनन्द स्वरूप का जन्म अम्बाला में खत्री परिवार में हुआ था, आपने राधास्वामी सम्प्रदाय के तीसरे गुरु श्री महाराज साहब से आगरा में दीक्षा ली थी और ७ १२-१९१३ ई० को चौथे गुरु श्री सरकार साहब के देहान्त के बाद गुरुआई प्राप्त की। आपने २०-१-१९१५ ई० को आगरा में दयाल बाग की स्थापना की जो उद्योग का एक बड़ा केन्द्र है। २४-६-१९३७ ई० को मद्रास में आपने शरीर छोड़ा।]

२४ अयोध्या—(संयुक्त प्रदेश के फ़ैज़ाबाद ज़िले में प्रसिद्ध नगर)

अयोध्यापुरी को वैवस्वत मनु ने बसाया था। भारत की सप्त पुरियों में से यह एक पुरी है। इसको साकेत, विशाख, कोशलपुरी, अपराजिता, विदेहा विनिता और अवधपुरी भी कहते हैं।

वैवस्वतमनु, इक्ष्वाकु, त्रिशंकु, हरिश्चन्द, सगर, भगीरथ, दिलीप, रघु, अम्बरीष, ययाति, दशरथ, रुकमाङ्गद यहीं हुए हैं।

महाराज रामचन्द्र ने यहीं राज्य किया है। उनकी, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की यह जन्मभूमि है।

राजा दशरथ ने यहाँ राम के वियोग में प्राण छोड़े थे, और राम लक्ष्मण भी यहीं से स्वर्ग को गए थे।

महर्षि ऋषि शृंग ने चिरोदक नामक स्थान में दशरथ का यज्ञ कराया था और दशरथ की पुत्री शान्ता को ब्याहा था। विश्वामित्र अयोध्या आकर राम लक्ष्मण को ले गए थे।

अगस्त्य मुनि यहाँ पधारे थे।

राजा नल ने अयोध्या में आकर रथ हांकने की नौकरी की थी।

कथा है कि एक जन्म में काग भुशुंडि जी अयोध्या में शूद्र थे।

श्री भगवान आदिनाथ (प्रथम तीर्थंङ्कर), अजितनाथ (द्वितीय तीर्थङ्कर), अभिनन्दन नाथ (चतुर्थ), सुमतिनाथ (पंचम) और अनन्तानाथ (१४ वें) के

यहाँ गर्भ और जन्म कल्याणक हुए थे। इसी भूमि पर सहस्र भ्रमण में आदिनाथ को छोड़कर बाकी चारों तीर्थङ्करों ने दीक्षा भी ली थी और कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया था। (आदिनाथ ने प्रयाग में दीक्षा ली थी और वहीं कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया था।)

भगवान बुद्ध ने यहाँ छः चौमास निवास किया था।

चार और पहिले के बुद्धों ने भी यहाँ निवास किया था।

बौद्ध ग्रंथों की सुप्रसिद्ध स्त्री विशाखा यहाँ विवाह के पहले रहती थीं।

स्वामी श्री रामानन्दाचार्य ने यवनों के अत्याचार से पीड़ित हिन्दुओं की रक्षा यहाँ की थी।

विशिष्टाद्वैत स्वामीनारायण सम्प्रदाय के स्थापित कर्ता श्री स्वामीनारायण बाल्यकाल में अयोध्या में रहते थे।

पल्टूदास जी का जन्म यहाँ हुआ था।

प्रा० क०—(वाल्मीकीयरामयण-बालकाण्ड) सरयू नदी के तीर पर लोक विख्यात महाराजा मनु की बनाई हुई १२ योजन लम्बी, ३ योजन चौड़ी अयोध्या नगरी है। उसमें महाराजा दशरथ प्रजापालन करते थे। महाराज पुत्र के लिए यज्ञ का विचार कर ऋषि शृंग को अयोध्या ले आए।

चैत्र मास, नवमी तिथि, पुनर्वसु नक्षत्र में महारानी कौशिल्या से श्रीरामचन्द्र, उनके पीछे कैकेई से भरत, और उनके पीछे सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न जन्मे। विश्वामित्र ने अयोध्या में आकर अपनी यज्ञ रक्षा के लिये राजा दशरथ से रामचन्द्र को माँगा। राजा दशरथ ने पहिले तो अस्वीकार किया परन्तु वशिष्ठ के समझाने पर लक्ष्मण के सहित रामचन्द्र को विश्वामित्र के साथ कर दिया।

अयोध्या सूर्यवंशियों का केन्द्र था। प्राचीनकाल के समस्त सूर्यवंशियों ने यहीं से अपने गौरव और पराक्रम की छटा चारों ओर फैलाई थी।

जैन मतावलम्बियों का भी यह बड़ा तीर्थस्थान है और पाँच जैन मंदिर यहाँ आजकल मौजूद हैं।

महाभारत के वृहद्बल की मृत्यु के पश्चात् पुरानी अयोध्या नगरी नष्ट हो गई थी। महाराजा विक्रमादित्य ने उसे फिर से बसाया और लक्ष्मण घाट से नाप नाप कर पुराने पवित्र स्थानों की जगहों को निकाला था। जिन पवित्र स्थानों का सम्बन्ध राम, लक्ष्मण और जानकी से था उन-उनपर महाराज

विक्रमादित्य ने ३६० मंदिर बनवा दिये थे पर ह्वानचाँग के समय (लगभग-६३४ ई०) में घटते घटते इनकी संख्या ५० रह गई थी ह्वानचाँग ने जब इस नगर का भ्रमण किया था तब यहाँ २० बौद्ध धर्मशालायें थीं जिसमें एक बहुत बड़ी थी । जिस स्थान पर भगवान् बुद्ध ने छः चौमासे बिताये थे वहाँ महाराज अशोक का बनवाया हुआ २०० फीट ऊँचा स्तूप था । इसी के समीप कुछ और इमारतें थीं जो चारपूर्व बुद्धों के बैठने और टहलने के स्थानों पर बनाई गई थीं । एक दूसरा स्तूप था जिसमें भगवान बुद्ध के नख और शिखा के बालरक्खे हुए थे । नगर के बाहर एक सात फुट का वृक्ष था जो न घटता था न बढ़ता था । जिन दिनों भगवान् बुद्ध यहाँ रहते थे उन दिनों उनकी दतौन के गाड़ देने से यह वृक्ष उत्पन्न हो गया था ।

बौद्धग्रन्थों की सर्व श्रेष्ठ स्त्री (भगवान बुद्ध की माता और पत्नीको छोड़ कर) विशाखा है जिनका जन्म भदिया (भागल पुर से ८ मील-दक्षिण) में एक भारी सौदागर धनञ्जय के यहाँ और विवाह श्रावस्ती (सहेट-महेट) के धनीमानी सौदागर पूर्ण वर्धन के साथ हुआ था ।

छोटी अवस्था में यह विशाखा (अयोध्या) में आकर रहने लगी थी और इन्हीं देवी ने भगवान् बुद्ध के लिये श्रावस्ती मे प्रसिद्ध 'पूर्वा राम विहार' बनवाया था । लंका के ग्रन्थ कहते हैं कि भगवान् बुद्ध ने साकेत (अयोध्या) के पूर्वाराम विहार में १६ चौमास निवास किया । पर ह्वानचाँग का कहना है कि उन्होंने वहाँ छः चौमास बिताये थे । ह्वानचाँग का कहना ही सही प्रतीत होता है । साकेत का पूर्वाराम भी संभवतः देवी विशाखा का बनवाया हुआ था ।

अयोध्या को कभी कभी अवध भी कहते हैं पर अवध साम्राज्य दो भागों में बटा था । सरजू नदी के उत्तर का देश उत्तरी कौशल और दक्षिण का देशदक्षिणी कौशल, महाकौशल व बनौधा कहलाता था । बनौधा के भी दो भाग थे, पूर्ववाले को पूर्वीय राष्ट्र और पच्छिमी वाले को पश्चमीय राष्ट्र कहते थे । इसी प्रकार उत्तरी कौशल के दो भाग थे । राप्ती नदी के उत्तरी देश को गौंड़ा और दक्षिणीय देश को कोशल कहते थे । इसी आधार पर अवध प्रांत के ज़िला गोंड़ा का पुराना नाम 'गौंड़ा' और बलरामपुर का पुराना नाम 'रामनगर गौंड़ा' था ।

[वैवस्वत मनु की श्रद्धा नामक पत्नी से महाराज इक्ष्वाकु का जन्म हुआ था । इनके शील स्वभाव व सदाचारप्रियता आदि गुणों को देख कर

महाराज मनु ने इन्हें न केवल अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाया वरन गुह्यतम योग का रहस्य भी बताया। पहिले पहिल इन्होंने ही अयोध्या में राजधानी बनाई थी। इनके कई यज्ञ भी बड़े प्रसिद्ध हैं।]

[सूर्यवंश में त्रिशंकु नाम के एक प्रसिद्ध चक्रवर्ती सम्राट हुए हैं जिन्हें महर्षि विश्वामित्र ने अपने योगबल से सशरीर स्वर्ग भेजने का प्रयत्न किया था।]

[हरिश्चन्द्र त्रिशंकु के पुत्र थे। हरिश्चन्द्र ने सत्य के लिये अपनी स्त्री शैब्या को एक ब्राह्मण के हाथ, और अपने को चाण्डाल के हाथ काशी में बेच डाला था। परीक्षा में पूरे उतरने पर इन्हें भगवान ने दर्शन दिये थे और यह फिर अपनी राजधानी अयोध्या को वापस आये थे।]

[महाराजा **सगर** अयोध्या के चक्रवर्ती सम्राट थे। इन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था। यज्ञ का अश्व भ्रमण करता हुआ गंगासागर के पास खो गया। इनके साठ हजार पुत्र उसके पीछे पीछे जा रहे थे। उन्होंने एक जगह भूमि को फटा देखा, उसमें चले गये। वह भगवान कपिल देव का आश्रम था और अश्व वहाँ घूम रहा था। पर कपिल देव जी के कोप से महाराज सगर के साठों हजार पुत्र भस्म हो गये। इसी वंश में राजा **भगीरथ** हुए, वे प्रयत्न और तपस्या करके भागीरथी को हिमालय से गंगा सागर तक ले गये और उनके जल से सगर के उन साठ हजार पुत्रों का उद्धार हो गया।]

[इक्ष्वाकु वंश में महाराज **दिलीप** बड़े प्रसिद्ध राजर्षि हो गये हैं। वे बड़े ही धर्मात्मा और प्रजापालक राजा थे। इन्होने एक गौ के बदले अपने को एक सिंह के अर्पण कर दिया। वह केवल परीक्षा थी। महाराज के कोई पुत्र न था। गौ ने अपना दूध रानी के पीने को दिया। महाराज उसे लेकर अपनी राजधानी चले आये और रानी उसको पीकर गर्भवती हो गई। यथा समय उनको पुत्र उत्पन्न हुआ। यही बालक **रघु** नाम से विख्यात हुआ। सूर्यवंश में जैसे इक्ष्वाकु प्रसिद्ध हुये हैं उसी प्रकार महाराज रघु भी बड़े प्रसिद्ध पराक्रमी और प्रतापी हो गये हैं। इन्हीं के नाम से रघुवंश प्रसिद्ध हुआ, और इनके प्रपौत्र महाराज रामचन्द्र राघव, रघुपति, रघुनाथ, कहलाये। महाराज रघु अपने पुत्र अज को राज्य देकर तपस्या करने चले

गये। अज के पुत्र दशरथ और दशरथ के पुत्र महाराज रामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए।]

[महाराज दशरथ बड़े प्रतापी थे। देवता भी उनकी सहायता के इच्छुक रहते थे। एक बार देवासुर संग्राम में इन्होंने दैत्यों को हराया। इनकी तीसरी पत्नी कैकेयी भी साथ थीं। उन्होंने इनकी बड़ी सहायता की। महाराज ने प्रसन्न होकर इन्हें दो वर दिये और कहा कि जब इच्छा हो माँग लेना। इन्हीं वरों को माँग कर कैकेयी ने राम को वनवास और भरत को राज्य दिलाया था। राम के साथ सीता और लक्ष्मण भी वनवास को चले गये। महाराज दशरथ ने उनके वियोग में शरीर छोड़ दिया, और भरत ने सिंहासन पर स्वयं न बैठ कर राम की चरण पादुकाओं को सिंहासन पर रक्खा, और राम के वनवास से लौटने पर उनके चरणों पर गिर कर उन्हें राज्य वापस दे दिया।]

[श्री आदिनाथ, अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ और अनंतनाथ के माता पिता के नाम, चिन्ह जन्मादि के स्थान निम्नलिखित हैं।

माता - पिता - चिन्ह - जन्म - दीक्षा- कैवल्य ज्ञान-निर्वाण

श्री आदिनाथ-मरुदेवी, नाभिराजा, बैल, अयोध्या, अयोध्या, प्रयाग, कैलाश
अजितनाथ—सिद्धार्था, संवर, बंदर, ,, ,, अयोध्या, अयोध्या
अभिनन्दन नाथ विजया, शत्रुजित, हाथी, ,, , ,, ,, पार्श्वनाथ
सुमतिनाथ - मंगला, मेघ प्रभु, चक्र, ,, , ,, ,, अयोध्या
अनंतनाथ - सुरजा, हरषेन, सेल्ही, ,, , ,, ,, ,,]

व० द०—अयोध्या इस समय मंदिरों से परिपूर्ण है और सरयू नदी (घाघरा) के ऊपर बसा है। रामघाट, लक्ष्मणघाट, स्वर्गद्वार घाट, गुप्तारघाट सरयू नदी के तीर पर हैं। रामघाट महाराज रामचन्द्र, और लक्ष्मणघाट लक्ष्मण जी के स्नान के स्थान हैं। महाराज रामचन्द्र का दाहकर्म स्वर्ग द्वार पर हुआ था, और गुप्तारघाट पर लक्ष्मण जी सरयू जी में गुप्त हो गये थे। कहा जाता है कि पुरानी अयोध्या भरत कुंड (अयोध्या से १२ मील) से रामघाट और गुप्तारघाट तक फैली हुई था। इसी के बीच में यात्रा के सब स्थान आ जाते हैं।

वर्तमान अयोध्या पुरानी राजधानी का पूर्वोत्तरीय कोना है। गुप्तार-घाट फैज़ाबाद शहर के समीप है और अत्यन्त रमणीक स्थान है। 'जन्म-

स्थान' के नाम से जो स्थान यहाँ प्रसिद्ध है वहाँ महाराज रामचन्द्र का जन्म हुआ था। बाबर बादशाह ने वहाँ मसजिद बनवा दी है पर उसी हाते में छोटा सा मन्दिर बना है जहाँ पर धूम धाम से बराबर आरती-पूजन होता रहता है। अयोध्या में रामनौमी का भारी मेला लगता है और यहाँ वैरागियों के कई बड़े धनी अखाड़े भी हैं। हनुमान जी के मन्दिर हनुमानगढ़ी की यहाँ बड़ी प्रतिष्ठा है। इस वर्तमान मन्दिर को नवाब अवध के वज़ीर राजा टिकैत राय ने बनवाया था।

अनेक राजा-महाराजाओं ने यहाँ मन्दिर बनवाए हैं जिनमें अयोध्या नरेश का मन्दिर 'राजराजेश्वर', ओड़छाधीश का 'कनक भवन' महाराजा विजावर का 'काँचन भवन' और अमावाँ-टिकारी राज्य का राममन्दिर, अति सुन्दर और विशाल हैं।

भूत पूर्व अयोध्याधिपति महामहोपाध्याय महाराजा सरप्रताप नारायण-सिंह ने सत्तरहज़ार रुपया वार्षिक आय की जयादाद अपने राज्य मन्दिरों के नाम वक्फ़ करदी है जिस से राग-भोग और उत्सवों का प्रबन्ध होता रहता है।

भारतीय नैपोलियन सम्राट समुद्र गुप्तने पाटलिपुत्र को छोड़ कर अयोध्या को अपनी राजधानी बनाया था और महाराज हर्षवर्धन स्थानेश्वर (थाने-सर) से अपनी राजधानी जब कन्नौज लाए थे उस समय अयोध्या को अपनी राजधानी बनाने पर भी उन्होंने विचार किया था।

प्राचीन समय में तो अयोध्या सप्तपुरियों में था ही पर भगवान बुद्ध के समय में भी यह भारतवर्ष के छः प्रमुख नगरों में था। अन्य पाँच नगर निम्न लिखित थे :—राजगृह, (राजगिर) श्रावस्ती (सहेट महेट), कोशाम्बी (कोसम), काशी (बनारस) और चम्पा (नाथ नगर)।

आर्कियालाजिकल मुहकमें वा अन्य विद्वानों की खोज के अनुसार नाहचाङ्ग के समय में जो यहाँ बौद्ध धर्मशाला थी वह जगह आजकल 'सुग्रीव पर्वत' कहलाती है। इस धर्मशाला के समीप महाराज अशोक का बनवाया हुआ स्तूप उस जगह पर था जहाँ भगवान बुद्ध छः साल रहे थे। यह स्तूप विध्वंस रूप में अब 'मणिपर्वत' कहलाता है। मणि पर्वत से मिली हुई एक जगह है जो मुसल्मानों के क़ब्जे में है और उसे वे 'अयूब' पैग़म्बर का मक़बरा कहते हैं। यह वह स्थान है जहाँ पूर्व के चार बुद्ध घूमा व बैठा

करते थे। ह्यान चाँग ने जिस स्तूप में भगवान बुद्ध के नख और शि रक्खे बताये हैं वह जगह कुबेर पर्वत कहलाती है। सनातनी लोग शानाख्तों को स्वीकार नहीं करते।

प्रथम जैन तीर्थङ्कर श्री आदिनाथ का स्थान अयोध्या के स्वर्गद्वार मोह में इटावा तालाब से दो फ़र्लांङ्ग पर है। इटावा तालाब ही के समीप तीर्थ श्री अजित नाथ का भी स्थान है। चतुर्थ तीर्थङ्कर श्री अभिनन्दन नाथ स्थान नवाबी सराय मोहल्ले में रामघाट के निकट है, पंचम तीर्थङ्कर सुमतिनाथ का कटरा मोहल्ले में और चौदहवें तीर्थङ्कर श्री अनन्तनाथ कटरा मोहल्ले से आधमील राघव घाट पर है।

अयोध्या से १४ मील दूर नंदिग्राम या नांद गाँव है जिसे अब भदरस कहते हैं। भदरसा भ्रातृदर्शन का अपभ्रंश है। श्रीराम के वनवास समय भरतजी ने यहीं अपने दिन काटे थे। यहाँ भरत कुण्ड और भरत का मन्दिर है जहाँ साल में तीन बार मेला लगता है।

त्रिगेदक, जहाँ महाराज दशरथ ने पुत्र लाभ के लिये यज्ञ किया था, वर्तमान नाम-मखौड़ा है। यह स्थान अयोध्या से १० मील पर ज़िला बस में है। चैत्र की पूर्णमासी को यहाँ मेला लगता है।

दक्षिण के कुछ लोगों का विश्वास है कि राजा रुक्मांङ्गद की राजधान सकायम पट्टन थी। (देखिए सकायम पट्टन)

वशिष्ठ-आश्रम (कुल)—ऋषि वशिष्ठ का आश्रम आबू पर्वत पर इनका दूसरा प्रसिद्ध आश्रम अयोध्या से एक मील उत्तर में था, और तीस आश्रम आसाम में कामरूप के समीप सन्ध्याचल पर्वत पर था।

२५ अरौरा—(देखिए खुखुआडीह)

२६ अलवर—(राजपूताने में एक राज्य)

इस स्थान का प्राचीन नाम शाल्व नगर है। यह मार्तिकावत अथव शाल्वदेश के राजा शाल्व की राजधानी था जिन्हें श्रीकृष्ण ने मारा था।

सत्यवान (जिन्हें सावित्री ने वरा था) के पिता भी इसी शाल्व देश के राजा थे।

शाल्व राज्य में अलवर राज्य के अतिरिक्त जयपुर व जोधपुर रियासत के भी कुछ भाग शामिल थे।

अलवर राज्य, राजा विराट के मत्स्यदेश का भाग था जिनके यहाँ पाण्डव वनवास के अन्तिम वर्ष में भेष बदल कर रहे थे। उन दिनों मत्स्यदेश की राजधानी विराट थी जो जयपुर से ४१ मील उत्तर में है। मत्स्यदेश में अलवर और जयपुर के राज्य शामिल थे। अब भी अलवर में एक स्थान 'मछेरी' है जो मत्स्य से बना है।

२७ अलीगढ़---(संयुक्त प्रान्त के एक जिले का सदर स्थान)
इस का प्राचीन नाम कोइल है।
बलराम जी ने यहाँ कोल दैत्य को मारा था।

२८ अवधपुरी—(देखिए अयोध्या)
२९ अवानी—(मैसूर राज्य में एक गाँव)

प्रसिद्ध है कि श्रीरामचन्द्र जी लङ्का जाते समय इस स्थान पर ठहरे थे और इस गाँव की पहाड़ी पर महर्षि वाल्मीकि कुछ दिनों तक रहे थे।
यहाँ रामचन्द्र जी का मंदिर है और प्रतिवर्ष बड़ा मेला लगता है।

३० अविचल कूट—(देखिये सम्मेद शिखर)
३१ अश्वक्रान्ता पर्वत—(देखिये गोहाटी)
३२ अष्ट तीर्थ—(देखिये नासिक)
३३ अष्टावक्र आश्रम (कुल)—(देखिये श्रीनगर)
३४ अष्टावक्र पर्वत—(देखिये श्रीनगर)
३५ असरूर—(पाकिस्तानी पंजाब के गुजरानवाला जिले में एक स्थान)

यहाँ भगवान बुद्ध ने विश्राम किया था। विश्राम के स्थान पर दो मील दूर 'सालार' नाम का टीला है।

६३३ ई० में ह्वान चांग की यात्रा के समय यह स्थान पंजाब की राजधानी था।

ह्वान चांग ने इस नगर को अपनी यात्रा में देखा था। उस समय महाराज अशोक का बनवाया हुआ २०० फीट ऊँचा स्तूप यहाँ से दो मील पर विद्यमान था। उस स्थान पर भगवान बुद्ध ठहरे थे और महाराज अशोक ने उसी की स्मृति में यह स्तूप बनवाया था। यहाँ के लोग कहते हैं कि इस जगह का पुराना नाम 'ऊदा नगरी' या 'ऊदम नगर' था।

यहाँ के उजड़े हुए खण्डहर तीन मील के घेरे में हैं। और कहीं कहीं बीस गज ऊँचे हैं। महल और कोट के ढेर डेढ़ मील के घेरे में हैं। इस समय यहाँ एक छोटा सा गांव आबाद है। अमरूर से दो मील उत्तर 'सालार' नाम का टीला है। यहीं भगवान बुद्ध के ठहरने की जगह वाला महाराजा अशोक का २०० फ़ीट ऊँचा स्तूप था।

३६ असीरगढ़—(मध्यप्रान्त के नीमार ज़िले में एक स्थान)

कहा जाता है कि यह श्रुति अश्वत्थामा का स्थान था और इसका प्राचीन नाम 'अश्वत्थामा गिरि' था।

[अश्वत्थामा महाभारत के सुप्रसिद्ध गुरु द्रोणाचार्य के पुत्र थे। इन्होंने अन्त तक दुर्योधन का साथ दिया और दुर्योधन की इच्छा पूरी की। अश्वत्थामा ने मृत्युशय्या पर पड़े हुये दुर्योधन के परामर्श से सोते हुए पाँचों पाण्डवों का सिर काट लेने का प्रयत्न किया था। अँधेरे में धोखे से ये द्रौपदी के पाँचों पुत्रों का सिर काट ले गये। पाण्डवों ने इनका मस्तक फोड़ कर इन्हें छोड़ दिया। कहा जाता है कि यह अमर हैं और उसी दशा में भ्रमण करते फिरते हैं।]

३७ अहमदाबाद—(गुज़रात में एक जिले का सदर स्थान)

यहाँ दादू जी का जन्म हुआ था।

पुराण वर्णित खड्गधारेश्वर और नीलकंठ शिवलिंग यहाँ हैं।

प्रा० क०—(पद्मपुराण, उत्तर खण्ड १४७ वाँ अध्याय) साभ्रमती के तीर पर खड्ग तीर्थ में स्नान करके खड्गधारेश्वर शिव के दर्शन करने से मनुष्य को स्वर्गलोक मिलता है।

(१७२ वाँ अध्याय) साभ्रमती के तीर पर नीलकंठ तीर्थ में नीलकंठ महादेव हैं।

अहमदाबाद को अनहिल पत्तन के सोलङ्की वंश के राजा कर्णदेव ने बसाया था इससे इसका पुराना नाम कर्णावती था। श्री-नगर और राजनगर भी इसे कहते हैं।

करीब ४०० वर्ष हुए संवत् १६०१ वि० में अहमदाबाद में नागर ब्राह्मण के घर दादू जी का जन्म हुआ था। १२ वर्ष की अवस्था में वे संन्यास ग्रहण कर राजपूताने में आकर आमेर, सिकरी, निराना आदि नगरों में विराजे। उनका बड़ाप्रताप फैला। साँभर के निकट विरहना में उनका देहान्त हुआ वहीं दादूपन्थ का प्रधान स्थान है।]

च० द०—अहमदाबाद शहर के पश्चिम साभ्रमती नदी बहती है। साभ्रमती के किनारे नीलकंठ महादेव, खड्गधारेश्वर और भीमनाथ महादेव के प्रसिद्ध शिवालय हैं।

यह शहर एक समय ३६० मह्ल्लों में विभक्त था। फ़रिशता ने लिखा है कि ये ३६० मह्ल्ले अलग अलग दीवारों से घिरे थे। कहा जाता है कि एक समय यहाँ की आबादी ६ लाख थी। इस समय भी अहमदाबाद व्यापार का एक बड़ा केन्द्र है।

दलपति और वंशीधर यहाँ दो अच्छे हिन्दी के कवि हो गये हैं जिन्होंने १७६२ वि० में रत्नाकर' ग्रन्थ बनाया था।

३८ अहरौली—(देखिए त्रयम्बक)

३९ अहल्या कुण्ड तीर्थ—(बिहार प्रांत के दरभंगा ज़िले का एक स्थान)

गौतम ऋषि का यहाँ आश्रम था। यहीं इन्द्र ने अहल्या का सतीत्व नष्ट किया था।

रामचन्द्र जी ने अहल्या को यहाँ मुक्त किया था।

राजर्षि जनक ने यहाँ एक कुँवा बनवाया था।

प्रा० क०—(वाल्मीकीय रामायण-बालकांड, ४८वाँ अध्याय) रामचन्द्र जी ने मिथिला के उपवन में प्राचीन और निर्जन स्थान को देखा और महर्षि विश्वामित्र से पूछा कि यह आश्रम किसका है। मुनि ने उत्तर दिया कि यहाँ पर गौतम ऋषि अपनी स्त्री अहल्या के साथ रहते थे। किसी समय इन्द्र ने गौतम का वेष धारण करके मुनि की अनुपस्थिति में आश्रम में आकर अहल्या से प्रसंग करने की इच्छा प्रकट की। अहल्या ने इन्द्र को पहचानते हुए भी उसका मनोरथ पूर्ण किया। ज्यों ही इन्द्र पर्णकुटी से बाहर निकला त्यों ही गौतम जी आ गये और इन्द्र और अहल्या दोनों को शाप दिया। अहल्या को उन्होंने यह शाप दिया कि "तू अनेकों वर्ष इसी स्थान पर वास करेगी, तेरा भोजन वायु होगा और तू किसी को दिखाई नहीं देगी। जब दशरथ के पुत्र राम इस वन में आवेंगे तू उनका सत्कार करके इस शाप से मुक्त होगी और अपने पूर्व शरीर को प्राप्त कर मेरे पास आवेगी।" रामचन्द्र ने विश्वामित्र का वचन सुन उस आश्रम में प्रवेश किया और इस अहल्या को जिसे कोई नहीं देख सकता था देखा। राम का दर्शन पाकर अहल्या के पाप नष्ट हो गये और वह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ी। राम और लक्ष्मण ने प्रसन्नता

से उसके चरणों का स्पर्श किया। अहल्या ने भी गौतम के वचनों का स्मरण कर राम के चरणों का स्पर्श किया और उनक पूजा की। इसके पश्चात् अहल्या शुद्ध होकर गौतम महर्षि से जा मिली।

(महाभारत-वन-पर्व ८४ वाँ अध्याय) गौतम के आश्रम में जाने और अहल्याकुंड में स्नान करने से पुरुष शोभा को प्राप्त होता है और उसे मोक्ष मिलता है। वहाँ के तीनों लोकों में विख्यात तड़ाग में स्नान करने से अश्वमेध का फल होता है, और राजर्षि जनक के कुँए में स्नान करने से विष्णु-लोक प्राप्त होता है।

[महर्षि गौतम सप्तर्षियों में से एक ऋषि हैं। कहीं कहीं पुराणों में ऐसी कथा मिलती है कि महर्षि अन्धतमा जन्म के अन्धे थे। उनपर स्वर्ग की कामधेनु प्रसन्न हो गई और उस-गौ ने इनका तम हर लिया। ये देखने लगे और तब से इनका नाम गौतम पड़ गया। ब्रह्मा की मानसी सृष्टि से उनकी उत्पत्ति है। पुराणान्तरों में ऐसी कथा आती है कि सर्व प्रथम ब्रह्मा की इच्छा एक स्त्री बनाने की हुई। उन्होंने सब जगह से सौन्दर्य इकठ्ठा करके एक अभूतपूर्व स्त्री बनाई। उसके नख से शिख तक सौन्दर्य ही सौन्दर्य भरा था। 'हल' कहते हैं पापको और जिसमें पाप न हो उसका नाम 'अहल्या' है। अतः उस स्त्री का नाम ब्रह्मा ने अहल्या रक्खा। यह पृथिवी पर सर्व प्रथम इतनी सुन्दर मानुषी स्त्री हुई है। सब देवता और ऋषि उन्हें पाना चाहते थे पर ब्रह्मा उन्हें गौतम ऋषि के यहाँ धरोहर रख आये। कुछ काल पश्चात् गौतम ऋषि ने ब्रह्मा से कहा कि अपनी धरोहर अब ले जावें। उनके चरित्र से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने अहल्या को उन्हीं से व्याह दिया।]

व० द०—अहल्या कुंड तीर्थ में एक वृक्ष के नीचे अहल्या का चौरा है। जिसके पास दरभंगा के महराज़ा का बनवाया हुआ रामलक्ष्मण का सुन्दर मंदिर है। अहल्या कुँड तीर्थ के ३ मील पश्चिम गौतम कुंड सरोवर है जिसके चारों ओर घाट बना है।

४० आहार—(देखिए ताहरपुर व कुण्डनपुर)

आ

४१ आगरा—(संयुक्त प्रांत आगरा व अवध में एक ज़िले का सदर स्थान)

यह स्थान राधा स्वामियों का केन्द्र स्थान है।

लाला शिवदयाल सिंह ने आगरा में जन्म लिया था। और सन् १८६१ ई० में वसन्त पंचमी के दिन 'राधा स्वामी सतसङ्ग' की स्थापना की थी।

आगरा ही में 'स्वामी जी महाराज' लाला शिवदयाल सिंह ने शरीर छोड़ा था।

राधा स्वामियों के द्वितीय गुरु 'हजूर महाराज' राय बहादुर लाला सालिग राम ने भी आगरा में जन्म लिया था और आगरा ही में शरीर छोड़ा था।

राधा स्वामियों के पाँचवें गुरु 'साहेब जी महाराज' सर आनन्द स्वरूप ने २० जनवरी सन १९१५ ई० को आगरा में राधास्वामियों के 'दयाल बाग' को बसाया।

प्रा० का०—आगरा का प्राचीन नाम अग्र वन मिलता है जो ब्रज मंडल के वनों में से एक था। ब्रज मण्डल का परिक्रमा यहाँ से आरम्भ होने के कारण इसका नाम अग्रवन था। बहलोल लोदी ने आगरा का नया शहर बसाया और १५ वीं शताब्दी के अंत में उसके लड़के सिकन्दर लोदी ने दिल्ली से हटाकर आगरा में राजधानी स्थापित की थी।

[लाला शिवदयाल सिंह साहेब का जन्म आगरा के पन्नी गली मुहल्ले में २४ अगस्त १८१८ ई० (भाद्रकृष्ण अष्टमी १८७५ वि०) को खत्रीकुल में हुआ था। आपके पिता लाला दिलवाली सिंह नानकपन्थी थे। १५ वर्ष की अवस्था में लाला शिवदयाल जी सुरत शब्द योग का अभ्यास करते थे और दो दो तीन तीन दिन तक कोठरी से बाहर नहीं आते थे। आप गृहस्थाश्रम में थे और आपकी धर्मपत्नी को आपके अनुयायी 'राधा जी' कहकर सम्बोधित करते थे। आपके सन्तान नहीं थी। जनवरी १८६१ ई० में वसन्त पंचमी के दिन आपने राधास्वामी सतसंग की स्थापना की। अन्य पूर्व सन्तों की भाँति स्वामी जी 'सत्यनाम' का ही उपदेश देते थे। राधास्वामी नाम को आपने अपने पूरे गुरुमुख हुजूर साहेब (रायबहादुर सालिगराम) द्वारा प्रकट कराया। स्वामी जी बराबर आगरा ही में रहे और ८ जून १८७८ ई० को वहीं शरीर छोड़ा।]

[रायबहादुर लाला सालिगराम का जन्म माथुर कायस्थ कुल में १४ मार्च १८२९ ई० को आगरा के पीपल मंडी मुहल्ले में हुआ था। आपके बावत कहा जाता है कि आपने १८ मास गर्भवास किया था। आपको

अंग्रेज़ी की शिक्षा उस समय की सीनियर श्रेणी तक हुई थी जो आजकल के बी० ए० के बराबर थी। शिक्षा प्राप्त करके आपने डाक विभाग में काम किया और पोस्ट मास्टर जनरल के पद तक पहुँचे। श्री स्वामी जी महाराज के बाद लाला सालिगराम जी ८ जून १८७८ ई० को राधा स्वामियों के गुरु हुए और 'श्री हजूर महाराज' कहलाते थे। आपके समय में इस मत के अनुयाइयों की संख्या बहुत बढ़ गई। लगभग ७० साल की अवस्था में ६ दिसम्बर १८९८ ई० को आपने आगरा में नश्वर शरीर का त्याग किया।]

व० द०—मुग़ल साम्राज्य के समय आगरा भारतवर्ष की राजधानी रह चुका है। और यहाँ का ताजमहल जो शाहजहाँ बादशाह ने अपनी बेगम मुम्ताज़ महल की कब्र पर बनवाया है जगत प्रसिद्ध है।

आगरा राधास्वामियों की छावनी का मुख्य स्थान है और उनकी दयालबाग़ छावनी भारतवर्ष में अपने ढंग की एक अद्वितीय चीज़ है।

४२ आदि बद्री—(देखिये ऊर्जम गाँव)

४३ आनन्दपुर—(उत्तरी गुजरात का एक नगर)

कल्पसूत्र के लेखक भद्रबाहु ने ४११ ई० में अपना यह ग्रन्थ आनन्दपुर में बनाया था। आनन्दपुर में ही महादेव के अचलेश्वर नामक लिङ्ग की सर्व प्रथम स्थापना हुई थी।

इसका आधुनिक नाम नगर या चमत्कार नगर है, जहाँ नागर ब्राह्मणों की प्राचीन बस्ती थी। नागर ब्राह्मणों से ही नागरी की उत्पत्ति हुई।

४४ आनन्दपुर—(पंजाब प्रांत में होशियारपुर ज़िले में एक सिक्ख तीर्थ स्थान)

सिक्खों के चार तख़्तों में से एक तख़्त—'श्री आनन्द साहिबी' यहां है।

गुरु गोविन्द सिंह जी ने इस स्थान को अपना मुख्य स्थान बनाया था। यहां से १ मील पर केसगढ़ है जहां उन्होंने यज्ञ किया था और 'पाँच प्यारे' बनाये थे।

४५ आनागन्दी—(हैदराबाद राज्य में मद्रास प्रांत के हासपेट ताल्लुके की सीमा के समीप एक बस्ती)

यह सुग्रीव की राजधानी 'किष्किन्धा' है। किष्किन्धा नाम का छोटा गाँव अब भी यहाँ स्थित है, यहाँ रामचन्द्र जी ने बालि को मारा था।

इस स्थान से २ मील दूर पर माल्यवान पहाड़ी है जिसके एक भाग का नाम 'प्रवर्षण गिरि' है। इसी पर श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण ने सीताहरण

के पश्चात् सुग्रीव के यहाँ वर्षा विताई थी। आनागन्दी से डेढ़ मील की दूरी पर ऋष्य मूक पहाड़ी है जहाँ श्री रामचन्द्र जी से और हनुमान जी तथा सुग्रीव से प्रथम भेंट हुई थी।

ऋष्यमूक पहाड़ी का चक्कर लगा कर पहाड़ियों के बीच में तुङ्गभद्रा नदी बहती है। वहाँ उसकी चौड़ाई लगभग १०० गज़ है। यह चक्र तीर्थ है।

आनागन्दी से एक मील की दूरी पर पम्पा सर है जहाँ रामचन्द्र जी गये थे।

पम्पा सर के पास महर्षि मतङ्ग अपने शिष्यों के सहित रहते थे।

पम्पासर से पश्चिम लगभग २० कोस शवरी का जन्मस्थान 'सुरोवनम्' नामक बस्ती है। राजा युधिष्ठिर के भ्राता सहदेव ने किष्किन्धा के निकट बन्दर नाथ मयन्द और द्विविद से युद्ध किया था।

प्रा० क०—(महाभारत-वन-पर्व, २७६ वाँ व २८० वाँ अध्याय) कबन्ध राक्षस ने रामचन्द्र को बतलाया कि लंका का राजा रावण सीता को ले गया है। उसके कहने से रामचन्द्र जी ऋष्य मूक पहाड़ी पर स्थित पंपासर पहुँचे जहां पर बालि का भाई सुग्रीव अपने चार मन्त्रियों के सहित निवास करता था। राम ने सुग्रीव के साथ मित्रता की। तब सुग्रीव ने राम को सीता के गिराए हुए वस्त्रों को दिखाया। राम ने सुग्रीव का अभिषेक अपने हाथ से किया और बालि को मारने की प्रतिज्ञा की। सुग्रीव ने भी सीता के लाने की प्रतिज्ञा की। फिर वे लोग युद्ध की इच्छा करके किष्किन्धा गये। बालि तारा के वचनों का निरादर करके माल्यवान पर्वत के नीचे खड़ा हुआ। बालि और सुग्रीव युद्ध करने लगे। बालि और सुग्रीव दोनों के रूप में भेद दिखाई देनेके लिये हनुमान जी ने सुग्रीव को एक माला पहिना दी। जब रामने सुग्रीव के गले में चिन्ह देखा तब बालि को अपने बाणों से मार डाला। उसकी मृत्यु के उपरान्त सुग्रीव ने तारा के समेत सब राज्य प्राप्त किया। राम माल्यवान पर्वत के ऊपर वर्षा ऋतु भर रहे।

(सभा पर्व ३१ वाँ अध्याय) राजा युधिष्ठिर के भ्राता सहदेव ने दक्षिण देश में किष्किधा नामक कन्दरे के निकट जाकर बन्दर नाथ मयन्द और द्विविद से युद्ध किया।

(बाल्मीकीय रामायण-अरण्यकांड, ७३वाँ सर्ग) कबंध राक्षस के कहने से श्रीरामचन्द्र जी पम्पा सरोवर पर पहुँचे। उसने कहा था कि पम्पा सरोवर के

समीप महर्षि मतङ्ग अपने शिष्यों के सहित रहते थे। ऋषि लोग तो चले गये; परन्तु उनकी सेवा करनेवाली तपस्विनी शबरी अब तक उस आश्रम में देख पड़ती है। वह तुमको देख कर स्वर्ग लोक को चली जायेगी। तुम पम्पा के पश्चिम तट पर उस गुप्त स्थान को जो 'मतङ्ग वन' करके प्रसिद्ध है, देखना।

(७४वाँ सर्ग) राम और लक्ष्मण ने कबंध के वचन के अनुसार वन में चलते चलते एक पर्वत के निकट निवास किया और वहाँ से चल कर पम्पा के पश्चिम शबरी के रमणीय स्थान को देखा, सिद्धा शबरी रामचन्द्र और लक्ष्मण को देख, उठकर उनके चरणों पर गिर पड़ी। इसके पश्चात् उसने दोनों भाइयों का आतिथ्य सत्कार किया।

(७५वा सर्ग) रामचन्द्र लक्ष्मण से बोले कि मैंने मुनियों के सप्तसागर तीर्थ में पितृ तर्पण किया, अब हम लोग पम्पा सरोवर के तीर पर चलें जहाँ ऋष्यमूक पर्वत भी पास देख पड़ेगा जिस पर सुग्रीव निवास करता है। ऐसा कह दोनों भाई पम्पा के तीर पर आये।

(किष्किंधा कांड-१-५ सर्ग) रामचन्द्र लक्ष्मण के सहित आगे चले। सुग्रीव ने जो ऋष्यमूक पर निवास करता था इन दोनों को देख भययुक्त हो हनुमान को भेजा। हनुमान ऋष्यमूक पर्वत से कूदकर राम लक्ष्मण के पास आये और अनेक बातें करके दोनों भाइयों को पीठ पर चढ़ा कर सुग्रीव के पास पहुँचे। वहाँ रामचन्द्र ने सुग्रीव का हाथ पकड़ा। दोनों मित्रों ने अग्नि की प्रदक्षिणा करके प्रतिज्ञा की।

(११वाँ सर्ग) सुग्रीव कहने लगा कि हे रामचन्द्र ! दुन्दुभी असुर भैंसे का रूप धारण कर किष्किंधा के द्वार पर आकर गरजने लगा। वालि ने उसे मार कर एक योजन पर मतङ्ग ऋषि के आश्रम में फेंक दिया। मुनीश्वर ने अपने तपोबल से वानर का कर्म जानकर शाप दिया कि जिसने इस मृतक को मेरे आश्रम में फेंका है वह यदि अब से इस आश्रम में प्रवेश करेगा तो मर जायगा। उस शाप से वालि ऋष्यमूक पर्वत की ओर आँख उठा कर देख भी नहीं सकता है। देखिए दुन्दुभी की हड्डियों का समूह पास ही में देख पड़ता है और ये सात साखू के वृक्ष हैं इनमें से एक एक को वालि अपने पराक्रम से हिलाकर बिना पत्ते का कर सकता है। आप उसको कैसे मार सकेंगे ? रामचन्द्र ने खेलवाड़ की तरह पैर के अँगूठे से दुन्दुभी के सूखे शरीर को उठाकर १० योजन दूर फेंक दिया (१२वाँ सर्ग) और एक बाण साखू के वृक्ष की तरफ

चलाया। वह बाण सातों वृक्षों को और पर्वत को फोड़ कर रामचन्द्र के तर्कश में आ घुसा। तब सुग्रीव बोले कि हे प्रभो! तुम बाणों से सम्पूर्ण देवताओं को मार सकते हो, वालि क्या पदार्थ है।

(२७वाँ सर्ग) राम और लक्ष्मण ने प्रस्रवण गिरि पर आकर उसकी एक बड़ी लम्बी चौड़ी कन्दरा को देख वहाँ निवास किया। रामचन्द्र लक्ष्मण से बोले कि देखो इस गुहा के अग्रभाग में यह पूर्ववाहिनी नदी शोभा दे रही है। यहाँ से किष्किंधा दूर भी नहीं है। देखो यहाँ से गीत और बाजों का घोष और गर्जते हुए वानरों का शब्द सुन पड़ता है। (२८वाँ सर्ग) उसके उपरांत माल्यवान पर्वत पर निवास करते हुए रामचन्द्र ने लक्ष्मण से वर्षा ऋतु की शोभा वर्णन की।

(सुन्दरकांड—६५वाँ सर्ग) दक्षिण जाने वाले हनुमान आदि वानरों ने प्रस्रवण पर्वत पर आकर सीता का समाचार रामचन्द्र से कहा और सीता की दी हुई मणि उनको दी।

(उत्तरकांड ४०-४१वाँ सर्ग) अगस्त्य जी श्रीरामचन्द्र जी से हनुमान के जन्म की कथा कहने लगे कि हे रघुसत्तम! सुमेरु पर्वत पर वानरों का राजा केशरी रहता था उसकी स्त्री का नाम अंजना था। वायु ने अंजना से हनुमान को उत्पन्न किया।

(वामनपुराण—१२वाँ अध्याय) सरोवरों में पम्पासर श्रेष्ठ है।

[वालि वानरों का राजा था। एक बार एक राक्षस वालि की राजधानी किष्किंधा में आकर गरजने लगा। वालि ने उसका पीछा किया और उसके पीछे पीछे एक बिल में घुस गया। उसके साल भर तक न लौटने पर उसके छोटे भाई सुग्रीव ने समझा कि यह मर गया और उस बिल का मुँह बन्द कर दिया। वानरों ने सुग्रीव को राजा बना लिया। वालि मरा नहीं था, लौट आया। सुग्रीव को राजा बना देख उसने उसे निकाल दिया और यह भी मतङ्ग ऋषि के आश्रम में प्राण लेकर भाग गये। हनुमान इनके मंत्री थे और इन्हीं के साथ रहते थे। महाराज रामचन्द्र के सीता वियोग में घूमते हुए इनके आश्रम में आने पर इन्होंने रामचन्द्र जी को सहायता देने का वचन दिया और उन्होंने वालि को मार कर इन्हें वानरों का राजा बना दिया। सुग्रीव की सेना की सहायता से राम ने रावण को मार कर लंका विजय की थी। रामचन्द्र जी के साथ सुग्रीव अयोध्या भी आये थे।]

[हनुमान जी केशरी की पत्नी अंजना के गर्भ से पवन के द्वारा पैदा हुए थे। पैदा होने के समय ही यह बड़े बली थे। बाल्य काल ही में सूर्य को कोई लाल फल समझकर यह उसे खाने को लपके पर इन्द्र का वज्र लगने से नीचे आ गिरे। वज्र के लगने से इनकी हनु (ठोड़ी) टेढ़ी हो गई, इसलिए इनका नाम हनुमान पड़ा। सीता जी की खबर लगाकर यही लाये थे। रामचन्द्र जी की भक्ति किसी में इनसे बढ़कर न हुई है, न है। कहा जाता है कि यह सात चिरंजीवियों में से हैं और अब भी पृथिवी पर विराजमान हैं।]

['शबर' भील जाति को कहते हैं। शबरी के पिता भीलों के राजा थे। भीलों में बलिदान का बहुत प्रचार है। शबरी के विवाह के दिन निकट आये सैकड़ों बकरे भैंसे बलिदान के लिये इकट्ठे किये गये। शबरी ने पूछा 'यह सब जानवर क्यों इकट्ठे किये गये हैं?' उत्तर मिला 'तुम्हारे विवाह के उत्सव में इनका बलिदान होगा।' भक्तिमती बालिका का सिर चकराने लगा। यह कैसा ब्याह जिसमें इतने प्राणियों का वध हो। इस विवाह से तो ब्याह न करना ही अच्छा। ऐसा सोचकर यह रात्रि में उठकर जंगल में चली गई, और फिर लौट कर घर नहीं आई।

ऋषियों के आश्रमों में शबरी झाड़ू बुहारी देती रहती थी। किसी से सुन लिया कि महाराज रामचन्द्र इधर से निकलेंगे। तभी से शबरी जो मीठा बेर चखती यह उनके लिए रख लेती। जब राम इधर से निकले तो शबरी ने अपने बेर दिये। राम ने खाया; पूछा 'क्या शबरी यह तोतों ने कुतर डाले हैं, बोली 'नहीं नहीं, यह तो मैंने चख चख के तुम्हारे लिए मीठे २ रक्खे हैं'। राम, लखन और सीता, सबने सुखी २ खा लिये।

ऋषियों के आश्रम की एक सुन्दर पुष्करिणी में कीड़े पड़ गये थे। उन्होंने रामचन्द्र जी से कहा। ऋषि लोग शबरी को जल नहीं स्पर्श करने देते थे। रामचन्द्र जी ने कहा कि जब शबरी के पैर इसमें पड़ेंगे तब उसके स्पर्श से कीड़े दूर होंगे। ऋषियों को मानना पड़ा, और पुष्करिणी साफ हो गई। शबरी की भक्ति सराहनीय थी।]

[मतङ्ग ऋषि उन चार महात्माओं में से एक थे जो आरण्य में दक्षिण में आर्य संस्कृति फैलाने का गौरव रखते हैं। इनका आश्रम बालि और सुग्रीव की राजधानी किष्किन्धा के समीप था।]

५८ पद—अनागुन्दी तुङ्गभद्रा नदी के बायें किनारे पर एक बस्ती है, जिसके पास के [illegible] का एक ऊँचा सा [illegible] है। यह स्थान, [illegible]

नगर के सम्राटों के वंश में से है परन्तु अब हैदराबाद राज्य के आधीन एक जमींदार है। आनागन्दी से १ मील से अधिक पश्चिम तुंगभद्रा से उत्तर पम्पासर नामक तालाब हैं। पंपासर से लगभग ३० कोस पश्चिम शबरी का जन्म स्थान सुरोवनम नामक बस्ती है। पम्पासर से दक्षिण तुङ्गभद्रा लाँघ कर होस पेट ताल्लुके के हापी गाँव के पास विरुपाक्ष शिव का मन्दिर है। रास्ते में अंजनी पहाड़ी, जो ऋष्यमूक से उत्तर है, दाहिने मिलती है, और उसके ऊपर एक मन्दिर है। हापी विजयनगर साम्राज्य की राजधानी थी, और इमारतों के खंडहर ६ वर्गमील में फैले हुए हैं।

विरुपाक्ष के मन्दिर से लगभग ४ मील पूर्वोत्तर माल्यवान पहाड़ी है जिसके एक भाग का नाम प्रवर्षण गिरि है। विरुपाक्ष के मन्दिर से आध मील अधिक पूर्वोत्तर ऋष्यमूक पहाड़ी का चक्कर लगाकर पहाड़ियों के बीच में तुंगभद्रा नदी बहती है। वहाँ उसकी चौड़ाई लगभग १०० गज है। उसको चक्रतीर्थ कहते हैं। उसके उत्तर ऋष्यमूक पर्वत और दक्षिण बगल रामचन्द्र जी का एक छोटा मदिर है। यात्री लोग चक्रतीर्थ में स्नान करके राम मन्दिर में मेवे और फल भेंट देते हैं। चक्रतीर्थ के उत्तर ऋष्यमूक के पूर्व सीतासरोवर नामक एक निर्मल जल का कुण्ड है। उसके पास एक छोटी प्राकृतिक गुफा, और दक्षिण काशी, सीता-अभरण, राम लक्ष्मण के चरण चिन्ह इत्यादि स्थान हैं।

उड़ीसा प्रांत में विजयनगर के पास निम्बपुर से एक मील पूर्व एक स्थान को भी किष्किंधा कहा जाता है। एक ढेर पर घास फूस लगा है, उसे कहते हैं बालि के शरीर की राख का ढेर है।

४६ आनन्दकूट— (देखिए सम्मेद शिखर)।

४७ आबू पर्वत— (राजपूताने में सिरोही राज्य में एक पर्वत)
यह पौराणिक 'अरबुद गिरि' (अरावली) का एक भाग है।
जैन मत के पाँच परम पवित्र पहाड़ों में से यह एक है।
आबू पर्वत पर वशिष्ठ मुनि और अन्य ऋषियों ने तप किया था।

इस तप में राक्षसों ने विघ्न डाले थे इस पर इन ऋषि मुनियों की भगवान महादेव की वन्दना करने पर, अग्नि से, परिहार, प्रमार, सोलंकि तथा चौहान क्षत्रिय उत्पन्न हुए जिन्होंने राक्षसों का नाश किया। इस प्रकार अग्नि वंशी क्षत्रियों की उत्पत्ति संसार में हुई।

प्रा० क०—(महाभारत—वन पर्व, ८२वाँ अध्याय) तीर्थ के यात्रियों को चाहिये कि नर्मणावती (चम्बल) नदी में स्नान करके हिमाचल के पुत्र अर्बुद गिरि जाँय। वहाँ पूर्व समय में पृथिवी में छेद था। उसी जगह तीनों लोकों में विख्यात वशिष्ठ मुनि का आश्रम है।

[महर्षि वशिष्ठ की उत्पत्ति का वर्णन पुराणों में भिन्न रूप से आता है। ये कहीं ब्रह्मा के मानस पुत्र, कहीं आग्नेय पुत्र, और कहीं मित्रावरुण के पुत्र कहे जाते हैं। कल्पभेद से यह सभी बातें ठीक हो सकती हैं। ब्रह्मशक्ति के मूर्तिमान स्वरूप तपोनिधि महर्षि वशिष्ठ के चरित्र से हमारे धर्मशास्त्र और पुराण भरे पड़े हैं। यह सप्तर्षियों में से एक हैं। इनकी सहधर्मिणी अरुन्धती जी हैं जो सप्तर्षि मण्डल के पास ही अपने पतिदेव की सेवा में लगी रहती हैं। जब महर्षि वशिष्ठ के पिता ब्रह्मा ने इन्हे सृष्टि करने और भूमण्डल में आकर सूर्यवंशी राजाओं की पौरोहित्य करने की आज्ञा दी तो इनको हिचकिचाहट थी पर समझाने पर आना पड़ा। सूर्यवंशी राजाओं को नीति शिक्षा सदा महर्षि वशिष्ठ से मिली थी और बेर-बेरजन्म लेकर उन्होंने इस कर्तव्य का पालन किया। वही आत्मा बार बार अवतरित होती थी इससे वशिष्ठ नाम ही से उसे पुराणों में पुकारा गया है। महाराज दशरथ और श्री रामचन्द्र के भी यही पुरोहित थे। महर्षि विश्वामित्र में और इनमें कई बार विवाद हो गया पर विश्वामित्र जी को ही हर बार अपनी भूल माननी पड़ी। महर्षि वशिष्ठ मानो शांति की साक्षात् मूर्ति थे।]

व० द०—अब तक (भारत स्वतन्त्र होने से पूर्व) आबू पहाड़ पर गवर्नर जनरल के राजपूताने के एजन्ट और अन्य योरुपियन रहते थे। यहाँ लगभग आधी मील लम्बी 'नखी तालाब' नामक एक सुन्दर झील है। लोग इसे 'नैलातालाब' भी कहते हैं। इस देश के लोग कहते हैं कि देवताओं ने महिषासुर के भय से भाग कर अपने छिपने के लिये अपने नैल अर्थात् नखों से इसे बनाया था।

आबू के सिविल स्टेशन से लगभग १ मील उत्तर पहाड़ के ऊपर देवलवाड़े में आबू के प्रसिद्ध जैन मन्दिर हैं। इनमें से विमल साह और वास्तु पाल तेज पाल के मन्दिर भारतवर्ष के सब जैन मन्दिरों से अधिक सुन्दर हैं—कुछ लोगों का मत है कि ताजमहल को छोड़ कर भारतवर्ष में दूसरी ऐसी सुन्दर इमारत नहीं है।

देवलवाड़े से ५मील दूर अचलेश्वर महादेव का सुन्दर मन्दिर है-जिसे चित्तौड़ के सुप्रसिद्ध राणा सांगा ने स्थापित किया था।

४८ श्रारा—(विहार प्रांत में एक ज़िले का सादर स्थान)

इसका प्राचीन नाम 'एक चक्र' था। 'चक्र पुर' भी कहते थे। श्राराम नगर भी इस स्थान का एक नाम था।

वनवास के समय पाण्डव यहाँ रहे थे।

भीम ने वकासुर का वध यहीं किया था।

भगवान के बुद्ध के गुरु श्रालाड़ कलाम यहीं के निवासी थे।

बौद्धग्रन्थों में कहा है कि भगवान बुद्ध ने यहाँ मर्दुम खोर दैत्यों से मानुष भक्षण करना छुड़ाया था।

भगवान बुद्ध के समय में यह स्थान भारतवर्ष के प्रमुख नगरों में से था।

प्रा० क०— (महाभारत) महर्षि व्यास ने पाण्डवों का एक चक्र में रहने का श्रादेश किया श्रौर वे जंगल छोड़कर वहाँ एक ब्राह्मण के घर में निवास करने लगे। एक दिन उस ब्राह्मण के घर में रोदन सुनकर कुन्ती ने समाचार पूँछा तो विदित हुश्रा कि वकासुर जो निकट के ग्राम में रहता था श्रादमियों को खाया करता था श्रौर उस दिन उस ब्राह्मण के जाने की बारी थी। ब्राह्मण जाने को तैयार था पर श्रपने भाग्य को रोता था। इस पर उसकी पत्नी व पुत्री उसके बदले जाने को तैयार थीं पर वह उन्हें जाने न देता था। ब्राह्मण के एक बहुत छोटा सा बेटा था जो ठीक से बोल भी न पाता था उसने कहा 'पिता श्राप न रोयें, माता श्राप न रोयें, मुझे वकासुर के पास भेज दें'। कुन्ती ने जब यह देखा तो उन सब को चुप किया श्रौर उनके बदले श्रपने एक पुत्र को भेजने का वचन दिया। ब्राह्मण ने इसे श्रस्वीकार किया पर कुन्ती ने कहा कि वह उनके पुत्र भीमसेन से पार न पायेगा श्रौर भीमसेन वकासुर के लिए भेजे गये। वे जंगल में जाकर बैठ गये। वकासुर भूख से व्याकुल लाल २ श्राँखे निकाले श्राया श्रौर भीमसेन के जो उसकी तरफ पीठ किये बैठे थे, दो घूंसे जमाये। भीमसेन हँस कर उठ खड़े हुए। वकासुर ने जड़ से एक वृक्ष उखाड़ कर उन पर धावा किया। भीमसेन ने भी एक वृक्ष उखाड़ कर उसे मारना शुरू किया। सारे जंगल के वृक्ष इस प्रकार उखड़ जाने पर दोनों में मल्ल युद्ध होने लगा। जब दैत्य थक गया तब भीमसेन ने उसके पाँव पकड़ कर चीर डाले श्रौर खींच कर एक चक्र नगरी के बाहर डाल दिया।

कुंती व अन्य पाण्डवों को जब यह समाचार विदित हुआ तो पहिचाने जाने के भय से सब वहाँ से चले गये। उन दिनों यह अज्ञातवास कर रहे थे। वहाँ के निवासी बकासुर की लाश देखकर फूले न समाये और कुन्ती के पैर पर पड़ने को दौड़े आये पर यह देखकर कि यह लोग वहाँ से प्रस्थान कर चुके हैं, महा दुखी हुए।

ह्वानचांग ने भी इस स्थान की यात्रा की थी और लिखा है कि महाराज अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप यहाँ उपस्थित था जो उस जगह पर बनाया गया था जहाँ भगवान बुद्ध ने उपदेश देकर मानुषभक्षी दैत्यों से मानुष भक्षण करना छुड़वाया था।

व० द०—इस समय आरा बिहार प्रांत के एक ज़िले का सदर स्थान है। वहाँ के लोग कहते हैं कि जिस दिन बकासुर मारा गया था वह दिन मंगल अर्थात् 'अरा' का था। इससे वहाँ का नाम आरा पड़ गया।

४९ आलन्दी—(बम्बई प्रांत के पूना ज़िला में एक स्थान)
यह संत ज्ञानेश्वर महाराज के जन्म का स्थान है।

[श्री विट्ठल पंत के द्वितिय पुत्र श्री **ज्ञानेश्वर** का जन्म स०-१३३२ वि० में हुआ था। विट्ठलपंत ने संन्यास ले लिया था पर अपने गुरु के आदेशानुसार पुनः गृहस्थाश्रम में लौट आये थे और तत्पश्चात संतान हुई थी इससे ग्राम वालों ने उनकी संतान को सन्यासी की संतान कहकर यज्ञोपवीत करने से मना कर दिया था। श्रीविट्ठल पंत और उनकी पत्नी रुक्मिणी बाई ने इसका प्रायश्चित नदी में कूदकर प्राण देकर कर दिया पर कुटिल समाज का जी ठंडा न हुआ, उस समय ज्ञानेश्वर जी केवल ५ साल के थे। आलन्दी के पंडितों ने इन बालकों को पैठण (आलन्दी से १४० मील) जाने की सलाह दी और कहा कि यदि पैठण के विद्वान उनके उपनयन की व्यवस्था दे देंगे तो आलन्दी वाले भी उसे मान लेंगे। यह लोग बेचारे पैदल चल कर किसी तरह पैठण (पठैन) पहुँचे। वहाँ ज्ञानेश्वर जी ने एक विचित्र चमत्कार दिखलाया। वाद विवाद में वह कह रहे थे कि सब की आत्मा एक है। एक पंडित ने कहा कि सब की आत्मा एक है तो यह भैंसा जो आ रहा है वह भी वेद मन्त्र उचारण करे।

ईश्वर की लीला कि भैंसे के मुँह से वेद मन्त्र उच्चारण होने लगे। व्यवस्था क्या, सब इनके चरणों पर गिर पड़े। इसके पीछे कुछ काल तक यह पैठन ही

में रहकर भगवद्भक्ति का मार्ग दिखाते रहे। बाद को वहाँ से चले और नेवासे (ज़िला अहमदनगर) में कुछ दिन रहे। यहीं ज्ञानेश्वर महाराज ने गीता को 'ज्ञानेश्वरी भाष्य' कहा। उस समय इनकी आयु १५ साल की थी। गीता पर अनेक भाष्य हैं। पर ऐसा सर्वांग सुन्दर और अपने ढंग का निराला दूसरा भाष्य नहीं है।

नेवासे से ज्ञानेश्वर जी आलन्दी आये और अब बड़े प्रेम और आदर के साथ वहाँ उनका स्वागत हुआ। बाद को यह तीर्थ यात्रा को निकले और सबसे पहले पण्ढर पुर और फिर काशी आदि तीर्थों को गये। इनका यश सर्वत्र फैल गया और चाँग देव जैसे महात्मा भी इनकी शरण आये। चाँग देव को अपनी तपस्या पर बड़ा अभिमान था। १४०० साल की समाधि लगा चुके बताये जाते हैं। जब मिलने को ज्ञानेश्वर जी से चले तो सिंह पर सवार हुए और साँप का चाबुक बनाया। उस समय ज्ञानेश्वर जी अपने भाई बहिनों के साथ एक दीवार पर बैठे थे। उन्होंने उस दीवार ही को चलने को कहा और वह चल दी। चाँग देव जी का अभिमान चूर चूर हो गया और वे ज्ञानेश्वर जी के चरणों पर गिर पड़े। कुल इक्कीस वर्ष तीन मास पाँच दिन की अवस्था में वि० सं० १३५३ में श्री ज्ञानेश्वर जी महाराज ने जीवित समाधि ले ली।

आलन्दी में इनकी समाधि का स्थान मौजूद है। और जो दीवार चल का आई वह भी टूटी फूटी अवस्था में दिखाई जाती है। यह स्थान पूना से १३ मील उत्तर में है।]

इ

४० इन्द्र पाथ (भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली का एक स्थान)

इन्द्रपाथइन्द्र प्रस्थ का अपभ्रंश है। इन्द्र प्रस्थ को धर्मराज, युधिष्ठिर ने बसाकर अपनी राजधानी बनाया था और यहाँ राजसूय यज्ञ किया था।

कुरुक्षेत्र के युद्ध के उपरान्त युधिष्ठिर के हस्तिनापुर राजधानी बना लेने पर अर्जुन ने इन्द्रप्रस्थ का राज्य कृष्ण के प्रपौत्र वज्र को प्रदान किया था।

इन्द्रप्रस्थ को खाण्डव प्रस्थ भी कहते थे, जो महाभारत के खाण्डव वन का एक भाग था।

पद्म पुराण का निगमोद्बोध तीर्थ इन्द्रप्रस्थ में ही है। उसे आज कल निगंबोद घाट कहते हैं।

भारत के अन्तिम हिंदू सम्राट महाराज पृथ्वीराज की भी इसी के समीप पुरानी दिल्ली में राजधानी थी।

आठवें सिक्ख गुरु हरि कृष्ण साहिब ने यहाँ शरीर छोड़ा था।

इन्द्र प्रस्थ के समीप दिल्ली में 'गुरुद्वारा शीश गंज' के स्थान पर नवें सिक्ख गुरु तेग बहादुर साहिब का सिर औरङ्गजेब ने धड़ से कटवा दिया था।

शुक सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी चरण दासजीने दिल्ली में १४ वर्ष की समाधि लगाई थी।

३० जनवरी १६४८ ई० को एक हत्यारे के हाथ से भारतवर्ष के वर्तमान काल के भाग्य विधाता महात्मा मोहन दास कर्म चन्द गान्धी ने दिल्ली में शरीर छोड़ा था।

प्रा० क० (महाभारत, आदि पर्व २०८ वाँ अध्याय) जब युधिष्ठिर आदि पाण्डव गण द्रौपदी को लेकर द्रुपदपुरी से हस्तिनापुर आये तब उनके चाचा राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा कि तुम राज्य का आधा भाग लेकर अपने भाइयों सहित खांडवप्रस्थ में जा बसो, जिससे तुम लोगों से हमारा फिर विगाड़ न हो। युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने हस्तिनापुर के राज्य का आधा भाग पाकर खाँडव प्रस्थ के पुण्य स्थान में शाँति कार्य करवा कर एक नगर बसाया जो भाँति भाँति के सुन्दर भवनों की पंक्तियों से दीप्यमान होकर इन्द्रपुरी के समान शोभायमान होने के कारण इन्द्रप्रस्थ नाम से विख्यात हुआ। (२२२ वाँ अध्याय) कृष्ण और अर्जुन इन्द्रप्रस्थ में यमुना के तट पर आखेट का आनन्द लेने लगे।

(सभा पर्व) महाराज युधिष्ठिर ने चारों दिशाओं के राजाओं को जीत कर इन्द्र प्रस्थ मे राजसूयायज्ञ किया।

(शांति पर्व ४० वाँ अध्याय) उसके पश्चात (कुरुक्षेत्र संग्राम मे राजा धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि पुत्रों के विनाश होने पर) राजा युधिष्ठिर कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर में राज्यसिंहासन पर बैठे और राज्य शासन करने लगे।

(मौसल पर्व पहिला अध्याय) राजा युधिष्ठिर के हस्तिनापुर में राज-तिलक होने के छत्तीसवें वर्ष प्रभास क्षेत्र में यदुवंशियों का नाश हो गया।

(सातवाँ अध्याय) तब अर्जुन बचे हुए बालक वृद्ध और स्त्रियों को द्वारिका और प्रभास में से लाये। उन्हों ने उनमें से बहुतेरों को कुरुक्षेत्र में, बहुतेरों को मार्तिका वत नगर में, और बहुतेरों को सरस्वती के तट पर बसा

कर के अनिरुद्ध के पुत्र तथा कृष्ण के प्रपौत्र वज्र को इन्द्र प्रस्थ का राज्य प्रदान किया और विभाग क्रम से बहुतेरे द्वारिकावासियों को वज्र के समीप इन्द्रप्रस्थ में स्थापित कर दिया।

(आदि ब्रह्म पुराण, देवी भागवत, और श्रीमद्भागवत में भी अर्जुन के वज्र को इन्द्र प्रस्थ का राज्य देने की कथा है।)

राजपाल ने जिसका दूसरा नाम दिल्लू था सन् ई० से लगभग ५० वर्ष पहिले इन्द्र प्रस्थ के समीप कुछ दूर पर नया नगर बसाया जो उसके नाम से दिल्ली कहलाया और यही नाम अधिक प्रसिद्ध हो गया।

[दिल्ली भक्त परमेष्ठी दर्जी का जन्म और निवास स्थान था। ४०० वर्ष हुए दिल्ली के बादशाह ने इनसे दो बहुमूल्य तकिये बनवाये। यह भक्त थे, तकिये तैयार करके ध्यान मग्न हो गये।। ध्यान में देखा कि जगन्नाथपुरी में भगवान की मूर्ति को तकिया चाहिये। आपने एक अर्पण कर दिया। ध्यान खुला तो सचमुच एक तकिया ग़ायब था। इस अपराध में यह बन्दी कर दिये गये। एक दिन देखने में आया कि कारागार के सब दरवाजे खुले हैं और यह ध्यानमग्न बैठे हैं। बादशाह को भी भयदायक स्वप्न हुआ था। यह मुक्त कर दिये गये।]

व० द०—वर्तमान दिल्ली से दो मील दक्षिण पाण्डवों का बसाया हुआ इन्द्रप्रस्थ के स्थान पर इन्द्रपाथ का पुराना किला जर्जर हो रहा है।

इन्द्र प्रस्थ में चौहान राजा अनंग पाल द्वितीय के बनवाये हुए किले (लाल कोट) के अवशेष अब भी हैं। यहाँ योग माया देवी का मन्दिर भी है।

हुमायू बादशाह ने सन १५३३ में इन्द्र प्रस्थ के पुराने किले को सुधार कर उसका नाम दीन-पनाह रक्खा था परन्तु पीछे वह नाम प्रसिद्ध नहीं हुआ। शेरशाह हुमायूं को निकाल कर जब दिल्ली की गद्दी पर बैठा तब उसने इस क़िले को अपने नये शहर का किला बनाकर उसका नाम शेर गढ़ रक्खा, पर अंत में फिर भी वह इन्द्र प्रस्थ का पुराना क़िला ही कहलाता रहा और अब भी इन्द्र पाथ कहलाता है।

वर्तमान दिल्ली के अजमेर फाटक से लगभग १० मील पर कुतुब मीनार है। कुतुब के पास ही महाराज पृथ्वीराज ने सन् ११८० में लाल कोट के चारों ओर एक दूसरी ५ मील लम्बी दीवार बनवाकर उस किले का नाम राय पिथोरा रक्खा था। इसी स्थान को पुरानी दिल्ली कहते हैं।

जिस चबूतरे पर राय पिथौरा, अर्थात् पृथ्वीराज का बड़ा देव मन्दिर था उसी पर 'कुतुब इस्लाम' मस्जिद बनवाना आरम्भ किया गया था जिसकी एक मीनार कुतुब मीनार है। पर वह मस्जिद अनबनी ही रह गई। इसी मस्जिद के आँगन में ईसा की चौथी सदी का, सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय का स्थापित किया हुआ २८ फुट पृथ्वी में गड़ा हुआ और २२ फुट पृथ्वी के ऊपर लोहे का प्रसिद्ध स्तंभ है।

जहाँ पर गुरू हरिकृष्ण साहेब ने शरीर छोड़ा था वहाँ पर सिक्ख गुरू द्वारा बना हुआ है।

जैसा ऊपर आ चुका है पहिला नगर (इन्द्र प्रस्थ) इस स्थान पर महाराज युधिष्ठिर ही ने बसाया था जो उनकी, और पीछे वज्र आदि की राजधानी रहा। पीछे उससे थोड़ा हट कर महाराज दिल्लू ने दूसरा नगर बसाया था जो उनकी, धव की और पृथ्वीराज आदि की राजधानी रहा। पहले मुसलमान बादशाहों ने भी इसी स्थान को अपनी राजधानी रक्खा। बाद को सम्राट शाहजहाँ ने वर्तमान दिल्ली को बसाकर उसका नाम शाहजहानाबाद रखा और उसको राजधानी बनाया परंतु 'दीनपनाह' और 'शेरगढ़' के समान यह नाम भी लोप हो गया और दिल्ली ही नाम विख्यात रहा। इधर अंग्रेज गवर्नमेन्ट ने नई दिल्ली बसाई है और सारी सरकारी इमारतें इसी में हैं।

दिल्ली की अवस्था को देख कर समय के हेरफेर का चित्र आँखों के सामने आ जाता है। कहते हैं कि जितने मुर्दे यहाँ गड़े हैं उतने जीवित आदमी दिल्ली में न होंगे। यह मुर्दों का ही नगर है।

दिल्ली निवासी 'रसखान', 'घन आनंद', और 'वीर' हिन्दी के अच्छे कवि हो गये हैं। रसखान पठान थे और १६१५ वि० के लगभग पैदा हुये थे। घन आनन्द जाति के कायस्थ थे और इनका कविता काल १७७१ से १७९६ वि० तक रहा। वीर भी श्रीवास्तव कायस्थ थे और इनका 'कृष्णचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ सं १७७९ वि० में लिखा गया था।

५१ इन्द्र प्रयाग—(संयुक्तप्रान्त के हिमालय पर्वत पर टेहरी राज्य में एक स्थान)

यहाँ राज्यभ्रष्ट इन्द्र ने तप करके फिर अपना राज्य पाया था।

यहाँ से थोड़ी दूर पर राजा नहुष ने कठोर तप करके इन्द्र का राज्य प्राप्त किया था।

(स्कंद पुराण, तीसरा अध्याय) अलकनंदा के समीप इन्द्र प्रयाग है। उसी स्थान पर राज्यभ्रष्ट इन्द्र ने तप करके फिर अपना राज्य पाया।

शंखवती और शक्तिजा नदी के संगम से उत्तर शक्तिजा के पश्चिम तीर से आधे कोस पर महादेव का मंदिर है, उसी स्थान में सोम वंशी राजा नहुष ने कठोर तप करके इन्द्र का राज्य पाया था।

५२ इमना बाद—(पाकिस्तानी पंजाब के गुजरानवाला जिले में एक स्थान)

गुरु नानक ने हाकिम की पूड़ी में खून और एक ग़रीब की रोटी में दूध यहाँ दिखाया था।

हाकिम मलिक भागो ने गुरु नानक जी को पकवान बनवा कर भोजन को भेजा पर गुरु जी ने ग़रीब भाई लालो की रोटी खाना पसन्द किया। हाकिम मलिक को बुरा लगा और उसने शिकायत की इस पर गुरु नानक ने उसकी पूड़ी को निचोड़ा और उसमें से खून बहा। लालो की रोटी को दबाया तो उसमें से दूध बहा। मलिक देख कर रह गया, और इनका शिष्य हो गया।

यहाँ रोड़ी साहिब गुरु द्वारा बना हुआ है। रोटी को पंजाब में रोड़ी कहते हैं।

५३ इलाहाबाद—(संयुक्त प्रदेश आगरा व अवध की राजधानी)

इसका प्राचीन नाम प्रयाग है और यह तीर्थों का राजा कहलाता है। इसका दूसरा नाम भास्कर क्षेत्र भी है। यह स्थान ५२ पीठों में से एक है। सती की पीठ यहाँ गिरी थी। यहाँ सोम, वरुण और प्रजापति का जन्म हुआ था।

ब्रह्मा ने पूर्व समय में यहां १०० अश्वमेध यज्ञ किये थे। ब्रह्मा की पाँच वेदियों में से यह एक है, और मध्य वेदी है। भरद्वाज मुनि यहीं निवास करते थे।

बनवास के समय रामचन्द्र, लक्ष्मण और जानकी प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम पर भरद्वाज मुनि के आश्रम में आये थे। भरत भी रामचन्द्र की खोज में अयोध्या से चित्रकूट जाते समय यहाँ ठहरे थे।

प्रह्लाद ने यहाँ आकर स्नान किया था।

श्री आदिनाथ स्वामी (प्रथम तीर्थङ्कर) ने यहाँ दीक्षा ली थी, तप धारण किया था, और कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया था।

स्पति से दानवों की हाथा पाई होते समय कुंभ में से अमृत उछल पड़ा था। इस लिये कुंभ के वृहस्पति होने पर हरद्वार में भागीरथी के किनारे, वृष के वृहस्पति होने पर प्रयाग में त्रिवेणी पर, सिंह के वृहस्पति होने पर नासिक में गोदावरी के तीर पर, और वृश्चिक वृहस्पति होने पर उज्जैन में क्षिप्रा नदी के किनारे कुंभ योग संगठित होता है।

[देवताओं के गुरु वृहस्पति के भाई उतथ्य के पुत्र भरद्वाज जी थे। इनकी भगवद्भक्ति लोक प्रसिद्ध है। भगवद्भक्ति के इन्हें आदि स्रोत कहें तो अत्युक्ति न होगी। प्रत्येक मकर में समस्त ऋषि कल्पवास करने प्रयाग राज आते थे और इन्हीं के आश्रम में ठहरते थे। महाराज रामचन्द्र ने भी इनके दर्शन किये थे।]

[महात्मा कुमारिल भट्ट-श्री आदिशंकराचार्य के समकालीन थे। और अपने काल के संसार के सबसे बड़े और प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य थे।]

व० द०—इलाहाबाद गंगा और यमुना के संगम पर बसा हुआ है। गंगा और यमुना के संगम पर कहा जाता है सरस्वती का भी गुप्त रूप से संगम है। संभव है किसी काल में सरस्वती का संगम यहाँ रहा हो। इस कारण इस स्थान को त्रिवेणी कहते हैं।

लखूखा यात्री त्रिवेणी पर माघ मास में स्नान करते हैं। अमावस्या स्नान का खास दिन है। कुंभ के दिनों में यात्रियों की संख्या ३० लाख से भी अधिक हो जाती है।

संपूर्ण यात्री त्रिवेणी पर मुंडन कराते हैं। जो स्त्रियाँ मुंडन नहीं करवातीं वे अपने बालों की एक लट कटवा देती हैं।

दारागंज के निकट गंगा में दशाश्वमेध तीर्थ है और यहाँ ब्रह्मेश्वर शिवलिंग है। यह ब्रह्मा के यज्ञ का स्थान है।

संगम के समीप यमुना तट पर अकबर का बनवाया हुआ प्रसिद्ध किला है। अकबर ने उसका नाम 'इलाहाबास' रक्खा था। इसके भीतर ज़मीन के नीचे 'अक्षयवट' बिना पत्तों के दो शाख का वृक्ष है। इसी स्थान पर जैनियों के श्री आदिनाथ स्वामी ने तप किया था।

इस किले के भीतर महाराज अशोक की एक पत्थर की लाट है।

प्रयाग राज में अन्य बहुत मन्दिरों के अतिरिक्त शहर के पास भरद्वाज मुनि का मन्दिर है। अलोपी देवी का मन्दिर सती के पीठों में से एक माना जाता है। मन्दिर में केवल वेदी है। गङ्गा और यमुना के सङ्गमपर बेनीमाधव

का मन्दिर है जिसका उल्लेख श्री माध्वाचार्य्य के शङ्कर विजय में है। इस स्थान का नाम इलाहाबाद शाहजहाँ का रक्खा हुआ है।

इलाहाबाद में श्रीधर, उपनाम मुरलीधर, एक अच्छे कवि हो गये हैं, जिनका जन्म १७३७ वि० के लगभग माना जाता है।

महा मना पं० मदन मोहन मालवीय (१८६१ ई०) तथा स्वतन्त्रभारत के प्रथम प्रधान मन्त्री देश भक्त पण्डित जवाहर लाल नेहरू (सं १८८६ ई०) की यह जन्मभूमि है।

उ

५४ उजैन-(देखिए काशी पुर)

५५ उज्जैन-(मध्य देश में ग्वालियर राज्य में एक शहर)

इसका प्राचीन नाम अवन्ति पुर, विशाषा, पुण्पा, कतिनी, और महाकालपुरी हैं। प्रसिद्ध प्राचीन सप्तपुरियों में से यह एक पुरी है।

सुप्रसिद्ध १२ ज्योतिर्लिङ्गों में से यहाँ महा कालेश्वर शिव विद्यमान हैं। इसी स्थान के निकट शिव औरअन्धक का युद्ध हुआ था। उज्जैन में शिवजी ने दूषण दैत्य को मारा था।

प्रह्लाद ने इस नगरी में, आकर क्षिप्रा मे स्नान किया था। महर्षि अगस्त्य यहाँ पधारे थे।

उज्जैन महाराज विक्रमा दित्य, शालिवाहन, भोज और भर्तृहरि की राजधानी थी।

साँदीपनि मुनि का यहाँ आश्रम था। श्री कृष्ण और बल्देव जी ने यहाँ आकर मुनि से विद्या पढ़ी थी।

यहाँ के राजा विन्द और अनुविन्द के दुर्योधन की ओर से महाभारत में युद्ध किया था।

अपने पिता के राज्यकाल में महाराज अशोक उज्जैन में, मालवा के सूबेदार होकर, रहे थे। यहीं पर अशोक के लड़के महेन्द्र का जन्म हुआ था जिन्होंने लङ्का में बौद्ध मत फैलाया था।

श्री वल्लभाचार्य ने यहाँ कुछ काल निवास किया था।

श्री भद्रबाहु स्वामी (जैन) यहाँ रहते थे।

महाराज रामचन्द्र के पुत्र कुश महाकालेश्वर का दर्शन करने वाल्मीकि जी के आश्रम से यहाँ आये थे।

महाकवि कालिदास बहुत समय तक उज्जैन में रहे। अपने ग्रन्थ मेघदूत में उन्हों ने इस नगरी का सुन्दर वर्णन किया है।

उज्जैन का प्रसिद्ध महाकाल का मन्दिर नाटकों में 'कालप्रियनाथ' का मंदिर कहा गया है। यहाँ प्राचीन नाटक खेले जाते थे।

उज्जैन में हरशुद्धि देवी का मन्दिर है यहाँ कहा जाता है, राजा विक्रमादित्य अपने शिरों को काट कर देवी को बलि देते थे।

यह स्थान नौ ऊखलों में से एक है जहाँ से प्रलय के समय जल निकल कर सारी पृथिवी को डुबो देगा।

प्रा० क०—(महाभारत, उद्योग-पर्व, १६ वाँ अध्याय) अवन्ती के राजा विन्द और अनुविन्द दो अक्षौहिणी सेना और अनेक दक्षिणी राजाओं के सहित कुरुक्षेत्र के संग्राम में राजा दुर्योधन की ओर आये (द्रोण पर्व, १७ वाँ अध्याय) अर्जुन ने अवन्ती के राजा विन्द और अनुविन्द को मार डाला।

(आदि ब्रह्म पुराण, ४२ वाँ अध्याय) पृथिवी में सब नगरियों में उत्तम अवन्ती नामक नगरी है, जिसमें महाकाल नाम से विख्यात सदाशिव स्थित हैं। यहाँ शिप्रा नामक नदी बहती है और विष्णु कई एक रूप से स्थित हैं। उसी नगरी में इन्द्रद्युम्न नामक राजा हुआ।

(गरुड़पुराण-पूर्वार्द्ध, ६६ वाँ अध्याय) महाकाल तीर्थ संपूर्ण पापों का नाशक और मुक्ति देने वाला है।

(प्रेत कल्प १७ वाँ अध्याय) अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काँची, अवन्तिका और द्वारिका यह सातों पुरियाँ मोक्ष देने वाली हैं।

(शिवपुराण-ज्ञान संहिता, ३८ वाँ अध्याय) शिव जी के बारह ज्योतिर्लिङ्ग हैं—उनमें से उज्जैन में महाकाल है, इनकी पूजा करने का अधिकार चारों वर्णों को है।

(४६ वाँ अध्याय) पाप को नाशने वाली और मुक्ति को देने वाली अवन्ती नामक नगरी है, जहाँ पवित्र शिप्रा नदी बहती है। उसमें वेदपारग एक शिव भक्त ब्राह्मण बसता था। उसके पुत्र भी बड़े शिवभक्त थे। उसी समय रत्न माल गिरि पर दूषण नामक असुर हुआ वह ब्रह्मा के बरदान से बलवान होकर सब को दुःख देने लगा। उसके भय से संपूर्ण तीर्थ, वन और पर्वतों के मुनिगण भाग गये। दूषण शिव भक्तों के विनाश करने के निमित्त अपनी सेना सहित उज्जैन में गया और चारों ओर से नगरी को घेर कर शिव भक्तों के निकट पहुँचा। उस समय शिव की कृपा से उस स्थान पर गढ़ा हो

गया और उस गढ़े में से शिव जी ने प्रकट होकर दैत्यों का विनाश किया। शिवभक्तों ने शिव जी से विनय की कि आप यहाँ स्थित होवें और आप ने जगत के काल रूप दूषण दैत्य को मारा इसलिये आप का नाम 'महाकालेश्वर' होवे। शिवजी उसी गढ़े में ज्योतिर्लिङ्ग होकर स्थित हुए।

(वामन पुराण, ८३ वाँ अध्याय) प्रह्लाद ने अवंती नगरी में सिप्रा नदी के जल में स्नान करके विष्णु और महाकाल शिव का दर्शन किया।

(स्कंदपुराण-काशी खण्ड, ७ वाँ अध्याय) महाकाल पुरी में कलिकाल की महिमा नहीं व्यापी थी।

(मत्स्यपुराण १७८ वाँ अध्याय) शिव और अंधक का युद्ध अवंती नगरी के समीप महाकाल वन में हुआ था।

(पद्मपुराण-पाताल खण्ड ६३ वाँ अध्याय) सीता जी के बड़े पुत्र कुश महाकाल की पूजा करके उज्जैन से आ गये।

(विष्णु पुराण, ५ वाँ अंश, २१ वाँ अध्याय) कृष्ण और बलदेव दोनों भाई अवन्तिकापुरी के वासी सांदीपनमुनि से विद्या पढ़ने गये (श्री मद्भागवत और आदिब्रह्म पुराण में भी यह कथा है।)

(सौर पुराण, ६७ वाँ अध्याय) उज्जैन में शक्ति भेदन नामक एक तीर्थ है जिसमें स्नान करके भद्र वट के दर्शन करने से मनुष्य संपूर्ण पापों से विमुक्त होकर स्कंद लोक को जाता है।

(भविष्य पुराण, १४१ वाँ अध्याय) उज्जैन में विक्रमादित्य नामक राजा होगा जो करोड़ों म्लेछों को मार धर्म स्थापन कर १३५ वर्ष राज करेगा। इसके अनंतर बड़ा प्रतापी राजा शालि वाहन १०० वर्ष पर्यन्त राज करेगा।

पुराणों में उज्जैन की बड़ी महिमा कही गई है।

[उज्जैन सुप्रसिद्ध विक्रमादित्य की राज धानी था जिसके नाम का संवत उत्तरी भारत में प्रचलित है। विक्रमादित्य ने सिदियन लोगों को भगा कर संपूर्ण उत्तरी भारत में राज्य किया।

धनवन्तरी, क्षपणक, अमर सिंह, शंकु, बैताल भट्ट, घट खर्पर, कालिदास, वराह मिहिर और वर रुचि इनकी सभा के नव रत्न थे।

अपने भाई भर्तृहरि को राज देकर विक्रमादित्य योगी हो गये थे। यह वही भर्तृहरि हैं जो अपने स्त्री का व्यभिचार देखकर राज्य पाट छोड़ योगी हो गये और कई उत्तम ग्रन्थ लिखे हैं; और जिनके विषय में कहा जाता है कि वे अमर हैं। भर्तृहरि के विरक्त होने पर वीर विक्रमादित्य उज्जैन को लौट आये थे।]

[लगभग ७५७ संवत् में **भोज** उज्जैन के राजा हुए। विद्या के प्रचार के लिये महाराज भोज विख्यात हैं। कहा जाता है कि इनकी महारानी लीलावती की ही बनाई हुई 'लीलावती' नाम की गणित की पुस्तक है, पर यह बात प्रमाणित नहीं है। महाराज भोज ने धार (धारावती) को अपनी राजधानी बनाया था।]

[**श्री भद्रबाहु स्वामी** ने राजा पद्मधर की रानी पद्म श्री के पुरोहित सोम शर्मा की स्त्री-सोमश्री के गर्भ से जन्म लिया था। ७ वर्ष की आयु में आप गोवर्धन स्वामी महामुनि से शिक्षा पाने लगे और बाल-अवस्था ही में वैराग्य ले लिया। वीर निर्वाण संवत् १६२ में जैनमुनी होकेर निर्वाण प्राप्त किया।]

लभभग ४०० ई० में गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अयोध्या से हटाकर उज्जैन को अपनी राजधानी बनाया। विद्वानों का मत है कि यही सुप्रसिद्ध महाराज विक्रमादित्य थे जिन्होंने उज्जैन और भारत से शकों को निकाला था। उज्जैन में विद्वानों की सभाएँ हुआ करती थीं। गुप्त कालमें उज्जैन के विद्यालय की बड़ी उन्नति हुई।

५३३ ई० में यशोधर्मन उज्जैन के शासक हुए थे जिन्होंने हूण राजा मिहिर कुल को पूर्णतया पराजित कर मार भगाया था।

प्राचीन काल से उज्जैन सर्वमत वालो का बड़ा भारी पवित्र क्षेत्र है और बराबर मालवा की राजधानी रहता आया। अंत में यह मरहठों के हाथ आया और सिंधिया वंश की राजधानी रहा। दौलत राव सिंधिया ने सन् १८१० ई० में इसे छोड़ कर ग्वालियर को अपनी राजधानी बनाया।

व० द०—उज्जैन क्षिप्रा नदी के दाहिने किनारे पर बसा है। पुराने उज्जैन के खण्डहर इससे एक मील उत्तर हैं। शहर के समीप क्षिप्रा नदी के कई घाट पत्थर के बने हैं। कार्तिक की पूर्णिमा को उज्जैन का मेला होता है। १२ वर्ष परजब वृश्चिक राशि के वृहस्पति होते हैं तब उज्जैन में कुंभयोग का बड़ा मेला होता है। उस समय भारतवर्ष के संपूर्ण प्रदेशों के सब सम्प्रदाय के कई लाख साधु और गृहस्थ क्षिप्रा में स्नान करने के लिये यहाँ एकत्र होते हैं। १२० मील बहकर क्षिप्रा नदी चंबल में मिली है।

एक पक्के सरोवर के बगल पर उज्जैन के प्रधान देवता महाकालेश्वर का शिखर दार विशाल मंदिर है मंदिर पाँच मंजिला है। नीचे कीमंजिल में जो भूमि की सतह से नीचे है बड़े आकार का महाकालेश्वर शिवलिंग है। पहिले का चढ़ा हुआ बिल्वपत्र (बेल पत्र) भी धोकर पुनः चढ़ाने की यहाँ रीति है।

क्षिप्रा नदी के समीप विक्रमादित्य की कुलदेवी हरसिद्धी देवी का शिखरदार विशाल मन्दिर है। कहा जाता है कि यहीं विक्रमादित्य अपना सिर काट काट कर देवी को चढ़ाते थे जो देवी की कृपा से फिर पूरा हो जाता था।

शहर से तीन मील दूर क्षिप्रा नदी के किनारे एक छोटा पुराना वट वृक्ष है। कार्तिक सुदी १४ को यहाँ मेला होता है, इसके समीप एक बड़ी धर्मशाला है।

शहर से दो मील दूर गोमती गंगा नामक पक्के सरोवर के समीप सांदीपन मुनि का स्थान अङ्कपात (अङ्कपाद) है। श्रीकृष्ण और बलराम ने मथुरा से आकर इसी स्थान पर सांदीपन मुनि से विद्या पढ़ी थी। समीप के दामोदर कुण्ड में वे अपनी तख्ती धोते थे।

शहर के भीतर एक बहुत पुराना फाटक है जिसको लोग विक्रमादित्य के किले का हिस्सा कहते हैं, और १॥ मील उत्तर एक स्थान है जिसको भर्तृहरि की गुफा कहा जाता है। इसमें भर्तृहरि का योगासन और उनकी तथा गुरुगोरखनाथ की मूर्तियाँ हैं। शहर के दक्षिण-पूर्व में एक अकेली पहाड़ी अब गोगा शहाद कहलाती है। कहा जाता है कि यहीं पर विक्रमादित्य का सुविख्यात सिंहासन था जिसे राजा भोज खोद ले गए थे।

उज्जैन में बहुत मन्दिर, सरोवर और घाट है।

नगर के दक्षिण पश्चिम में महाराज जयसिंह (जयपुर नरेश) की बनवाई हुई ज्योतिष यन्त्रालय टूटी फूटी दशा में है। भारतवर्ष का यह सर्व प्रथम ज्योतिष यन्त्रालय था। यहाँ के ब्राह्मण क्रिया वान् होते हैं और कुछ नीच जातियों को छोड़ कर हिन्दू मात्र मद्य मांस नहीं खाते।

उज्जैन से ४० मील पर इन्दौर है जिसको अहल्याबाई ने बसा कर होल्कर वंश की राजधानी बनाया था। इन्दौर की उन्नति के साथ-साथ उज्जैन शहर की अवनति हो रही है।

५६ उडूपीपुर—(मद्रास प्रांत के मंगलूर जिला में एक स्थान)

इस स्थान के समीप वेललिग्राम में श्री माध्वाचार्य का जन्म हुआ था। इसका प्राचीन नाम उडूपी क्षेत्र है।

चैतन्य महाप्रभु यहाँ पधारे थे।

[उडूपी पुर में श्री माध्वाचार्य का मठ है। उडूपी क्षेत्र से दो तीन मील दूर वेललि ग्राम में भारगव गोत्रीय नारायण भट्ट के अंश से तथा माता वेद

ऊ

६४ ऊखल (नौ)—(देखिए कड़ा)

६५ ऊखी मठ—(गढ़वाल में एक प्रसिद्ध स्थान)

इस स्थान पर राजा नल ने तप किया था।

सूर्यवंशी राजा युवनाश्व के पुत्र राजा मान्धाता ने यहाँ सिद्धि प्राप्त की थी।

इस स्थान को मान्धाता क्षेत्र भी कहते हैं।

(स्कंदपुराण केदार खंड, उत्तर भाग, २४ वाँ अध्याय) गुप्त काशी के पूर्व मंदाकिनी नदी के बायें तट पर राजा नल ने राजसुख त्याग कर तप और राज राजेश्वरी देवी का पूजन किया था। वहाँ के नलकुंड में स्नान करने से जन्म भर का संचित पाप नष्ट हो जाता है। सूर्यवंशी राजा युवनाश्व के पुत्र राजा मान्धाता ने उस स्थान पर तप करके परम सिद्धि प्राप्त की थी।

ऊखीमठ के एक शिखरदार मन्दिर में ऊँकारनाथ शिवलिङ्ग स्थित है। उनके पूर्व राजा मान्धाता की बड़ी मूर्त्ति है। मन्दिर के पूर्व एक कोठरी में ऊषा और अनिरुद्ध की मूर्त्तियाँ हैं और धातु के पत्तर पर चित्त लेखा की मूर्ति है (ऊषा और अनिरुद्ध के सम्बन्ध में देखिये 'शोणित पुर' ।)

जाड़े के दिनों में केदारनाथ के पट बन्द हो जाने पर उनकी पूजा ऊखी मठ में होती है। ऊँकार नाथ के मन्दिर के पश्चिम यहाँ के रावल का मकान है। ऊखी मठ का रावल केदारनाथ, गुप्त काशी, ऊखी मठ, तुङ्गनाथ आदि मन्दिरों का अधिकारी है।

६६ ऊर्जमगाँव—(गढ़वाल में अलकनन्दा के किनारे एक गाँव)

यहाँ ऊर्ज मुनि ने तप किया था। राजा सगर का यहाँ जन्म हुआ था। पंच बद्री में से एक—आदि बद्री—यहाँ विराजते हैं।

प्रा० क०—(शिवपुराण-११ खंड, २१ वाँ अध्याय) अयोध्या पर राजा बाहु के समय में राक्षसों की सहायता से कुछ राजे चढ़ आये और राजा को परास्त आप राज्य करने लगे। तब राजा बाहु ऊर्ज मुनि की शरण में रहने लगे औरवहीं मर गये। राजा की बड़ी रानी गर्भवती थीं। छोटी रानी ने डाह से उसे विष दे दिया, लेकिन रानी न मरी। उसने ऊर्ज मुनि के आश्रम पर एक पुत्र जना। मुनि ने बालक को विष सहित जन्मा देख कर उसका नाम सगर रक्खा। राजा सगर शिव जी की प्रसन्नता और ऊर्ज मुनि की सहायता से

शत्रुओं का विनाश कर उन पर प्रबल हुए। फिर सगर ऊर्ज मुनि को गुरु बनाकर अश्व मेधयज्ञ करने लगे।

(वाल्मीकीय रामायण—बाल कांड, ३८ वाँ सर्ग) अयोध्या के राजा सगर सततिहीन थे। राजा के केशिनी और सुमति नामक दो रानियाँ थीं। महाराज सगर दोनों पत्नियों के साथ हिमवान पर्वत के भृगु प्रश्रवण देश में जाकर तप करने लगे। सौ वर्ष तप करने के पश्चात् भृगु मुनि ने प्रसन्न हो सगर को वर दिया जिससे अयोध्या में आने पर केशिनी के एक पुत्र और सुमति के साठ सहस्र पुत्र हुए।

व० द०—ऊर्जम गाँव से कुछ दूर पर मंडल गाँव है जिसको मंडल तीर्थ कहते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि पूर्व काल में राजा सगर ने वहाँ अश्वमेध यज्ञ किया था।

ऋ

६७ ऋण तांबूर—(राज पूताने का एक नगर)
यहाँ राजा रंति देव का निवास स्थान था जिसका वर्णन कालिदास ने मेघदूत में किया है।

रतिदेव ने बहुत सी गौवों का दान किया था, जिससे चर्मणवती (चंबल) नदी पृथिवी पर आई।

ऋणतांबूर चंबल नदी पर बसा है।

६८ ऋद्धिपुर—(देखिए काठ सुरे)

६९ ऋपिकुण्ड—(देखिए मँकनपुर)

७० ऋपिशृङ्ग—(देखिए शृङ्गेरी)

७१ ऋष्यमूक—(देखिए आनागन्दी)

७२ ऋष्य शृङ्ग आश्रम—(कुल) · (देखिये मँकनपुर)

ए

७३ एडैयालम—(मद्रास के दक्षिणी अर्काट जिले में एक ग्राम)

श्री मल्लिषेणाचार्य मुनि (जैन) ने इस स्थान पर तपस्या की थी।

श्री सिद्धांत मुनि (जैन) का यह जन्म स्थान है।

[श्री मल्लिषेणाचार्य जी श्री आदितीर्थङ्कर ऋषभ देव जी के १५वें गणधर थे। श्री सिद्धांत मुनि भी जैनियों में परम मुनि हो गये हैं।

यहाँ एक अति प्राचीन जैन मन्दिर है।]

ओ

७४ ओङ्कारपुरी—(देखिये मान्धाता)

७५ ओड़छा—(मध्यभारत के ओड़छा राज्य में एक प्रसिद्ध स्थान)

यह महाकवि केशवदासजी तथा कवीन्द्र विहारी दास जी की जन्मभूमि है।

संत श्री व्यासदास का भी यहीं जन्म हुआ था।

प्रा० क०—हिन्दी में सूरदास, तुलसीदास और केशवदास तीन सर्वश्रेष्ठ कवि माने गये हैं। कहा गया है—सूर सूर तुलसी शशि, उडुगण केशवदास। अबके कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकाश ॥

केशवदास जी का जन्म सम्वत् १६१८ वि० में ओड़छा में हुआ था। आपके पिता पं० काशीनाथ मिश्र सनाढ्य ब्राह्मण तथा महाराज ओड़छा की सभा के एक रत्न थे। केशवदास जी ने किसी पाठशाला में शिक्षा नहीं पाई, उनके पिता ही ने उन्हें पढ़ाया था। पिता की मृत्यु के पश्चात् केशवदास जी ओड़छा नरेश की सभा के रत्नों में सम्मिलित हुए, और जीवनपर्यन्त आपका वहाँ बड़ा मान और वैभव रहा। सम्राट अकबर के दरबार में भी बीरबल (महाराज महेशदास जी) द्वारा इनका अच्छा आदर सत्कार होता था।

ओड़छा नरेश महाराज इन्द्रजीत सिंह के यहाँ राय प्रवीण नामी एक प्रसिद्ध वेश्या थी। अकबर ने उसकी प्रशंसा सुन उसे बुलवा भेजा ! इन्द्रजीत सिंह ने आज्ञा स्वीकार करली, पर राय प्रवीण को यह बुरा लगा। वह अपने को महाराज इन्द्रजीत सिंह की पतिव्रता रखैल स्त्री मानती थी। अपने विदाई के नाच में खिन्न होकर उसने एक गाना इन्द्रजीतसिंह के दरबार में सुनायाः-

> आई हों बूझन मन्त्र तुम्हें,
> निज सासन सों सिगरी मति गोई।
> देह तजौं कि तजौं कुल कानि,
> हिये न लजौं, लजि है सब कोई ॥
> स्वारथ औ परमारथ को पथ,
> चित्त विचार कहौ अब कोई।
> जामें रहै प्रभु की प्रभुता,
> अरु मोर पतिव्रत भङ्ग न होई ॥

वीर प्रसविनी वीरभूमि चित्तौड़ के बाद, साहस और वीरता में ओड़छा ही अपना सिर ऊँचा किये खड़ा रहा है, यद्यपि उसकी वीरता में उद्दण्डता है।

राय प्रवीण का गाना सुनकर महाराज इन्द्रजीत सिंह ने उसे अकबर के यहाँ भेजने से इनकार कर दिया। अकबर ने उनपर १ करोड़ रुपया जुर्माना कर दिया। इन्द्रजीत सिंह ने नहीं दिया। बात बढ़ती देख कर केशवदास जी महाराज बीरबल के पास आगरा गये और एक सवैया सुनाया :—

पावक, पंछी, पसू, नर, नाग, नदी, नद, लोक रचे दस चारी।
'केशव' देव, अदेव रचे, नरदेव रचे, रचना न निधारी॥
कै वर बीर बली बलबीर, भयो कृत कृत्य महाव्रत धारी।
दै करतापन आपन ताहि, दई करतार दुवौ करतारी॥

इस सवैया को सुन कर महाराज बीरबल इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने वह एक करोड़ वाला जुर्माना सम्राट अकबर से माफ करवा दिया, और छः लाख रुपये और केशवदास जी को भेंट किये। इस पर केशवदास जी ने एक और सवैया उसी समय सुनाया :—

केशवदास के भाल लिख्यौ, विधि रंक को अंक बनाय सँवारयो।
छूटे छुट्यो नहिं धोये धुल्यो, बहुतीरथ के जल जाय पखारयो॥
ह्वै गयो रङ्क ते राउ तहीं, जब वीर बली वर वीर निहारयो।
भूलि गयो जग की रचना, चतुरानन बाय रह्यो मुख चारयो॥

जब काबुल में यूसुफजाइयों के युद्ध में बीरबल मारे गये तो यह समाचार अकबर तक पहुँचाने का किसी को साहस नहीं होता था। केशवदास जी उन दिनों आगरा में थे और उन्हें इस काम के लिये चुना गया। उन्होंने निम्नलिखित दोहा सुना कर बीरबल की मृत्यु का समाचार अकबर पर प्रकट किया था :—

याचक सब भूपति भये, रह्यो न कोऊ लेन।
इन्द्रहु को इच्छा भई, गयो बीरबल देन॥

कहते हैं कि अकबर ने महा शोक करते हुए एक सोरठा भी कहा था कि :—

दीन देखि सब दीन, एक न दीन्हों दुसह दुःख।
सो अब हम कहँ दीन, कछु नहिं राख्यो बीरबल॥

कवि लोग कहा करते थे कि जब कोई नरेश किसी कवि को विदाई देना नहीं चाहता था तब केशवदास जी की कविता की चर्चा छेड़ देता था, जिससे कवि का मुँह बन्द हो जावे :—

देवो न चाहे बिदाई नरेश, तो पूंछत केशव की कविताई।

सखियान के आनन इन्दुन ते
अँखियान की वंदनवार तनी ॥

ओड़छा के सनाढ्य ब्राह्मण कुल में संवत् १५६७ वि० में श्री व्यास दास का जन्म हुआ था। तत्कालीन ओड़छा नरेश मधुकर शाह के आप राज गुरु थे। पर दीक्षा लेकर विरक्त वैष्णव के रूप में वृन्दावन चले गये। वहाँ से महाराज मधुकर शाह स्वयं इन्हें बुलाने गये फिर भी यह न लौटे और श्री कृष्ण चन्द्र के चरणों ही में जन्म व्यतीत किया। भगवान के यह परम भक्त थे।

एक समय सम्राट अकबर ने माला और तिलक लगाकर दरबारियों को अपने दरबार में आने की मनाही कर दी थी। सब ने आज्ञा का पालन किया पर ओड़छानरेश महाराज मधुकर शाह एक भारी माला और तिलक धारण करके दरबार में पहुँचे। अकबर उनके साहस से बहुत प्रसन्न हुये और कहा कि केवल परीक्षा के लिये उन्होंने ऐसा हुक्म दिया था। तब से वैसा तिलक 'मधुकर शाही टीका' कहलाता है।

ओड़छा के महाराज जुझारसिंह राजदरबार में देहली बुला लिये गये थे। उनके पीछे उनके भाई हरदौल ओरछा का राज काज करते रहे। हरदौल अपनी भावज को माता के समान मानते थे। एक बड़े मुसलमान योधा ने ओड़छा आकर सारी राजपूत जाति को तलवार से लड़ने को ललकारा और कई वीरों की तलवार काट कर उन्हें हरा दिया। हरदौल यह अपमान नहीं सहन कर सक्ते थे पर केवल महाराज जुझारसिंह वाली तलवार उस योधा की तलवार के काट को रोक सकती थी। हरदौल ने उसे महारानी से माँग कर उस योधा को परास्त कर दिया। पर महारानी का हरदौल को उनकी तलवार देना, जुझारसिंह को अच्छा नहीं लगा। इधर हरदौल की कार्य्य निपुणता से कुछ लोग उनसे जलने लगे थे, और उन्होंने जुझारसिंह के कान भरे। जुझारसिंह महारानी के आचरण पर संदेह करने लगे, और अपने को निर्दोषी प्रमाणित करने को, उन्होंने महारानी से अपने हाथ से हरदौल को विष देने को कहा। हरदौल को यह मालूम होगया और उन्होंने खुशी से विषमिला हुआ भोजन महारानी से लेकर खा लिया। प्राण छूटते समय वे जुझारसिंह के चरण छूने गये। उस समय जुझारसिंह को अपनी मूर्खता पर पश्चाताप व्यर्थ था। पर बुन्देल खण्ड में ग्राम ग्राम में चबूतरे बने हैं जिन पर

स्त्रियाँ 'हरदौल लला' का पूजन करती हैं। उन्होंने एक स्त्री का पातिव्रत साबित करने को अपने प्राण दिये थे।

संवत् १५८८ वि० से १८४० वि० तक ओड़छा नगर ओड़छा राज्य की राजधानी था। अब टीकमगढ़ राजधानी है।

व० द०—ओड़छा एक महारमणीय स्थान बेतवा नदी के किनारे खड़ा है। जहाँगीर का महल और कितने ही अनेक महल, भवन, देवमंदिर यहाँ विद्यमान हैं। ओड़छा के वर्तमान नरेश महि महेन्द्र हिज़ हाईनेस महाराजा सर वीरसिंह जू देव हिन्दी के बड़े प्रेमी व विद्वान हैं। आपने कवीन्द्र केशवदास जी की स्मृति में भी एक संस्था स्थापित की है जो बहुत उत्तम रीति से काम कर रही है। महाराज सर वीर सिंह जू देव की पितामही, महारानी वृषभानु कुंवरि जी देवी, अच्छी कवियत्री हो गई हैं।

७६ ओपियन—(अफ़ग़ानिस्तान में काबुल से २७ मील उत्तर एक नगरी)

यह प्रसिद्ध सम्राट मिलिन्द की जन्मभूमि है जिनका महात्मा नागसेन से वार्तालाप हुआ था। अनुमान होता है कि ओपियन प्राचीन क्षत्रिय-उपनिवेश है। यह नगर परशुस्थल की राजधानी था।

७७ ओरियन—(बिहार प्रान्त के मुंगेर ज़िले में एक गाँव)

ओरियन गाँव के पास एक पहाड़ी है। इस पहाड़ी पर कुछ समय तक भगवान बुद्ध रहे थे।

यहाँ भगवान बुद्ध की निशानियाँ पाई जाती हैं और पुराने समय में यह स्थान यात्रा के लिए प्रसिद्ध था।

औ

७८ औंधाखेड़ा—(देखिये वटेश्वर)

क

७९ कटाछराज—(पाकिस्तानी पंजाब के झेलम ज़िले में एक तीर्थ-स्थान)

यहाँ पर पाण्डवों ने १२ साल के वनवास में कुछ दिन वास किया था। इस स्थान का असल नाम कटाक्ष है। कहते हैं कि सती के विलाप में शिव के नेत्र से बहे हुए जल से यहाँ का कुण्ड बन गया था।

सिंहपुर इस स्थान का दूसरा प्राचीन नाम है। इसे अर्जुन ने विजय किया था।

कुरुक्षेत्र व ज्वालामुखी के बाद कटाछराज पंजाब का सबसे बड़ा तीर्थ-स्थान है। यहाँ का पवित्र कुंड २०० फ़ीट लम्बा, ऊपर की ओर १५० फ़ीट चौड़ा और नीचे की ओर ८० फ़ीट चौड़ा है। इसका कुछ भाग प्राकृतिक और कुछ बनाया हुआ है। बनाया हुआ भाग अब खराब हो गया है। यहाँ एक स्थान पर सात मन्दिर हैं जिन्हें सतघरा कहते हैं।- बताया जाता है कि यह पाण्डवों के समय के हैं। यहाँ बहुत से और मन्दिर व पुरानी इमारतों के निशान हैं। वैशाख मास में कटाछराज का मेला होता है और यात्री लोग कुंड में नहाते हैं।

यहाँ के लोग कहते हैं कि यहीं नरसिंहावतार हुआ था। (देखिए मुल्तान)

८० कड़ा—(संयुक्त प्रदेश के इलाहाबाद ज़िले में एक क़स्बा)

नौ ऊखलों में से यह एक ऊखल है जहाँ से प्रलय के समय जल निकल कर सारी पृथिवी को डुबो देगा। इस स्थान का प्राचीन नाम काल ऊखल और करकोटक नगर है। सती का हाथ यहाँ गिरा था।

यहाँ मलूकदास का जन्म हुआ था, और उनकी समाधि है।

प्रा० क०—रेणुक, शूकर, काशी, काली काल, बटेश्वरः

कालिञ्जर, महाकाल, ऊखल नव कीर्तिवः

अर्थात्, रेणुक (आगरा के समीप), शूकर (सोरों), काशी, कालीकाल (कड़ा), बटेश्वर, कालिञ्जर, महाकाल (उज्जैन) यह नौकीर्ति पूर्ण ऊखल हैं।

अपने पिता के यज्ञ में अपने पति शिव का अनादर देख जब सती ने अपना शरीर छोड़ दिया था और शिव जी विलाप करके उस शरीर को लेकर घूमने लगे थे उस समय सती के अंग इधर उधर गिरे थे जिनमें से हाथ इस स्थान पर आकर गिरा था और इसी से इसका नाम कर-कोटक नगर पड़ा।

[सती—कनखल और उसके समीप के देश के राजा, प्रजापति दक्ष, की पुत्री थीं। इन्होंने घोर तप करके शिवजी को प्रसन्न करके उन्हें वरा था। दक्ष प्रजापति ने अपने यज्ञ में जो कनखल में हुआ था, शिवजी को नहीं बुलाया और उनका अनादर किया इसपर सती ने अपने प्राण दे दिये।

शिवजी ने दक्ष पर क्रुद्ध होकर उनका यज्ञ विध्वंस कर डाला था और सती के मृत शरीर को लेकर जगह-जगह घूमते फिरे थे।]

व० द०—कड़ा, गंगा जी के किनारे पर बसा है। पहिले कोशाम्बी मंडल में यह एक कस्बा था पर १२०० ई० में मुसलमानों ने कोशाम्बी के स्थान पर इसे सूबे की राजधानी बनाया। १५७५ ई० में अकबर ने इलाहाबाद का क़िला बनाकर उसको राजधानी बना दिया, और तब से कड़ा उजड़ने लगा, यहाँ का क़िला कन्नौज के राजा जयचंद का बनाया हुआ है।

अषाढ कृष्ण पक्ष की सप्तमी, अष्टमी व नवमी को कड़ा में गंगा स्नान का भारी मेला लगता है। चैत्र और श्रावण की अष्टमी को भी मेले लगते हैं। कालेश्वर शिव के प्रसिद्ध मन्दिर में पूजा पाठ की भीड़ रहती है।

८१ कणकाली—(बङ्गाल प्रान्त के वीरभूम ज़िला में एक तीर्थ स्थान) यह स्थान ५२ पीठों में से एक है जहाँ सती की कमर गिरी थी। कण काली देवी का मन्दिर श्मशान में नदी के किनारे बना है।

८२ कण्व आश्रम—(कुल)·(देखिए मन्दावर)

८३ कनकपुर—(देखिए खुपुआ डीह)

८४ कनखल—(देखिए हरद्वार)

८५ कनहट्टी—(मैसूर राज्य में दुदेरी ताल्लुके में एक गाँव) लिङ्गायत लोगों के महापुरुष टप्पा रुद्र का यहाँ समाधि मन्दिर है। यहाँ प्रति वर्ष रथयात्रा के मेले में बहुत यात्री एकत्रित होते हैं।

८६ कनारक—(उड़ीसा प्रान्त में पुरी ज़िले में एक स्थान) इस स्थान के प्राचीन नाम कोणार्क, अर्कक्षेत्र, सूर्यक्षेत्रतथा मित्र वन है। यहाँ श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब कुष्ठ रोग से मुक्त हुए थे। (देखिए मथुरा)

प्रा० क०—(देवी भागवत—पूर्वार्द्ध, ६६ वाँ अध्याय) नारद जी ने श्रीकृष्ण चन्द्र के पास जाकर कहा कि आप का पुत्र साम्ब अति रूपवान है इसलिये आप की सोलहो हज़ार रानियाँ-उस पर मोहित हैं। कृष्ण चन्द्र की स्त्रियों के समीप जब साम्ब बुलाया गया तब उसका रूप देख कर स्त्रियों का चित्त चलायमान हो गया। उस समय श्री कृष्ण भगवान ने स्त्रियों के शाप दिया कि तुमको पति लोक और स्वर्ग की प्राप्ति न होगी और अन्त में तुम लोग चोरों के वश में पड़ोगी। इसी शाप से श्रीकृष्ण के वैकुण्ठ जाने के पीछे, अर्जुन के देखते देखते सब स्त्रियों को चोर हर ले गये। इसके पीछे श्रीकृष्ण चन्द्रने साम्ब को भी शाप दिया कि तू कुष्ठी होगा।

(१२१ वाँ अध्याय) साम्ब चन्द्रभागा नदी के तट पर मित्र वन नामक सूर्य के क्षेत्र में जाकर तप करने लगा। सूर्य ने प्रकट होकर साम्ब का रोग दूर किया और चन्द्रभागा के तट पर अपनी प्रतिमा स्थापन करने के लिये उसको आज्ञा दी।

(१२३ वाँ अध्याय) साम्ब ने नदी में बही जाती हुई सूर्य की प्रतिमा को पाया जिसको विश्वकर्मा ने कल्प वृक्ष के काष्ठ से बनाकर नदी में बहाया था। साम्ब ने मित्र वन में मन्दिर बना कर विधि पूर्वक प्रतिमा को स्थापन किया। इस स्थान में परब्रह्म स्वरूप जगत के स्वामी सूर्य नारायण ने मित्ररूप से तप किया था।

व० द० कनारक में सूर्य का विचित्र और प्रसिद्ध एक पुराना मंदिर है। उड़ीसा के लेखों से जान पड़ता है कि राजा नृसिंह देव लंगोर ने उड़ीसे की १२ वर्ष की आमदनी खर्च करके सन् १२३७ और सन् १२८२ ई० के बीच में वर्त्तमान मंदिर को बनवाया था। मंदिर का शिखर गिर गया है। इसकी दीवारें बीस २ फीट तक मोटी हैं। मन्दिर खाली पत्थर से बना है। पत्थर के टुकड़े लोहे से एक दूसरे में जड़ दिये गये हैं। यह इस समय अतिशय हीन दशा में पड़ा हुआ है। (मथुरा की कृष्ण गङ्गा में स्नान करके भी साम्ब के कुष्ट रोग का दूर होना बतलाया जाता है।)

८७ कनिष्ठ पुष्कर—(देखिये पुष्कर)

८८ कन्धार—(अफ़ग़ानिस्तान में एक प्रसिद्ध नगर)

इसका प्राचीन नाम गान्धार था।

काबुल के नीचे के देश व कन्धार को गान्धार देश कहते थे।

कौरवों की माता गान्धारी, जो धृतराष्ट्र को ब्याही थीं, यहीं की थीं।

कन्धार के पास भगवान बुद्ध का भिक्षापात्र मौजूद है।

पहिले भगवान बुद्ध का भिक्षापात्र वैशाली में था। वहाँ से पेशावर में आया। फ़ाहीयान के समय, ४०२ ई० में, वह पेशावर ही में था। ह्यान चांग के समय, ६३० ई० में, वह फारस (ईरान) में था और अब कन्धार के समीप है। सर एच० रालिन्सन लिखते हैं कि मुसलमान लोग इसे बड़ी श्रद्धा से पूजते हैं और पैग़म्बर का कमण्डल कहते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान में काबुल के बाद कन्धार सब से बड़ा शहर है।

८९ कन्नौज—(संयुक्त प्रदेश के फ़र्रुखाबाद ज़िले में एक क़स्बा)

क़न्नौज का प्राचीन नाम कन्या कुब्ज है।

वायु के शाप से कुश नाम की १०० कन्यायें यहाँ कुबड़ी हो गई थी।

विश्वामित्र के पिता राजा गाधि की यहाँ राज धानी थी।

यहीं विश्वामित्र का जन्म हुआ था।

भगवान बुद्ध ने ससार की असारता पर यहाँ उपदेश दिया था। चार पूर्व बुद्धों ने भी यहाँ निवास किया था।

भगवान बुद्ध का दाँत इस नगर में एक विहार में रक्खा था और एक स्तूप में उनके नाखून और बाल थे।

अश्वत्थामा का स्थान कन्नौज के समीप है।

राजा जयचन्द ने यहाँ अश्वमेध यज्ञ किया था और वीर पृथ्वीराज यहाँ से उनकी पुत्री संयोगिता को स्वयम्वर से हर ले गये थे। यह भारतवर्ष का अंतिम अश्मेध यज्ञ और अन्तिम स्वयम्वर था।

क़न्नौज अपने विद्वस्त भावों के लिये प्रसिद्ध है।

यहाँ महाकवि भवभूति, बाण भट्ट (कादम्बरी व हर्ष चरित्र के लेखक), राजशेखर तथा श्री हर्ष (नैपध चरित्र के लेखक) आदि अनेक उद्भट विद्वान तथा प्रसिद्ध कवि हुए हैं।

म० फ०—(महाभारत, अनुशासन पर्व, ४ था अध्याय) ऋचीक मुनि ने राजा गाधि से कन्या के लिये प्रार्थना की। राजा ने कहा कि हे मुनीश्वर ! तुम मुझको सहस्र श्यामकर्ण घोड़े दो तब मैं तुमको अपनी कन्या दूँगा। तब मुनि ने वरुण देव से कहा कि हे देव सत्तम ! तुम मुझको एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े दो,वरुण ने कहा कि बहुत अच्छा, तुम जिस स्थान पर चाहोगे, उसी स्थान पर घोड़े प्रकट हो जायँगे। उसके पश्चात् ऋचीक मुनि के ध्यान करते ही एक सहस्र शुक्ल वर्ण के श्यामकर्ण घोड़े गंगा जल से प्रकट हो गये। कन्याकुब्ज अर्थात् कन्नौज देश के समीप जिस स्थान में घोड़े प्रकट हुए थे उसको अश्वतीर्थ कहते हैं। राजा गाधि ने मुनि से घोड़ों को लेकर उनको सत्यवती नामक अपनी कन्या प्रदान कर दी।

ह्वान चांग की यात्रा के समय क़न्नौज महाराज हर्षवर्धन की राजधानी थी जिनका राज्य काश्मीर से आसाम और नैपाल से नर्मदा तक था। उन्होंने काश्मीर के राजा को धमका कर उनसे भगवान बुद्ध का दांत जो यहाँ था, क़न्नौज मँगवा लिया था। एक विहार में यह दाँत रक्खा गया था और रोज़ भक्तों को देखने दिया जाता था। जहाँ भगवान बुद्ध ने संसार की असारता पर उपदेश दिया था वहाँ महाराज अशोक ने २००

फ़ीट ऊँचा एक स्तूप बनवाया था। एक स्तूप में बुद्ध देव के बाल और नख रक्खे हुये थे और अन्य स्तूप उस जगह पर थे जहाँ पूर्व चार बुद्ध यहाँ पर रहे थे।

कई शताब्दी तक कन्नौज उत्तरीय भारत की राजधानी था। शहर के चारों ओर भारी चहारदीवारी और खाई थी और पूर्व में गंगा जी बहती थीं।

'महाराज जयचन्द यहाँ के अन्तिम हिन्दू सम्राट थे। उनके साथ कन्नौज का भी पतन हुआ। जयचन्द ने भारतवर्ष में अन्तिम अश्वमेध यज्ञ किया था और अपने समय के सब से बड़े राजा होने का दावा था। अपनी परम सुन्दरी राजकुमारी संयोगिता का उन्होंने स्वयंम्वर किया और ईर्षा वश वीर पृथ्वीराजकी मूर्ति को द्वारपाल की जगह पर खड़ा कर दिया। कुमारी संयोगिता ने उसी मूर्ति के गले में जय माल डाल दी। उसी समय वीर पृथ्वीराज आ आ पहुँचे औरमारी को स्वयम्वर से उठा ले गये। प्रसिद्ध बनाफ़र सरदार आल्हाव ऊदल ने इनका मुक़ाबिला किया पर पृथ्वीराज संयोगिता को लेकर चले गये। जयचन्द्र ने स्वयं वीर पृथ्वीराज से टक्कर लेने की शक्ति अपने में न पाकर विदेशी मोहम्मद गोरी को भारतवर्ष आने का न्योता दिया और पृथ्वी राज के विरुद्ध सहायता देने का प्रलोभन दिया। गोरी कई बार पृथ्वीराज से हारा और पृथ्वीराज ने उसे पकड़ कर छोड़ दिया, पर एक बार वह सफल हुआ और नीच ने तुरन्त महाराज पृथ्वीराज को अन्धा कर दिया। देश के वैरी जयचन्द्र को दूसरे ही वर्ष अपनी करतूत का फल मिल गया। गोरी ने उस पर चढ़ाई की और वह भागते समय गंगा जी में नाव डूब जाने से वहीं डूब कर मर गया। लिखा गया है कि मोहमम्द गोरी के समय में कन्नौज जैसा दूसरा शहर नहीं था। सम्राट हर्षवर्धन के समय में यहाँ की विशेष उन्नति हुई थी।

[प्रजापति के पुत्र कुश हुए। इन्हीं के वंश में एक महाराज गाधि हुए और गाधि के पुत्र महाराज विश्वामित्र हैं।

महर्षि विश्वामित्र जी के समान सतत लगन के पुरुषार्थी ऋषि शायद ही कोई और हों। उन्होंने अपने पुरुषार्थ से क्षत्रियत्व से, ब्रह्मणत्व प्राप्त किया था। राजर्षि से महर्षि बने, सप्तर्षियों में अग्रगण्य हुये, और वेद माता गायत्री के द्रष्टा ऋषि हुये।

इन्हीं ही ने महाराज रामचन्द्र जी को शस्त्र विद्या सिखायी थी और उनको सीता-स्वयंवर में जनकपुर ले गये थे। इनकी कीर्ति कथाओं से पुराण भरे पड़े हैं।]

ब० द०—कन्नौज गंगा और काली नदी के संगम से ५ मील पर काली नदी के बाँये किनारे पर एक पुराना क़स्बा है। वर्तमान शहर पुराने नगर के उत्तरी कोने और टूटे किले में बसा है। अब देखने योग्य चीजों में रङ्ग महल के खण्डहर हैं जिसे जयचन्द से पहले महाराज अजयपाल ने बनाया था कदाचित् यहीं से पृथ्वीराज संयोगता को ले गए थे। दूसरा स्थान सूर्यकुण्ड है जहाँ भादों में मेला लगता है। भगवान बुद्ध का स्तूप शहर से सवा मील दक्षिण-पूर्व में था। अब उसके चिन्ह नहीं हैं। अन्य स्तूपों के भी चिन्ह नहीं हैं। जिस विहार में बुद्ध देव का दाँत रक्खा था उसका स्थान वर्तमान 'लाल मिश्र टोला' महल्ले में है।

कन्नौज से २८ मील दक्षिण-पूर्व, बटराजपुर स्टेशन से २ मील दूर एक सुन्दर पुराने मन्दिर में खेटेश्वर महादेव हैं, और वहाँ से ५०० कदम दक्षिण-पश्चिम महाभारत के प्रसिद्ध अश्वत्थामा का स्थान है। कहा जाता है कि खेटेश्वर महादेव की अश्वत्थामा ही ने स्थापना की थी (गोपीचन्द नाटक छठा अङ्क)। फ़ाल्गुन की शिवरात्रि को यहाँ मेला होता है और सावन के प्रत्येक सोमवार को बहुत लोग दर्शन को आते हैं। मन्दिर के चारों ओर १४ मील के घेरे मे गड़े हुए बहुतेरे पुराने पत्थर निकलते हैं किन्तु लोग डर के मारे उन ईंटों पत्थरों को अपने काम में नहीं लगाते।

घाघ जिनकी कहावतें गाँव गाँव में मशहूर हैं, उनका जन्म १७५३ वि० में कन्नौज में हुआ था। मोड़िया नीति इन्होंने बड़ी जोरदार ग्रामीण भाषा में कही है, जैसेः—

कुच कट पनही बन कट जोय। जो पहिलौटी बिटिया होय॥
पातर कृषी बौरहा भाय। घाघ कहें दुख कहां समाय॥

९० कपिलधारा—(बम्बई प्रांत में नासिक से २४ मील पर एक कस्बा) यहाँ कपिल मुनि की कुटी थी।

अमर कंकट से निकल कर नर्मदा सर्व प्रथम इसी स्थान में होकर बहती हैं।

९१ कपिल वस्तु—(देखिए भुइला डीह)

९२ कम्पिला—(संयुक्त प्रदेश के फर्रुख्खाबाद जिले में एक कस्बा)

इस स्थान पर श्री विमलनाथ जी (तेरहवें तीर्थङ्कर) के गर्भ, जन्म, दीक्षा और कैवल्य ज्ञान कल्याणक हुए हैं।

जैन ग्रंथों में इस स्थान को कंपिल्यपुर भी कहते हैं।

पांचाल देश की यह राजधानी थी। द्रौपदी का स्वयंवर इसी स्थान पर हुआ था। श्री कृष्ण और पाण्डव इस स्वयंवर में आये थे और अर्जुन ने स्वयम्वर को जीत कर द्रौपदी को पाया था।

प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य्य वराह मिहिर की यह जन्मभूमि है।

प्रा० क०-प्राचीन पांचाल देश हिमालय पर्वत से लेकर चम्बल नदी तक फैला हुआ था। महाभारत के थोड़ा पहिले द्रोणाचार्य ने पंचाल के राजा द्रुपद (द्रौपदी के पिता) को परास्त करके उत्तरी पंचाल को अपना राज्य बना लिया और उसकी राजधानी अहिच्छेत्र (रामनगर) हुई। द्रोण ने दक्षिणीय पंचाल राजा द्रुपद को लौटा दिया और कंपिल्य उसकी राजधानी थी। यहीं द्रौपदी का स्वयम्वर हुआ था।

[श्री विमलनाथ स्वामी, तेरहवें तीर्थङ्कर, का जन्म माता श्यामा के उदर से पिता सुकृत वर्मा के घर कम्पिला में हुआ था। आपकी दीक्षा और कैवल्य ज्ञान भी यहीं हुए, और पार्श्वनाथ पर्वत पर निर्वाण हुआ था। आप का चिन्ह शूकर है।]

[महाराज द्रुपद के यहाँ यज्ञ कुण्ड से द्रौपदी का प्रादुर्भाव हुआ था। इनके धृष्टद्युम्न और शिखण्डी दो भाई थे। द्रौपदी का शरीर कृष्णवर्ण के कमल के समान सुकुमार और सुन्दर था, इसलिये इनका एक नाम कृष्णा भी था अपने समय की यह अद्वितीय रूप लावण्य युक्त ललना थीं। विवाह युक्त होने पर राजा द्रुपद ने इनका स्वयम्वर रचा था जिसमें अर्जुन ने इन्हें पाया। कृष्ण भगवान की यह परम भक्त थीं। युधिष्ठिर के साथ राज्याभिषेक में यही सिंहासन पर बैठी थीं।]

व० द०—कम्पिला में पुरानी इमारतों के निशान अब नहीं हैं। बूढ़गंगा के किनारे पर कुछ टीले हैं, इनमें से सबसे पूर्व वाला, राजा द्रुपद के महल का स्थान जहाँ स्वयम्वर हुआ था, बताया जाता है।

कम्पिला में जैन मन्दिर और धर्मशाला है और चैत्र मास में रथोत्सव होता है।

कविराज सुखदेव मिश्र यहाँ एक अच्छे कवि हो गये हैं। अनुमान है कि इनका जन्म काल १६६० वि० के लगभग था और १७६० वि० तक जीवित रहे।

९३ करतारपुर—(पाकिस्तानी पंजाब के स्यालकोट जिले में एक स्थान)

करतारपुर को गुरू नानक ने १५६१ वि० में बसाया था।

गुरू नानक जी ने यहीं शरीर छोड़ा था।

गुरू अङ्गद उनके स्थान पर यहाँ गद्दी पर बैठे थे।

'गुरूद्वारा श्री करतारपुर' के नाम से यहाँ एक मशहूर सिक्ख गुरूद्वारा है।

९४ करन.वेल—(देखिये तेवर)

९५ करवीर—(देखिये कोल्हापुर)

९६ कर्ण प्रयाग—(हिमालय पर गढ़वाल में एक स्थान)

इस स्थान पर कुन्ती के पुत्र कर्ण ने सूर्य का बड़ा यज्ञ किया था।

(स्कंद पुराण-केदारखण्ड प्रथम भाग, ८४वाँ अध्याय) महाराज कर्ण ने कैलाश पर्वत पर नन्द पर्वत के निकट गंगा और पिंडारक के संगम के समीप शिव क्षेत्र में सूर्य का बड़ा भारी यज्ञ किया। सूर्य भगवान ने कर्ण को अभेद्य कवच, अक्षय तूणीर और अजेयत्व दिया और उस क्षेत्र का नाम कर्ण प्रयाग रक्खा।

पिंडारक नदी जिसको कर्ण गंगा भी कहते हैं, यहाँ अलक नन्दा से मिल गई है। कर्ण गंगा के दाहिने किनारे पर कर्ण का मन्दिर और संगम पर कर्ण शिला नामक एक छोटी चट्टान है। कर्ण प्रयाग गढ़वाल प्रांत के प्रसिद्ध पाँच प्रयागों में से एक है।

९७ कर्दम आश्रम—(देखिये सिद्धपुर)

९८ कर्नाल—(पंजाब प्रांत में एक जिले का सदर स्थान)

ऐसा कहा जाता है कि कुन्ती पुत्र कर्ण ने कर्नाल बसाया था।

कर्नाल जिले का उत्तरी बड़ा भाग कुरुक्षेत्र में शामिल है, और दक्षिण में पानीपत उन पाँच गाँवों में से है जिन्हें युधिष्ठिर ने दुर्योधन से माँगा था।

(महाभारत, उद्योगपर्व ३१वाँ अध्याय) राजा युधिष्ठिर ने दुर्योधन से कहा यदि हमको आधा राज्य नहीं दोगे तो अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी,

वारणावत और पाँचवाँ जो तुम्हारी इच्छा हो वही पाँच गाँव दे दो।

(इन्हीं पाँचों में से एक पानीपत है)

९९ कलकत्ता—(बंगाल प्रांत की राजधानी)

यहाँ ५२ पीठों में से एक काली पीठ है जहाँ सती के दाहिने पैर की चार उँगलियाँ गिरी थीं।

यह महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर की जन्म भूमि है।

यहीं ब्रह्मानन्द केशव चन्द्र सेन का जन्म हुआ था।

स्वामी विवेकानन्द का भी यह जन्म स्थान है।

कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने भी यहीं जन्म लिया था।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने कलकत्ता में निवास किया था।

भा० क०—[महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म कलकत्ता में बंगाल के सुप्रसिद्ध ठाकुर परिवार में सन् १८१७ में हुआ था। आप का चित्त वनपर्वतों ही में शांति पाता था और धन के प्रति मन में गहरी घृणा उत्पन्न हो गई थी। केवल ईश्वर अनुसंधान में मन रहता था और गायत्री जप करते हुए आपने प्रभु चरणों में अपने प्राणों को विसर्जित कर दिया था।]

[सन् १८३८ ई० की नवम्बर में महामना केशवचन्द्र सेन का जन्म कलकत्ते में हुआ था। आपकी विरक्ति और धर्म जिज्ञासा प्रतिदिन बढ़ती गई सन् १८५७ ई० में आपने ब्राह्म धर्म की दीक्षा ली और कुछ काल अनन्तर आप ब्राह्म समाज के आचार्य बनाये गये तथा ब्रह्मानन्द की उपाधि मिली। आगे चल कर आपने अपने धर्म का नाम 'नव विधान' रक्खा। ब्रह्म धर्म प्रचार के लिए आपने देश विदेश (विलायत) में खूब भ्रमण किया, और ४६ वर्ष की अवस्था में ही अपनी मानवलीला संवरण कर दी।]

[स्वामी विवेकानन्द जी ने कलकत्ते में एक कायस्थ घराने में सन १८६२ ई० में जन्म लिया था। सन् १८८६ ई० में इन्होंने सन्यास लिया और श्रीराम कृष्ण परमहंस जी के शिष्य हो गये। छः साल इन्होंने एकान्त में रह कर साधना की और १८९३ ई० में शिकागो (अमेरिका) में संसार भर के धर्मों की पार्लियामेंट में सम्मिलित होकर वेदान्त पर वार्ता करके सारे जगत को चकित कर दिया था। आपने १९०२ ई० में नश्वर शरीर का त्याग किया।]

[कवि सम्राट रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने बंगाल के परम प्रसिद्ध ठाकुर कुल में सन् १८६१ ई० में जन्म लिया था। आपने 'शांति निकेतन' स्थापित करके मानव जाति का उपकार किया है। अपनी पुस्तक गीतांजलि पर संसार का

सबसे बड़ा पुरस्कार नोबिल प्राइज़ पाया था। महात्मा गाँधी इन्हें गुरु देव कहते थे। १६४१ ई० में इन्होंने शरीर छोड़ा।]

व० द०—कलकत्ता भारतवर्ष का अव्वल शहर गिना जाता है, और श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, देशबन्धु चितरंजनदास, श्री सुभाषचन्द्र बोस और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद जैसे नेताओं का यह कार्य क्षेत्र रहा है। देशबंधु चितरंजनदास का १८७० ई० में यहीं जन्म भी हुआ था। १६२५ ई० में दार्जिलिंग में उन्होने शरीर छोड़ा। कलकत्ता ही में सदन मिश्र और लल्लू जी लाल ने जो वर्तमान हिन्दी गद्य के जन्म दाता कहे जाते हैं और फोर्ट विलियम कॉलेज में नौकर थे, १८६० वि० में पहिले गद्य लिखे थे।

१०० कलपेश्वर—(देखिये केदारनाथ)

१०१ कलापग्राम—(संयुक्त प्रांत में वद्रिकाश्रम के पास एक ग्राम)

यहाँ मरू तथा देवापि ने तपस्या की थी।

वायुपुराण (अ० १) में लिखा है कि पुरूरवा और उर्वशी ने कुछ दिन यहाँ विताये थे।

[मरू सूर्यवंश के और देवापि चन्द्र वंश के अन्तिम सम्राट् थे जिन्होंने कलाप ग्राम में तपस्या की कि कल्कि अवतार के म्लेच्छों के नष्ट करने के उपरांत वे फिर अयोध्या व हस्तिनापुर में राज्य करें।]

१०२ कलियानी—(देखिए कल्यानपुर)

१०३ कल्पिनाक—(देखिए बड़गाँवाँ)

१०४ कल्याणपुर—(हैदराबाद रियासत में एक नगर)

मिताक्षरा के प्रसिद्ध लेखक विज्ञानेश्वर की यह जन्मभूमि है। इसे कल्याण भी कहते थे, और यह प्राचीन कुंतल देश की राजधानी थी।

यह स्थान बीदर से ३६ मील पश्चिम में है और कल्यानी भी कहलाता है।

१०५ कश्मीर—(भारतवर्ष के उत्तर में सुविख्यात भारी राज्य)

महर्षि कश्यप कश्मीर में निवास करते थे।

यहाँ उत्तर के सम्पूर्ण ऋषि गण, राजा ययाति, कश्यप और अग्नि का संवाद हुआ थ।

कश्मीर का प्राचीन नाम कश्यप मीर था। श्रीनगर से ३ मील हरि पर्वत पर महर्षि कश्यप का आश्रम था और यहां शारिका देवी का मंदिर है जो पीठों में से एक है जहाँ सती का गला गिरा था।

कश्मीर घाटी के पूर्व छोर के पास मार्तण्ड (सूर्य) का प्राचीन स्थान बड़वा तीर्थ है। इससे और आगे अमरनाथ शिव का स्थान रुद्र तीर्थ है।

मत्स्यावतार कश्मीर की घाटी में हुआ था। जिस समय, यह घाटी जल मय थी।

जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीनगर में पधारे थे।

प्रा० क०—(महाभारत, वन पर्व ८२वाँ अध्याय) कश्मीर देश में तक्षक नाग का वन सब पापों का हरने वाला है। यहाँ वितस्ता (झीलम) नदी में स्नान करने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है और मुक्ति मिलती है। वहाँ से बड़वा तीर्थ में जाकर सायंकाल में विधि पूर्वक स्नान करना चाहिये। वहाँ सूर्य को नैवेद्य चढ़ाने से लाख गौदान, सहस्र राजसूय यज्ञ और सहस्र अश्वमेध यज्ञ करने का फल होता है। वहां से रुद्र तीर्थ जाना चाहिये जहाँ महादेव की पूजा करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता हैं।

(वन पर्व १३०वाँ अध्याय) परम पवित्र कश्मीर देश में महर्षि गण निवास करते हैं। उसी स्थान में उत्तर के सम्पूर्ण ऋषि गण, राजा ययाति, कश्यप और अग्नि का संवाद हुआ था।

राजतरंगिणी में लिखा है कि कश्यप मुनि ने एक दैत्य को निकाल कर अपने तपोबल से कश्मीर मंडल का निर्माण किया।

बहुतों का मत है कि कश्मीर, कश्यप मेरु का अपभ्रंश है।

राजतरंगिणी में उल्लेख है कि जब मगध देश के राजा जरासन्ध ने मथुरापुरी पर आक्रमण किया तब उसका मित्र कश्मीर का आदिगोनर्द भी अपनी सेना लेकर उसके साथ गया था जो बल्देव जी के शस्त्र से मारा गया। उसका पुत्र बालगोनर्द महाभारत के समय बालक था इससे पाण्डवों या कौरवों ने उसे अपनी सहायता के लिये नहीं बुलाया।

पहिले कश्मीर के निवासी सूर्य के उपासक थे, पीछे बौद्धों का यह प्रधान स्थान हुआ और बौद्ध मत यहां से सब दिशाओं में फैला था। सम्राट् अशोक मज्झन्तिक (मध्यान्तिक) नामक बौद्ध भिक्षु को सर्व प्रथम बौद्ध धर्म प्रचारार्थ यहाँ भेजा था।

इस नगर से मिली हुई एक पहाड़ी 'शङ्कराचार्य' है जिसे अब तख्ते सुलेमान कहते हैं और जिसका पुराना नाम गोपाद्री है। इसी पर श्री शङ्कराचार्य रहे थे। और इसी पर अशोक के पुत्र कुनाल ने एक सङ्घाराम बनवाया था जो

बाद को मसजिद बना दिया गया था। महादेव ज्येष्ठ रुद्र का मन्दिर इस पहाड़ी की चोटी पर था।

[ब्रह्मा ने छः मानसिक पुत्र उत्पन्न किये थे मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु। उनमें से मरीचि के पुत्र महर्षि कश्यप हुए। दक्ष प्रजापति ने अपनी तेरह कन्याओं का विवाह इनके साथ कर दिया और उन्हीं के इतनी संतान हुई कि सारी सृष्टि भर गई। इन तेरहों में अदिति इनकी सब से प्यारी पत्नी थी। इनसे इन्द्रादि समस्त देवता हुए। अदिति और कश्यप के महा तप के प्रभाव से जीवों को निर्गुण भगवान के सगुण रूप में दर्शन हो सके। यह महानुभाव ही भगवान को निर्गुण से सगुण साकार बनाने वाले हैं।]

च० द०—कश्मीर की राजधानी श्रीनगर, रावलपिंडी से १६२ मील है। इसे राजा प्रवरसेन ने छटी शताब्दी ईसवी में बसाया था और इसका नाम प्रवरपुर था। कश्मीर के पहाड़, वन, झीलों की विचित्र नुमायश है। यह देश इस पृथिवी का स्वर्ग कहा जाता है। कश्मीर में मेवा, फल, केसर आदि घाटी भर में उत्पन्न होते हैं और यह घाटी जलवायु और खूबसूरती के लिये अद्वितीय है।

कश्मीर के पूर्वोत्तर में अमरनाथ शिव का गुहा मन्दिर है। गुहा में ऊपर सेनीचे तक लिङ्गाकार जल की धारा सर्वदा गिरती है और जाड़ों में भी लिंगा कार वर्फ में परिणित हो जाती हैं। इसको शिव लिंग कहते हैं। यहाँ सलोंनो के पर्व के समय यात्रियो का बड़ा मेला होता है और रक्षाबन्धन के दिन यात्री गण शिव दर्शन करते हैं। राज्य की ओर से यात्रियों के साथ रक्षक, औषधि, रसद आदि का प्रबन्ध श्रीनगर से अमरनाथ तक रहता है। एक ही साथ सब यात्री श्रीनगर से प्रस्थान करते हैं। एक एक करके उस विकट रास्ते से कोई नहीं जा सकता।

श्रीनगर से अमरनाथ के लगभग आधे रास्ते पर एक ऊँचे प्लेटो पर मार्तण्ड अर्थात् सूर्य का प्रसिद्ध पुराना स्थान है। श्रीनगर से ३ मील पर हरि पर्वत है। इसी पर्वत पर शारिका देवी का मन्दिर है।

कादम्बरी में वर्णित अच्छोद सरोवर कश्मीर में 'अच्छावत' नाम से अब प्रसिद्ध है। कल्हण की राजतरंगिणी में कश्मीर का विस्तृत वर्णन है। कश्मीर की पुरानी राजधानी अनन्तनाग थी जिसका नाम मुसलमानों ने बदल कर इस्लामाबाद कर दिया था।

कश्मीर देश में गर्मी कभी तेज नहीं होती। इस विषय में राजतरंगिणी के लेखक कल्हण कवि कहते हैं कि सूर्य देव कश्मीर मण्डल को अपने पिता (कश्यप) का रचा हुआ जान करके उसको संताप रहित रखने के लिये यहाँ गर्मी के दिनों में भी तेज किरणों को धारण नहीं करते।

श्रीनगर से ३२ मील पर बरामुला में वराहावतार का होना बतलाया जाता है, पर यह प्रमाणित नहीं है। (देखिये वाराहक्षेत्र।)

१०६ कसिया—(संयुक्त प्रांत के देवरिया जिले में एक क़स्बा)

यहाँ भगवान बुद्ध ने अपना शरीर छोड़ा था।

इसके प्राचीन नाम कुशीनगर, कुशीनारा, कुशीनगरी और कुशी ग्रामिका हैं।

भगवान बुद्ध के अंतिम शिष्य ब्राह्मण-सुभद्र को भी यहीं निर्वाण प्राप्त हुआ था।

यहाँ से अनिरुद्ध, महारानी मायादेवी (भगवान बुद्ध की माता) को भगवान बुद्ध के महा परि निर्वाण प्राप्त करने (वैकुंठवास होने) का समाचार देने को स्वर्ग गये थे।

एक पूर्व जन्म में भगवान बुद्ध जब हिरण थे तब यहाँ एक खरगोश की जान बचाने में अपनी जान देदी थी। एक और पूर्व जन्म में तीतर थे तब एक जंगल की यहाँ आग बुझाई थी।

प्रा० क०— पाली ग्रंथों में लिखा है कि भगवान बुद्ध के शरीर छोड़ने का जब समय आया तो वे भिक्षुओं की सभा में उनको अंतिम उपदेश देकर मल्ल राजाओं की राजधानी की ओर चले आये। राजधानी से आधा मील उत्तर-पश्चिम एक साल वन में भगवान ने शरीर छोड़ा। अनिरुद्ध ने मल्ल राजाओं को यह समाचार भेजा और वे बाजा, फूल मालाओं सहित वहाँ उपस्थित हुए। छः दिन तक शरीर को दर्शनों के लिये रख छोड़ा गया और उस के बाद आठ मल्ल सरदारों ने उसे दाह को उठा कर ले चलना चाहा। उन के उठाये शरीर न उठा। महात्मा अनिरुद्ध ने बताया कि देवताओं की इच्छा है कि जिस मार्ग से राजे चाहते हैं उससे नहीं बल्कि शरीर को नगर के उत्तरीय फाटक से नगर में ले जाया जावे। राजाओं ने वैसा ही किया और शरीर को नगर होकर अपनी श्मशान भूमि को ले गये। चार सरदारों ने चार ओर से चिता में आग लगाई पर वह न जली। महात्मा अनिरुद्ध ने बताया कि

जब तक भगवान बुद्ध के प्रमुख शिष्य महा कश्यप न पहुँच जावेंगे चिता न जलेगी। महा कश्यप भगवान बुद्ध के महा परि निर्वाण का समाचार पाकर इधर की यात्रा कर रहे थे। जब वे यहाँ पहुँच गये और उन्होंने तीन बार चिता की परिक्रमा की और भगवान के चरणों पर से अपना मस्तक उठाया तब आप से आप चिता प्रज्वलित हो गई। महात्मा अनिरुद्ध ने स्वर्ग में मायादेवी को भगवान के शरीर छोड़ने का समाचार जाकर बतलाया।

ह्वान चांग लिखते हैं कि राजधानी से आधा मील उत्तर-पश्चिम भगवान ने शरीर छोड़ा था, उस स्थान पर एक विशाल विहार बनवाया गया था। उस विहार में शरीर छोड़ने के स्थान पर भगवान बुद्ध की एक बहुत बड़ी मूर्ति ठीक उसी तरह बनाकर रक्खी गई थी कि जिस प्रकार उन्होंने शरीर छोड़ा था। उसी मूर्ति के समीप महाराज अशोक ने २०० फीट ऊँचा एक स्तूप और एक स्तंभ बनवाया था जिस पर महा परि निर्वाण का वृतांत लिखा था। एक बहुत बड़ा स्तूप उस स्थान पर भी था जहाँ ब्राह्मण सुभद्र ने निर्वाण प्राप्त किया था। सुभद्र भगवान के अंतिम शिष्य थे। जिस समय भगवान बुद्ध का शरीर छूटने वाला था उस समय सुभद्र द्वार पर पहुँचे। भिक्षुकों ने उनको रोक दिया कि भगवान अब उपदेश नहीं दे सकते। सुभद्र को बड़ा दुख हुआ। भगवान के कान में इस बातचीत की भनक पड़ी और उन्होंने सुभद्र को बुला लिया। सुभद्र ने अपनी शकाओं का निवारण किया और भगवान के अंतिम शिष्य होने का पद लाभ किया।

ह्वान चांग कहते हैं कि एक स्तूप कुशीनारा में उस स्थान पर था जहाँ एक पूर्व जन्म में हिरण रूप में बुद्ध देव ने एक जख्मी खरगोश की जान बचाई थी। खरगोश नाले में से निकल रहा था, और नाले का पानी रोकने के लिये हिरण ने अपना शरीर उसमें लगा दिया। खरगोश बच गया पर हिरण की जान न बची। एक और स्तूप उस स्थान पर था जहाँ एक और जन्म में तीतर रूप से बुद्धदेव ने एक जंगल की आग बुझाई थी।

भगवान बुद्ध के महा परि निर्वाण के पश्चात् महात्मा अनिरुद्ध कुशी नगर में भिक्षुकों व यात्रियों को सांत्वना देने को रुक गये थे।

महारानी मायादेवी भगवान को जन्म देने के सात ही दिन बाद स्वर्ग को सिधारी थीं। वहीं जाकर भगवान ने उनको उपदेश दिया था।

ध० द०—कसिया का प्रसिद्ध स्थान गोरखपुर से ३५ मील पूर्व है। भगवान बुद्ध के शरीर छोड़ने की जगह को माथा कुँवर (कदाचित् मृत्यु कुँवर

का अपभ्रंश) कहते हैं, और यह कसिया से डेढ़ मील पश्चिम है। यहाँ कई विहारों के चिन्ह खोदने पर निकले हैं। एक मन्दिर में भगवान बुद्ध की बीस फीट लम्बी मूर्ति लेटी हुई है। सिर उत्तर की ओर है और मुँह पश्चिम को है। दाहिने हाथ पर चेहरा है और बायाँ हाथ लांबा २ शरीर पर रक्खा है। इसी तरह महापरि निर्वाण के समय भगवान बुद्ध का शरीर था, और यह मृत्यु के स्थान की वही मूर्ति है जिसका जिक्र ह्वान चांग ने किया है। मन्दिर की दीवार ६ फीट ६ इंच मोटी है। इसके पीछे एक स्तूप है जिसमें से कुछ चीजें निकली थीं। अनुमान है कि यह भगवान बुद्ध के चिता की होगी। समीप के धर्मशाला में, जो माया कुँवर में भिक्षु चन्द्रमणि ने बनवाई है, इस स्तूप की निकली हुई चीजों का थोड़ा भाग यात्रियों को दिखाने को छोड़ दिया गया है बाकी लन्दन चला गया।

भगवान बुद्ध के शरीर को जहाँ दाह किया गया था वहाँ पर एक टूटा हुआ स्तूप है जिसे अब 'रामा भार' स्तूप कहते हैं। इससे दक्षिण में अनिरुधवा गाँव है। यह गाँव पुरानी राजधानी के स्थान पर है और इसमें पुराने चिन्ह निकले है। ज्ञात होता है कि महात्मा अनिरुद्ध के ठहरने के कारण इस जगह का नाम 'अनिरुधवा' पड़ गया था और अब तक वह इसी नाम से पुकारी जाती है।

१०७ कसूर—(देखिये लाहौर)

१०८ कद्दसाचन—(देखिये गिरनार पर्वत)

१०९ काँगड़ा—(पंजाब प्रांत में एक जिले का सदर स्थान)

यह महाशिव की शक्ति महा माया का स्थान है।

यह स्थान ५२ पीठों में से एक है। सती की एक छाती यहाँ गिरी थी।

प्रा० फ०—कांगड़ा के सुप्रसिद्ध गढ़, नगरकोट, को सुशर्माचन्द्र ने महाभारत के थोड़े दिन बाद बनाया था। इसके समीप 'भवन' स्थान में महामाया देवी का विख्यात मन्दिर है। यह देवी महा शिव की स्त्री अर्थात् शक्ति है।

अब्दुल फजल (अकबर बादशाह के प्रसिद्ध वजीर) ने लिखा है कि इस स्थान की विचित्रता यह है कि हिन्दू लोग यहाँ अपनी जीभ को काट कर देवी को चढ़ा देते हैं और वह दो तीन दिन में फिर पूरी हो जाती है, और कभी २ तुरन्त ही निकल आती है।

१०११ ई० में महमूद गजनवी यहाँ से मूर्ति को उठा ले गया और मंदिर से बेशुमार सोना चाँदी ले गया पर ३२ साल बाद हिंदुओं ने मुसलमानों को मार भगाया और देवी की नई मूर्ति स्थापित की।

व० द०—यह नई मूर्ति मातादेवी तथा वज्रेश्वरी देवी के नाम से प्रसिद्ध है और नगर कोट अर्थात् काँगड़ा के उत्तर पहाड़ी में विद्यमान है। यह ५२ पीठों में से है। प्रति नवरात्रि को यहाँ यात्रियों का बड़ा मेला लगता है।

११० काकन्दी—(देखिये खुखुन्धों)

१११ काञ्ची—(मद्रास प्रांत के चिंगिलपट जिले में एक क़स्बा)

यह प्रसिद्ध सप्तपुरियों में से एक पुरी है।

पतञ्जलि ने अपने महा भाष्य में इसको लिखा है और महाभारत में इसका नाम 'कांजीवरम्' मिलता है।

भगवान बुद्ध ने कांची में बहुत दिनों तक निवास किया था।

श्री रामानुजाचार्य ने यहाँ वेदाध्ययन किया था।

जगद्गुरू रेणुकाचार्य्य यहाँ निवास करते थे।

बलदेव जी भ्रमण करते हुए यहाँ आये थे।

जगद्गुरू श्री शङ्कराचार्य्य की यहाँ समाधि है।

मा० क०—(महाभारत— कर्ण पर्व, १२वाँ अध्याय) कांची के क्षत्रिय गण कुरुक्षेत्र के संग्राम में पाण्डवों की ओर होकर कौरवों की सेना से युद्ध करने लगे।

(वामन पुराण—१२वाँ अध्याय) नगरों में श्रेष्ठ कांची नगर, और पुरियों में श्रेष्ठ द्वारिकापुरी है।

(देवी भागवत्—सातवाँ स्कंध, ३८वाँ अध्याय) कांचीपुरी में भीमा-देवी और विमला देवी का स्थान है।

(श्री मद्भागवत, दशम स्कध, ७वाँ अध्याय) बल्देव जी श्रीशैल और बेंकटेश पर्वत का दर्शन करके कांची पुरी में गये।

(गरुण पुराण—पूर्वार्द्ध ८१वाँ अध्याय) काची पुरी एक उत्तम स्थान है।

(प्रेत कल्प, २७वाँ अध्याय) अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका और द्वारिका ये सात पुरियाँ मोक्ष देने वाली हैं।

(पद्म पुराण— स्वर्ग खण्ड, ५७वाँ अध्याय) विराट पुरुष के सात धातुओं से सातों पुरियाँ हैं।

(सृष्टि खण्ड, १४वाँ अध्याय) महादेव जी सब प्रदेशों में पर्यटन करते हुए कांची पुरी में गये।

ह्यानचाँग ने लिखा है कि कांची के लोग सचाई और ईमानदारी बहुत पसंद करते हैं, वे विद्या की बहुत प्रतिष्ठा करते हैं। इनकी भाषा और अक्षर मध्य देश वालों से कुछ भिन्न हैं।

मौर्य सम्राट अशोक ने यहाँ अनेक स्मारक बनवाये थे।

महाकवि दण्डि, जो किरातार्जुनीय के कर्त्ता भारवि के पौत्र थे, कांचीपुरी के पल्लव शासक नरसिंह वर्मन् (६६०-६८५ ई०) के यहाँ प्रतिष्ठित राज कवि थे।

व० द०—कांची नगरी मद्रास से ४३ मील दक्षिण-पश्चिम है। रेलवे स्टेशन से डेढ़ मील दूर बड़ा कान्चीवरम् अर्थात् शिव कांची, और शिव कांची से लगभग दो मील दक्षिण-पूर्व छोटा कांचीवरम् अर्थात् विष्णु कांची है। शिव कांची में शिव लोग और विष्णु कांची में रामानुज सम्प्रदाय के वैष्णव रहते हैं।

शिवकांची— शिवकांची में एकामेश्वर शिव का बड़ा मन्दिर है। द्राविड़ के पाँच लिंगों में से यह 'पृथिवी लिंग' है। (श्रीरंगम के पास जंमुकेश्वर 'जल लिंग', दक्षिण अर्काट जिले के तिरुवन्नाथलई के पास की अरुणाचल पहाड़ी पर 'अग्नि लिंग', काल हस्ती में कालहस्तीश्वर 'वायु लिंग', और चिदंबरम् में नटेश 'अकाश लिंग' हैं।) शिवकांची में कामाक्षी देवी के मन्दिर के हाते में श्री शङ्कराचार्य्य की समाधि है और उस पर उनकी मूर्ति रखी है।

विष्णुकांची— विष्णुकांची में वरदराज विष्णु का विशाल मन्दिर पत्थर का बना हुआ है। विष्णु का मन्दिर श्री शङ्कराचार्य्य ने बनवाया था। यहाँ रामानुजीय सम्प्रदाय के प्रतिवादी भयङ्कर की गद्दी है और पुजारी पन्डे सब लोग आचारी हैं। वरदराज के मन्दिर का घेरा लगभग ११०० फीट लम्बा और ७०० फीट चौड़ा है।

११२ काटली— (मलाबार में एक नगर)

यहाँ जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य्य जी का जन्म हुआ था।

इस स्थान का पुराना नाम कलादि है।

[शङ्कर दिग्विजय आदि संस्कृत पुस्तकों में वर्णन है कि केरल (मलाबार व वर्तमान कोचीन राज्य) में वृष पर्वत के ऊपर पूर्णा नदी के

किनारे ज्योतिलिङ्ग रूप से शिव जी प्रगट हुए और वहाँ के राजशेखर नामक राजा ने उस लिंग की प्रतिष्ठा करवाई। उस लिंग के समीप काटली नामक नगर में विद्याधिराज नामक पण्डित के घर पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम शिव गुरु पड़ा। जब २५ वर्ष तक शिवगुरु को कोई सन्तान नहीं हुई तब वे वृष पर्वत पर शिवजी की आराधना करने लगे। शिवजी के प्रगट होने पर शिवगुरु ने उनसे पुत्र माँगा और शिवजी वर देकर चले गये। श्रीशङ्कर जी की आराधना से शिवगुरु को पुत्र हुआ इसलिए उसका नाम शङ्कर रखा गया। यहीं जगद् प्रसिद्ध जगद्गुरु शङ्कराचार्य्य हुये।

श्री सुभद्रा देवी के गर्भ से केरल प्रदेश के पूर्णा नदी के तटवर्ती कलादि नामक गाँव में शङ्कराचार्य जी ने जन्म ग्रहण किया था। इनके जन्म काल का ठीक पता नहीं है पर ईसा से पूर्व ही सिद्ध किया जाता है।

पाँचवें वर्ष में यज्ञोपवीत करके शङ्करजी को गुरू के घर पढ़ने भेजा गया, और केवल सात वर्ष की अवस्था में ही यह वेद वेदान्त और वेदाङ्गों का पूर्ण अध्ययन करके घर वापस आगये। इनकी असाधारण-प्रतिभा देख कर इनके गुरुजन दङ्ग रह गये। माता की आज्ञा प्राप्त करके शङ्कर जी आठ वर्ष की अवस्था में घर से निकल पड़े। घर से चल कर नर्मदा तट पर आये और स्वामी गोविन्द भगवत्पाद से दीक्षा ली। गुरु ने इनका नाम भगवत् पूज्य-पादाचार्य्य रखा। शीघ्र ही यह योग सिद्ध महात्मा हो गये और गुरुने प्रसन्न होकर इन्हें काशी जाकर वेदान्त सूत्र का भाष्य लिखने की आज्ञा दी। तद्-नुसार यह काशी आगये। एक दिन चाण्डाल रूप में भगवान विश्वनाथ ने इन्हें काशी में दर्शन दिये, और इनके उन्हें पहिचान कर प्रणाम करने पर ब्रह्म सूत्र पर भाष्य लिखने और धर्म के प्रचार करने का भगवान विश्वनाथ ने आदेश दिया।

शङ्कराचार्य्य ने प्रयाग आकर कुमारिल भट्ट से भेंट की औरउनकी सलाह से माहिष्मती में मण्डन मिश्र के पास जाकर शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थ में मण्डन मिश्र की पत्नी मध्यस्थ थी। अन्त में मण्डन मिश्र ने शङ्कराचार्य्य का शिष्यत्व ग्रहण किया और उनका नाम सुरेश्वराचार्य्य पड़ा।

श्री शङ्कराचार्य्य ने भारत वर्ष के चारों कोनों पर चार विशाल मठ स्था-पित किये जो अब भी विद्यमान हैं और उनके मठाधीश 'शङ्कराचार्य्य' कहलाते हैं। इन मठों में अतुल धन है और सारा भारतवर्ष इनकी प्रतिष्ठा मानता है।

(कूर्म पुराण— ब्राह्मी संहिता उत्तरार्द्ध, ३५वाँ अध्याय) जगत में कालिंजर नामक एक महातीर्थ है, वहाँ संहारकर्ता भगवान. महेश्वर ने काल को जीर्ण करके फिर जिला दिया था।

(शिव पुराण—८वाँ खण्ड दूसरा अध्याय) चित्रकूट के दक्षिण तीनों लोकों में प्रसिद्ध कालिंजर पर्वत है जहाँ बहुतों ने तप करके सिद्धि पाई है।

पुराणों में लिखा है कि ७ ऋषि थे जो अपने गुरू के शाप से जन्मांतर में कालिंजर में हिरण हुये।

व० द०—भारतवर्ष के प्रसिद्ध पुराने किलों में से कालिंजर एक है। कोट के भीतर पत्थर काट कर बनी हुई कोठरी में पत्थर की सीता सेज है। कोट में मृगधारा एक प्रसिद्ध स्थान है जहाँ दो चट्टानी कोठरी, एक पानी का कुण्ड और चट्टानों में ७ हिरण बने हैं। किले के अन्दर अनेक देव मन्दिर, गुफायें, कुण्ड और मूर्तियाँ हैं। यहाँ नीलकंठ महादेव का मन्दिर प्रसिद्ध है।

अकबर के समय में यह स्थान राजा बीरबल की जागीर में था। सन् १८६६ ई० में अँग्रेजों ने इस किले को तोड़ कर बेकाम कर दिया।

१२३ कालीदह— (देखिये मथुरा)

१२४ काल्पी— (संयुक्त प्रांत में जालौन जिले में एक स्थान)

काल्पी में श्री वेदव्यास जी का जन्म हुआ था।

प्राचीन प्रभावती नगरी इसी स्थान पर थी।

प्रा० क०— 'तुलसी शब्दार्थ प्रकाश' नामक सन् १८७४ ई० में एक भाषा ग्रन्थ में वर्णन है कि काल्पी में महर्षि व्यास जी ने अवतार लिया था।

सन् ३३० और ४०० ई० के बीच वासुदेव ने यह नगर बसाया था।

प्रति द्वापर में अवतीर्ण होकर भगवान वेदों का विभाग करते हैं। अकेले इस वैवस्वत मन्वन्तर में ही अब तक अट्ठाईस व्यास हो चुके हैं। गत द्वापर के अन्त में वे श्रीकृष्ण द्वैपायन जी के नाम से श्री पराशर मनु के पुत्र रूप में अवतीर्ण हुये थे।

पराशर मनु के यमुना नदी पार करने में सत्यवती से सहवास से व्यासजी का जन्म हुआ था। यह वे ही केवट-कन्या है जिनका पीछे महाराज शान्तनु से विवाह हुआ था, और जिनकी सन्तान को राज्य देने की निमित्त महात्मा भीष्म पितामह ने आजन्म विवाह न करने और राज न लेने की प्रतिज्ञा की थी।

लोगों को आलसी, अल्पायु, मन्दमति और पापरत देख कर महर्षि व्यास ने वेदों का विभाजन किया। अठारह पुराणों की रचना करके उपाख्यानों द्वारा वेदों को समझाने की चेष्टा की। उनका मनुष्य जाति पर अनन्त उपकार है। यह जगत उनका आभारी है।]

ब० द०—यमुना नदी के बगल में वर्तमान काल्पी के पश्चिमी सीमा पर बहुत खँडहर हैं। ये खँडहर प्राचीन प्रभावती नगरी के हैं।

भारतवर्ष में रेल का प्रचार होने से पहिले काल्पी व्यापार का एक केन्द्र था। रेल आने पर यह बस्ती उजड़ कर कानपुर बसा है। पत्थरों के बड़े बड़े आलीशान मकान काल्पी में खाली पड़े हैं। अब भी इस नगर में म्यूनिसिपैल्टी है। मरहठों के समय का पुराना किला यमुना के तट पर था, उसके घाट और दूसरे चिन्ह स्पष्ट मौजूद हैं। इसी किले में देशभक्त नाना साहब व वीरांगना रानी लक्ष्मी बाई सन् १८५७ में आकर रही थी इससे अँग्रेजों ने इसे नष्ट कर डाला। इसी स्थान पर अब डाक बंगला है जो स्थिति के विचार से संयुक्त प्रांत के सब से अच्छे बंगलों में से कहा जा सकता है। बंगले से आधे मील की दूरी पर यमुना के तट पर एक टीला है जिसको लोग व्यास-टीला कहते हैं, और उसके आस पास की भूमि एक मील की दूरी तक व्यास-क्षेत्र कहलाती है। बतलाया जाता है कि महर्षि व्यास की जन्म भूमि का यही स्थान है। यहाँ से १४ मील की दूरी पर बेतवा नदी के किनारे एक स्थान परासन है जिसको पराशर मनु की तपस्या भूमि कहा जाता है। मरहठों ने पराशर मनु का मन्दिर यहां बनवा दिया था और पिण्डदान करने को लोग दूर दूर से यहाँ आते हैं। पराशर मनु महर्षि व्यास के पिता थे।

जिन दिनों लेखक (रामगोपाल मिश्र) काल्पी के सब डिवीज़नल मजिस्ट्रेट थे उन दिनों उन्होंने माधवराव सिंधिया व्यास हाईस्कूल यहाँ खोला था जो बहुत अच्छी दशा में चल रहा है और इन्टर कालेज हो गया है। इसके खोलने के लिये लेखक को एक धर्मार्थ समिति भी स्थापित करनी पड़ी थी जो अभी कुछ वर्ष पहिले तक उन्हीं के सभापतित्व में सात आठ हजार रुपया प्रतिवर्ष दान में देती रही थी।

काल्पी में रावण के एक भक्त ने लङ्का बनाई है जिस पर उन्होंने लगभग सवा लाख रुपया खर्च किया था। इसकी मीनार बहुत दूर से दिखाई देती है, संसार में कहीं और रावण की स्मृति में कोई चीज नहीं बनाई गई है। यह काल्पी ही की विशेषता है।

१२५ काशी—(देखिये बनारस)

१२६ काशीपुर— (संयुक्त प्रांत के नैनीताल जिले में एक बड़ा कस्बा)
काशीपुर से एक मील पूर्व उज्जैन गाँव है। इसके समीप भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया था और उनके नख (नाखून) व केश (बाल) स्तूपों में रक्खे थे।

प्रा० क०—ह्वानचांग की यात्रा के समय वर्तमान काशीपुर के समीप एकराज्य की राजधानी थी और उस नगर का घेरा ढाई मील का था। शहर में० ३० देव मन्दिर और दो संघाराम थे। बड़ा संघाराम नगर के बाहर था। उसके मध्य में महाराज अशोक का बनवाया हुआ २०० फीट ऊँचा एक स्तूप। जहाँ भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया था। दो बारह बारह फीट ऊँचेश स्तूप थे जिनमें भगवान बुद्ध के नख और केश रक्खे थे।

व० द०—काशीपुर के बाहर एक बड़ा ताल 'द्रोण सागर' है जिसके किनारे पर कई देव मन्दिर हैं। उनमें ज्वालादेवी का मन्दिर, जिन्हें उज्जैनी देवी भी कहते हैं, बहुत प्रसिद्ध है, और चैत्र कृष्ण पक्ष की अष्टमी कोयहाँ बड़ा मेला लगता है। ताल की लम्बाई व चौड़ाई दो दो सौ गज है। इसकी बड़ी प्रतिष्ठा है। गंगोत्री के यात्री पहले इसके दर्शनों को आते हैं। ताल के किनारे सती स्त्रियों के बहुत स्मारक हैं। पास ही पुराने गढ़ के खेड़े और पुराने नगर के चिन्ह हैं।

जागेश्वर महादेव के मन्दिर के दक्षिण-पश्चिम एक स्तूप के चिन्ह हैं। नीचे का घेरा २०० गज से अधिक है और ऊपर अब भी ६० गज से ज्यादा मुटाई है। यह स्तूप वह है जो महाराज अशोक ने भगवान बुद्ध के सदुपदेश के स्थान पर बनवाया था।

काशीपुर से लगभग ६५ मील पर रामनगर है जो गुरु द्रोणाचार्य की राजधानी 'अहिच्छेत्र' था। द्रोण सागर कदाचित गुरु द्रोणाचार्य का बनवाया हुआ है और इसी से उसकी प्रतिष्ठा अब तक चली आ रही है।

१२७ किरीट कोण— (बङ्गाल के मुर्शिदाबाद जिले में एक नगर)
सती का मुकुट इस स्थान पर गिरा था।

१२८ किष्किंधा— (देखिये आनागन्दी)

१२९ कीर्तिपुर— (देखिये देहरापाताल पुरी)

१३० कुड़की ग्राम—(जोधपुर राज्य में एक स्थान)
यह भक्त शिरोमणि मीराबाई की जन्मभूमि है।

[सम्वत १५५५ वि० के लगभग मीरा का आविर्भाव कुड़की ग्राम में हुआ था। मेड़ते के राठौर रत्नसिंहकी पुत्री और जोधपुर बसाने वाले प्रसिद्ध महाराज जोधा की यह प्रपौत्री थीं। इनका विवाह चित्तौड़ के सुविख्यात राणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र युवराज भोजराज के साथ १५७३ वि० में हुआ था। विवाह के कुछ वर्ष बाद ही महाराणा की मौजूदगी में युवराज भोजराज का देहान्त हो गया।

मीरा बाई के पितृकुल में राव दूदा, वीरम देव आदि परम भक्त एवम् वैष्णव थे। श्री कृष्णचन्द्र की लग्न मीरा को जन्म ही से थी। कुटुम्बी इसमें बाधक थे पर अन्त में लोकलाज के आडम्बर को हटा कर मीरा मन्दिर में जाकर भक्तों और सन्तों के बीच श्री भगवान् कृष्णचन्द्र की मूर्ति के सामने आनन्द मग्न होकर नाचने और गाने लगीं।

महाराणा संग्राम सिंह जी (सांगा) के बाद मेवाड़ की गद्दी पर उनके तीसरे पुत्र रत्न सिंह जी बैठे। उनके निस्सन्तान देव लोक होने पर इनके छोटे भाई विक्रमादित्य १५९६ वि० सं० में मेवाड़ के राणा हुए। स्वजन मीरा बाई को नाना प्रकार के कष्ट देने लगे। विष भेजा गया भगवान् का चरणामृत कहके। मीरा चरणामृत मान उसे पी गईं। वह भी अमृत हो गया। वि० स० १५९९ में घर वालों के व्यवहार से खिन्न होकर मीरा घर से चली गईं। अपने मायके आईं, पीछे वृन्दावन पहुँची और मन्दिरों में घूम-घूम कर अपने हृदयधन को भजन सुनाया करती थीं। अन्त में वृन्दावन की प्रेमलीला में पकी मीरा द्वारिका पहुँची और श्री रणछोड़ जी के मन्दिर में पैरों में घूँघुरू बाँध कर और हाथ में करताल लेकर भजन गाया करतीं। यहीं नव: वधू के रूप में अपने जीवन के अन्तिम दिन सं० १६०३ वि० में मीरा रण-छोड़ जी की मूर्ति में समा गई।

इनके भजनों में अगाध रस है। उदाहरणार्थ एक भजन लिखा जाता है :—

बसो मेरे नैनन में नन्द लाल।
मोहनि मूरति सांवरि सूरति नैना बने रसाल॥
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल अरुण तिलक दिए भाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंती माल॥
क्षुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई भक्त बछल गोपाल॥]

१३१ कुण्डलपुर—(बिहार प्रान्त के पटना जिला में एक स्थान)

यहाँ श्री महावीर स्वामी (चौबीसवें तीर्थङ्कर) के गर्भ और जन्म कल्याणक हुये थे।

इस स्थान का पुराना नाम क्षत्रियकुण्ड है।

[श्री महावीर स्वामी जैनियों के अन्तिम तीर्थङ्कर हैं। आप के पिता राजा सिद्धार्थ इक्ष्वाकु वंश के क्षत्रिय राजा और इनकी माता त्रिशला देवी वैशाली के प्रतिष्ठित सम्राट की पुत्री थीं। पिता ने आप का नाम वर्द्धमान रखा था। तीस वर्ष की अवस्था में आप ने राजवैभव को त्याग कर दीक्षा ले ली, और साढ़े बारह वर्ष तक महान प्रचण्ड तपस्या करके वीतराग और सर्वज्ञ हो गये। आपके दीक्षा, कैवल्यज्ञान, और निर्वाण का स्थान पावापुरी है जो बिहार नगर से सात मील पर है। महावीर स्वामी के निर्वाण से जैनी सम्वत का आरम्भ हुआ है। २००० विक्रमी सम्वत के बराबर २४७० जैनी सम्वत होती है। इस प्रकार आप का निर्वाण विक्रमी सम्वत से ४७० वर्ष पूर्व और जन्म ५४२ वर्ष पूर्व हुआ था।]

श्वेताम्बर व दिगम्बर, दोनों सम्प्रदायों के, महावीर जी के मन्दिर व धर्मशालायें कुण्डलपुर में बने हैं। यह स्थान प्रसिद्ध प्राचीन नालन्दा विद्याक्षेत्र (वर्तमान बड़गांवां) से एक मील की दूरी पर है। कुण्डल पुर को कुण्डापुर भी कहते हैं। यहाँ से तीन मील पर पावापुरी है जहाँ श्री महावीर स्वामी का निर्वाण हुआ था।

१३२ कुण्डापुर—(देखिए कुण्डलपुर)

१३३ कुण्डिनपुर—(बरार प्रान्त के अमरावती जिला में एक ग्राम)

इसका प्राचीन नाम कौंडिण्यपुर है।

रुक्मिणी के पिता विदर्भ के राजा भीष्म की यह राजधानी थी।

रुक्मिणी का यहाँ जन्म हुआ था।

यहीं से श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को हरा था।

[रुक्मिणी कौंडिण्य पुर के राजा भीष्म की पुत्री थीं। उनका विवाह चेदिराज शिशुपाल से होने वाला था पर उन्होंने श्रीकृष्ण के पास संदेश भेजा कि वे शिशुपाल से विवाह न करेंगी और यदि श्रीकृष्ण उन्हें न ले गये तो वे आत्महत्या कर लेंगी। इस पर श्रीकृष्ण चन्द्र उन्हें हर ले गये थे और वह उनकी पटरानी बनीं। इनके पुत्र प्रद्युम्न, और प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध थे। प्रद्युम्न का विवाह रुक्मिणी के भाई रुक्मी की पुत्री सुन्दरी रोचना

था। उन्हीं से अनिरुद्ध उत्पन्न हुये थे। फिर अनिरुद्ध का विवाह रुक्मी के पुत्र की पुत्री से हुआ। वाणासुर की पुत्री उषा अनिरुद्ध के मोह में पड़ गई थी और वे उसे ले आये थे। अनिरुद्ध केपुत्र वज्र हुये जिन्हें पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दिया था।]

अर्कियालाजिकल सर्वे आफ इन्डिया रिपोर्ट (Archaeological Survey of India report) के अनुसार राजा भीष्म की राधजानी अहार, ज़िला बलन्द शहर (संयुक्त प्रान्त) में है परन्तु महाभारत में कहीं वर्णन नहीं है कि *कुण्डिन पुर गङ्गा जी के तट पर था। अहार गङ्गा तट पर* है। कुण्डिनपुर गङ्गा तट पर होता तो महाभारत में जहाँ उसके बहुत मन्दिरों और राजभवनों का वर्णन है इसका भी वर्णन होता। दूसरे, चेदि राज्य कुण्डिनपुर से मिला हुआ ही एक विशाल राज्य था इसी से सम्भवतः चेदि राज रुक्मिणी को व्याहना चाहते थे। अहार को कुण्डिनपुर माना जाये तो चेदि राज्य वहाँ से बहुत दूर पड़ता है।

कुण्डिनपुर अब वर्धा नदी के किनारे अमरावती से ४० मील पूर्व कौंड़वीर नामक गाँव है। कहा जाता है कि पहले प्राचीन कुण्डिनपुर वर्धा नदी (विदर्भ नदी) से अमरावती तक फैला हुआ था और अमरावती में अब भी भवानी का वह मन्दिर दिखाया जाता है जहाँ से श्रीकृष्ण रुक्मिणी को ले गये थे।

चाँदा जिला के देवल वाड़ा को भी कुण्डिनपुर कहा जाता है। कुण्डिन पुर का दूसरा नाम विदर्भ नगरी कहा गया है। विदर्भ देश के किसी भी राजधानी को विदर्भ नगरी कहा जा सकता था। दमयन्ती के पिता राजा भीम भी अपने काल में विदर्भ देश के राजा थे, और विदर्भ नगरी उनकी राजधानी थी। राजा भीम की राजधानी को बीदर के स्थान पर माना जाता है (देखिए बीदर)। ज्ञात यह होता है कि विदर्भ देश बरार से लेकर दक्षिण तक फैला हुआ था। उसमें भीष्म की राजधानी कौंड़वीर के स्थान पर और भीम की बीदर के स्थान पर थी। दोनों विदर्भ नगरी कहलाती थी।

कुण्डिनपुर से रुक्मिणी को हर ले जाकर श्रीकृष्ण ने काठियावाड़ के माधवपुर में उनसे विवाह किया था और तब द्वारिका ले गये थे।

१३४ कुनवार—(ग्वालियर राज्य में एक कस्बा)

इसके प्राचीन नाम कुन्तलपुरी, कान्तीपुरी, कान्तीपुर और कुन्तल पुरी हैं।

पाराडवों की माता कुन्ती के पिता कुन्तिभोज का यह नगर था और उन्होंने ही इसे बसाया था।

प्रा० क०—नाग राजाओं की कान्तीपुरी का जो पुराणों में उल्लेख है, वह यही है। बिल्कुल आरम्भ में इस नगर का नाम कमन्तलपुरी था। पीछे कुन्ती के प्रसिद्ध होने पर उनके नाम से इसको लोग कुन्तलपुरी भी कहने लगे।

ग्वालियर प्रदेश की सबसे पुरानी राजधानी यहीं थी।

[शास्त्रों में पाँच देवियाँ नित्य कन्यायें मानी गई हैं। उनमें से एक कुन्ती है। यह वसुदेव जी की बहिन और श्रीकृष्ण चन्द्र की बुआ थीं। महाराजा कुन्तिभोज से इनके पिता की मित्रता थी, और कुन्तिभोज के सन्तान नहीं थी अतः यह कुन्तिभोज के यहाँ गोद आई और कुन्ती कहलाई।

महर्षि दुर्वासा से इन्होंने एक मंत्र पाया था जिससे वे जिस देवता को चाहें बुला सकती थीं। इन्होंने सूर्य को बुलाया और उनसे इनके कर्ण उत्पन्न हुये। अपनी लाज बचाने को इन्होंने कर्ण को नदी में एक टोकरी में बहा दिया। दुर्योधन के सारथी ने एक बालक को नदी में बहता देख उसे निकाल लिया और पाल लिया। यही बालक महाभारत के महाप्रतापी वीर कर्ण हुये। ऐसा दानवीर पृथिवी पर कदाचित दूसरा नहीं हुआ। बाद को पाण्डु से कुन्ती का विवाह हुआ और युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन पैदा हुये।]

व० द०—कुतवार ग्वालियर से २५ मील उत्तर में है। इसकी पुरानी तबाहियों पर इन दिनों एक मिट्टी की गढ़ी और १४०० पत्थर के मकान बने हैं। बाज बाज मकान बहुत अच्छे हैं। जब से राजधानी ग्वालियर को चली आई तब से कुतवार की दशा बहुत तेजी से बिगड़ने लगी।

१३५ कुदरमाल—(मध्य प्रदेश के बिलासपुर जिले में एक बस्ती)

यहाँ श्री कबीरदास जी के सुप्रसिद्ध शिष्य धर्मदास जी के पुत्र चचन चूरामणि की समाधि है।

माघ की पूर्णिमा को यहाँ प्रसिद्ध मेला होता है जो लगभग तीन सप्ताह तक रहता है। चतुर्दशी और पूर्णिमा को बड़ी धूम धाम से समाधि की चौका आरती होती है।

१३६ कुदयानाला—(देखिये महायान टीह)

पाद गिरि था, जो गुरु महाकश्यप के निवास स्थान होने से गुरुपाद गिरि भी कहलाता था।

[भगवान् बुद्ध के बाद बौद्धों के सबसे बड़े महात्मा श्री महाकश्यप हुये हैं। पाली में इन्हें महाकस्सप कहते हैं। इनके पिता ने एक आदर्श दुलहिन के रूप में सोने की मूर्ति देकर ब्राह्मणों को इनके लिये दुलहिन खोजने मथुरा भेजा था, क्योंकि मथुरा उन दिनों नारी रत्नों के लिये प्रसिद्ध था। वे लोग खोज कर परम सुन्दरी भद्द कपिलानी को लाये थे। पर महात्मा महाकश्यप अपने और उनके बीच मे फूलों की माला रख कर सोये और कहा कि जिसके मन में विकार आजायगा उसी की ओर के फूल कुम्हला जायेंगे। प्रति दिन फूल की माला ताजी रहती थी। कुछ दिन में दोनों के मन में पूर्ण वैराग्य उत्पन्न हुआ। दोनों ही घर से निकल पड़े, पर अलग अलग चले। भगवान् बुद्ध उन दिनों राजगृह में थे। वे दूर चल कर राजगृह और नालन्दा के बीच महाकश्यप के मार्ग में बैठ गये। उनको देखते ही महाकश्यप की भक्ति इन पर दौड़ गई, भगवान् ने इन्हें उपदेश दिया और अपना वस्त्र इन पर डाल कर वहाँ से चले गये। राजगृह में सबसे पहिली बौद्ध महासभा जो भगवान बुद्ध के बाद हुई थी उसके यही महागुरु थे।

ब० द०—कुरकिहार में कई पुराने खेड़े हैं जिनमें मूर्तियाँ बहुतायत से निकलती हैं। सबसे बड़ा खेड़ा २०० गज लम्बा और २०० गज चौड़ा है। मूर्तियों में से एक भगवान बुद्ध की मूर्ति बोधि प्राप्त करने की दशा की है। उसी में एक ओर उनके जन्म और दूसरी ओर निर्वाण के समय का दृश्य है। कुरकिहार को गुरपा भी कहते हैं और यह गया से लगभग १०० मील पर है।

१४४ कुरुक्षेत्र— (पंजाब के अम्बाला और करनाल जिले में सरस्वती और दृषद्वती (गागरा) के मध्य का प्रदेश)

कुरुक्षेत्र आरम्भ से आर्य धर्म व सभ्यता का गृह है।

यह पवित्र भूमि ब्रह्मावर्त्त, धर्मक्षेत्र, स्यमन्त पञ्चक, रामह्रद और सन्नि-हित करके भी प्रसिद्ध है।

यह स्थान ब्रह्मा की उत्तर वेदी है।

परशुराम ने क्षत्रिय कुल का नाश कर उनके रुधिर से पांच तालाब भर कर यहाँ अपने पितरों का तर्पण किया था।

राजा कुरु ने यहाँ तप किया था और इस भूमि को जोता था। शात

(८५वाँ अध्याय) यात्रियों को उचित है कि कावेरी नदी में स्नान करने के पश्चात् समुद्र के किनारे पर जाकर कन्यातीर्थ का स्पर्श करें जिससे उनका सम्पूर्ण पाप विनाश हो जायेगा।

कुमारी गाँव में कुमारी देवी का बड़ा मन्दिर बना हुआ है। देवी के भोग राग में बड़ा खर्च होता है। उनके बहुमूल्य भूषण हैं। इन्हीं कुमारी देवी के नाम से उस अन्तरीप का नाम कुमारी अन्तरीप पड़ा है।

१४२ कुम्भकोणम्—(मद्रास प्रांत के तंजोर जिले में एक नगर)
यह नगर पौराणिक पवित्र स्थान है।

(स्कंद पुराण—सेतुबन्द खण्ड, ५वाँ अध्याय) कुम्भकोण आदि क्षेत्रों में निवास करने से बड़ा फल लाभ होता है।

कुम्भकोणम् एक बड़ा शहर है और यहाँ कुम्भेश्वर शिव का प्रसिद्ध मन्दिर है। विष्णु का भी यहाँ एक विशाल मन्दिर है जिनके मन्दिर का ११ खनवाला बड़ा गोपुर लगभग १६० फीट ऊँचा है। यहाँ के मन्दिरों के राग भोग के खर्च के लिये बड़ी आमदनी है।

मन्दिर से चौथाई मील दक्षिण-पूर्व महामोहन तालाब है जिसके किनारों पर जगह जगह बहुत से मन्दिर बने हैं। इस स्थान में १२ वर्ष पर महा माघ का प्रसिद्ध मेला होता है।

कुम्भकोणम् चोला राज्य की राजधानी थी। यहाँ विद्या का बड़ा प्रचार है और यहाँ के पण्डित प्रसिद्ध हैं।

१४३ कुरकिहार—(विहार प्रांत के गया जिले में एक स्थान)
भगवान बुद्ध के सुविख्यात प्रधान शिष्य महाकश्यप का यह निवास स्थान था। यहीं से उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया था।

. । स्थान का पुराना नाम कुक्कुट पाद गिरि व गुरुपाद गिरि है।

बौद्ध ग्रंथ कहते हैं कि यहीं से भगवान् मैत्रेय (बोधसत्व) धर्म का प्रचार करेंगे।

प्रा० क०—ह्वान चांग व फाहियान दोनों ने इस स्थान का वर्णन किया है। फाहियान ने कुक्कुट पाद गिरि की बाबत जो लिखा है वह सब बातें कुरकिहार से मिलती हैं। उन्होंने एक तीन शिखर का पर्वत लिखा है वह भी आधे मील की दूरी पर मौजूद है। यहाँ एक विहार था जो कुक्कुट पाद विहार से बिगड़कर कुक्कुट विहार और कुरकिहार हो गया है। स्थान का नाम कुक्कुट

पाद गिरि था, जो गुरु महाकश्यप के निवास स्थान होने से गुरुपाद गिरि भी कहलाता था।

[भगवान् बुद्ध के बाद बौद्धों के सबसे बड़े महात्मा श्री महाकश्यप हुये हैं। पाली में इन्हें महाकस्सप कहते हैं। इनके पिता ने एक आदर्श दुलहिन के रूप में सोने की मूर्ति देकर ब्राह्मणों को इनके लिये दुलहिन खोजने मथुरा भेजा था, क्योंकि मथुरा उन दिनों नारी रत्नों के लिये प्रसिद्ध था। वे लोग खोज कर परम सुन्दरी भद्द कपिलानी को लाये थे। पर महात्मा महाकश्यप अपने और उनके बीच में फूलों की माला रख कर सोये और कहा कि जिसके मन में विकार आजायगा उसी की ओर के फूल कुम्हला जायेंगे। प्रति दिन फूल की माला ताजी रहती थी। कुछ दिन में दोनों के मन में पूर्ण वैराग्य उत्पन्न हुआ। दोनों ही घर से निकल पड़े, पर अलग अलग चले। भगवान् बुद्ध उन दिनों राजगृह में थे। वे दूर चल कर राजगृह और नालन्दा के बीच महाकश्यप के मार्ग में बैठ गये। उनको देखते ही महाकश्यप की भक्ति इन पर दौड़ गई, भगवान् ने इन्हे उपदेश दिया और अपना वस्त्र इन पर डाल कर वहाँ से चले गये। राजगृह में सबसे पहिली बौद्ध महासभा जो भगवान बुद्ध के बाद हुई थी उसके यही महागुरु थे।

व० द०—कुरकिहार में कई पुराने खेड़े हैं जिनमें मूर्तियाँ बहुतायत से निकलती हैं। सबसे बड़ा खेड़ा २०० गज लम्बा और २०० गज चौड़ा है। मूर्तियों में से एक भगवान बुद्ध की मूर्ति बोधि प्राप्त करने की दशा की है। उसी में एक ओर उनके जन्म और दूसरी ओर निर्वाण के समय का दृश्य है। कुरकिहार को गुरपा भी कहते हैं और यह गया से लगभग १०० मील पर है।

१४४ कुरुक्षेत्र— (*पंजाब के अम्बाला और करनाल जिले में सरस्वती* और दृषद्वती (गागरा) के मध्य का प्रदेश)

कुरुक्षेत्र आरम्भ से आर्य धर्म व सभ्यता का गृह है।

यह पवित्र भूमि ब्रह्मवर्त, धर्मक्षेत्र, स्यमन्त पञ्चक, रामह्रद और सन्नि-हित करके भी प्रसिद्ध है।

यह स्थान ब्रह्मा की उत्तर वेदी है।

परशुराम ने क्षत्रिय कुल का नाश कर उनके रुधिर से पांच तालाब भर कर यहाँ अपने पितरों का तर्पण किया था।

राजा कुरु ने यहाँ तप किया था और इस भूमि को जोता था। शात

होता है कि भारतवर्ष में भूमि का जोतना आर्य्यों ने प्रथम यहीं से आरम्भ किया था।

राजा पृथु ने भी, जिनके नाम से पृथिवी का नाम पड़ा है, यहाँ तप किया था।

यहीं कौरव और पाण्डवों का जगत विख्यात महाभारत का भयंकर संग्राम हुआ था।

नारायण ने जल के भीतर जगत को जान कर अण्डे का विभाग किया था, जिससे पृथिवी हुई, जिस स्थान में अण्डा स्थित था वह कुरुक्षेत्र का सन्निहित सरोवर है।

बावन पुराण ४४वें अध्याय के अनुसार लिंग पूजन सर्वप्रथम स्थानेश्वर में आरम्भ हुआ था।

ऋषियों के शाप से शिवजी का लिंग जो गिरा था वह अन्त में सन्निहित तीर्थ ही में स्थाणु तीर्थ स्थान पर लाकर रक्खा गया था और प्रतिष्ठित किया गया था।

यहीं तप करने से ब्रह्मा अपनी कन्या पर मोहित होने के पाप से मुक्त हुए थे।

राजा बलि ने कुरुक्षेत्र में यज्ञ किया था, और वामन जी ने यहाँ आकर तीन पग भूमि उन से मांगी थी।

कुरुक्षेत्र में तप करके ब्रह्मा जी ने ब्रह्मत्व को पाया था।

वसुदेव जी ने कुरुक्षेत्र में विधिपूर्वक यज्ञ किया था।

भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश इसी पवित्र भूमि पर दिया था।

देवताओं ने स्वामि कार्त्तिक का कुरुक्षेत्र में अभिषेक करके सेनापति नियत किया था।

दधिचि ने क्षुप और विष्णु को कुरुक्षेत्र के मध्य, स्थानेश्वर में परास्त किया था। दधिचि ऋषि की हड्डियों से बने हुए वज्र से इन्द्र ने वृत्तासुर को यहीं मारा था।

कुरुक्षेत्र में स्थानु तीर्थ में सरस्वती के तट पर विश्वामित्र का एक आश्रम था।

कुरुक्षेत्र मुगदल मुनि का निवास स्थान था।

पुरुरवा ने खोई हुई उर्वशी को यहीं फिर पाया था।

ग्रा० क०— (महाभारत, वन पर्व, ८३वाँ अध्याय) सरस्वती से दक्षिण और दृषद्वती नदी के उत्तर कुरुक्षेत्र में जो लोग बसते हैं वे स्वर्ग के वासी हैं। उसके पुष्कर समिति तीर्थ में स्नान करके पितर और देवताओं को तर्पण करना चाहिये। वहीं परशुराम ने भारी काम किया था। वहां जाने से पुरुष कृतकृत्य हो जाता है, और अश्वमेध का फल लाभ होता है। तीर्थ सेवी पुरुष रामसर में स्नान करें। तेजस्वी परशुराम ने वहीं क्षत्रियों को मार कर तड़ागों को रुधिर से भर कर अपने पितरो और पूर्व पितरों का तर्पण किया था। पितरों ने परशुराम को यह वरदान दिया कि तुम्हारे यह तालाव निःसन्देह तीर्थ हो जायेंगे।

चन्द्र ग्रहण में कुरुक्षेत्र में स्नान करने से १०० अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। पृथिवी और आकाश के सम्पूर्ण तीर्थ और नदी, कुण्ड, तड़ाग, झरने तलैया तथा बावड़ी अमावस्या के दिन प्रतिमास कुरुक्षेत्र में आते हैं। इसी निमित्त कुरुक्षेत्र का दूसरा नाम सन्निहित है।

आकाश में पुष्कर और पृथिवी में नैमिषारण्य सर्वोपरि है, और कुरुक्षेत्र तीनों लोकों में श्रेष्ठ है। परशुराम के तड़ाग और मचकुक तीर्थ के बीच की भूमि का नाम कुरुक्षेत्र है। इसी को समन्त पञ्चक भी कहते हैं; यह ब्रह्मा की उत्तर वेदी है।

(महाभारत—वनपर्व, ११७वाँ अध्याय) परशुराम ने २१ बार पृथिवी को क्षत्रियों से रहित कर दिया और समन्त पन्चक तीर्थ में जाकर क्षत्रियों के रुधिर से ५ तालावों को भर दिया।

(महाभारत—उद्योगपर्व) कुरुक्षेत्र में कौरव और पाण्डवों का जगत विख्यात संग्राम हुआ।

(महाभारत,शल्य पर्व, ३८ वाँ अध्याय) जब महाराज कुरु ने कुरुक्षेत्र में यज्ञ किया, तब उनके ध्यान करने से ऋषभ देश को छोड़ कर सुरेणु नामक सरस्वती कुरुक्षेत्र आई। ओघवती नामक सरस्वती वशिष्ट के ध्यान करने से कुरुक्षेत्र में आई थी। (५३वाँ अध्याय) महात्मा कुरु ने अनेक वर्ष तक इसमें निवास किया था, और इस पृथिवी को जोता था इसलिए इसका नाम कुरुक्षेत्र हुआ।

(लिंगपुराण, ३६वाँ अध्याय) जिस युद्ध में शिव भक्त दधिचि से राजा क्षुप और विष्णु परास्त हुये, उस स्थान का नाम स्थानेश्वर हुआ। वहाँ शरीर त्याग करने से शिव लोक मिलता है। (शिव पुराण, दूसरा खण्ड, ३२ वें अध्याय में भी यह कथा है)

(वामन पुराण,२२वाँ अध्याय) राजा सम्वरण के पुत्र कुरु ने द्वैत वन में प्राप्त हो सरस्वती नदी को देखा। पीछे वह ब्रह्मा की उत्तर वेदी को गये जहाँ बीस बीस कोस चारों ओर समन्त पञ्चक नामक क्षेत्र है। राजा कुरु ने उस क्षेत्र को उत्तम माना और कीर्ति के लिए सोने के हल बना कर महादेव के वृष और धर्मराज के भैंसे को हल में लगाया। वह प्रतिदिन उसी हल से सात कोस चारों तरफ पृथिवी को बाहने लगे। इसके अनन्तर राजा कुरु ने विष्णु के प्रसन्न होने पर यह वरदान मांगा कि जहाँ तक मैंने यह पृथिवी बाही है वह धर्म क्षेत्र हो जाय। यज्ञ, दान, उपवास, स्नान, जप, होम आदि शुभ और अशुभ काम जो इस क्षेत्र में किया जाय वह अक्षय हो जाय और आप तथा महादेव सब देवताओं के सहित यहाँ वास करें।

आदि में यह स्थान ब्रह्मा जी की वेदी कहलाया, पीछे रामह्रद के नाम से विख्यात हुआ, और कुरु राजा के हल से बाहने पर कुरुक्षेत्र कहलाया।

(वामन पुराण, ३३वाँ अध्याय) सरस्वती और दृषद्वती इन दो नदियों के बीच जो अन्तर है वह देव निर्मित ब्रह्मवर्त देश कहलाता है। कुरुक्षेत्र में सन्निहित तीर्थ ब्रह्मवेदी है।

(३४वाँ अध्याय) कुरुक्षेत्र में रामह्रद है जहाँ परशुराम जी ने,सब क्षत्रियों को मार कर उनके रुधिर से ५ ह्रद पूरित किये हैं।

(४१वाँ अध्याय) सूर्यग्रहण में सन्निहित तीर्थ में श्राद्ध करने से महा फल प्राप्त होता है। (४३वाँ अध्याय) नारायण ने जल के भीतर जगत को जानकर अण्डे का विभाग किया जिससे पृथिवी हुई। जिस स्थान में अण्डा स्थित हुआ वहाँ सन्निहित सरोवर है। अण्डे के निकले हुए तेज से आदित्य (सूर्य) और अण्डे के मध्य में ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

(४४ वाँ अध्याय) ऋषियों के शाप से शिवलिंग के गिरने पर जगत में बड़ा उपद्रव होने लगा। पीछे शिव ने ब्रह्मा की स्तुति से प्रसन्न होकर ऐसा कहा कि जो लिंग गिरा है वह सन्निहित तीर्थ में प्रतिष्ठित हो जाय। जब गिरा

हुआ शिव लिङ्ग किसी से न उठा तब शिव जी ने हस्ती-रूप धारण कर दारुक वन से अपने सुण्ड द्वारा उस लिङ्ग को लाकर सर की पश्चिमी पार्श्व में निवेशित किया।

(४५वाँ अध्याय) स्थाणु लिङ्ग के दर्शन के महात्म्य से स्वर्ग पूर्ण होने लगा। स्थाणु तीर्थ में स्नान, लिङ्ग के दर्शन और वट के स्पर्श करने से मुक्ति और मनोवांछित फल प्राप्त होता है। चैत्र महीने में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन रुद्र कर तीर्थ में स्नान करने से परमपद प्राप्त होता है।

(४८वाँ अध्याय) ब्रह्मा अपनी कन्या को देख कर मोहित हुए। उस पाप से ब्रह्मा का सिर कट गया। पीछे ब्रह्मा ने कटे हुए सिर के सहित सन्निहित तीर्थ में आकर स्थाणु तीर्थ में सरस्वती के उत्तर तीर्थ पर चार मुख वाले शिव की प्रतिष्ठा कर स्नान किया, तब वह पाप रहित हो गये। इस प्रकार से ब्रह्मासर प्रतिष्ठित हुआ।

(५७वाँ अध्याय) कुरुक्षेत्र में विष्णु इन्द्रादि सब देवताओं ने स्वामि कार्तिकेय का अभिषेक किया और उनको सेनापति बनाया।

(८६वाँ अध्याय) राजा बलि ने कुरुक्षेत्र में यज्ञ किया।

(६२वाँ अध्याय) वामन जी ने तीन पग पृथिवी बलि से जाकर मांगी और बलि ने देदी।

(मत्स्यपुराण—१६१वाँ अध्याय) सूर्यग्रहण में महापुण्य वाले कुरुक्षेत्र सेवते हैं।

(सौरपुराण, ६७वाँ अध्याय) कुरुक्षेत्र में ब्रह्माजी ने तप करके ब्रह्मत्व को पाया और वालखिल्य आदि ब्राह्मणों ने परम सिद्धि लाभ की।

(श्रीमद्भागवत, ८४वाँ अध्याय) वसुदेवजी ने कुरुक्षेत्र में विधिपूर्वक यज्ञ किया।

(महाभारत, आदिपर्व, प्रथम अध्याय) परशुराम ने क्षत्रिय कुल का सत्यानाश कर उनके शोणित से समन्त पञ्चक में ५ ह्रद बनाये और पितृगणों से यह वर मांगा कि यह ह्रद भूमण्डल में प्रसिद्ध तीर्थ बनें। इन ह्रद के आस पास का देश पवित्र समन्त पञ्चक नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी देश में कौरव और पाण्डवों का संग्राम हुआ था।

(६४वाँ अध्याय) पुरुवंशी राजा भरत के पश्चात् छठवीं पीढ़ी में राजा सम्वरण का पुत्र राजा कुरु हुआ। जिसकी तपस्या करने से कुरु जंगल नामक स्थान, उसके नाम के अनुसार कुरुक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(व्यास स्मृति, शंखस्मृति, वामन पुराण, मत्स्य पुराण, स्कंद पुराण, पद्म पुराण, गरुड़ पुराण, अग्नि पुराण, कूर्म पुराण, सौर पुराण, श्रीमद्‌भागवत और महाभारत में कुरुक्षेत्र की महिमा का वर्णन है।)

[परम वैष्णव महाराज ध्रुव के वंश में वेन नाम का एक राजा हुआ, वह बड़ा अत्याचारी था इससे मुनियों ने उसे शाप द्वारा मार डाला। उसके कोई संतान न थी, इससे ब्राह्मणों ने उसकी दोनों बाहुओं को मथ कर एक स्त्री और एक पुरुष को उत्पन्न किया। यह पुरुष महाराज पृथु थे, और यह स्त्री उनकी पत्नी अर्चिदेवी थीं।

राजा पृथु ने संसार अपने वश में कर लिया और उसका नाम पृथिवी पड़ा। फिर उनके हृदय में भगवान के प्रति भक्ति उत्पन्न हुई और साथ ही साथ वैराग्य सहित ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ जिससे उनके हृदय की सारी गुत्थियाँ आप ही आप टूट गई]

[प्रह्लाद के पुत्र विरोचन, और विरोचन के पुत्र दान शिरोमणि महाराज वलि थे। इन्होंने अपने पराक्रम से दैत्य, दानव, मनुष्य और देवताओं को सबको जीत लिया। विष्णु ने ब्राह्मण का रूप धर कर इनसे तीन पग भूमि मांगी और राजा वलि के स्वीकार करने पर उन्होंने दो ही पग में पृथिवी को नाप लिया। राजा वलि ने अपने को तीसरे पग में नपवा दिया। विष्णु ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा तो वलि ने मांगा कि आप सदा मेरे द्वार पर विराजें। विष्णु ने इसे स्वीकार किया और भगवान का आशीर्वाद पाकर राजा वलि प्रसन्नता पूर्वक सुतल लोक को चले गये।]

[द्वापर युग में महात्मा मुग्दल कुरुक्षेत्र में रहते थे। यह जितेन्द्र थे और इनकी कीर्ति सारे देश में फैल रही थी।

दुर्वासा ऋषि की कठिन से कठिन परीक्षा में भी यह विचलित न हुए और पूर्ण उतर कर निर्वाण पद के भागी हुए।]

[राजा कुरु चन्द्रवंशियों के परम पराक्रमी पूर्वज थे और इनके वंशज कौरव कहलाये। महाराज धृतराष्ट्र और पाण्डु दोनों इनके वंश में थे।]

था० द०— अम्बाला से २६ मील दक्षिण सरस्वती नदी के तट पर कुरुक्षेत्र के मध्य में थानेसर (स्थानेश्वर) कस्बा है। यह कस्बा भारतवर्ष के अति प्राचीन और प्रसिद्ध कस्बों में से एक है। कस्बे के निकट बहुत से सरोवर हैं जिनमें कुरुक्षेत्र सरोवर सन्निहित सरोवर और स्थाणु, यह तीन प्रधान हैं। कुरुक्षेत्र सरोवर कस्बे से चौथाई मील दक्षिण सरस्वती के जल से भरा हुआ

१२०० गज लम्बा और ६४० गज चौड़ा दो मील से अधिक घेरे का पवित्र सरोवर है। सरोवर के उत्तर-पश्चिम तथा १०० गज पूर्व नीचे से ऊपर तक पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई है परन्तु दक्षिण का भाग मिट्टी से पट गया है।

सरोवर में उत्तर किनारे के मध्य से ७४ गज दक्षिण ऊँची भूमि पर सूर्य घाट है। उत्तर किनारे से सूर्यघाट तक पुल बना है। पुल से लगभग ६० गजी पश्चिम इसके समानान्तर रेखा में दूसरा पुल है जिससे सरोवर के भीतर चंद्र कूप के निकट तक जाना होता है। यहाँ चन्द्रकूप नामक पवित्र कुआँ है।

सन्निहित सरोवर थानेसर से पूर्व-दक्षिण नदी के समान लम्बा सरोवर है। यही ब्रह्मवेदी है और यहाँ पृथिवी का अन्त रखा गया था।

स्थाणु सर सरोवर थानेसर के उत्तर में एक बड़ा सरोवर है जिसके चा ओर पकी सीढ़ियाँ बनी हैं और पश्चिम किनारे पर स्थानेश्वर शिव का सुन्दर मन्दिर है। यह स्थान स्थाणु तीर्थ है जहाँ शिव का गिरा हुआ लिंग प्रतिष्ठित किया गया था।

इस स्थान के अनेक सरोवरों में से एक ब्रह्मसर है। पक्के सरोवर के किनारे एक छोटे मन्दिर में ब्रह्मा जी की स्थापित एक चतुर्मुख शिव मूर्ति है। ब्रह्मा जी ने अपनी कन्या पर मोहित होने के पाप से मुक्त होने को यहाँ तप किया था।

पञ्च प्राची नाम का यहाँ एक दूसरा पका सरोवर है। एक और पक्का सरोवर रुद्रकर है।

थानेसर के चारों ओर इस देश में ३६० पवित्र स्थान हैं। बड़ी परिक्रमा में यह सब स्थान मिलते हैं। एक छोटी परिक्रमा होती है जिसको अन्तरग्रही की परिक्रमा कहते हैं। इसके करने में कुछ घंटे लगते हैं। तीसरी सबसे छोटी परिक्रमा कुरुक्षेत्र सरोवर की होती है।

प्रति अमावस्या को स्नान के लिये थानेसर में बहुत से यात्री आते हैं। प्रतिवर्ष तीन चार लाख यात्री यहाँ आते जाते हैं परन्तु सूर्यग्रहण पर १० लाख से अधिक यात्री भारतवर्ष के कोने कोने से यहाँ पहुँचते हैं। कुरुक्षेत्र में दान करने का माहात्म्य अन्य सम्पूर्ण तीर्थों से अधिक है।

किसी समय थानेसर एक विशाल नगर और राज्य की राजधानी था। लुटेरे महमूद गजनवी ने इस नगर को भी लूटा था। यहाँ अनेक नये और पुराने देव मन्दिर हैं।

महाराजा कश्मीर, पटियाला, नाभा, भिन्ड, फरीदकोट आदि पञ्जाब के राजाओं के बड़े बड़े मकान थानेसर में बने हैं। सदाब्रत भी होता है। यात्रियों

को कोई कष्ट नहीं पहुँचता हैं। पन्डे लोग अपने घरों में यात्रियों को टिकाते हैं।

प्राचीन कुरुक्षेत्र की राजधानी श्रुग्न थी जो अब जगाद्री और उरिया के समीप 'शुग' गाँव है।

थानेसर कस्बे से १३ मील पश्चिम-दक्षिण कुरुक्षेत्र की सीमा के भीतर अम्बाला जिले में सरस्वती नदी के किनारे पिहोवा एक छोटा पुराना कस्बा और पवित्र स्थान है। पूर्व समय में यह पृथूदक तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध था, और महाभारत में पुष्कर समिति इसका नाम लिखा है। राजा पृथु ने, जिन्होंने संसार में पहिले पहल राज्य स्थापित करके, अराजकता मिटाई और जिनके नाम से पृथिवी, पृथिवी कहलाई, उन्होंने यहाँ तप किया था। इसी से इसका नाम पृथूदक था।

इस कस्बे के पुराने मन्दिरों को भी मुसलमानों ने तोड़ दिया था। यहाँ अनेक उत्तम नये मन्दिर हैं। पुराने सर्वश्रेष्ठ मन्दिरों में से एक पृथ्वीश्वर महादेव का मन्दिर है जिसके निकट कार्तिक कृष्ण पक्ष की पञ्चमी से नवमी तक मेला लगता है। कस्बे के पूर्व में एक मील के घेरे का ताल है जिसके किनारे कृपावन का मन्दिर है। यह महाभारत के कृपाचार्य से सम्बन्ध रखता है। पिहोवा में अप्सरोदय ताल वह स्थान है जहाँ अप्सरा उर्वशी को पुरुरवा ने पाया था। यहाँ के और पवित्र सरोवर मधुसखा, घृतसखा और पापान्तक हैं। पापान्तक में कहा जाता है कि स्वयं गंगाजी ने स्नान करके अपने में धो हुए पापों को धोया था। ययाति और बृहस्पति के मन्दिर भी पिहोवा के प्रसिद्ध मन्दिर हैं जिनमें ययाति कौरवों और पाण्डवों के पुरखे का स्थानहै, और बृहस्पति में बृहस्पति ने तप किया था।

अकाल मृत्यु से मरे हुए मनुष्यों के सम्बन्धी पिहोवा में जाकर उनके उद्धार के लिये यहाँ श्राद्ध कर्म करते हैं। आश्विन और चैत्र की अमावस्य को पिहोवा में मेला लगता है। विधवा स्त्रियाँ मेले में एकत्रित होकर अपने अपने पति के लिये विलाप करती हैं।

थानेसर से ५ मील दक्षिण अमिन है जहाँ अभिमन्यु मारे गये थे, और अश्वत्थामा को अर्जुन ने पराजित करके उनका सिर छेद दिया था, तथा जहाँ अदिति ने सूर्य को जन्म दिया था। (देखिये अमिन)

थानेसर से ८ मील पश्चिम में भूरिश्रवा मारे गये थे। चक्रतीर्थ में श्री कृष्ण ने भीष्म के मारने को रथ का पहिया (चक्र) उठाया था। थानेसर से ११ मील दक्षिण-पश्चिम में भीष्म पितामह ने शरीर छोड़ा था, और थाने-

सर से पश्चिम अस्थीपुरा में महाभारत में मारे गये योद्धाओं के शरीरों को इकट्ठा करके दाह किया गया था।

सोनपत (सोनप्रस्थ) और पानीपत (पाणिप्रस्थ) उन पाँच ग्रामों में से दो थे जिनको श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से पाण्डवों के लिये माँगा था।

१४५ कुलुहापहाड़— (विहार प्रांत के हजारीबाग जिले में एक स्थान)

यहाँ के प्राचीन नाम मकुल पर्वत और कुलाचल पर्वत हैं।

भगवान बुद्ध ने छठा चौमास यहाँ व्यतीत किया था।

कहा जाता है एक पूर्व जन्म में भगवान बुद्ध ने यहाँ अपना शरीर एक शेरनी को खिला दिया था जिससे उसके नये जन्मे बच्चे भूखों मरने से बच जावें।

कुलुहा पहाड़ बुद्ध गया से २६ मील दक्षिण में है।

१४६ कुशीनगर या कुशीनारा— (देखिये कसिया)

१४७ केदारनाथ— (हिमालय के गढ़वाल प्रांत में एक पुरा)

केदार नामक राजा ने सतयुग में यहाँ तप किया था।

भगवान ने नर नारायण रूप से यहाँ कड़ा तप किया था।

शिव के १२ ज्योतिर्लिंगों में से यहाँ केदारेश्वर लिंग स्थित है।

युधिष्ठिर आदि पाण्डव इस स्थान की यात्रा को आये थे।

कार्तिकेय का यहाँ जन्म हुआ था।

प्रा० क०— (महाभारत—शान्तिपर्व, ३५वाँ अध्याय) महास्थान यात्रा, अर्थात केदाराचल पर गमन करके हिमालय पर चढ़ के प्राण त्याग करने से मनुष्य सुरा पान के पाप से विमुक्त हो जाता है।

(वनपर्व—८३वाँ अध्याय) कपिस्थल (केदार) कुन्ड में स्नान करने से सब पाप भस्म हो जाते हैं।

(लिंगपुराण—९२वाँ अध्याय) जो पुरुष सन्यास ग्रहण करके केदार में निवास करता है वह दूसरे जन्म में पाशुपत योग को प्राप्त करता है।

(वामनपुराण—३६वाँ अध्याय) जहाँ साक्षात वृद्ध केदारदेव स्थित हैं उस कपिस्थल तीर्थ में स्नान करके रुद्र का पूजन करने से मनुष्य शिवलोक में जाता है।

(कूर्मपुराण—उपरिभाग, २६वाँ अध्याय) महालय तीर्थ में स्नान करके महादेव जी के दर्शन करने से रुद्रलोक मिलता है। शंकर जी का दूसरा सिद्ध स्थान केदार तीर्थ है।

(सौरपुराण—६६वाँ अध्याय) केदार नामक स्थान भगवान शङ्करजी का महातीर्थ है।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण—कृष्णजन्म खण्ड, १७वाँ अध्याय) केदार नामक राजा सतयुग में सप्तद्वीप का राज्य करता था। वह बहुत काल राज्य करने के पश्चात अपने पुत्र को राज्य दे वन में जाकर श्री हरि का तप करने लगा और बहुत काल तप करने के उपरान्त गोलोक में चला गया। उसी के नाम के अनुसार वह तीर्थ केदार नाम से प्रसिद्ध होगया।

(शिवपुराण—ज्ञानसंहिता, ३८ वाँ अध्याय) शिवजी के १२ ज्योतिर्लिंग विद्यमान हैं। उनमें से केदारेश्वर लिंग हिमालय पर्वत पर स्थित है।

(४७वाँ अध्याय) भरत खण्ड के बद्रिकाश्रम मण्डल में भगवान नर नारायण रूप में सर्वदा निवास करते हैं और लोक के कल्याण के निमित्त नित्य तप करते हैं। एक समय उन्होंने हिमालय के केदार नामक शृङ्ग पर शिव लिंग स्थापित करके बड़ा तप किया।

(स्कंदपुराण—केदार खण्ड प्रथम भाग, ४०वाँ अध्याय) पाण्डव लोग व्यासदेव के आदेशानुसार केदार में जाकर उस तीर्थ के सेवन से शुद्ध होगये।

(४१वाँ अध्याय) मनुष्य केदारपुरी में मृत्यु पाने से निःसन्देह शिवरूप हो जाता है। केदारपुरी में जाने की इच्छा करने वाले मनुष्य भी लोक में धन्य हैं।

(४२वाँ अध्याय) केदार नाथ में पापियों को मुक्ति देने वाला भृगुतुङ्ग तीर्थ है। महापातकी मनुष्य भी भृगुतुङ्ग से भी शिला पर गिर कर प्राण छोड़ने से परब्रह्म को पाता है।

[भगवान विष्णु ने धर्म की पत्नी मूर्ति से नर और नारायण नाम के दो ऋषियों का अवतार ग्रहण किया। वे बदरीवन में रह कर निरन्तर तपस्या किया करते थे। इन्द्र ने एक बार भय खाकर उनके डिगाने को अप्सराओं को भेजा पर उन्हें निराश लौटना पड़ा और इन्द्र को अपने व्यवहार पर लज्जित होना पड़ा।]

स० द०—समुद्र के जल से ११ हजार फीट से अधिक ऊंचाई पर पर्वदार महापंथ नामक चोटी के नीचे मन्दाकिनी और सरस्वती नदियों के मध्य अर्द्धाकार भूमि पर केदारपुरी है। यहाँ थोड़े से पक्के मकानात हैं जिनमें १८ धर्मशालायें हैं और कई सदाव्रत लगे रहते हैं। केदारपुरी के उत्तर छोर पर केदारनाथ का सुन्दर मन्दिर है। मन्दिर के ऊपर सुनहला कलश और उसमें

भीतर मध्य में तीन चार हाथ लम्बा और डेढ़ हाथ चौड़ा केदारनाथ का अनगढ़ स्वरूप है। ऊपर से बड़ी जलधरी और चाँदी का बड़ा छत्र लटकता है।

केदारनाथ पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी समुद्र से २२८५० फीट ऊँची है। वैशाख जेठ में भी जगह जगह वर्फ रहती है। जाड़े के कारण मकान से बाहर आदमी नहीं रह सकते हैं। बहुतेरे यात्री दर्शन करके उसी दिन रामबाला चट्टी को लौट जाते हैं।

भैरव झाँप नामक प्रसिद्ध पर्वत के नीचे एक स्थान है जहाँ पहले ऊपर से कूद कर कोई कोई यात्री आत्मघात करते थे। सन् १८२६ ई० से अंग्रेजी सरकार ने यह प्रथा बन्द करदी।

केदारनाथ के मन्दिर के समीप एक कुंड है जहाँ कहते हैं कि कार्तिकेय का जन्म हुआ था।

केदारपुरी से १२ मील दक्षिण मध्यमेश्वर क्षेत्र है जिसके सम्बन्ध में स्कंद पुराण, केदारखण्ड प्रथमभाग का ४८ वाँ अध्याय, कहता है कि मनुष्य मध्यमेश्वर क्षेत्र में सरस्वती के दर्शन मात्र से पापों से छूट जाता है और उसमें स्नान करने से आवागमन से रहित हो जाता है। स्कंद पुराण के अनुसार शिवजी के ५ क्षेत्र हैं। १- केदारनाथ २- मध्यमेश्वर ३-तुङ्गनाथ ४- रुद्रालय ५- कल्पेश्वर।

तुङ्गनाथ— तुङ्गनाथ पञ्चकेदारों में से तीसरे हैं। केदारनाथ से २८ मील पर ऊखी मठ है और उसके दक्षिण में तुङ्गनाथ हैं। यहाँ का प्राचीन मन्दिर पत्थर के मोटे मोटे ढोकों से बना हुआ है। और उसके भीतर तुङ्गनाथ का पतला अनगढ़ शिव लिंग है। लिंग के पूर्व डेढ़ दो हाथ ऊँची शङ्कराचार्य्य की मूर्ति स्थित है। लोग कहते हैं कि तुङ्गनाथ का मन्दिर शङ्कराचार्य्य का बनाया है। यहाँ की चढ़ाई बड़ी कड़ी है।

स्कंदपुराण का केदार खण्ड, प्रथम भाग ४९वाँ अध्याय, कहता है कि मानधाता क्षेत्र (ऊखी मठ) से दक्षिण ओर दो योजन लम्बा और दो योजना चौड़ा तुङ्गनाथ क्षेत्र है जिसके दर्शन मात्र से मनुष्य का सब पाप छूट जाता है और शिव लोक मिलता है।

रुद्रानथ— रुद्रनाथ का मन्दिर मंडल गाँव स्थान से १२ मील पर है। यहाँ वर्फ बहुत रहती है इससे विरले ही यात्री वहाँ जाते हैं। स्कंद पुराण केदार खण्ड प्रथम भाग ५१ वाँ अध्याय कहता है कि सदाशिव रुद्रालय क्षेत्र

का त्याग कभी नहीं करते। क्षेत्र का दर्शन मात्र करने से मनुष्य का जन्म सफल हो जाता है।

कल्पेश्वर—ऊर्जम गाँव जिसे आदि बद्री भी कहते हैं, यहाँ से दो मील पर पञ्चकेदारों में कल्पेश्वर महादेव का मन्दिर है। स्कंद पुराण के केदारखण्ड प्रथमभाग,५३वें अध्याय में वर्णन है कि शिवजी के पाँच स्थानों में से पांचवाँ स्थान कल्पस्थल करके प्रसिद्ध है। उसी स्थान पर देवराज इन्द्र ने दुर्वासा जी के शाप से श्रीहत होने के पश्चात महादेवजी का पूजन किया था और पार्वती जीके सहित महादेव जी की आराधना करके कल्पवृक्ष पाया था। तभी उसे शिवजी कल्पेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुए।

१४८ केन्दुली—(बिहार प्रांत के वीरभूम जिले में एक गाँव)

यह महाकवि जयदेव जी की जन्मभूमि है जिन्होंने 'गीत गोविन्द' की रचना की है। यहीं उन्होंने शरीर छोड़ा था।

इस स्थान का पुराना नाम किन्दु बिल्व ग्राम है।

[३०० वर्ष हुए नाभा जी ने भक्त माल ग्रन्थ में पहले के भक्तों का यश गान किया है। उसमें वर्णन है कि जयदेव जी कवियों के महाराजा थे। का बनाया हुआ गीत गोविन्द तीनों लोक में प्रसिद्ध हुआ। इसकी अष्टपदी में अभ्यास करने से बुद्धि की वृद्धि होती है और उसका गानसुन कर निश्चय करके श्रीकृष्ण भगवान प्रसन्न होकर वहाँ चले आते हैं। भक्तमाल की टीका में लिखा है कि बिल्व ग्राम में जयदेवजी का जन्म हुआ।

जयदेव जी का जन्म सन् ईस्वी की ११वीं सदी के अन्त में अथवा १२ वीं सदी के आरम्भ में हुआ था। वे ब्राह्मण थे और अपने जीवन का अर्ध भाग उपासना और धर्मोपदेश में बिताया था।]

केन्दुली ग्राम में जयदेव जी का सुन्दर समाधि मन्दिर बना हुआ है और अब तक उनके स्मरणार्थ मकर की संक्रांति को प्रति वर्ष एक बड़ा मेला लगता है जिसमें एक लाख के लगभग वैष्णव एकत्रित होते हैं और समाधि के चारों ओर कीर्त्तन करते हैं।

१४९ केशीतीर्थ—(देखिये मथुरा)

१५० केशगढ़—(देखिये आनन्दपुर)

१५१ केसरिया—(देखिये बिहार)

१५२ कैलास गिरि—(तिब्बत में मानसरोवर झील के किनारे एक पर्वत)

यह पर्वत भगवान शंकर का निवास स्थान कहा जाता है।
इस स्थान से आदि नाथ (प्रथम तीर्थंकर) मोक्ष को पधारे थे।
कैलास पर्वत ही जैन लोगों का अष्टापद पर्वत है। इसके अन्य नाम हेमकूट तथा हेम पर्वत हैं। यहाँ पर कुबेर का निवास स्थान है।
कैलास की शाखा क्रौंच पर्वत पर मानसरोवर झील स्थित है।

भारतवर्ष, तिब्बत और नैपाल की सीमा पर भोट देश है जहाँ व्यास जी ने तप किया था, और जिस कारण उसको व्यास खण्ड भी कहते हैं। इसीके समीप मानसरोवर झील के निकट अति मनोहर और सुन्दर कैलास गिरि पर्वत है। इसकी चट्टानें सीधी हैं जिससे उस पर चढ़ा नहीं जा सकता। पर्वत की शोभा दर्शनीय है, ऐसा जान पड़ता है मानों उस पर देव निवास कर रहे हैं। मानसरोवर का निर्मल जल और वहाँ की शांति देवलोक का आनंद देने वाली और अकथनाय है।

कैलास पर्वत के चारों ओर की परिक्रमा २४ मील लम्बी है और उसको पूरा करने में ३ दिन लगते हैं।

१५३ कौंड़वीर— (देखिये कुण्डिनपुर)

१५४ कोग्राम— (बङ्गाल प्रांत के बर्दवान जिले में एक ग्राम)
यह ५२ पीठों में से एक है जहाँ सती के शरीर का एक अंग गिरा था।
लोचन दास की यह जन्म भूमि है जिन्होंने "चैतन्यमङ्गल" लिखा है।

१५५ कोटवा— (संयुक्त प्रांत के बाराबंकी जिले मे एक स्थान)
स्वामी जगजीवन दास की यहाँ समाध है।
यहाँ से चार कोस पर सर्दहा गाँव में इनका जन्म हुआ था।

[स्वामी जगजीवन दास का जन्म क्षत्रिय कुल में १६८२ ईस्वी में सूर्य दनी के किनारे सर्दहा गाँव, जिला बाराबंकी में हुआ था। बालावस्था में जब यह ढोरे चरा रहे थे, दो महात्मा बुल्लासाहब व गोविंद साहब, उधर से निकले। उन्होंने इनसे चिलम चढ़ाने को अग्नि माँगी। जगजीवन दास अग्नि के साथ उनके लिये घर से दूध भी लेते आये, पर बाप के डर से जी में घबरा रहे थे कि खबर पाकर मारेंगे। उनके चित्त की यह दशा देख कर बुल्लासाहब ने कहा कि डरो नहीं, हम लोगों के देने से तुम्हारे घर का दूध घटा नहीं वरन बढ़ गया है। यह जो घर लौटे तो देखा कि दूध का बर्तन लबालब भरा है, और ऊपर से बढ़ बढ़ कर दूध नीचे भी फैल रहा है। जगजीवन दास साधुओं के

पास को दौड़े, पर वे वहाँ से जा चुके थे। कुछ दूर पर उन्होंने उन्हें जा पकड़ा और चरणों पर गिर कर शिष्य बना कर मंत्र देने की विनय की।

बुल्ला साहब ने कहा कि कान में मंत्र फूंकने की आवश्यकता नहीं है। चिन्ह के लिए उन्होंने अपने हुक्के में से काला तागा और गोविंद साहब ने सफेद तागा उनकी कलाई में बाँध दिया। जगजीवन दास का जीवन बदल गया और उन्होंने सत्तनामी सम्प्रदाय कायम की। इस सम्प्रदाय के लोग अवध और गोरखपुर कमिश्नरी में बहुतायत से हैं,वैसे देश के अन्य भागों में भी हैं। सत्तनामी लोग कलाई में काला और सफेद तागा बाँधते हैं। यह वही बुल्ला साहब व गोविंद साहब के जगजीवन दास की कलाई में तागा बाँधने की यादगार में है।

स्वामी जगजीवन दास के शान्ति दायक यश की वृद्धि के साथ साथ उनके प्रति उनके गाँव वालों की ईर्षा की अग्नि भी बढ़ने लगी और वे सरदहा छोड़कर वहाँ से चार मील दूर कोटवा में रहने लगे, और वहीं १७६१ ईस्वी में शरीर छोड़ा। कहते हैं कि स्वामी जगजीवन दास के सरहदा गाँव छोड़ते ही उसे सूर्य नदी बहा ले गई।]

कोटवा में स्वामी जगजीवन दास की समाधि है और महन्ती गद्दी स्थापित है। उसके सामने अभयराम (अभरन) तालाब है जिसमें यात्री गण नहाते हैं। कार्तिक व वैशाख की पूर्णमासी को यहाँ भारी मेले लगते हैं।

१५६ कोटितीर्थ— (देखिये चित्रकूट रामेश्वर)

१५७ कोरूर— (पाकिस्तानी पञ्जाब के मुल्तान जिले में एक नगर)

महाराज विक्रमादित्य ने शाकों पर ५३३ ईस्वी में पूर्ण विजय यहीं पाई थी।

इसी विजय से विक्रमी संवत का आरम्भ माना जाता है।

(सम्भव है कि एक सम्वत पहिले से चला आता था और महाराज विक्रमादित्य की विजय की स्मृति में उनका नाम उसमें लगा दिया गया)

१५८ कोलगाँव— (देखिये गोलगढ़)

१५९ कोलर— (मैसूर राज्य में पूर्व की ओर एक स्थान)

इसका पुराना नाम कोलाहलपुर है।

यहीं पर परशुराम ने किरातार्जुन का वध किया था।

(किरातार्जुन द्वापर के अन्त में हुए थे, और सहस्रार्जुन या सहस्रबाहु जिनको परशुराम ने मान्धाता में मारा था वे त्रेतायुग में हुये थे।)

१६० कोल्हापुर—(बम्बई प्रांत के कोल्हापुर राज्य की राजधानी)

यहाँ देवी भागवत में कथित प्रसिद्ध महालक्ष्मी जी का विशाल मन्दिर है।

जगद्गुरू श्री रेणुकाचार्य यहाँ आये और रहे थे।

कहा जाता है कि अवधूत भगवान दत्तात्रेय अब भी यहाँ निवास करते हैं।

श्री समर्थ गुरू रामदास ने भी यहाँ की यात्रा की थी।

प्राचीन सत्याद्र वा सत्य पर्वत यहीं है।

अगस्त्य ऋषि ने यहाँ निवास किया था।

पद्म पुराण वर्णित रुद्र गया यहीं है।

प्रा० क०— (देवी भागवत, सातवाँ स्कंध, ३८ वाँ अध्याय) दक्षिण देश में सह्याद्र नामक पर्वत पर कोल्हापुर नामक नगर में लक्ष्मी जी सदा स्थित रहती हैं।

[श्री रेणुकाचार्य बहुत भारी शैव्य महात्मा थे। श्री शङ्कराचाय जी भी इनके पास आये थे। इन्होंने शिवाद्वैत मत की रक्षा की थी।

कहा जाता है कि १४०० वर्ष संसार में शिव मत का प्रचार करके काञ्ची क्षेत्र में इन्होंने निवास किया, और पीछे कुल्यपाक क्षेत्र (सोमनाथ पट्टन) में श्री सोमनाथ शिव लिंग में अन्तर्धान हो गये]

व० द०—शहर के भीतर पुराने राज महल के निकट प्रसिद्ध महालक्ष्मी जी का विशाल मन्दिर है, जिसको बहुत लोग अम्बा का मन्दिर भी कहते हैं।

कोल्हापुर शहर के उत्तर रानीबाग के समीप एक घेरे के भीतर महाराष्ट्र प्रधान शिवाजी, शंभा जी, ताराबाई और आई बाई के समाध मन्दिर हैं।

देशी कहावतों से विदित होता है कि पूर्व काल में कोल्हापुर के पास का 'करवीर' नामक नगर बहुत प्रसिद्ध तथा एक प्राचीन स्थान था। महालक्ष्म जी का बड़ा मन्दिर उन कहावतों का साक्षी है। इस मन्दिर के चारों ओर के बरामदे अब नहीं हैं। कोल्हापुर कस्बे के उत्तर बगल में अब तक करवीर नामक एक छोटा गाँव है। पहिले करवीर राजधानी था, पीछे कोल्हापुर राजधानी बनाया गया। कोल्हापुर शहर के आस पास बौद्धों की इमारतों की अनेक निशानियां मिलती हैं। लगभग सन् १८८० ई० में एक बौद्ध स्तूप में बिल्लोर का एक डिब्बा मिला था जिसके ऊपर सन् ईस्वी के आरम्भ से लगभग ३०० वर्ष पहिले, राजा अशोक के समय का लेख था। इससे जान पड़ता

पास को दौड़े, पर वे वहाँ से जा चुके थे। कुछ दूर पर उन्होंने उन्हें जा पकड़ा और चरणों पर गिर कर शिष्य बना कर मंत्र देने की विनय की।

बुल्ला साहब ने कहा कि कान में मंत्र फूंकने की आवश्यकता नहीं है। चिन्ह के लिए उन्होंने अपने हुक्के में से काला तागा और गोविंद साहब ने सफेद तागा उनकी कलाई में बाँध दिया। जगजीवन दास का जीवन बदल गया और उन्होंने सत्तनामी सम्प्रदाय कायम की। इस सम्प्रदाय के लोग अवध और गोरखपुर कमिश्नरी में बहुतायत से हैं, वैसे देश के अन्य भागों में भी हैं। सत्तनामी लोग कलाई में काला और सफेद तागा बाँधते हैं। यह वही बुल्ला साहब व गोविंद साहब के जगजीवन दास की कलाई में तागा बाँधने की यादगार में है।

स्वामी जगजीवन दास के शान्ति दायक यश की वृद्धि के साथ साथ उनके प्रति उनके गाँव वालों की ईर्षा की अग्नि भी बढ़ने लगी और वे सरदहा छोड़कर वहाँ से चार मील दूर कोटवा में रहने लगे, और वहीं १७६१ ईस्वी में शरीर छोड़ा। कहते हैं कि स्वामी जगजीवन दास के सरहदा गाँव छोड़ते ही उसे सूर्य नदी बहा ले गई।]

कोटवा में स्वामी जगजीवन दास की समाधि है और महन्ती गद्दी स्थापित है। उसके सामने अभयराम (अभरन) तालाब है जिसमें यात्री गण नहाते हैं। कार्तिक व वैशाख की पूर्णमासी को यहाँ भारी मेले लगते हैं।

१५६ कोटितीर्थ—(देखिये चित्रकूट रामेश्वर)

१५७ कोरूर—(पाकिस्तानी पञ्जाब के मुल्तान जिले में एक जगह)

महाराज विक्रमादित्य ने शाकों पर ५३३ ईस्वी में पूर्ण विजय यहीं पाई थी।

इसी विजय से विक्रमी संवत का आरम्भ माना जाता है।

(सम्भव है कि एक सम्वत पहिले से चला आता था और महाराज विक्रमादित्य की विजय की स्मृति में उनका नाम उसमें लगा दिया गया)

१५८ कोलगाँव—(देखिये गोलगढ़)

१५९ कोलर—(मैसूर राज्य में पूर्व की ओर एक स्थान)

इसका पुराना नाम कोलाहलपुर है।

यहीं पर परशुराम ने किरातार्जुन का वध किया था।

(किरातार्जुन द्वापर के अन्त में हुए थे, और सहस्रार्जुन या सहस्रबाहु जिनको परशुराम ने मान्धाता में मारा था वे त्रेतायुग में हुये थे।)

१६० कोल्हापुर—(बम्बई प्रांत के कोल्हापुर राज्य की राजधानी)

यहाँ देवी भागवत में कथित प्रसिद्ध महालक्ष्मी जी का विशाल मन्दिर है।

जगद्गुरू श्री रेणुकाचार्य यहाँ आये और रहे थे।

कहा जाता है कि अवधूत भगवान दत्तात्रेय अब भी यहाँ निवास करते हैं।

श्री समर्थ गुरू रामदास ने भी यहाँ की यात्रा की थी।

प्राचीन सत्याद्र वा सत्य पर्वत यहीं है।

अगस्त्य ऋषि ने यहां निवास किया था।

पद्म पुराण वर्णित रुद्र गया यहीं है।

प्रा० क०—(देवी भागवत, सातवाँ स्कंध, ३८ वाँ अध्याय) दक्षिण देश में सह्याद्र नामक पर्वत पर कोल्हापुर नामक नगर में लक्ष्मी जी सदा स्थित रहती हैं।

[श्री रेणुकाचार्य बहुत भारी शैव्य महात्मा थे। श्री शङ्कराचाय जी भी इनके पास आये थे। इन्होंने शिवाद्वैत मत की रक्षा की थी।

कहा जाता है कि १४०० वर्ष संसार में शिव मत का प्रचार करके काञ्ची क्षेत्र में इन्होंने निवास किया, और पीछे कुल्यणक क्षेत्र (सोमनाथ पट्टन) में श्री सोमनाथ शिव लिंग में अन्तर्धान हो गये]

व० द०—शहर के भीतर पुराने राज महल के निकट प्रसिद्ध महालक्ष्मी जी का विशाल मन्दिर है, जिसको बहुत लोग अम्बा का मन्दिर भी कहते हैं।

कोल्हापुर शहर के उत्तर रानीबाग के समीप एक घेरे के भीतर महाराष्ट्र प्रधान शिवाजी, शंभा जी, ताराबाई और आई बाई के समाध मन्दिर हैं।

देशी कहावतों से विदित होता है कि पूर्व काल में कोल्हापुर के पास का 'करवीर' नामक नगर बहुत प्रसिद्ध तथा एक प्राचीन स्थान था। महालक्ष्म जी का बड़ा मन्दिर उन कहावतों का साक्षी है। इस मन्दिर के चारों ओर के बरामदे अब नहीं हैं। कोल्हापुर कस्बे के उत्तर बगल में अब तक करवीर नामक एक छोटा गाँव है। पहिले करवीर राजधानी था, पीछे कोल्हापुर राजधानी बनाया गया। कोल्हापुर शहर के आस पास बौद्धों की इमारतों की अनेक निशानियाँ मिलती हैं। लगभग सन् १८८० ई० में एक बौद्ध स्तूप मे बिल्लौर का एक डिब्बा मिला था जिसके ऊपर सन् ईस्वी के आरम्भ से लगभग ३०० वर्ष पहिले, राजा अशोक के समय का लेख था। इससे जान पड़ता

है कि कोल्हापुर अति प्राचीन स्थान है। आस पास की भूमि खोदने पर अनेक छोटे छोटे मन्दिर तथा अन्य इमारतें मिली हैं जो किसी समय में भूकम्प से पृथिवी में धँस गई थीं।

शिवाजी के वंशजों का अब केवल एक यही राज्य है, वह अब बम्बई प्रान्त में सम्मिलित कर दिया गया है। अवधूत भगवान दत्तात्रेय के लिये कहा जाता है कि वे आज भी मौजूद हैं। करवीर में भिक्षा मांगते हैं, गोदावरी के तट पर भोजन करते हैं और सत्य पर्वत पर शयन करते हैं।

१६१ कौसम— (संयुक्त प्रदेश के इलाहाबाद जिले में एक कस्बा)

इस स्थान के प्राचीन नाम कौशाम्बी, कौशांबीपुर, वत्स्य और वत्सय पट्टन हैं।

कौशाम्बी को कुशाम्ब ने बसाया था जो पुरुरवा से दसवीं पीढ़ी में थे।

महाराज चक्र ने जो अर्जुन से आठवीं पीढ़ी में थे, कौशाम्बी को, हस्तिनापुर के नष्ट होने पर अपनी राजधानी बनाया था।

यहाँ वररुचि कात्यायन का जन्म हुआ था।

श्री पद्म प्रभु स्वामी (छठे तीर्थङ्कर) के गर्भ और जन्म कल्याणक इस स्थान पर हुए थे, और यहाँ से तीन मील फफोसा पहाड़ी पर उन्होंने दीक्षा ली थी तथा कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया था।

भगवान बुद्ध ने बोध प्राप्त करने के पश्चात् छठा और नवाँ चतुर्मास यहाँ बिताया था।

भगवान बुद्ध के नख और शिखा यहाँ एक स्तूप में रक्खे थे, और उनकी सबसे पहली मूर्ति यहीं बनाई व रखी गई थी।

महात्मा बाकुल (बौद्ध) का यह जन्म स्थान था।

प्रा० क०—लङ्का के पाली ग्रंथों में लिखा है कि अपने समय के १६ बड़े से बड़े नगरों में से कौशाम्बी एक था। इस नगर का वर्णन रामायण में भी आया है। मेघदूत में कालिदास ने कौशाम्बी के राजा उदयन का जिक्र किया है। सोमदेव की वृहत् कथा में भी यहाँ के राजा उदयन का बखान है। रत्नावली नाटक की रङ्गभूमि, वत्स राजा की राजधानी कौशांबी ही है। महावंश ग्रन्थ में भी इस नगर का उल्लेख है। ललित विस्तार में लिखा है कि कौशांबी के राजा उदयन और भगवान बुद्ध एक ही दिन पैदा हुए थे। महाराज उदयन ने भगवान बुद्ध के जीवन काल ही में उनकी लाल चन्दन की मूर्ति बनवा कर अपने राज भवन के एक मन्दिर में रक्खी थी। भगवान बुद्ध की सबसे

विख्यात मूर्ति यहीं हुई है। ह्वानचांग के समय में यह मूर्ति एक पत्थर की छतरी के नीचे पुराने महल में रक्खी थी। उस समय महाराज अशोक के बनाये हुए यहाँ तीन बड़े स्तूप भी थे। एक में भगवान बुद्ध के नख और शिखा रक्खे थे। एक उस स्थान पर था जहाँ उन्होंने उपदेश दिये थे, और एक जहाँ उन्होंने अपनी छाया को छोड़ा था।

[श्री पद्मप्रभु स्वामी छठे तीर्थङ्कर हुए हैं। आपकी माता का नाम सुसीमा और पिता का नाम धारण था। आपका चिन्ह कँवल है। कोसमसे तीन मील फफोसा या पपोसा मे आपने दीक्षा ली और कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया था, और पार्श्वनाथ पर्वत पर निर्वाण लाभ किया था।]

राजा निचक्षु जो जन्मेजय के पौत्र थे, उन्होंने हस्तिनापुर के गंगाजी की बाढ़ से नष्ट हो जाने पर, कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया था। कहा जाता है कि कुशाम्भ ने, जो पुरुरवा से दसवीं पीढ़ी में थे, इस नगर को बसाया था। इस नगर की महिमा प्राचीन हिन्दू और बौद्ध ग्रंथों, दोनों हीमें कही गई है।

कथा सरित्सागर (तरंग १, अ० ३) के अनुसार वार्तिकार कात्यायन या वररुचि कोसम ही में पैदा हुए थे और पाटलिपुत्र के राजा नद के प्रधान मंत्री थे।

[महात्मा वाकुल का कौशाम्बी में जन्म हुआ था। जब उनकी माता यमुना में स्नान कर रही थी तब यह पानी में गिर पड़े। इन्हें एक मछली निगल गई। बनारस में एक मछली पकड़ी गई जिसके पेट में से यह जीवित निकले। इनकी माता को पता चला तो उन्होंने अपने पुत्र को वापस माँगा। जिस रमणी ने मछली खरीदी थी उसने देने से इनकार किया और अपना पालक पुत्र बना लिया था। मुआमला राजा तक पहुँचा उन्होंने फैसला किया कि वे दोनों के पुत्र हैं क्योंकि एक ने पैदा किया और दूसरी ने मोल लिया और पाला। इस प्रकार यह दोनो कुल के हुए और इनका नाम 'वाकुल' पड़ा। ६० साल की अवस्था में यह भगवान बुद्ध के शिष्य हुऐ और इतनी उम्र तक एक दिन बीमार नहीं पड़े थे। उसके बाद ६० साल वह और जीवित रहे और फिर भी कभी बीमार न पड़े। अन्त में यह अर्हत पद को प्राप्त हुए।]

व० द०— कोसम, इलाहाबाद से ३१ मील दक्षिण-पश्चिम यमुना नदी के बायें किनारे पर बसा हुआ है। उसकी तबाहियों के खेड़े ४ मील ३ फर्लांग के घेरे में है। तबाहियों के पश्चिम में कोसम इनाम, और पूर्व में कोसम

१६६ क्रौंच पर्वत— (देखिये मल्लिकार्जुन)

ख

१६७ खड्डर साहेब— (पञ्जाब प्रांत के अमृतसर जिले में एक स्थान)

यहाँ सिक्खों के द्वितीय गुरु श्री अंगद साहब ने शरीर छोड़ा था। गुरुद्वारा खड्डर साहेब के नाम से एक गुरुद्वारा यहाँ विद्यमान है।

१६८ खरोद— (देखिये नासिक)

१६९ खीर ग्राम—(बंगाल प्रांत में बर्दवान से २० मील उत्तर एक गाँव)

यह पीठों में से एक है, जहाँ सती के दहिने पैर की एक अँगुली गिरी पड़ी थी।

यहाँ की देवी का नाम जोगाध्या है।

१७० खुखुन्धो— (संयुक्त प्रांत के गोरखपुर जिले में एक स्थान)

इसके प्राचीन नाम काकँड़ीनगरी, काकन्दीपुरी और किष्किंधापुर हैं।

यहाँ पुष्पदन्त स्वामी (नवें तीर्थङ्कर) के गर्भ व जन्म कल्याणक हुए थे और यहीं उन्होंने दीक्षा ली थी तथा कैवल्य ज्ञानप्राप्त कयि था।

[श्री पुष्पदन्त स्वामी नवें तीर्थङ्कर हुए हैं। आप की माता रमा और पिता सुग्रीव थे। गर्भ, जन्म, दीक्षा और कैवल्य ज्ञान कल्याणक आपके खुखुन्धो अथवा काकंदी में हुए और निर्वाण पार्श्वनाथ पर्वत पर हुआ था। आप का चिन्ह मगर है।]

खुखुन्धो में पुष्पदन्त स्वामी का प्राचीन मन्दिर है।

१७१ खुपुआ डीह— (संयुक्त प्रांत के बस्ती जिले में एक स्थान)

इसका प्राचीन नाम शोभावती था।

यहाँ कनकमुनि, पाँचवें बुद्ध का जन्म हुआ था।

भगवान गौतम बुद्ध सातवें बुद्ध थे। उन्होंने कहा है कि उनसे पहले ६ बुद्ध हो चुके थे। कनक मुनि उनमें से पाँचवें थे। फाहियान ने लिखा है कि इनका जन्म स्थान कपिलवस्तु (भुइलाडीह) से लगभग ७ मील पर था। लङ्का के ग्रंथ कहते हैं कि उस नगर का नाम शोभावती था। ह्वानचांग लिखते हैं कि कनकमुनि के जन्म स्थान पर महाराज अशोक ने स्तूप बनवा दिया था।

खुपुआडीह, भुइलाडीह से ६ मील पश्चिम में है और शोभावती नगर का खण्डहर है। डीह के पूर्वी भाग में खुपुआ नामक छोटा गाँव है और ६ फर्लाङ्ग की दूरी पर कनक पुर ग्राम है। डीह के पश्चिमी आधे भाग के नीचे

(आदि ब्रह्मपुराण, ४१ वाँ अध्याय) समुद्र में स्नान करके कपिल हर भगवान् और वाराही देवी के दर्शन करने से देवलोक प्राप्त होता है। वह गुह्य क्षेत्र १० योजन विस्तार का है जिसमें जाने से पापों का नाश होता है।

व० द०—गंगासागर अर्थात् सागर टापू कलकत्ते से (जलमार्ग से) लगभग ६० मील दक्षिण है। ऐसा कहा जाता है कि गंगासागर में कपिल जी का स्थान गुप्त हो गया था और उसको वैष्णव प्रधान आचार्य रामानन्द जी ने प्रकट किया था। संगम के पास कपिल जी की एक पुरानी मूर्ति थी, जिसके एक ओर राजा भगीरथ और दूसरी ओर आचार्य रामानन्द जी की पुरानी मूर्तियाँ खड़ी थीं। गंगासागर तीर्थ में मकर की संक्रान्ति के समय ३ दिन स्नान होता है। इस समय यहाँ सागर और गंगा के संगम का चिह्न नहीं है। पहले यह संगम था। अब इस जगह समुद्र की खाड़ी है।

१७८ गंगेश्वरी घाट—(नैपाल में एक तीर्थ)

पार्वती जी ने इसी स्थान पर तपस्या की थी।

यह स्थान मरदारिका और बागमती नदियों के संगम पर बसा है। इसको शान्ता तीर्थ भी कहते हैं।

१७९ गंगोत्री—(संयुक्त प्रान्त में गढ़वाल में रुद्र हिमालय पर एक स्थान)

गंगोत्री से गंगा जी का निकलना माना जाता है। यथार्थ में गंगा जी इस स्थान से और उत्तर से निकली हैं। गंगोत्री से दो मील दक्षिण विन्दु सर नामक पवित्र सरोवर है, जहाँ भगीरथ ने गंगा जी को भूतल पर लाने की तपस्या की थी। गंगा जी का एक छोटा मन्दिर यहाँ उसी चट्टान पर बना है जिसपर बैठकर भगीरथ ने तपस्या की थी।

गंगोत्री से दो ही मील पर पाटनगिरि है जहाँ महायात्रा करके पाण्डवों ने और द्रौपदी ने १२ वर्ष तक शिव जी की तपस्या की थी।

पाटनगिरि में अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और द्रौपदी ने शरीर छोड़े थे तत्पश्चात् युधिष्ठिर स्वर्गारोहिणी पर्वत पर चले गए और वहाँ से स्वर्ग को गए।

स्वर्गारोहिणी पर्वत गंगोत्री के उत्तर में उन पाँच पहाड़ियों में से एक है जिन के बीच की भूमि सदा बर्फ से ढकी रहती है और जिसके सिरों से गङ्गा जी की धारा बहती है।

गङ्गोत्री में गङ्गादेवी का मन्दिर है और यात्रीगण यहीं तक जाकर लौट आते हैं, उसके और ऊपर नहीं जाते।

१८० गजपन्था—(बम्बई प्रान्त के नासिक ज़िले में एक छोटी पहाड़ी। इस स्थान से बलभद्रादि ८ कोटि (जैन) मुनियों ने मोक्ष पया है।

[श्रीबलभद्रस्वामी जैनियों के एक महामुनि थे। निर्वाण काण्ड में आप का वर्णन आया है)

नासिक शहर से ४ मील पर मसरूल ग्राम है। यहाँ से एक मीलपर ४०० फीट ऊँची गजपन्था पहाड़ी है। पर्वत पर पहाड़ी काट कर जैन मन्दिर बनाया गया है और ३२५ सीढ़ियाँ चोटी तक बनी हैं। माघ सुदी तेरस से तीन दिन तक यहाँ प्रति वर्ष मेला लगता है।

१८१ गण्डकी—(देखिए मुक्तिनाथ)

१८२ गया— (विहार प्रान्त में एक ज़िले का सदर स्थान)

गया में मनु के पौत्र (सुदयुम्न अर्थात् इलाके पुत्र) राजा गय ने १०० अश्वमेध यज्ञ और सैकड़ों हज़ारों बार पुरुषमेधयज्ञ किए थे।

गया से ६ मील दक्षिण बोधगया में भगवान बुद्ध ने बोधि प्राप्त की थी।

यहाँ से अगस्त्य मुनि सूर्य के पास गए थे।

पाण्डव लोग इस स्थान पर आए थे।

ब्रह्मा ने यहाँ यज्ञ किया था।

गया के समीप मलतङ्गी में मतङ्ग ऋषि का आश्रम था।

प्रा० क०—(अत्रिस्मृति, ५५ से ५८ श्लोक तक) नरकों से डरते हुए पितर यह इच्छा करते हैं कि जो पुत्र गया को जायेगा वह हमारा रक्षक होगा। मनुष्य फल्गू तीर्थ में स्नान और गदाधर देव के दर्शन करके और गयासुर के सिर पर चरण रख कर ब्रह्महत्या से भी छूट जाता है।

(वृहस्पति स्मृति, २० वाँ श्लोक) नरक के भय से डरते हुए पितर यह कहते हैं कि जो पुत्र गया को जायेगा वह हमारी रक्षा करने वाला होगा।

(कन्या स्मृति, शख स्मृति, लिखित स्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में गया में पिण्ड दान करने के माहात्म्य का वर्णन है।)

(महाभारत, वनपर्व ८४ वां अध्याय) गया में जाने से अश्वमेध का फल और कुल का उद्धार होता है। गया में महानदी और गया शिर नामक तीर्थ हैं। उसी जगह ब्राह्मण लोग अक्षयवट बतलाते हैं और उसी जगह पवित्र जल वाली फल्गु नामक महानदी है।

(६५ वाँ अध्याय) पाण्डव लोग गया में पहुँचे, जहां धर्मज्ञ राजा गय न संस्कार किया है। उसी जगह उसने अपने नाम से गयाशिर नामक तीर्थ स्थापित किया है। उसी जगह ब्रह्मसर नामक उत्तम तीर्थ है, जहाँ से अगस्त्य मुनि सूर्य के पास गये थे। उसी तीर्थ में राजा अमूर्त्तरयस के पुत्र राजा गय ने तालाब के तट पर बड़े बड़े अनेक यज्ञ किये हैं।

(द्रोण पर्व, ६४ वाँ अध्याय) उनकी कीर्त्ति स्वरूप अक्षयवट और ब्रह्म सरोवर तीनों लोकों में विख्यात होकर जगत् में स्थित है।

(अनुशासन पर्व, २५ वाँ अध्याय) गया के अन्तर्गत अश्मपृष्ठ में स्नान करने से पहली ब्रह्महत्या, निरविन्द पर्वत पर दूसरी ब्रह्महत्या, और क्रौंच पदी में स्नान करनेसे तीसरी ब्रह्महत्या छूट जाती है।

(वाल्मीकि रामायण—अयोध्या काण्ड, १०७ वां सर्ग) गय नामक एक यशस्वी पुरुष ने जो गया प्रदेश में यज्ञ करता था, पितर लोगों के पास यह वाक्य कहलाया कि पुत्रों में से कोई एक भी यदि गया को जायगा तो पितरों का उद्धार होगा।

(लिङ्ग पुराण, ६५ वां अध्याय) सूर्य के पुत्र मनु का सुद्युम्न नामक पुत्र था जो स्त्री रहने के समय इला कहलाता था। सुद्युम्न के तीन पुत्र हुए—उत्कल, गय और विनताश्व। इनमें से गय के नाम से गया बसी।

(वामन पुराण, ७६ वां अध्याय) गय राजा ने जहां १०० अश्वमेध यज्ञ और सैकड़ों हजारों बार मनुष्यमेध यज्ञ किया है, और मुरारि भगवान गदाधर नाम से जहाँ प्रसिद्ध रहे हैं वहीं गया तीर्थ है।

(६० वां अध्याय) वामन जी बोले कि गया मे गोपति देव, ईश्वर, त्रैलोक्यनाथ, वरद और गदा पाणि मेरे रूप हैं।

(वाराह पुराण, १८३ वां अध्याय) पितर कहने लगे कि गया में श्राद्ध कर अक्षयवट के नीचे पिण्ड दान करो।

(मत्स्यपुराण, २२ वां अध्याय) गया नाम से प्रसिद्ध पितृ तीर्थ सब तीर्थों में उत्तम है।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण-कृष्ण जन्म खण्ड, ७६ वाँ अध्याय) जो मनुष्य गया के विष्णु पद में पिण्ड दान और विष्णु की पूजा करता है वह पितृगण को और अपने को उद्धार कर देता है।

(पद्मपुराण-सृष्टि खण्ड, ११ वां अध्याय) श्राद्ध के विषय में गया के समान कोई भी तीर्थ नहीं है।

(सौर पुराण, ६७ वां अध्याय) परम गुप्त गया तीर्थ में भगवान् महादेव के चरण चिन्ह प्रतिष्ठित है। वहाँ पिण्डदान करने से पितरों को अक्षय तृप्ति होती है।

(कूर्म पुराण-अपरि भाग, ३४ वां अध्याय) परम गुप्त गया तीर्थ में श्राद्ध कर्म करने से पितर लोगों का पृथिवी में पुनरागमन नहीं होता है। गया में ब्रह्मा जी ने जगत के हित के लिये तीर्थ शिलापर चरण अङ्कित किया है।

(अग्नि पुराण—११५ वां अध्याय) देवतावों ने गया सुर को बरदान दिया कि तुम्हारा शरीर विष्णु तीर्थ, शिव तीर्थ और ब्रह्मतीर्थ होगा।

(गरुड़ पुराण-पूर्व खण्ड, ८२ वां अध्याय) पूर्व काल में सम्पूर्ण प्राणियों को क्लेश देने वाले गया नामक असुर ने उग्र तपस्या की। उसके उपरान्त ब्रह्मा ने गया को उत्तम तीर्थ जान कर वहां यज्ञ किया।

च० द०—श्राद्ध के लिये गया भारत वर्ष में प्रधान है। यहाँ प्रतिदिन श्राद्ध करने को यात्री पहुँचते हैं किन्तु आश्विन मास का कृष्ण-पक्ष गया में श्राद्ध का सर्व प्रधान समय है। उस समय भारत वर्ष के सभी प्रदेशों से लाखों यात्री गया में आते हैं। आश्विन के बाद पौष और चैत्र के कृष्णपक्ष में भी बहुत यात्री गया में पिण्ड दान करते हैं।

श्राद्ध के स्थान और विधि :—

(१) पूर्णिमा के दिन फल्गु नदी के एक बेदी पर खीर का श्राद्ध तथा तर्पण और पण्डा की चरण-पूजा होती है। फल्गु नदी गया के पूर्व बहती हुई दक्षिण से उत्तर को गई है। फल्गु का विशेष माहात्म्य नगा कूट और भस्म कूट से उत्तर और उत्तर-मानस से दक्षिण है।

(२) कृष्ण प्रतिपदा के दिन ५ बेदियों पर पिण्ड दान करना होता है ब्रह्म कुण्ड, प्रेतशिला, काग बलि, रामकुण्ड और राम शिला। विष्णुपद के मन्दिर से करीब २ मील फल्गु के पश्चिम किनारे पर राम शिला पहाड़ी है और इसके पूर्व बगल में राम कुण्ड नामक तालाब है। प्रेतशिला से लौटकर पहले इस तालाब के किनारे और फिर रामशिला पर पिण्डदान किया जाता है। लोग कहते हैं कि पहले रामशिला का नाम प्रेतशिला था। जब रामचन्द्र जी यहाँ आये तब से इसका नाम रामशिला हुआ है। रामशिला से पश्चिम ४ मील पर प्रेतशिला एक पहाड़ी है। प्रेतशिला के पास ही उत्तर

२४ गज लम्बा और इतना ही चौड़ा ब्रह्म कुंड नामक तालाब है। ब्रह्म कुंड में स्नान तर्पण करने के उपरान्त वहां पिंडदान करके प्रेतशिला पर जाकर पिंडदान करना होता है। कहते हैं कि पूर्व समय में प्रेतशिला का नाम प्रेतपर्वत था। जब रामचन्द्र के आने पर प्रेतशिला का नाम रामशिला हुआ तब प्रेतपर्वत को लोग प्रेतशिला कहने लगे। रामशिला से करीब २०० गज़ दक्षिण जमीन के भातर एक बट वृक्ष है, यहाँ एक वेदी के तीन पिंडदान दिये जाते हैं, कागबलि, यमबलि, और श्वान बलि।

(३) कृष्ण पक्ष की द्वितीया को उत्तर मानस, उदीची, कनखल, दक्षिण मानस और जिह्वा लोल, इन पांच वेदियों पर पिंडदान होता है। इनको पंच तीर्थ कहते हैं। विष्णु पद से करीब १ मील उत्तर लगभग ५० गज लम्बा और ५० जग चौड़ा उत्तर मानस तालाब है। लोग कहते है कि ब्रह्मा उत्तर मानस में श्राद्ध कर के इसी स्थान से मौनव्रत धारण कर, सूर्यकुंड तक गये थे, इसीलिये सम्पूर्ण यात्री उत्तरमानस में पिंडदान करने के पश्चात् मौन होकर सूर्यकुंड पर जाते हैं।

विष्णु पद से १७५ गज उत्तर की ओर ६५ गज लम्बा और ६० गज चौड़ा दीवार से घिरा हुआ सूर्यकुंड तालाब है। कुंड के उत्तर का हिस्सा उदीची, मध्य हिस्सा कनखल और दक्षिण हिस्सा दक्षिणमानस कहा जाता है। तीनों स्थानों पर तीन वेदियों के दो पिण्डदान होते हैं। सूर्यकुण्ड से क़रीब ८० गज़ दक्षिण फल्गु के किनारे पर जिह्वालोल तीर्थ है। वहाँ मैदान में एक पीपल का वृक्ष और ओसारा है। यहीं पिण्डदान होता है।

विष्णु पद से ३० गज़ पूर्वोत्तर फल्गु के किनारे गदाधर जी का मन्दिर है। पंच तीर्थ के पिण्डदान हो जाने के पीछे पञ्चामृत से गदाधर जी को स्नान कराया जाता है।

(४) कृष्ण तृतीया के दिन तीन वेदियों पर पिण्डदान होता है मतङ्ग वापी, धर्मारण्य और बोध गया।

गया से तीन मील दक्षिण नीलांजन नदी फल्गु नदी में मिली है। सङ्गम से क़रीब एक मील दक्षिण सरस्वती के मन्दिर तक इस नदी का नाम 'सरस्वती' है। नगरकूट के दक्षिण फल्गु का नाम 'महाना' है। सरस्वती से एक मील अधिक दक्षिण मतङ्गवापी नामक छोटी बावली है। वहाँ वापी के किनारे पर पिण्डदान होता है।

मतङ्गवापी से ½ मील पूर्व-दक्षिण धर्मारण्य स्थान की एक छोटी बारहदरी में यूपकूप नामक कुआँ है, यहाँ पिण्डदान करके पिण्डों को इसी कूप में डाल देते हैं। धर्मारण्य से एक मील अधिक पश्चिम बोध गया का जगत् प्रसिद्ध विशाल मन्दिर है। महाराज अशोक ने इस स्थान पर ईसा से २५० वर्ष पूर्व एक विहार बनवाया था, पर बाद को वहाँ एक विशाल मन्दिर बन गया। कई बार यह मन्दिर नष्ट हुआ और बना और इस समय भी वह बहुत बड़ा और प्रसिद्ध है। मन्दिर के उत्तर एक चबूतरे पर पीपल का पुराना वृक्ष है जिसके पास पिण्डदान होता है। इसी वृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध ने ६ साल ध्यान लगाया और उनको बौद्ध पद प्राप्त हुआ था। सम्राट् शशाङ्क ने इस वृक्ष को कटवा डाला था, पर पूर्ण वर्मा ने फिर उसकी रक्षा की।

बोधगया बौद्ध लोगों के लिये संसार में सब से अधिक पवित्र स्थान है। मन्दिर के पीछे भूमि पर इसके दीवार से लगा हुआ बौद्ध सिंहासन नामक पत्थर का चबूतरा है, जिस पर बैठ कर भगवान् बुद्ध सिद्ध हुए थे।

(५) कृष्णा चतुर्थी के दिन दो बेदियों पर पिण्डदान होता है, ब्रह्मसरोवर और कागबलि। गया के दक्षिण फाटक से लगभग ३५० गज़ पर १२५ गज़ लम्बा और ६ गज़ चौड़ा ब्रह्मसरोवर तालाब है। तालाब के जल में दक्षिण-पश्चिम के कोने के पास पत्थर की गदा खड़ी है। ब्रह्मसरोवर में स्नान तर्पण और पिण्डदान करके उसकी परिक्रमा करनी होती है। तालाब के पश्चिमोत्तर कोने से २० गज़ उत्तर वटवृक्ष के पास कागबलि, यमबलि और श्वानबलि तीन पिण्ड दिये जाते हैं। वृक्ष के चबूतरे के पूर्वोत्तर कोने के पास एक छोटी बारहदरी में एक चौकोना कुण्ड है उसी में यह तीनों पिण्ड डाल दिये जाते हैं। सरोवर के पश्चिमोत्तर कोने से ४८ गज़ पश्चिम एक छोटे मन्दिर के भीतर की दीवार में पत्थर खोद कर तारकब्रह्म बनाये गये हैं, जिनका दर्शन करना होता है। ब्रह्मसरोवर से १३० गज़ पश्चिम एक चबूतरे के मध्य में एक आम्र का वृक्ष है जिसको यात्री लोग पानी से सींचते हैं।

(६) कृष्ण पक्ष की पञ्चमी को तीन बेदी पर खीर का पिण्डदान होता है। सोलह बेदी वाले मण्डप में रुद्रपद और ब्रह्मपद के पास, तथा विष्णुपद के मन्दिर में विष्णुपद के निकट।

गया शहर के दक्षिण-पूर्व फल्गु नदी के पास गया के सब मन्दिरों में प्रधान और सबों में उत्तम विष्णु पद का विशाल मन्दिर खड़ा है। वर्तमान

मन्दिर से उत्तर फल्गु नदी में है। इसमें नीचे से ऊपर तक ६८ सीढ़ी हैं। ११वीं सीढ़ी के ऊपर गायत्री देवी का मन्दिर है। गया में और भी बहुत से मन्दिर, तालाब और घाट हैं।

बोधिगया—विष्णु पद मन्दिर से ६ मील दक्षिण फल्गु नदी और मोहन-नदी के सङ्गम से ऊपर बोधिगया एक गाँव हैं। यह स्थान बौद्ध लोगों के लिये सबसे अधिक पवित्र है। हजारों यात्री पवित्र पीपल के पेड़ के नीचे और प्राचीन जगत् विख्यात मन्दिर में पूजा चढ़ाते हैं। यहाँ भगवान बुद्ध ने ३६ साल की अवस्था में ५२२ बी० सी० में बोधि प्राप्त की थी। यह मन्दिर ८० फीट लम्बी ७८ फीट चौड़ी और ३० फीट ऊँची कुर्सी पर बना है और नीचे से १७० फीट ऊँचा है। मन्दिर में पूर्व की ओर मुख किये बुद्ध का विशाल मूर्ति बैठा है। जैसा ऊपर लिख गया है, महाराज अशोक ने इस मन्दिर के स्थान पर पहिले विहार बनवाया था। पीछे उस विहार की जगह पर प्रथम शताब्दी बी० सी० में दो ब्राह्मण भ्राताओं ने जिनके नाम शङ्कर और मुद्गरगामिन थे इस मन्दिर को बनवाया था। इसके पीछे कई बार मन्दिर की मरम्मत हुई। कुछ समय हुआ ब्रह्मा देश के सम्राट् ने इसकी मरम्मत करवाई और फिर अंग्रेजी सरकार ने इसको सुधरवाया। केवल सुधार में लाखों रुपये खर्च होते रहे हैं।

मन्दिर के पीछे भूमि पर उसके दीवार से लगा हुआ पूर्व वर्णित बौद्ध-सिंहासन नामक पत्थर का चबूतरा है (जिस पर बैठ कर बुद्धभगवान को सिद्धि प्राप्त हुई थी)। चबूतरे से दो तीन गज पश्चिम पीपल का पवित्र वृक्ष है। गया कस्बे से १६ मील उत्तर फल्गु नदी के पास ७ बौद्ध गुफाएँ हैं। सबसे बड़ी महाराज अशोक के समय की, अर्थात् लगभग २२०० वर्ष पुरानी है। यह ईसा मसीह से २५२ वर्ष पहले बनी थी।

नगर के दक्षिण ओर की ब्रह्मयोनि पहाड़ी बौद्धों की गयासीस (गयी-शीर्ष) पहाड़ी थी। अशोक के स्तूप के स्थान पर सनातनधर्मियों ने चण्ड या सावित्री देवी का मन्दिर स्थापित किया है।

मातङ्ग आश्रम—मातङ्ग ऋषि का आश्रम आनागन्दी में हैदराबाद राज्य में था और दूसरा आश्रम मलतङ्गी में गया में था।

१८३ गर्ग आश्रम—(कुल)—(देखिए गगासों)

१८४ गलता—(जयपुर राज्य में एक स्थान)

गलता गालव ऋषि का आश्रम है।

गलता एक प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ पयोहारी स्वामी कृष्ण दास जी की गद्दी है। स्वामी जी की गुफ़ा के सामने एक बार एक सिंह आ गया था आपने अपनी जंघाओं का मांस काट कर उसे खिला दिया था। मांस खाकर व्याघ्र चला गया, पर ईश्वर की लीला, जंघाएँ फिर ज्यों की त्यों हो गई।

गालव आश्रम—गलता के अतिरिक्त गालव ऋषि का आश्रम चित्रकूट पर भी था। (देखिए गलता)

१८५ गहमर—(संयुक्त प्रान्त के ग़ाज़ीपुर ज़िले में एक क़स्बा)

इस स्थान का प्राचीन नाम गेहमुर है।

यह मुरा दैत्य का स्थान था जिसे श्री कृष्ण ने मारा था।

१८६ गालव आश्रम—(कुल)—(देखिए गलता)

१८७ गिरिनार पर्वत—(गुजरात प्रान्त के जूनागढ़ राज्य में एक पहाड़ी)

इस पर्वत के अन्य नाम उर्जयन्तगिरि, रैवतक और राम गिरि हैं। जैन धर्मावलम्बियों का यह बहुत प्रसिद्ध पवित्र क्षेत्र है।

यहाँ श्री नेमिनाथ (बाईसवें तीर्थंकर) भगवान को मोक्ष प्राप्त हुआ था। अनेक तीर्थंकरों की यहाँ समवसरण सभायें हुई थीं।

वरदत्त मुनि, शम्भु कुमार, प्रद्युम्न कुमार और अनेक जैन मुनियों ने भी इस स्थान से मोक्ष पाया था।

यह महाभारत का रैवत गिरि कहा जाता है, जहाँ श्रीकृष्ण विहार करने और यदुवंशी उत्सव मनाने जाते थे।

भगवान दत्तात्रेय जी ने यहाँ निवास किया था।

प्रा० क० (महाभारत-आदि पर्व, २१९ वाँ अध्याय तथा अश्वमेध पर्व, ५९ वाँ अध्याय) रैवत गिरि पर यदुवंशी लोग उत्सव मनाने जाया करते थे।

(लिङ्ग पुराण-उत्तरार्द्ध तीसरा अध्याय) रैवत गिरि पर श्रीकृष्ण विहार किया करते थे।

[अवधूत दत्तात्रेय महर्षि अत्रि के पुत्रों में से एक थे। अत्रि ने अपनी पत्नी सती अनसूया के साथ बड़ी तपस्या के पश्चात् इन्हें पुत्र रूप में पाया था। श्री मद्भागवत के अनुसार यह विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक हैं। इन्हों ने अलर्क, प्रह्लाद, यदु आदि को तत्व ज्ञान का उपदेश दिया था।

के भीतर से भगवान् ने अपना हाथ बढ़ाकर आनन्द का हाथ थाम लिया था और आनन्द का सारा भय जाता रहा था। फाहियान ने लिखा है कि भगवान् के हाथ डालने से जो छेद बन गया था उसको उन्होंने देखा था।

इस प्रकार ह्यान चांग की बताई हुई दो गुफायें होनी चाहिये—एक इन्द्र शिला गुफा दूसरी गृद्ध गुफा—एक जहाँ इन्द्र ने प्रश्न किये, दूसरी जहाँ भगवान बुद्ध ने आनन्द का हाथ थामा था, इस समय गृद्ध गुफा ही मिलती है। नाम से प्रतीत होता है कि यह गृद्ध गुफा आनन्द का हाथ थामने वाली गुफा है। इसी के समीप इन्द्र शिला गुफा होगी। एक गुफा वहाँ और है, और यह फाड़ी फङ्खाड़ों से भरी है। प्रतीत होता है कि वही इन्द्र शिला गुफा होगी।

१८९ गिरिव्रज—(देखिये राजगृह)

१९० गुजराँवाला—(देखिये लाहौर)

१९१ गुटीघा—(देखिये नगरा)

१९२ गुड़गाँव—(पंजाब प्रान्त में एक ज़िले का सदर स्थान)

हाराज युधिष्ठिर ने गुरु द्रोणाचार्य को यह स्थान दान में दिया था, इससे इसका नाम 'गुरु ग्राम' पड़ा।

१९३ गुणावा—(बिहार प्रदेश के पटना जिले में एक स्थान)

यहाँ श्री गौतम स्वामी जैन पंचम गति (निर्वाण) को प्राप्त हुये थे।

[श्री गौतम स्वामी वसु मूर्ति शर्मा के पुत्र थे और ईसवी सन् से ६२५ वर्ष पूर्व पैदा हुये थे। इनकी विद्वत्ता, बुद्धि पटुता, और चातुर्य्य लोक प्रसिद्ध थी। सन् ईसवी के ५७५ वर्ष पूर्व ५० वर्ष की आयु में यह श्री महावीर स्वामी (२४ वे तीर्थंकर), जिन्हें ६६ दिन पहले मिती वैशाख सुदी दशमी को कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो चुका था, शास्त्रार्थ करने गए। श्री महावीर स्वामी के आदेश से वे गृहस्थाश्रम त्याग मुनि हो गए, और महावीर स्वामी के ११ गणधरों में से मुख्य गणधर होकर पूज्य हुये।]

गुणावा में गौतम स्वामी के चरण पादुका सहित एक छोटे तालाब के मध्य में एक उत्तम मन्दिर बना है। इसके आस पास कुछ तीर्थङ्करो की चरण पादुकायें हैं।

१९४ गुप्तेश्वर महादेव—(देखिए तीर्थ पुरी)

१९५ गुरपा पहाड़ी—(देखिए कुरकिहार)

१९६ गृद्धकूट पर्वत—(देखिए राजगृह)

१९७ गोंडा—(देखिए अयोध्या)

१९८ गोइँदवाल—(पंजाब प्रान्त के अमृतसर ज़िला में एक स्थान)
यहाँ गुरु नानक साहब ने बहुत दिनों एकान्त में तप किया था।
यहीं गुरु रामदास जी को गुरुवाई को गद्दी दी गई थी।
गुरु अर्जुन साहब का यहाँ जन्म हुआ था।

गुरु नानक साहब ने बुखार से मृत्यु पाये हुए एक आदमी को यहा जीवित कर दिया था।

गुरु राम दास जी ने और गुरु अमर दास जी ने यहाँ शरीर छोड़ा था।

[गुरु अर्जुनदेव जी सिक्ख सम्प्रदाय के पाँचवें गुरु हुए हैं। आप चौथे गुरु, श्री रामदास जी, के छोटे सुपुत्र थे, और गोइँदवाल में वैशाख बदी सप्तमी सम्वत् १६२० वि० (१५ अप्रैल सन् १५६३ ई०) को माता भानी जी के उदर से पैदा हुए थे। आप का विवाह मंडग्राम में कृष्ण चन्द जी की सुपुत्री श्रीमती गंगादेवी से हुआ। आप के पिता ने भादों सुदी १ सम्वत् १६३८ वि० को आप को गुरुवाई की गद्दी बख्शी। आप के बड़े भाई पृथ्वी चन्द के विरोध के कारण आप ने कुछ दिन के लिये अपना निवास स्थान अमृतसर से हटा कर बडाली ग्राम में कर लिया।

धर्म कार्य्यों के निर्वाह के लिये सिक्खों के कमाई में से आपने दशमांश लेने की मर्यादा क़ायम की, और सं० १६४५ वि० में हरिमन्दिर अमृतसर (स्वर्ण मन्दिर) की नींव रखी। सं० १६६१ वि० में आप ने चारों गुरुओं की वाणी एकत्रित की और साथ ही अपनी रचित वाणी तथा कुछ भक्त की जोड़ कर एक ग्रन्थ निर्माण किया, जो अबभी गुरु ग्रन्थ साहेब के नाम से प्रसिद्ध है। उसी साल ग्रन्थ साहेब के तय्यार हो जाने पर आपने उसे हरिमन्दिर में स्थापित किया। आप के विरोधियों ने सम्राट अकबर से आपकी बुराई की, और अकबर शाह अमृतसर आये पर आप के प्रति उनको भक्ति उत्पन्न हो गई। जब जहाँगीर बादशाह हुआ, और खुसरो ने बग़ावत की तो उन्हीं विरोधियों ने जहाँगीर को सुझाया कि गुरुजी ने खुसरो की सहायता की है। जहाँगीर ने आपको बन्दी कर लिया और अकथनीय कष्ट दिये। लाहौर में रावी नदी के किनारे आप ने जेठ सुदी ४ वि० सं० १६६३ (२० (मई सन् १६०६ ई०) को शरीर त्याग किया।]

गोइँदवाल में कई सिक्ख गुरुद्वारे हैं, जैसे 'बड़ा दरबार साहेब', 'बावली साहेब', 'कोठरी साहेब', 'चौबच्चा साहेब'।

१९९ गोकर्ण—(बम्बई प्रान्त के उत्तरी कनारा ज़िले में एक गाँव)

यहाँ रावण, विभीषण और कुम्भ कर्ण ने घोर तप किया था। चारुशीर्ष ने यहाँ भारी तपस्या की थी।

मारीच राक्षस राम चन्द्र के भय से भाग कर यहाँ रहने लगा था।

यहाँ अगस्त्य, सनत्कुमार इत्यादि बड़े बड़े महान् पुरुषों ने तप किया था।

प्रा० क०—(महाभारत-वनपर्व, ८८ वाँ अध्याय) दक्षिण की ताम्रपर्णी नदी के देश में विख्यात गोकर्ण तीर्थ है।

(२७७ वाँ अध्याय) लंका-पति रावण, खर की सेना का विनाश सुन कर रथारूढ़ हो त्रिकुलाचल और काल पर्वत को लाँघ कर आकाश मार्ग से रमणीय समुद्र को देखता हुआ गोकर्ण में पहुँचा। उसने वहाँ मारीच राक्षस को जो राम के डर से उस स्थान में आ पड़ा था, देखा।

(अनुशासन पर्व, १८वाँ अध्याय) चारु शीर्ष ने गोकर्ण तीर्थ में जाकर १०० वर्ष पर्यन्त तप किया। तब महादेव जी ने उसको सौ हज़ार वर्ष की परमायु तथा एक सौ पुत्र दिये।

(अध्यात्म रामायण, उत्तर काण्ड, प्रथम अध्याय) रावण ने कुम्भ करण और विभीषण के सहित गोकर्ण में जाकर कठिन तप किया था। जब एक सहस्र वर्ष बीत जाते थे तब वह अपना एक शिर काटकर अग्नि में होम कर देता था। इसी प्रकार दश सहस्र वर्ष बीतने पर जब वह अपना दसवाँ शिर काटने चला तब उसको वर देने के लिये ब्रह्मा प्रकट हुये।

(पद्मपुराण, उत्तर काण्ड, २२२ वाँ अध्याय) गोकर्ण क्षेत्र में मृत्यु होने से मनुष्य निस्सन्देह शिवरूप हो जाता है, उसका फिर जन्म नहीं होता।

(गरुड़पुराण-पूर्वार्ध, ८१ वाँ अध्याय) भारतवर्ष में गोकर्ण नामक उत्तम तीर्थ है।

(कूर्मपुराण—उपरिभाग—२४ वाँ अध्याय) तीर्थों में उत्तम गोकर्ण तीर्थ है, जिसमें गोकर्णेश्वर शिव लिङ्ग के दर्शन करने से मनोवाञ्छित फल का लाभ होता है, तथा वह मनुष्य शंकर को अति प्रिय हो जाता है।

(वराह पुराण—२१० वाँ अध्याय) लंका पुरी का रावण सम्पूर्ण पृथिवी को जीत अपने पुत्र मेघनाद के साथ स्वर्ग में गया। उसने वहाँ इन्द्रादि देवताओं को जीत स्वर्ग में अपना राज्य स्थापित किया। रावण ने अपने घर

जाने के समय अमरावती के गोकर्णेश्वर को लंका में स्थापित करने के अपने साथ ले लिया। मार्ग में एक स्थान पर गोकर्णेश्वर शिव लिङ्ग को रख कर वह सन्ध्योपासन करने लगा। जब चलते समय वह शिव लिङ्ग को उठाने लगा तब वह नहीं उठा। उस समय रावण उसी भाँति लिङ्ग को वहीं छोड़कर लंका को चला गया। उसी लिंग का नाम दक्षिण गोकर्ण हुआ।

(स्कन्दपुराण-ब्रह्मोत्तर खंड, दूसरा अध्याय) शिवजी कैलास और मन्दराचल के समान गोकर्ण क्षेत्र में भी सर्वदा निवास करते हैं। वहाँ महाबल नामक शिवलिङ्ग है, जिनको रावण ने बड़ा तप करके पाया और गोकर्ण क्षेत्र में स्थापित किया।

उस क्षेत्र में अगस्त्य, सनत्कुमार, उत्तानपाद, अग्नि, कामदेव, भद्रकाली, गरुड़, रावण, विभीषण, कुम्भकर्ण आदि व्यक्तियों ने तप कर के अपने अपने नाम से शिव लिङ्ग स्थापित किये थे। वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, स्कन्द, गणपति, धर्म, क्षेत्रपाल, दुर्गा आदि देवताओं के स्थान हैं। वहाँ के सब तीर्थों में कोटि तीर्थ मुख्य है और सब लिङ्गों में महाबल नामक शिव लिङ्ग श्रेष्ठ है। पश्चिम के समुद्र तीर पर ब्रह्महत्यादि पापों के नाश करने वाला गोकर्ण क्षेत्र है। उस क्षेत्र में फाल्गुन की शिवरात्रि को विल्व पत्र से शिव को पूजन करने से सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं।

(दूसरा शिवपुराण, ८ वाँ खण्ड, १० वाँ अध्याय) पश्चिम के समुद्र तट पर गोकर्ण नामक तीर्थ है। शिव जी को मन्दराचल आदि स्थानों के समान गोकर्ण भी प्रिय है वहाँ असंख्य मनुष्यों ने तप करके मोक्ष पाया है। उस तीर्थ के महाबल नामक शिव के लिङ्ग को रावण ने तप करके पाया था।

[महर्षि पुलस्थ, ब्रह्मा के मानस पुत्र थे। इनके पुत्र विश्रवा हुये। विश्रवा के सब से बड़े पुत्र कुबेर हुये, और एक असुर कन्या से **रावण-विभीषण और कुम्भ कर्ण** ये तीन पुत्र और हुये। तीनों ने घोर तप किया, और उनकी उग्र तपस्या देख, ब्रह्मा ने प्रकट होकर बरदान माँगने को कहा। रावण ने त्रैलोक्य विजयी होने का बरदान माँगा, कुम्भकर्ण ने छः महीने की नींद और विभीषण ने भगवद्भक्ति माँगी। रावण ने कुबेर को निकाल कर असुरों की प्राचीन पुरी लंका को अपनी राजधानी बनाया। कुम्भकर्ण और विभीषण भी वहीं रहने लगे। जब सीताजी के हर लाने पर राम चन्द्रजीने लंका पर चढ़ाई की तो विभीषण रामचन्द्र जी से आ मिले, और कुम्भकर्ण व रावण के मारे जाने पर लङ्का के राजा बनाये गये। मारीच इनके मामा थे।]

[सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ये ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। ब्रह्म शक्ति ने इन्हें सम्पूर्ण विद्या, उपासना पद्धति और तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया। सर्वदा पाँच वर्ष के बालकों के समान यह विचरते फिरते हैं। संसार के द्वन्द्व इनका स्पर्श नहीं कर पाते। इनके उपदेश और बुद्धि बल से संसार के प्राणियों का उद्धार हो रहा है।]

व० द०—गोकर्ण गाँव में महाबलेश्वर शिव का द्राविड़ियन ढाँचे का बड़ा मन्दिर बना हुआ है जो मध्यकालीन द्रविड़ कला की एक सुन्दर कृति है। मन्दिर में सर्वदा १०० से अधिक दीप जलाये जाते हैं। भारतवर्ष से सभी विभागों के यात्री खास करके पर्यटन करने वाले साधु गोकर्ण में जाते रहते हैं।

२०० गोकुल—(देखिये मथुरा)

२०१ गोदना—(बिहार प्रान्त में छपरा जिले में एक बस्ती)

इसका प्राचीन नाम गोदान है। यहाँ राजा जनक ने एक ब्राह्मण वध के प्रायश्चित्त के लिये गौवों का दान किया था। इस स्थान को गौतम आश्रम भी कहते हैं।

गोदना छपरा से पच्छिम ७ मील पर है। पहिले गंगा जी इस स्थान के समीप बहती थीं, और कहा जाता है कि भगवान गौतम बुद्ध ने पाटलिपुत्र से लौटते समय गंगा जी को यहाँ पार किया था, जिससे इसका नाम गौतम आश्रम पड़ा। पर यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती। न्याय दर्शन के लिखने वाले गौतम ऋषि का आश्रम भी जनकपुर के समीप था, यहाँ नहीं था, पर सम्भव है कुछ दिन यहाँ रह लिये हों।

२०२ गोपेश्वर—(हिमालय पर्वत के गढ़वाल प्रान्त में एक बस्ती)

स्कन्दपुराणानुसार इस स्थान पर शिव जी ने कामदेव को भस्म किया था।

(स्कन्दपुराण—केदारखण्ड, प्रथम भाग, ५५ वाँ अध्याय) अग्नि तीर्थ के पश्चिम भाग में गोस्थल नामक स्थान है जहाँ पार्वती के सहित महादेव जी सर्वदा निवास करते हैं। उस स्थान पर शिव जी का आश्चर्यजनक त्रिशूल है जो बल पूर्वक हिलाने से नहीं डोलता है, और एक पुष्प वृक्ष है जो अकाल में भी सर्वदा पुष्पित रहता है। पूर्वकाल में शिव जी ने उसी स्थान पर कामदेव को भस्म किया था और काम की स्त्री रति ने शिव जी

को प्रसन्न करके दूसरे जन्म में काम को रूपवान किया था। तभी से उस स्थान पर शिव जी रतीश्वर नाम से प्रसिद्ध हो गये।

गढ़वाल देश के बड़ी बस्तियों में से गोपेश्वर एक बस्ती है। गोपेश्वर का मन्दिर एक बड़े चौगान के मध्य में खड़ा है। मन्दिर के बाहर खरिक के मोटे वृक्ष पर और पद्म के पतले पेड़ पर लिपटी हुई कल्पलता नामक वँवर (बेल) है। वँवर पुरानी है और सब ऋतुओं में फूल देती है इसलिए उसको लोग कल्पलता कहते हैं। मन्दिर के बाहर चौगान के भीतर लगभग ६ हाथ ऊँचा शिव का त्रिशूल खड़ा है। उसके खड़े दण्डे में एक फरसा लगा है।

रामायण के अनुसार शिव जी ने कामदेव को कारों, ज़िला बलिया, में भस्म किया था—(देखिये कारों)

२०३ **गोमती द्वारिका**—(देखिये द्वारिका)

२०४ **गोमन्तगिरि**—(गोआ के समीप पच्छिमी घाट में एक अकेली पहाड़ी)

कहा जाता है कि श्री कृष्ण और बलराम ने जरासन्ध को यहाँ हराया था। गोमन्तगिरि की चोटी पर गोरक्ष तीर्थ है। पद्मपुराण में गोमन्त देश का उल्लेख है।

२०५ **गोरखपुर**—(संयुक्त प्रान्त में एक कमिश्नरी का सदर स्थान) यहाँ गुरु गोरखनाथ की समाध और गद्दी है।

गुरु नानक यहाँ आये थे।

[**गुरु गोरखनाथ** जी हठ योग के सर्व श्रेष्ट आचार्य थे, और भर्तृहरि तथा गोपीचन्द इनके शिष्यों में थे। गुरु मत्स्येन्द्रनाथ आपके गुरु थे। इस 'नाथ' योग सम्प्रदाय के आदि आचार्य श्री आदि नाथ विश्वेश्वर हैं और इन्हीं से नाथ संप्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ है। श्री सिद्ध मत्स्येन्द्र नाथ को इन्हीं से योग दीक्षा मिली थी।

श्री मत्स्येन्द्र नाथ के प्रादुर्भाव की कथा—स्कन्दपुराण (नाग खण्ड, २६२ वें अध्याय) तथा नारदपुराण (उत्तर भाग) में बड़ी रोचकता के साथ लिखी है। नेपाल के अधिष्ठातृ देवता गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी ही हैं।]

गोरखपुर का ज़िला मेमन सिंह (पाकिस्तानी बङ्गाल) के बाद हिन्दुस्तान में सब से बड़ा ज़िला था। अब उसमें से दूसरा ज़िला देवरिया बन जाने से छोटा हो गया है। शहर में कोई शान नहीं है।

रेलवे स्टेशन से २ मील पश्चिमोत्तर एक शिखरदार मन्दिर में गुरु गोरखनाथ की समाधि और गद्दी है। इसके आसपास कई मन्दिर और इस सम्प्रदाय के लोगों की सैकड़ों समाधियाँ हैं। गद्दी के साथ अच्छी जायदाद लगी है। गोरखाली (नैपाल) और गोरखपुर दोनों का नाम श्री गोरखनाथ जी ही के नाम से पड़ा है।

२०६ गोलकुण्डा—(देखिये उड्डीपुर)

२०७ गोलगढ़—(काठियावाड़ प्रदेश में एक गाँव)

इसी के समीप दुर्वासा ऋषि का आश्रम था।

पिंडारक तीर्थ यही है। श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब को ऋषि ने यहीं शाप दिया था कि जो मूसल उससे पैदा होगा उसी से यदुवंश का नाश होगा।

विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वशिष्ठ और नारद ऋषि ने यहाँ वास किया था।

प्रा० क०—(महाभारत, वन पर्व, ८२ वाँ अध्याय) द्वारिका पुरी में जा कर पिंडारक तीर्थ में स्नान करने से बहुत सुवर्ण मिलता है।

(श्रीमद्भागवत्-एकादशस्कंद, प्रथम अध्याय) विश्वामित्र, असित, कण्व दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वशिष्ठ, नारद आदि ऋषि पिंडारक में वास करते थे।

[महर्षि नारद के पूर्व जन्म के सम्बंध में श्रीमद्भागवत् में लिखा है कि यह पहिले दासी-पुत्र थे। जिस गाँव में यह रहते थे वहाँ एक बार चातुर्मास बिताने को बहुत से महात्मा एकत्र हुये। इन्हें उन महात्माओं के पत्तलों की बची जूठन खाने को मिल जाती थी और भगवान् की कथा श्रवण करने को मिलती थी। इससे इनका अन्तःकरण शुद्ध होगया और यह जङ्गलों को चले गये। वहाँ इन्हें भगवान् के दर्शन हुये। उस शरीर को छोड़ कर कल्प के अन्त में यह ब्रह्मा जी के मानसपुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए और तब से भगवान के गुणों को गाते रहते हैं। इधर की बातें उधर लगा कर झगड़ा भी लगा देते हैं। इनको भगवान का 'मन' कहा गया है।]

[महर्षि अंगिरा ब्रह्मा के एक मानस पुत्र और प्रजापति थे। इनकी तपस्या और उपासना इतनी तीव्र थी कि इनका तेज और प्रभाव अग्नि के अपेक्षा भी अधिक बढ़ गया। इनके पुत्रों में बृहस्पति जैसे ज्ञानी और अनेकों मन्त्र द्रष्टा थे।]

व० द०—गोलगढ़ पोरबन्दर से लगभग ४० मील पर है। पिंडारक तीर्थ द्वारिका से १६ मील पूर्व है।

दुर्वासा आश्रम—विहार प्रांत के भागलपुर ज़िले में कोलगाँव (कलह ग्राम—ऋषि दुर्वासा के स्वभाव के कारण यह नाम पड़ा) से २ मील उत्तर और पाथर घाटा से २ मील दक्षिण खल्लों पहाड़ी की सबसे ऊँची चोटी पर भी इन ऋषि का आश्रम माना जाता है। गया ज़िले में रजौली से ७ मील पूर्वोत्तर में दुवाउर की पहाड़ी में भी इनका निवास स्थान बताया जाता है। भारतवर्ष के पश्चिमी भाग में गोलगढ़ में इनका आश्रम स्थित किया गया है।

२०८ गोला कोकर्ण नाथ—(संयुक्त प्रान्त के लखीम पुर ज़िले में एक स्थान)

यहाँ गोकर्ण नाथ महादेव हैं जिनको ब्रह्मा ने स्थापित किया था। इस स्थान का नाम उत्तर गोकर्ण क्षेत्र और उत्तर गोकर्ण तीर्थ है।

प्रा० क०—(बराह पुराण, उत्तरार्ध, २०७ वाँ अध्याय) एक समय महर्षि सनत्कुमार ने ब्रह्मा से पूछा कि शिव जी का नाम उत्तर गोकर्ण, दक्षिण गोकर्ण और शृंगेश्वर किस भाँति हुआ ? जहाँ इनका निवास है वह कौन तीर्थ है ? ब्रह्मा जी ने कहा कि एक समय शिव जी मन्दराचल के उत्तर किनारे के मुंजवान पर्वत सेश्लेष्मातक वन में चले गये। इसके पश्चात् इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णु को लेकर, शिव जी को खोजने चले। शिव जी ने मृग रूप धारण किया था। देवताओं ने उनको पहिचान लिया और सब देवता उनको पकड़ने को चारों ओर से दौड़े। इन्द्र ने मृग के शृंग का अग्र भाग जा पकड़ा, ब्रह्मा ने बिचला भाग पकड़ लिया और शृंग का मूल भाग विष्णु के हाथ में आया। जब वह शृंग तीन टुकड़ा होकर तीनों के हाथों में रह गया और मृग अन्तरधान हो गया तो आकाशवाणी हुई कि हे देवताओ तुम हमको नहीं पा सकोगे, अब शृंग मात्र के लाभ से सन्तुष्ट हो जाओ। इन्द्र ने शृंग के निज खंड को स्वर्ग में स्थापित किया, ब्रह्मा ने अपने हाथ के मृग खण्ड को उसी भूमि में स्थापित कर दिया। दोनों खंडों का गोकर्ण नाम प्रसिद्ध हुआ। विष्णु ने भी शृंग के खंड को लोक के हित के लिए स्थापित किया जिसका नाम शृंगेश्वर हुआ। जिन स्थानों में शृंग के खंड स्थापित हुये उन स्थानों में शिव जी निज अंश कला से स्थापित हो गये।

रावण इन्द्र को जीत कर अमरावती से शृंग को उखाड़ कर लिङ्ग को ले चला पर कुछ दूर जाकर शिव लिङ्ग को भूमि में स्थापित करके सन्ध्योपासन

करने लगा। जब चलने के समय वह शिव लिङ्ग रावण के उठाने से नहीं उठा तो वह उसे छोड़ कर चला गया। उसी लिङ्ग का नाम दक्षिण गोकर्ण प्रसिद्ध हुआ। और ब्रह्मा के स्थापित शृंग खंड का नाम उत्तर गोकर्ण है।

(कूर्म पुराण, उपरिभाग, ३४ वां अध्याय) उत्तर गोकर्ण में शिव का पूजन और दर्शन करने से सम्पूर्ण कामना सिद्ध होती है। यहाँ स्थानु नामक शिव हैं।

व० द०—गोकर्ण नाथ महादेव का सुन्दर मन्दिर एक बड़े तालाब के निकट बना है। शिव लिङ्ग के ऊपर गहराई है। साल में दो बार गोकर्ण में मेला लगता है, एक फाल्गुन की शिवरात्रि को और दूसरा चैत्र की शिवरात्रि को। चैत्र वाले मेले में लाखों यात्री आते हैं और दो सप्ताह तक मेला रहता है।

२०९ गोवर्धन—(देखिए मथुरा)

२१० गोहाटी—(आसाम प्रांत का एक जिला)

नरकासुर का पुत्र भगदत्त जो अर्जुन के हाथ से कुरुक्षेत्र में मारा गया था और कामरूप का राजा था, उसकी यह राजधानी थी।

प्राचीन काल में गोहाटी का नाम प्राग् ज्योतिष पुर था। यहीं से श्री कृष्ण चन्द्र नरकासुर (भौमासुर) को मार कर १६१०० राजकुमारियों को द्वारिका ले गये थे।

यह पीठों में से एक है जहाँ सती के शरीर का एक भाग गिरा था।

यह जिला महापुरुषिया वैष्णों का प्रधान स्थान है। आसाम का प्राचीन नाम कामरूप था।

प्रा० क०—(महाभारत उदयोग पर्व, चौथा अध्याय) पूर्व के समुद्र के पास का रहने वाला भगदत्त है।

(१६ वां अध्याय) राजा भगदत्त के सङ्ग चीन और किरात देश की सेना हस्तिनापुर में दुर्योधन की सहायता के लिये आई।

(कर्णपर्व, ५ वां अध्याय) अर्जुन ने राजा भगदत्त को, जो पूर्व समुद्र के निकट के अनूप देश के किरातों का स्वामी, इन्द्र का प्यारा मित्र, और क्षत्रियों के धर्म में सदा निरत रहने वाला था, कुरुक्षेत्र के संग्राम में मार डाला।

(शान्ति पर्व, १०१ वां अध्याय) प्राग् देशीय योद्धा लोग हाथियों के युद्ध में निपुण होते हैं।

(श्री मद्भागवत—दशम स्कंध, ५६ वाँ अध्याय) श्री कृष्ण चन्द्र सत्यभामा के सहित गरुड़ पर चढ़ भौमासुर के नगर प्राग्ज्योतिषपुर में गये। वहाँ पर्वत, जल, अग्नि, पवन और शस्त्र का क़िला था। भौमासुर जिसका नाम नरकासुर भी है, गजारूढ़ सेना सहित बाहर निकला। बड़ा युद्ध करने के पश्चात् श्री कृष्ण भगवान ने पृथिवी के पुत्र भौमासुर का सिर अपने चक्र से काट डाला और १६,१०० कन्याओं को, जिनको भौमासुर ने छीन कर एकत्र किया था, पालकियों में बैठा कर चार चार दाँत वाले ६४ हाथियों सहित द्वारिका पुरी में भेज दिया। वहाँ सम्पूर्ण कन्याओं से श्री कृष्ण चन्द्र का विवाह हुआ। (यह कथा आदि महा पुराण के ६१ वें अध्याय में भी है।)

व० द०—गोहाटी ब्रह्मपुत्र नदी के बायें अर्थात् दक्षिण किनारे पर एक छोटा क़स्बा है। भगदत्त के वंशधरों के महल और मंदिरों की निशानियाँ अब तक उनका पराक्रम प्रकट करती हैं। मुसलमानों ने उनके वंश का विनाश किया था। लोग कहते हैं कि कूच विहार, दरंग, विजनी और सदिकलो के राजा उसी राजवंश से हैं।

कहा जाता है कि बङ्गाल प्रान्त के राजशाही ज़िला में भगदत्त पुर नाम का जो कस्बा है वहाँ राजा भगदत का देहाती महल था।

ब्रह्मपुत्रा नदी के दूसरी तरफ़, उत्तर में, अश्वक्रांता नामक पर्वत है। कहा जाता है इसी पर्वत पर श्री कृष्ण और नरकासुर का युद्ध हुआ था।

२११ गौड़—(देखिए लखनौती)

२१२ गौतम आश्रम—(कुल) (देखिए त्र्यम्बक)

२१३ गौरी कुंड—(देखिये त्रियुगी नारायण)

२१४ ग्वालियर—(मध्य भारत के ग्वालियर राज्य की राजधानी)

प्राचीनकाल में यह स्थान दिगम्बर जैनियों का विद्या-केन्द्र था और जैनियों की सबसे पुरानी यात्रा थी।

इसके पर्वत का प्राचीन नाम गोपगिरि है।

सूर्यसेन नामक एक कच्छवा प्रधान कोढ़ी था, उसने शिकार खेलते समय गोपगिरि पहाड़ी के पास जिस पर अब क़िला है, ग्वालिया साधु से पानी लेकर पिया जिससे वह आरोग्य हो गया। उसकी कृतज्ञता में उसने उस पहाड़ी पर एक क़िला बनवाया और उसका नाम ग्वालियर रक्खा। सूर्यसेन ने सन् २७५ ई० में सूर्य का मन्दिर और सूर्यकुण्ड भी खुदवाया था।

जितनी जैन मूर्तियाँ यहाँ हैं, गिनती में इतनी और इनके समान बड़ी जैन मूर्तियाँ उत्तरी हिंदुस्तान के दूसरे किसी स्थान में नहीं हैं। कुण्ड के अखीर पश्चिम में जैनों के बाईसवें तीर्थङ्कर, श्री नेमनाथ की ३० फ़ीट ऊँची मूर्ति है।

सङ्गीताचार्य तानसेन की यहाँ समाध है। तानसेन का नाम त्रिलोचन मिश्र था। यह ग्वालियर के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे और इनके पितामह इनके साथ ग्वालियर नरेश महाराज राम निरञ्जन के यहाँ जाया करते थे। इन्हीं महाराज ने त्रिलोचन जी को तानसेन की उपाधि दी थी और तभी से यह तानसेन कहलाने लगे। यह स्वामी हरिदास जी के शिष्य थे। एक शाही घराने की कन्या से विवाह करने से यह मुसलमान हुए थे। तानसेन से बड़ा गायनाचार्य दूसरा नहीं हुआ। यह महाराज रीवां के दरबार में थे। वहाँ से अकबर ने अपने यहाँ बुला लिया था, और महाराज रीवां को भेजना पड़ा। इनकी समाध पर एक इमली का पेड़ था। लोगों का विश्वास था कि उसकी पत्ती खाने से आवाज़ अच्छी हो जाती है। गायिकायें तमाम पत्ती खा गईं और पेड़ सूख गया। अब दूसरा पेड़ लगा है। ग्वालियर का क़िला पहाड़ी काट कर बना है और प्रसिद्ध है।

घ

२१५ घुसमेश्वर—(हैदराबाद दक्षिण के राज्य में यलोरा गुफाओं का स्थान)।

इस स्थान का प्राचीन नाम घृष्णेश्वर, इलवलपुर, मणिमतपुर, शिवालय व देव पर्वत हैं।

घृष्णेश्वर शिव लिङ्ग महादेव जी के १२ ज्योति लिङ्गों में से एक है।

वातापी दैत्य जिसे महर्षि अगस्त्य ने मारा था, उसके भाई इलवल का यह निवास स्थान था।

यलोरा अपनी गुफाओं के लिये जो पर्वत में काट कर बनाई गई हैं, जगत प्रसिद्ध है।

प्रा० क०—(शिव पुराण) शिव जी के १२ ज्योति लिङ्गों में से घुसमेश्वर शिव लिङ्ग शिवालय में स्थित है।

(ज्ञान संहिता, ५८ वाँ अध्याय) दक्षिण में देव संघक (देवगिरि) पर्वत के निकट सुधर्मी नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसके कोई सन्तान न हुई। अपनी स्त्री सुदेहा के हठ करने पर उसने घुश्मा

नामक एक स्त्री से दूसरा विवाह कर लिया। घुश्मा नित्य १०८ पार्थिव का पूजन करती थी, और पूजन के उपरान्त उन्हें एक तालाब में चढ़ा देती थी। इस प्रकार एक लाख लिङ्गों का पूजन करने पर उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। सम्बन्धियों में घुश्मा की प्रशंसा होने लगी इससे सुदेहा को अपने सौत के पुत्र से ईर्षा हो गई और एक दिन उसने उसे सोते हुये मार डाला। जिस तालाब में घुश्मा पार्थिव का विसर्जन करती थी उसी में सुदेहा ने उसके पुत्र केशव को डाल दिया। इस समाचार को पाकर भी घुश्मा अपने पूजन से न हटी और पूजन करके पार्थिव को सरोवर में विसर्जन करने गई। लौटते समय सरोवर के किनारे उसका पुत्र उसको जीवित मिला, और उसी समय घुश्मा की दृढ़ भक्ति और सन्तोष देख कर शिवजी ने ज्योति रूप होकर उसे दर्शन दिया और बर माँगने को कहा। घुश्मा ने कहा हे स्वामी, आप लोक रक्षा के लिये यहीं स्थित हो जाइये। महादेव जी ने कहा कि हे देवि! तेरे ही नाम से मेरा नाम घुसमेश्वर होगा और यह सरोवर जो लिङ्गों का आलय है शिवालय नाम से प्रसिद्ध होगा। ऐसा कह शिवजी लिङ्ग स्वरूप हो कर पार्वती सहित स्थित हो गये। इस लिङ्ग का दर्शन करके मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान उसके सुख की वृद्धि होती है।

व० द०—अजन्ता के समान यलोरा की गुफाएँ भी संसार भर में प्रसिद्ध हैं। यह पहाड़ी ही में पहाड़ी काट कर बनाई गई हैं। इनमें से 'कैलाश' जो सबसे विख्यात है बादामी (महाराष्ट्र देश की प्राचीन राजधानी जो अब बीजापुर जिला में है) के सम्राट् कृष्ण ने आठवीं शताब्दी ईस्वी में अपनी विजयों के यादगार में बनवाई थी। 'विश्वकर्मा' गुफा और समीप के विहार ६०० से ७५० ईस्वी तक के बने हुये हैं।

वेरुल गाँव से आधे मील दूर एक छोटी नदी के किनारे घुसमेश्वर का शिखरदार मन्दिर है। नदी के किनारे एक छोटा पक्का घाट है। वेरुल बस्ती और घुसमेश्वर शिव की बस्ती के बीच में एक तालाब के मध्य में एक बड़ा मन्दिर और चारो कोनों पर चार छोटे मन्दिर हैं। घुसमेश्वर शिवलिंग आधा हाथ ऊँचा है। मन्दिर में रात दिन दीपक जलता है।

च

२१६ चकर भण्डार— (देखिए सहेट महेट)

२१७ चक्रतीर्थ— (देखिए आना गन्दी, त्रयम्बक और रामेश्वर)

२१८ चन्देरी— (ग्वालियर राज्य में एक कस्बा)

यह स्थान शिशुपाल की राजधानी प्राचीन चेदि है। इसे चन्देली भी कहते थे।

इसके चारों ओर विशाल चेदि राज्य था।

प्रा० क०— (महाभारत, द्रोणपर्व, २२वाँ अध्याय) चेदि राज शिशुपाल का पुत्र धृष्टकेतु कुरुक्षेत्र के संग्राम में पांडवों की ओर से लड़ा।

(श्री मद्भागवत, दशम स्कन्ध, ५३वाँ अध्याय) चन्देली का राजा दमघोष का पुत्र शिशुपाल था, जो रुक्मिणी से विवाह करने के लिये कुंडिनपुर में गया। यहाँ से वह कृष्णचन्द्र से पराजित होकर अपने घर लौट गया। रुक्मिणी का हरण करके श्रीकृष्णचन्द्र द्वारिका में ले आये।

चेदि राज्य मालवा से लेकर महानदी के किनारे तक फैला हुआ था बल्कि बिहार प्रांत के मध्य तक था। इसके कई टुकड़े हो गये थे जिनमें एक टुकड़ा 'दाहल' और एक 'महाकौशल' था। इसी से कई स्थान हैं जो चेदि राज्य की राजधानी कहलाते हैं। एक राजधानी नगरीवा के स्थान पर नर्मदा पर थी। दूसरी मणिपुर, जिसे अब शिरपुर कहते हैं, महानदी पर थी। मणिपुर को चित्रांगदपुर भी कहते थे और इस देशभर को चित्रांगदपुर कहा जाता था। मणिपुर के राजा बभ्रुवाहन ने युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को रोका था।

जबलपुर से ६ मील पर तेवर वा त्रिपुरी है। यह भी कलचूरी वंशी चेदि राजाओं की राजधानी थी। हैम कोष में इसका नाम चेदि नगरी लिखा गया है। अनुमान होता है कि चित्रांगदा से इस महान् राज्यका नाम चेदि पड़ा था।

[राजा दमघोष के पुत्र और धृष्टकेतु के पितर महाराज शिशुपाल चेदि राज्य के प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। रुक्मिणी से इनका विवाह होने वाला था, पर श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणी को हर ले गये। इसके पश्चात् महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में जब श्रीकृष्णचन्द्र जी को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया तो शिशुपाल से न रहा गया और उन्होंने श्रीकृष्ण की निन्दा के पुल बाँध दिये। अन्त में श्रीकृष्ण ने वहीं इनका सिर उतार लिया। कुरुक्षेत्र की लड़ाई में इनके पुत्र पांडवों की ओर से लड़े थे।]

व० द०—चन्देरी ललितपुर से १८ मील पश्चिम है। अब चन्देरी की तवाहियाँ चारों तरफ फैली हुई हैं। एक समय यह बड़ा प्रसिद्ध नगर था।

आईने-अकबरी में लिखा है कि चन्देरी में १४,००० पत्थर के मकान, ३८४ बाज़ार, ३६० कारिवाँ सराय और १२,००० मस्जिदें थीं। एक ऊँची पहाड़ी पर यहाँ क़िला है जिसने एक समय ८ महीने के मुहासिरे को बर्दाश्त किया था।

२१९ चन्द्रगिरि— (देखिये श्रवण बेल गुल)

२२० चन्द्रपुरी— (संयुक्त प्रदेश के बनारस ज़िले में एक ग्राम)

यहाँ श्री चन्द्रनाथ (चन्द्र प्रभु, ८वें तीर्थङ्कर) के गर्भ व जन्म कल्याणक हुये थे, और यहीं उन्होंने दीक्षा ली थी तथा कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया था।

[श्री चन्द्रप्रभु (८वें तीर्थङ्कर) की माता का नाम सुलक्षणा और पिता का नाम महासेन था। आपका चिन्ह चन्द्र है। आपके गर्भ, जन्म, दीक्षा व कैवल्य ज्ञान कल्याणक चन्द्रपुरी में, तथा निर्वाण पार्श्वनाथ पर हुआ था।]

चन्द्रपुरी में श्री चन्द्रनाथ का मन्दिर और एक धर्मशाला है। इस गाँव को चन्द्रावटी भी कहते हैं, और यह गङ्गा जी के तट पर सारनाथ से ११ मील तथा बनारस से १७ मील पर स्थित है।

२२१ चन्द्रावटी— (देखिये चन्द्रपुरी)

२२२ चमत्कारपुर— (देखिये आनन्दपुर)

२२३ चम्पानगर— (देखिये नाथ नगर)

२२४ चम्पापुरी— (देखिये नाथ नगर)

२२५ चम्पारण्य— (देखिये चौरा)

२२६ चरणतीर्थ— (देखिये बेस नगर)

२२७ चात्सू— (देखिये वाराह क्षेत्र)

२२८ चाफल— (देखिये जाम्ब गाँव)

२२९ चामुण्डा पहाड़ी— (देखिये मैसूर)

२३० चारसदा — (सीमाप्रांत में पेशावर ज़िला में एक बस्ती)

यह स्थान प्राचीन पुष्कलावती या पुष्करावती है।

महाराज रामचन्द्र के भ्राता भरत के पुत्र पुष्कर ने इसे बसाया था। महाराज रामचन्द्र ने अपना साम्राज्य बाँटते समय यह देश पुष्कर को प्रदान किया था।

पुष्करावती गान्धार या गान्धर्व देश की राजधानी थी।

यह स्थान पेशावर से ७ मील पश्चिमोत्तर में है।

२३१ चितैमन्दारपुर—(देखिये शरदी)

२३२ चित्तौड़—(राजपूताने के मेवाड़ राज्य में एक माख्यात किला और कस्बा)

अपने दुर्दिनों में अन्तिम बार डूबते हुए भारत-मान की रक्षा इसी स्थान पर हुई थी।

आर्य गौरव का सूर्य अन्तिम बार इसी स्थान से चमका था।

महाराज रामचन्द्र जी के वंशधर हिंदू-पति, हिंदू-कुल गौरव, धुरन्धर वीर महाराणाओं की यह राजधानी रही है।

प्रा० क०—चित्तौड़ का राजवंश महाराज रामचन्द्र जी की सन्तान है। इस वंश ने मुसलमानों की आधीनता किसी समय में स्वीकार नहीं की। महाराना उदयपुर को सारे भारतवर्ष के क्षत्री अपना सिरताज मानते हैं, और उनसे सम्बन्ध होने में अपना अहोभाग्य और गौरव समझते हैं।

यहाँ के महाराना बाप्पारावल ने चित्तौड़ में अपना अधिकार करके तुर्किस्तान, खुरासान आदि देशों को जीता था।

महाराज समरसिंह को महाराजाधिराज पृथ्वीराज की बहिन पृथा ब्याही थीं। इनकी दूसरी महारानी कर्मदेवी थीं, जिन्होंने कुतुबुद्दीन को रणक्षेत्र में परास्त किया था। महाराज समरसिंह पृथ्वीराज के साथ भारत रक्षा में वीर गति को प्राप्त हुए थे।

महाराना भीमसेन को सिंहल देश की विख्यात सुन्दरी महारानी पद्मावती ब्याही गई थीं। अलाउद्दीन ने उनके पाने की चेष्टा से चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। छल से अलाउद्दीन ने राना को बन्दी कर लिया था। उस समय पद्मावती अलाउद्दीन के पञ्जे से उन्हें छुड़ा लाई थीं। चित्तौड़ की रक्षा न होते देख पद्मावती १३००० आर्य ललनाओं के साथ एक चिता पर जल कर मर गई थीं, और सारे राजपूत दुर्ग का द्वार खोल शत्रुओं का संहार करते हुए परम गति को प्राप्त हुये थे।

कुमार हमीर उस समय बाहर थे। उन्होंने मुसलमानों को निकाल कर चित्तौड़ पर पुनः अधिकार किया था। इनके चचेरे भ्राता सुजनसिंह दक्षिण को चले गये थे और उन्हीं के वंश में महाराष्ट्र केसरी सुविख्यात शिवाजी का जन्म हुआ था।

राणा लाद्द (लाखा) के पुत्र चण्ड थे। मारवाड़ नरेश ने चंड के विवाह को अपनी बहिन का नारियल भेजा था। नारियल सामने आने पर राणा लाद्द ने हँसी में कहा था कि वह स्वयम् वृद्ध हैं इससे चंड ही के लिये नारियल आया होगा। इसी पर चंड ने उस लड़की को अपनी माता तुल्य समझ विवाह से इन्कार कर दिया था। महाराणा को विवश होकर उस लड़की से विवाह करना पड़ा था। चंड ने उस लड़की की सन्तान के लिये स्वयम् राज्य छोड़ दिया था और देश से भी निकल जाना स्वीकार किया था। चंड को वर्त्तमान समय का भीष्म माना गया है।

राणा कुम्भ ने मालवा के राजा महमूद और गुजरात के राजा कुतुबशाह को परास्त किया था। महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र युवराज भोजराज की रानी सुप्रसिद्ध मीराबाई थीं जो कृष्ण-भक्ति में घर छोड़ कर गोकुल और वृन्दावन चली गई थीं और वहाँ से द्वारिका पुरी जाकर रणछोर जी के मन्दिर में श्रीकृष्ण में लीन हो गई थीं।

राणा कुम्भ के नीच पुत्र ऊधो ने अपने पिता को मारकर सिंहासन पर पैर रक्खा था। जब सरदारों ने उसकी नीचता से उसे छोड़ दिया तब उसने दिल्लीपति से सहायता मांगकर उनको अपनी कन्या देना स्वीकार किया था। भगवान रामचन्द्र को अपने वंश की रक्षा करना मंजूर था, ज्योंही वह यह वादा करके दिल्ली के दरबार से बाहर निकला कि उस पर बिजली गिरी और वह वहीं मरकर रह गया। दिल्लीपति ने ऊधो के पुत्रों का पक्ष लिया पर सरदारों ने मुसलमान बादशाह को मार कर भगा दिया।

महाराणा संग्राम सिंह ने दिल्ली के बादशाह और मालवा के राजा गयासुद्दीन को युद्धक्षेत्र में १८ बार परास्त किया था, परन्तु फ़तेहपुर सीकरी के संग्राम में शिलादित्य की विश्वाघातका से मुग़ल बादशाह बाबर से परास्त हुये। उस समय संग्रामसिंह ने प्रतिज्ञा की कि जब तक मुग़लों से बदला न लेंगे तब तक चित्तौड़ न जायेंगे। उस काल से वे वन ही में रहने लगे थे और कुछ काल के उपरान्त बुशारा नामक स्थान से स्वर्ग को सिधारे। वीराङ्गना ताराबाई इनके वीर भाई पृथ्वीराज की स्त्री थीं।

राणा विक्रमाजीत से सरदारगण को अप्रसन्न देख गुजरात के मुसलमान बादशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। करुणावती ने इस युद्ध में वीरत्व का परिचय दिया था। महारानी ने हुमायूं को भाई कहकर 'रक्षा'

उनके पास भेजा था। हुमायूं रक्षा पाकर गद्गद हो गया। बङ्गाल में युद्ध कर रहा था उसको छोड़कर लौट पड़ा, पर चित्तौड़ का पतन हो चुका था। रानी करुणावती १३०० स्त्रियों के साथ चिता में जल कर राख हो चुकी थी। हुमायूं ने शत्रुओं को निकाल कर महाराना के वंश को चित्तौड़ लौटा दिया।

पन्नाधाय ने, बालक राना उदयसिंह की, अपने लड़के का अपनी आँखों के सामने सिर कटवा कर, रक्षा की थी। अकबर से युद्ध में उदयसिंह बन्दी हो गये थे तो उनकी उप पत्नी वीरा उनको छुड़ा कर लाई थीं। दूसरे युद्ध में चित्तौड़ अकबर के हाथ आया पर ८००० स्त्रियाँ आत्म रक्षा के लिये चिता पर जल कर राख हो गईं। उदयसिंह ने चित्तौड़ छोड़ कर उदयपुर राजधानी बनाई।

प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह ने २५ वर्ष तक वन वन घूम कर युद्ध किया और अन्त में चित्तौड़ मुसलमानों से छीन लिया। ऐसा बहादुर योद्धा वीर प्रसवनी राजपूत जाति में भी दूसरा विरले ही हुआ है। उनके नाम से मेवाड़ के राजपूतों की भुजायें फड़क उठती हैं।

महाराणा राजसिंह ने औरङ्गजेब के अन्तः पुर को जाते हुये चञ्चल-कुमारी को छीन कर उसके मान की रक्षा की थी। मथुरा में कृष्ण भगवान की एक विख्यात मूर्ति को खण्डन करने का विचार औरङ्गज़ेब ने किया था तो महाराणा राजसिंह सेना सहित जाकर मूर्ति को उठा लाए थे और औरङ्गज़ेब मुह देखता रह गया था।

उदयपुर की राजकन्या कृष्ण कुमारी ने देश की रक्षा के लिए विष का प्याला हंसते हंसते पी लिया था।

जिन महाराष्ट्रियों को इसी वंश से उत्पन्न हुए छत्रपति शिवाजी ने बनाया उन्हीं महाराष्ट्रियों ने शक्तिशाली होकर इस वंश के गौरव को विध्वंस किया, इस कृतघ्नता की बलिहारी है!

हिन्दुओं के स्वतन्त्रराज्य नेपाल के सम्राट भी महाराणा उदयपुर ही के वंश से हैं। ये उदयपुर के एक निकले हुए राजकुमार की सन्तान हैं और इसी से अपने को राणा कहते हैं।

य० द०—अब चित्तौड़ पहाड़ी किले के नीचे दीवारों से घिरा हुआ एक क़स्बा है। जब चित्तौड़ मेवाड़ की राजधानी था तब शहर क़िले में था, नीचे केवल बाहर का बाज़ार था।

चित्तौड़ का विख्यात क़िला उजाड़ हो रहा है। जिस पहाड़ी पर क़िला है वह आस पास के देश से औसत १५० गज़ ऊँची है। इसकी भूमि उजड़े पुजड़े बहुत से महलों मन्दिरों से भरी है। क़िले के भीतर छोटे बड़े ३२ सरोवर हैं। दीवारों के भीतर खेती होती है। क़िले, तक चढ़ाई की सड़क एक मील लम्बी है। इस पर सात फाटक हैं और उनके निकट चित्तौड़ के मृत वीरों के स्मारक चिन्ह के लिये छतरियाँ बनी हैं।

पुराने शहर के सब स्थान उजड़ रहे हैं। क़िले का क्षेत्रफल ६६३ एकड़ है। इसकी सबसे अधिक लम्बाई (एक दीवार से दूसरी दीवार तक) सवा तीन मील और सबसे अधिक चौड़ाई ८३६ गज़ है। क़िले की चारों तरफ के दीवारों की लम्बाई १२११३ गज अर्थात् लगभग सात मील है।

राणा कुम्भका स्वेत पत्तर से बनाया हुआ जयस्तम्भ १२२ फ़ीट ऊंचा है। गुजरात के बादशाह महमूद को जीत कर उस विजय के स्मारक चिन्ह में उन्होंने यह बनवाया था।

राणा कुम्भ का महल सूर्य फाटक के समीप दो तालाबों के पास स्थित है। भीमसिंह का महल तेरहवीं सदी की हिन्दू-कारीगरी का अच्छा उदाहरण है। उनकी महारानी विख्यात पद्मावती का सुन्दर महल, तालाब की ओर मुख किये खड़ा है। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ लूटते समय इस महल को नहीं तोड़ा था।

राणा कुम्भ का बनवाया हुआ एक ऊँचा शिखरदार देवी का मन्दिर है, जिसके निकट सुप्रसिद्ध मीराबाई का बनवाया हुआ रणछोड़ जी का मन्दिर है। मीराबाई मारवाड़ के मैरता के रहने वाले राठौर सरदार की पुत्री थीं। अबतक मेवाड़ प्रदेश में रणछोड़ जी के साथ मीरा बाई की पूजा होती है।

सन् ७२८ से १५६८ तक चित्तौड़ मेवाड़ की राजधानी रहा उसके बाद से ६० मील पच्छिम-दक्षिण में अब उदयपुर इस देश की राजधानी है। उदयपुर बड़ा रमणीक स्थान है। शहर के पच्छिम सवा दो मील लम्बी और सवा मील चौड़ी पिछोला झील है जिस के मध्य में जगनिवास सङ्गमर्मर का भवन है। शाहजहां अपने पिता से बागी होकर राणा की शरण में इस महल में कुछ दिन रहे थे। जब शाहजहां उदयपुर में थे तो उन्होंने भ्रातृभाव दिखाने को अपनी पगड़ी महाराना से बदली थी। वह पगड़ी उदयपुर के अजायबखाने में ज्यों की त्यों अभी रक्खी है।

झील के किनारे पर शाही महल है और झील से ३ मील दूर महासती स्थान है जहां मृत महाराणाओं का दाह संस्कार होता है। यहाँ ऊँचे दीवार के घेरे में उन लोगों की छतरियाँ बनी हैं और उन लोगों के साथ जली हुई सतियों की छतरियां हैं।

उदयपुर से २० मील पर डेबर झील है। यह कदाचित पृथिवी में मनुष्य की बनवाई हुई जितनी झीलें हैं उन सब में बड़ी है। झील लगभग ६ मील लम्बी, ५ मील चौड़ी और २१ वर्ग मील के बीच फैली हुई है।

उदयपुर राजधानी से २१ मील उत्तर एक घाटी में श्वेत संगमरमर का बना हुआ मेवाड़ के महाराणों के इष्टदेव एकलिङ्ग जी का विशाल मन्दिर है। एकलिङ्ग जी के पूजन का अधिकार केवल महाराणों और रावल (पुजारी) को है। मेवाड़ के वीर, युद्ध में एकलिङ्ग जी की ही जय पुकारते हैं। इस मन्दिर की स्थापना बाप्पा रावल ने की थी। बाप्पारावल का खड्ग, जिसे कहा जाता है कि एकलिङ्ग जी ने उन्हें दिया था, उदयपुर में रक्खा है और नव दुर्गा पर ६ दिन के लिये बाहर निकाला जाता है। महाराना प्रतापसिंह की तलवार भी उसी समय में निकाली जाती है और महाराना लोग दोनों को पूजते हैं। महाराना प्रताप सिंह के ज़िरह बखतर और उनके घोड़े 'चेतक' का ज़ीन भी उदयपुर के अजायब खाने में दर्शनीय पदार्थों में से हैं।

उदयपुर से २२ मील उत्तर कुछ पूर्व श्रीनाथद्वारा स्थान है जहाँ श्रीनाथ जी का मन्दिर है। इस मूर्त्ति को वल्लभाचारी गोस्वामी, जब औरङ्गजेब ने उसे खण्डित करने का विचार किया था, छिप कर गोकुल से यहाँ उठा लाये थे। नाथद्वारा वल्लभाचारी गोस्वामियों का सर्व श्रेष्ठ स्थान है।

सारे भूमण्डल पर ऐसा स्थान नहीं है जहाँ इतने लोगों ने इस प्रकार मिट मिट कर अपनी स्वाधीनता की रक्षा की हो, और जहां जन्मभूमि के लिये इतनी स्त्रियों ने रणक्षेत्र में योद्धाओं की नेता होकर युद्ध किया हो, वा जहां इतनी रमणियाँ प्रसन्न चित्त अपनी मान रक्षा के लिये चिता पर चढ़ कर भस्म हो गई हों। स्वामी दयानन्द सरस्वती के चितौड़ को देख कर आँखों से आँसू निकल आये थे।

२३३ चिदम्बरम—(मद्रास प्रान्तके दक्षिणी अर्काट जिले में एक स्थान)।

यहाँ महर्षि व्याघ्रपाद और पतञ्जलि ने तपस्या की थी।

प्रा० क०—(स्कंद पुराण, सेतुबन्ध खंड, ५२ वाँ अध्याय) चिदम्बर आदि क्षेत्रों में निवास करने से पुण्य होता है।

(शिव भक्त विलास, १४ वाँ अध्याय) चिदम्बर नामक उत्तम क्षेत्र के दर्शन करने से मुक्ति लाभ होती है जहाँ महर्षि व्याघ्रपाद और पतञ्जलि, स्वर्ण सभा के मध्य में भगवान् शङ्कर को नृत्य करते हुए देख कर संसार बन्धन से मुक्त हो गये।

[महर्षि पतञ्जलि, संहिताकार महर्षि प्राचीन योग के पुत्र थे। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि पाणिनि ने अपने सूत्रों में व्यास कृत महाभारत के वासुदेव, अर्जुन आदि व्यक्तियों की चर्चा की है अतः ये व्यास के पीछे हुये हैं। और महर्षि पतञ्जलि ने पाणिनि व्याकरण पर महाभाष्य लिखा है, अतः वे पाणिनि से पीछे हुये हैं। पतञ्जलि, योग के आचार्य थे, और उनके बनाये हुए ग्रंथों से सारे संसार का जो हित साधन हुआ है और हो रहा है, उसके लिये सभी उनके ऋणी हैं और रहेंगे।]

व० द०—चिदम्बरम् कस्बे के उत्तर ६६ बीघे भूमि पर नटेश शिव का मन्दिर है। ३० फीट ऊँची ऊँची दीवारों के घेरे के भीतर नटेश के निज मन्दिर का घेरा, पार्वती का मन्दिर, शिवगङ्गा नामक सरोवर और अनेक मंडप तथा मन्दिर हैं। बाहर के दीवार के भीतर की भूमि की लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक करीब १८०० फीट और चौड़ाई पूर्व से पश्चिम तक १५०० फीट है। भीतर वाली दीवार के अन्तर की भूमि लगभग १२०० फीट लम्बी और ७२५ फीट चौड़ी है। उस घेरे के भीतर जूतापहन कर नहीं जाया जाता है।

नटेश शिव के निज मन्दिर की दीवार पर चाँदी का और गुम्बज पर सोने का मुलम्मा है। दो डेवढ़ी के भीतर नृत्य करते हुये नटेश शिव खड़े हैं। शिव के पास में कई देव मूर्तियाँ हैं। यहाँ के देवताओं के शृंगार मनोहर हैं।

एक मन्दिर में तीन डेवढ़ी के भीतर सुनहले भूषण और कौस्तुभ-मणि-माल पहने हुए श्यामल स्वरूप, मनुष्य से अधिक लम्बे, गोविंदराज भगवान् भुजङ्ग पर शयन किये हुए हैं। इनके पायताबे, दस्ताने और मुकुट स्वर्ण के हैं।

पार्वती का मन्दिर शिवगङ्गा सरोवर के पश्चिम है। घेरे के पश्चिम हिस्से के तीन डेवढ़ी के भीतर पार्वती जी खड़ी हैं। इनके भी पायताबे, दस्ताने

और मुकुट सोनहले हैं। मन्दिर का नगगोहन विचित्र है। इसके आगे पूर्व के दरवाजे तक उत्तम मन्दिर बना है। मन्दिर और दरवाजे के बीच में सोने का मुलम्मा किया हुआ एक बड़ा स्तम्भ है। इन मन्दिरों के अतिरिक्त इस घेरे में और भी बहुत से मन्दिर हैं।

चिदम्बरम का मन्दिर बहुत प्राचीन है, और दक्षिण भारत तथा लङ्का के लोग इसका बड़ा मान करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि चक्रवर्ती राजा हिरण्यवर्ण इस मन्दिर के पास के सरोवर में स्नान करने से कुष्ट रोग से मुक्त हो गया था। तब उसने मन्दिर को अच्छे प्रकार से बनवा दिया। यह कश्मीर का राजा था जिसने लङ्का को भी विजय किया था। कहा जाता है कि यह अपने साथ उत्तर से तीन हज़ार ब्राह्मणों को लाया था जिनके कुल के ब्राह्मण अब भी इस मन्दिर के अधिकारी हैं। बहुत से लोग कहते हैं कि वीर चोला राजा ने (सन् ६२७-६७७ ई०) शिव को पार्वती के साहित समुद्र के किनारे नृत्य करते हुये देखा था और उनके स्मरणार्थ उसने नटेश शिव का सुनहरा मन्दिर बनवा दिया। इसमें सन्देह नहीं कि दसवीं और सत्रहवीं सदी के बीच में चोला और चेरा वंश के राजाओं ने चिदम्बरम् मन्दिर को कई बार बढ़ाया है।

दिम्म्बर में यहाँ एक बड़ा मेला होता है जिसमें साठ सत्तर हज़ार तक यात्री आते हैं।

२३४ चिराँद—(देखिए बसाढ़)

२३५ चिरोदक—(देखिए अयोध्या)

२३६ चित्रकूट—(संयुक्त प्रान्त के बांदा जिले में एक तीर्थ)

महाराज रामचन्द्र ने, लखन और जानकी सहित बनवास के समय अयोध्या से आकर यहां कुटी बनाकर वास किया था।

इसी स्थान पर भरत और अयोध्या वासियों ने रामचन्द्र जी से अयोध्या लौट चलने का अनुरोध किया था।

गालव ऋषि का भी एक आश्रम चित्रकूट पर था।

स्वामी तुलसीदासजी ने चित्रकूट में श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन पाया था।

यहाँ से ६ मील पर भरतकूप है। इस कूप को अत्रि मुनि के शिष्य ने जल के लिये खोदा था। रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक न स्वीकार करने पर जो तीर्थों का जल अभिषेक के लिये लाया गया था उसको भरत ने इसी कूप में डाल दिया था।

चित्रकूट से दो मील दक्षिण मन्दाकिनी के किनारे स्फटिक शिला नामक पत्थर का बड़ा ढोका है। इस स्थान पर काकभुशुण्डि ने सीताजी को चोंचों से मारा था।

चित्रकूट से ८ मील पर मन्दाकिनी के तट पर अनसूया का निवास स्थान था। जानकी को पति-व्रत धर्म की शिक्षा अनसूया ने इसी स्थान पर दी थी।

महर्षि अत्रि और सती अनसूया से इस स्थान अनसूया में भगवान दत्तात्रेय और महर्षि दुर्वासा का जन्म हुआ था।

रामचन्द्रजी ने चित्रकूट छोड़कर अगस्त्य मुनि के आश्रम को जाते समय एक रात्रि अनसूया में निवास किया था। इस स्थान के नीचे मन्दाकिनी नदी जो बहती है उसे सती अनसूया ने दस साल के सूखा से लोगों को बचाने के लिये बनाया था।

प्रा० क०—(महाभारत-वनपर्व, ८५ वां अध्याय) चित्रकूट में सब पापो का नाश करने वाली मन्दाकिनी नदी है।

(वाल्मीकीय रामायण—अयोध्या काण्ड, ५६ वां सर्ग) वनवास के समय लक्ष्मण ने श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से अनेक प्रकार के वृक्षों को काट कर काष्ठ लाकर चित्रकूट पर्वत पर पर्णशाला बनाई।

(६२ वां सर्ग) चित्रकूट पर्वत से उत्तर ओर मन्दाकिनी नदी बहती थी। पर्वत के ऊपर पर्ण कुटी में राम लक्ष्मण निवास करते थे।

(६६ वां सर्ग) भरत जी अयोध्यवासियों सहित चित्रकूट में आकर रामचन्द्र से मिले।

(११६ वें सर्ग से ११६ वें सर्ग तक) भरत जी जब अयोध्या को लौट गये तब रामचन्द्र जी ने सोचा कि मैंने यहाँ भरत, मातृगण और पुरवासियों को देखा है इसलिये सर्वकाल मे मेरी चित्त-वृत्ति उन्हीं की ओर लगी रहती है, और इस स्थान में भरत की सेना के हाथी और घोड़ों की लीद से यह भूमि अशुद्ध हो गई है, ऐसा विचार कर श्री रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण सहित यहां से चल निकले और अत्रि मुनि के आश्रम में आकर उसको प्रणाम किया। मुनि ने तीनों जनों का विधि-पूर्वक अतिथि सत्कार किया और कहा कि हे रामचन्द्र! इस धर्मचारिणी तापसी अनसूया ने उग्र तप और नियमों के बल से १० वर्ष की अना वृष्टि में ऋषियों के भोजन के लिये फलमूल उत्पन्न किये और स्नान के लिये गङ्गा (मन्दाकिनी) नदी को यहाँ बहाया।

इसके अनन्तर अनसूया ने सीता को पतिव्रत धर्म के उपदेश और दिव्य अलङ्कार दिये। रामचन्द्र ने उस रात्रि में वहाँ निवास कर प्रातःकाल लक्ष्मण और सीता सहित अत्रि मुनि के आश्रम से चलकर दुर्गम वन में प्रवेश किया।

(सुन्दर काण्ड, ३८ वां सर्ग) हनुमान ने लङ्का में जानकी से कहा कि मुझको कुछ चिन्ह दो। जानकी बोलीं कि हे कपीश्वर! तुम रामचन्द्र से यह चिन्हानी कहना कि चित्रकूट पर्वत के पास उपवनों में जल क्रीड़ा करके तुम मेरी गोद में सो गये थे, उस समय एक काक (कौआ) मुझे चोंच मारने लगा। जब कौआ से विदीर्ण की गई मैं थक गई और आंसुओं से मेरा मुख भर गया तब कौआ रूपधारी इन्द्र के पुत्र (जयन्त) की ओर तुम्हारी दृष्टि जा पड़ी और तुमने बड़ा क्रोध कर के चटाई में से एक कुश ले उसको ब्रह्मास्त्र से अभिमंत्रित कर उस पर चलाया था।

(शिव पुराण, ८ वां खण्ड दूसरा अध्याय) ब्रह्मा ने चित्रकूट में जाकर मत्त गयन्द नामक शिव लिङ्ग स्थापित किया।

संकर्पण पर्वत के पूर्व कोटि तीर्थ में कोटेश्वर शिवलिङ्ग है। चित्रकूट के दक्षिण ओर से आगे पश्चिम की ओर को तुगारण्य पर्वत है, जहाँ गोदावरी नदी बह रही है। वहां पशुपति शिव लिङ्ग हैं।

(तीसरा अध्याय) नील कंठ से दक्षिण अत्रीश्वर शिवलिङ्ग हैं। अत्रि ने अपनी स्त्री अनसूया के सहित चित्रकूट पर्वत के निकट अति श्रम से तप किया है। अकाल और निर्वर्षण के समय अनसूया के तप के प्रभाव से चित्रकूट में गङ्गा स्थित हो गई, जिसका नाम मन्दाकिनी प्रसिद्ध हुआ। (भरत कूप में तीर्थों का जल छोड़ने और इस कूप के अत्रि के शिष्य द्वारा खोदे जाने की कथा तुलसी कृत मानस रामायण में है।)

[महर्षि अत्रि, ब्रह्मा के मानस पुत्र और प्रजापति थे। इनकी पत्नी अनसूया भगवदावतार कपिल की भगिनी थीं, और कर्दम प्रजापति की पत्नी देवहूति के गर्भ से पैदा हुई थीं। जब ब्रह्मा ने दम्पति को आज्ञा दी कि सृष्टि करो तो इन्होंने सृष्टि करने से पहले बड़ी घोर तपस्या की। इनकी दीर्घकाल की निरन्तर साधना और प्रेम से आकृष्ट होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों ही देवता प्रत्यक्ष उपस्थित हुये। समय पर तीनों ही ने इनके पुत्र रूप से अवतार ग्रहण किया। विष्णु के अंश से दत्तात्रेय, ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा, और शंकर के अंश से दुर्वासा का जन्म हुआ। महर्षि अत्रि की चर्चा वेदों में भी

आती है। अनसूया जी ने पातिव्रत धर्म पर सीताजी को चित्रकूट के अनसूया स्थान पर शिक्षा दी थी।]

[काक भुशुण्डि जी किसी पहिले जन्म में अयोध्या में एक शूद्र थे। जब भोजन पाने का कष्ट हुआ तो यह वहाँ से उज्जैन चले गये। वहाँ इन्होंने अपने गुरु का अनादर किया इस पर शिवजी ने क्रुद्ध होकर इन्हें शाप दे दिया। शापवश अनेकों योनियों में भटकते भटकते इन्हें अन्त में ब्राह्मणयोनि प्राप्त हुई। इस योनि में लोमश ऋषि से निराकार के विरुद्ध तर्क करने में इन्हें लोमश ऋषि ने काक होने का शाप दे दिया। इसी योनि में इन्हें रामचंद्र जी के दर्शन हुये।]

ब० द०—चित्रकूट और उसकी बस्ती सीतापुर मन्दाकिनी अर्थात् पयस्विनी नदी के बायें तट पर है। चित्रकूट में चैत्र की रामनवमी और कार्तिक की दिवाली को बड़े मेले, और अमावस्या और ग्रहण में छोटे मेले होते हैं।

चारों ओर की पहाड़ियों पर मन्दाकिनी के किनारे और मैदानों में देवताओं के ३३ स्थान हैं। वैसे देव मन्दिर सैकड़ों हैं।

चित्रकूट से एक मील दक्षिण मन्दाकिनी के किनारे प्रमोद बन है।

एक पहाड़ी पर बहुत सीढ़ियों द्वारा चढ़ने पर एक कुंड मिलता है जिस को कोटि तीर्थ कहते हैं। लोग कहते हैं कि एक समय इस स्थान पर कोटि ऋषियों ने यज्ञ किया था इसलिए इसका नाम कोटितीर्थ पड़ा।

चित्रकूट का परिक्रमा करने के लिए महाराज पन्ना ने चारों ओर ५ मील लम्बी पक्की सड़क बनवा दी है। जितनी भीड़ यात्रियों की चित्रकूट में रहती है उतनी बुन्देलखण्ड में किसी और स्थान में नहीं रहती।

रियासत सिरगुजा (छोटा नागपुर) में एक पहाड़ी रामगढ़ है। पश्चिमीय बड़े विद्वानों, जैसे मिस्टर जे० डी० बेगलर का कहना है कि यह रामायण का चित्रकूट है। कारण यह है कि जो बखान रामायण में चित्रकूट का है वह रामगढ़ ही से मिलता है। यहाँ पहाड़ी में आप से आप बनी हुई गुफायें हैं जिनमें ऋषि मुनि रहते थे। कहा जाता है कि महर्षि वाल्मीकि का यह आश्रम था। एक गुफा सीता बेंगरा है जहाँ सीता जी रहा करती बताई जाती है। यहाँ की गुफायें और नदी नाले बड़े रमणीय हैं। यहाँ की एक गुफा कबीर चौतरा में, कबीरदास जी भी रहे हैं। उधर के लोग रामगढ़ ही को चित्रकूट पर्वत मानते हैं।

२३७ चुनार— (संयुक्त प्रदेश के मिरज़ापुर ज़िले में एक कस्बा)

चुनार में जिस स्थान पर क़िला बना है वहाँ भर्तृहरि ने राज्य से विरक्त होकर निवास किया था और योग साधन किया था तथा "वैराग्य शतक" की रचना की थी।

महाराज पृथ्वीराज इस किले में आकर रहे थे।

इस स्थान का पुराना नाम चरणाद्र गढ़ है। आजकल चरण गढ़ भी कहते हैं।

चुनार का क़िला पुराने ज़माने के प्रसिद्ध गढ़ों में से है और भारतवर्ष के सबसे मज़बूत क़िलों में से एक था।

इसमें भर्तृहरि के योग करने का स्थान अब भी मैगज़ीन के भीतर बना हुआ है। पाल राजाओं ने जिन्होंने ८ शताब्दी से १२ शताब्दी ईस्वी तक बङ्गाल व विहार पर राज किया था इस गढ़ को बनवाया था। सम्वत् १०२६ ई० में राजा सहदेव ने इस किले को अपनी राजधानी बनाकर पहाड़ की कंदरा में 'नैनी योगिनी' की मूर्ति स्थापित की थी, इसलिये लोग चुनार को नैनीगढ़ भी कहते हैं।

१५७५ ई० में ६ मास तक इस गढ़ ने मुग़ल सेना का मुकाबला किया था। १७६४ ई० में अंग्रेजों ने इसे जीता। इस क़िले में नाना साहब के पिता को अंग्रेजों ने आजन्म क़ैद रखा था।

चुनार की जलवायु बहुत अच्छी है इससे बहुत लोग बाहर से आकर यहाँ रहने लगे हैं। स्थान भी रमणीय है और गंगा जी के दाहिने तट पर बसा है।

२३८ चूलगिरि— (मालवा प्रदेश की बड़वानी रियासत में एक स्थान)

इसके समीप प्राचीन सिद्ध नगर है।

[जैनियों के मतानुसार रावण के मारे जाने पर कुम्भकर्ण और मेघनाद (इन्द्रजीत) लङ्का से वैरागी होकर चले आये थे और सिद्ध आश्रम, बड़वानी, से निर्वाण को पधारे थे। जैनियों का मत है कि मेघनाद और कुम्भकर्ण दोनों रावण के पुत्र थे।]

२३९ चौरा— (विहार प्रदेश के चम्पारन ज़िले में एक गाँव)

यहाँ श्री वल्लभाचार्य जी का जन्म हुआ था।

(कुछ लोगों का मत है कि चम्पारन, ज़िला रायपुर, मध्यप्रदेश, श्री वल्लभाचार्य जी का जन्म स्थान है।)

२४० चौरासी—(देखिए मथुरा)

२४१ चौसा—(विहार के शाहाबाद ज़िले में एक गाँव)

इसका प्राचीन नाम च्यवनआश्रम था। च्यवन ऋषि की कुटी यहींथी।

सतपुरा पहाड़ी पर पयोष्णी नदी (वर्तमान पूर्णा) नदी के तट पर भी च्यवन ऋषि का निवास स्थान था। जयपुर राज्य में नरनौल से ६ मील दक्षिण एक स्थान धोसी है, यहाँ अनूपदेश (मालवा) की राजकुमारी ने च्यवन ऋषि के नेत्र फोड़ दिए थे। राजा ने उस राजकुमारी को पत्नी रूप में ऋषि को दे दिया। 'च्यवन प्राश' इन्हीं ऋषि का निकाला हुआ है जिसके सेवन से स्वास्थ्य को इतना लाभ होता है कि कहते हैं कि काया पलट हो जाती है। च्यवन ऋषि ने वृद्धावस्था से इस विवाह के पश्चात् फिर युवावस्था प्राप्त की थी। विहार प्रांत में छपरा से ६ मील पूर्व चिराँद में भी च्यवन ऋषि का आश्रम रहा बतलाया जाता है।

२४२ च्यवन आश्रम— (कुल)—(देखिए चौसा)

छ

२४३ छपिया— (संयुक्त प्रांत के गोंडा ज़िले में एक स्थान)

यहाँ श्री स्वामिनरायण का जन्म हुआ था।

[वि० स० १८३७ में छपिया नामक गाँव के एक सरवरिया ब्राह्मण कुल में श्री **स्वामिनरायण** अवतरित हुए थे। माता पिता ने बालक का नाम घनश्याम रखा। थोड़े ही दिनों में सब लोग अयोध्या में जाकर रहने लगे। जब यह ११ साल के थे इनके माता पिता का देहान्त हो गया। इसका इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा और १८४९ में यह घर छोड़कर चले गये। आठ साल बाद दीक्षा लेने पर इनका नाम श्री नरायण मुनि पड़ गया, और एक साल बाद जेतपुर नगर की धर्म धुरीण गद्दी पर इनका अभिषेक हुआ। इसके बाद इन्होंने अपना दिव्य प्रकाश फैलाया और विशिष्टाद्वैत-स्वामिनरायण-संप्रदाय की स्थापना की तथा देश में घूम घूम कर उसका प्रचार किया। सन् १८८६ में इनकी लीला का संवरण हो गया। स्वामिनरायण सम्प्रदाय में इनके इतने नाम प्रचलित हैं— हरि, कृष्ण, हरिकृष्ण, श्रीहरि, घनश्याम, सरयूदास, नील-कंठपीर्ण, सहजानन्द स्वामी, श्री जी महाराज, नरायण मुनि और श्री स्वामि नरायण।]

छपिया में श्री स्वामि नरायण जी के जन्म स्थान पर एक बड़ा विशाल मन्दिर तालाब के बीच में बनाया गया है और यात्री बराबर आते रहते हैं।

२४४ छहरटा साहेब— (देखिए अमृतसर)

२४५ छोटा गढ़वा— (देखिए कोसम)

ज

२४६ जगदीशपुर— (देखिए बड़गावां)

२४७ जगन्नाथ पुरी—(उड़ीसा प्रान्त में एक जिले का सदर स्थान)

इस स्थान के प्राचीन नाम पुरुषोत्तमक्षेत्र, श्रीक्षेत्र और दन्तपुर हैं।

भारतवर्ष के चार धामों में से यह एक है।

रामचन्द्र जी के अश्वमेध यज्ञ से पहले अश्व की रक्षा करते हुये शत्रुघ्न जी इस स्थान पर आये थे।

मार्कण्डेय मुनि ने इस स्थान पर महादेव जी की आराधना करके वृत को जीता था।

नारद जी यहाँ पधारे थे।

यह स्थान ५२ पीठों में से एक है। सती के दोनों पैर यहाँ गिरे थे।

भगवान् बुद्ध का बाया दांत (Cannine tooth) यहाँ रखा हुआ था।

कुछ काल तक यह स्थान वाममार्गियों का केन्द्र था।

चैतन्य महाप्रभु यहाँ रहे थे और यहीं शरीर छोड़ा था।

श्री जगद्गुरु शंकराचार्य ने यहां गोवर्धन मठ की स्थापना की थी, और पद्मपाद आचार्य को मठाधीश बनाया था। पद्मपाद आचार्य ही श्री शङ्कराचार्य के सबसे पहिले शिष्य हुये थे।

प्रा० क०—(पद्मपुराण, पाताल खण्ड, १७ वां अध्याय) शत्रुघ्न जी ने अश्व की रक्षा करते हुये जाते जाते एक पर्वताश्रम को देख कर अपने मंत्री से पूछा कि यह कौन स्थान है, मंत्री सुमति ने कहा कि यह नील पर्वत पुरुषोत्तम जगन्नाथ जी से शोभित है। इस पर्वत पर चढ़कर पुरुषोत्तम जी को नमस्कार करके उनका पूजन और नैवेद भोजन करने से प्राणी चतुर्भुज हो जाता है।

(आदि ब्रह्म पुराण, ४१ वां अध्याय) उत्कल देश में पुरुषोत्तम भगवान निवास करते हैं। उस देश में बसने वाले धन्य हैं। जो पुरुषोत्तम भगवान का दर्शन करता है उसका सदा स्वर्ग में वास होता है।

(५०-५३ अध्याय) मार्कण्डेय मुनि महाप्रलय के समय महाबाढ़ (बाढ़) को देखकर भय से व्याकुल होकर पृथिवी पर भ्रमते फिरे। जब उन्हें कहीं विश्राम न मिला तब पुरुषोत्तम् के पास वटराज के समीप गये,जहां न कालाग्नि का भय था न शरीर को खेद होता था। उन्होंने कृष्ण को बाल रूप में देखा। मार्कण्डेय बोले कि भगवान्! मैं परमात्मा शङ्कर की स्थापना करूँगा। किस स्थान में करूँ? भगवान् ने कहा कि हे विप्र! पुरुषोत्तम देव के उत्तर दिशा में अपने नाम से शिवालय बनाओ और वह मार्कण्डेय तीर्थ नाम करके तीर्थों में विख्यात होगा।

(५८-६१ वां अध्याय) चतुर्दशी को मार्कण्डेय ह्रद (तालाब) में और पूर्णिमा को समुद्र में स्नान का पुण्य है। मार्कण्डेय वट, रोहिण्या ह्रद, कृष्ण महोदधि और इन्द्रद्युम्न सरोवर, यह पंच तीर्थ हैं। पृथिवी पर जितने नदी, सरोवर, तालाब, बावली, कुएं और ह्रद हैं वे सब ज्येष्ठ के महीने में पुरुषोत्तम तीर्थ में शयन करते हैं।

(६४ वां अध्याय) जो मनुष्य गुड़िच क्षेत्र में जाते हुये रथ में बैठे श्रीकृष्ण, बल्देव, सुभद्रा के दर्शन करते हैं वे हरिलोक प्राप्त करते हैं। पुरुषोत्तम भगवान ने वर दिया कि गुड़िच क्षेत्र में सरोवर के तीर सात दिन तक मेरी यात्रा रहेगी। असाढ़ शुक्ल में गुड़िचा नाम वाली यात्रा के समय श्रीकृष्ण, बल्देव और सुभद्रा के दर्शन करने से अश्वमेध से भी अधिक फल होता है।

(पुरुषोत्तम महात्म्य, ३ रा अध्याय) रुद्रकल्प जी बोले, मार्कण्डेय मुनि प्रलय के समुद्र में बहते हुये पुरुषोत्तम क्षेत्र में आये। उन्होंने वहां एक वट वृक्ष के ऊपर बाल रूप चतुर्भुज भगवान् को देखा। भगवान् ने मुनि के मनोरथ को सिद्ध करने के लिये वट वृक्ष के वाह्य कोण में अपने चक्र से एक तालाब खोदा। मार्कण्डेय मुनि ने उस तालाब के समीप महादेव जी की आराधना कर के मृत्यु को जीत लिया। उन्हीं मुनि के नाम से सरोवर का नाम मार्कण्डेय तालाब हुआ जिस में स्नान कर के, मार्कण्डेय शिव का दर्शन करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है।

(४ था और ५ वां अध्याय) जब महादेव जी ने ब्रह्मा का ५ वां सिर काट लिया तब वह सिर उनके हाथ से लिपट गया। तब शिव जी पृथ्वी पर भ्रमण करते हुये पुरुषोत्तम क्षेत्र में आये। यहां वह शिर उनके हाथ से छूट गया। तब से इस स्थान का नाम कपाल मोचन पड़ा।

(२० वां अध्याय) अवन्तीपुर का राजा इन्द्र द्युन नारद समेत पुरुषोत्तम भगवान् के दर्शन को आया और ब्राह्मणों को बहुत दान दिया। राजा इन्द्रद्युम्न के दान देने के जल से जो स्थान भर गया वही 'इन्द्रद्युम्न सर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(२६ वां अध्याय) भगवान की काष्ट प्रतिमा राजा इन्द्रद्युम्न से बोली कि तुम्हारी भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ। मन्दिर के भङ्ग होने पर भी मैं इस स्थान को नहीं त्याग करुंगी। कालान्तर में दूसरा मन्दिर बन जाने पर भी तुम्हारा ही नाम चलेगा। पुष्य नक्षत्र से युक्त आषाढ़ शुक्ल द्वितीया के दिन हम लोगों को रथ में बैठा कर गुडिन क्षेत्र में, जहां हम लोगों की उत्पति हुई है, ले जाना चाहिये।

(कूर्म पुराण—उपरि भाग, ३४ वां अध्याय) पूर्व दिशा में जहां महानदी और विरजा नदी हैं पुरुषोत्तम तीर्थ में पुरुषोत्तम भगवान् निवास करते हैं। वहा तीर्थ में स्नान कर के पुरुषोत्तम जी की पूजा करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है।

(नरसिंह पुराण, १० वां अध्याय) मार्कण्डेय मुनि ने पुरुषोत्तम पुरी में जाकर भगवान् पुरुषोत्तम की बड़ी स्तुति की। विष्णु भगवान ने प्रगट हो कर वर दिया कि यह तीर्थ आज से तुम्हारे ही नाम से मार्कण्डेय क्षेत्र प्रसिद्ध होगा।

इतिहास से प्रगट होता है कि ३१८ ई० में जगन्नाथ जी की मूर्ति प्रगट हुई थी। उड़ीसा के राजा ययाति केशरी ने पुरी में उसकी स्थापना की। उड़ीसा के राजा अनङ्गभीम देव ने, जिनका राज्य सन् ११७४ ई० से १२०२ ई० तक था, जगन्नाथ जी के वर्तमान मन्दिर को बनवाया। मन्दिर का काम ११८४ ई० से आरम्भ होकर सन्. ११९८ ई० में समाप्त हुआ था।

व० द०—जगन्नाथपुरी भारतवर्ष के चार धामों में से एक है। समुद्र से लगभग एक मील पर २० फ़ीट ऊँची ज़मीन पर जिसको नीलगिरि कहते हैं जगन्नाथ जी का मन्दिर है। यह मन्दिर १९२ फीट ऊँचा, ८० फ़ीट लम्बा और इतना ही चौड़ा है। मन्दिर के भीतर ४ फ़ीट ऊँची और १६ फ़ीट लम्बी पत्थर की वेदी है जिसको रत्न वेदी कहते हैं। रत्न वेदी के ऊपर उत्तर तरफ ६ फ़ीट लम्बा सुदर्शन चक्र है, जिनसे दक्षिण जगन्नाथ जी सुभद्रा और बलभद्र जी क्रम से खड़े हैं। बलभद्र जी ६ फ़ीट ऊंचे गौर वर्ण, जग-

न्नाथ जी बलभद्र जी से एक अंगुल छोटे श्याम रङ्ग और सुभद्राजी पाँच फीट ऊँची पीत वर्ण हैं। जगन्नाथ जी और बलभद्र जी के ललाट पर एक एक हीरा लगा है। मन्दिर के हाते में एक ओर अक्षयवट है, उसके पास प्रलय काल के विष्णु की बाल मूर्ति है जिसको बाल मुकुन्द कहते हैं। उसी तरफ़ रोहिणी कुण्ड नामक एक छोटा कुण्ड है। इस हाते में लगभग ५० स्थान और मन्दिर बने हुये हैं। जगन्नाथ जी के मन्दिर से पश्चिम-दक्षिण स्वर्ग द्वार के रास्ते के पास स्वेत गङ्गा नामक एक पक्का तालाब है, जिसके पूर्व किनारे पर श्वेत केशव का मन्दिर बना हुआ है। जगन्नाथ जी के मन्दिर से एक मील दक्षिण-पश्चिम समुद्र के किनारे पर एक चौथाई मील की लम्बाई में स्वर्ग द्वार है जहाँ यात्री लोग समुद्र के लहर से स्नान कहते हैं।

जगन्नाथ जी के मन्दिर से आध मील उत्तर मार्कण्डेय तालाब है। दक्षिण किनारे पर मार्कण्डेय शिव का बड़ा मन्दिर है। मार्कण्डेय तालाब से पूर्व कटक की सड़क के पास लगभग २२५ गज़ चौड़ा और इससे अधिक लम्बा चन्दन तालाव नाम का बड़ा पोखरा है। उसके चारों तरफ़ पक्की सीढ़ियाँ बनी हैं और मध्य में चबूतरे के साथ एक बड़ा मन्दिर है। नाव द्वारा उस मन्दिर में जाना होता है। बैशाख की अक्षय तृतीया को देवताओं की चल मूर्तियों को नाव पर चढ़ा कर उस तालाब में जलकेलि कराई जाती है और वे उस मन्दिर में बैठाई जाती हैं।

जगन्नाथ जी के मन्दिर से डेढ़ मील दक्षिण-पूर्व जनकपुर है जिसका नाम पुराणों में गुड़िच क्षेत्र लिखा है। उसी जगह काष्ट मूर्तियाँ रची गई थीं। इसलिये उसको जनकपुर (जन्मस्थान) कहते हैं। एक चौड़ी सड़क मन्दिर से जनकपुर तक गई है। सड़क के दक्षिण बग़ल पर पुरी के राजा का मकान है। जनकपुर के मन्दिर से थोड़ा पूर्व मार्कण्डेय तालाब से कुछ छोटा इन्द्र-द्युम्न तालाब है। उसके चारो बग़ल में पत्थर की सीढ़ियाँ हैं। तालाब के पास एक मन्दिर में नीलकंठ महादेव और इन्द्रद्युम्न और दूसरे मन्दिर में पद्म नाम भगवान हैं। बारहवीं शताब्दी ईस्वी के आरम्भ में कलिङ्ग के राजा गङ्गदेव ने जगन्नाथ जी के मन्दिर को आरम्भ किया था, परन्तु राजा अनङ्ग भीमदेव ने ११९८ ईस्वी में चालीस और पचास लाख रुपये के बीच की लागत से वर्तमान मन्दिर को बनाया था। जिस स्थान पर यह मन्दिर बना है उसी स्थान पर उससे पहिले भगवान बुद्ध का बायाँ बड़ा दाँत यहाँ

रखा था और उन दिनों यह नगर दन्तपुर कहलाता था और कलिङ्गदेश की राजधानी था।

मन्दिर की वार्षिक आमदनी जागीर आदि से लगभग ५ लाख रुपये और यात्रियों की पूजा से क़रीब ६ लाख रुपये है। मन्दिर के पुजारी, पण्डे, मठधारी, नौकर और दूसरे देशों से यात्रियों को ले जाने वाले गुमाश्ते सब मिलाकर ६ हज़ार से अधिक पुरुष स्त्री और लड़के जगन्नाथ जी से परवरिश पाते हैं, जिनमें से लगभग ६५० आदमी मंदिर के कामों में मुक़र्रर हैं। ४०० रसोईदारों को घर के लोग और १२० नृत्य करने वाली लड़कियाँ हैं। ४२०० कुली रथ को खींचते हैं जिनको इस काम के लिये बिना लगान ज़मीन मिली है।

ऐसा प्रसिद्ध है कि कर्माबाई नाम की एक स्त्री जो वात्सल्य उपासक थी, नित्य प्रातःकाल उठ कर बिना प्रातःकाल की क्रिया किये हुये एक छोटे पात्र में अङ्गारों पर खिचड़ी बनाकर बड़े प्रेम से भगवान् का भोग लगाती थी। जगन्नाथ जी पुरुषोत्तमपुरी से आकर इस खिचड़ी को खाते थे। कुछ दिन बाद एक साधू के कहने से कर्माबाई स्नानादि क्रिया करके आचार पूर्वक भोग लगाने लगीं। तब जगन्नाथ जी के भोजन में विलंब होने लगा। भगवान् की आज्ञानुसार उनके पण्डे ने उस साधू को ढूढ कर कहा कि जाकर कर्माबाई को उपदेश दो कि प्रथम ही की तरह बिना आचार के सवेरे भोग लगाया करें। साधु ऐसी ही शिक्षा दे आया। कर्माबाई बहुत प्रसन्न हुईं और वे प्रेम पूर्वक पहले ही की भाँति बिना स्नानादि किये हुये सवेरे भोग लगाने लगीं। अब तक पुरुषोत्तमपुरी में सब भोगों से पहले कर्माबाई के नाम से जगन्नाथजी को खिचड़ी का भोग लगाया जाता है।

मार्कण्डेय तालाब, चन्दन तालाब, श्वेत गङ्गा तालाब, पार्वती सागर और इन्द्रद्युम्न तालाब को लोग पञ्चतीर्थ कहते हैं। पुरी में पाँच महादेव प्रख्यात हैं:—

लोकनाथ, मार्कण्डेश्वर, कपालमोचन, नीलकंठ और रामेश्वर।

पुरी में विमलादेवी का मन्दिर ५२ पीठों में से एक है जहाँ सती के दोनों पैर गिरे बताये जाते हैं।

चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथपुरी में काशी मिश्र के घर में, जिसे अब राधाकान्त का मठ कहते हैं, रहा करते थे। जिस एक छोटी कोठरी में वे रहते

उसमें उनके खड़ाऊँ, कमण्डल और एक वस्त्र रखे हैं। यहीं से वे भगवत् भजन में उन्मत्त होकर समुद्र में बढ़ते चले गये थे और परम धाम को पधारे थे।

२४८ जनकपुर— (देखिए सीतामढ़ी व जगन्नाथपुरी)

२४९ जह्नु आश्रम (कुल)— (देखिए जहाँगीरा)

२५० जमदग्नि आश्रम (कुल)— (देखिए जमनियां)

२५१ जमनिया— (संयुक्त प्रदेश के गाजीपुर जिले में एक बड़ाकस्बा)

इसके प्राचीन नाम जमदग्निया, जमदग्नि आश्रम और मदन बनारस थे। परशुरामजी के पिता जमदग्नि ऋषि का यह निवास स्थान था। परशुराम यहीं पैदा हुए थे।

[महाराज गाधि के सत्यवती नाम की एक कन्या थी। उससे महर्षि ऋचीक ने अपना विवाह किया था। सत्यवती के कोई भाई नहीं था इससे सत्यवती की माता ने उससे कहा कि महर्षि से भाई हो जाने का वरदान मांगे। सत्यवती ने अपनी माता की प्रार्थना ऋचीक मुनि से कही और अपने भी एक पुत्र होने की इच्छा प्रकट की। महर्षि ने दो चरू मन्त्र बल से तैयार किए, और सत्यवती को बताकर दे दिए। माता ने समझा कि कन्या वाला चरू अच्छा होगा, इससे उसे लेकर पी गई, और उससे विश्वामित्र मुनि का जन्म हुआ, जो क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर भी ब्राह्मण हुए। महर्षि ऋचीक ने सत्यवती से कहा कि तेरा पुत्र तो नहीं, पर पौत्र क्षत्रिय तेज वाला होगा। उसने जमदग्नि ऋषि को जन्म दिया जिनके पुत्र **परशुराम** हुए।

महर्षि जमदग्नि सदा तपस्या में ही लगे रहते थे। उस समय के प्रायः समस्त राजा दुष्ट हो गए थे। राजाओं के रूप में सभी असुर उत्पन्न हुए थे। सहस्रबाहु के दुष्ट पुत्रों ने तपस्या में लगे हुए महर्षि जमदग्नि का सिर काट लिया। इस घटना पर परशुरामजी अपने क्रोध को न रोक सके और पिता की मृत्यु का बदला लेने को उन्होंने कई बार क्षत्रिय वंश का नाश किया।]

जमनिया गङ्गा के तट पर एक अच्छा क़स्बा है।

जमदग्नि आश्रम—जमनिया के अतिरिक्त, जमदग्नि ऋषि के आश्रम खैराडीह (जिला गाजीपुर), और बंगाल में बोगरा से ७ मील उत्तर महास्थान गढ़ में, तथा नर्मदा के किनारे महेश्वर के समीप भी बतलाए जाते हैं। खैराडीह को भी परशुरामजी की जन्मभूमि कहा जाता है।

२५२ जहाँगीरा—(विहार प्रांत के भागलपुर जिले में एक गाँव)

यहां जह्नु ऋषि का आश्रम था।

गङ्गाजी के बीच में यहां पहाड़ी है जिस पर जह्नु ऋषि निवास करते थे। जिस समय भगीरथ गङ्गा जी को लाये उनका जल इस पहाड़ी में टकराया, इससे महर्षि को क्रोध आया और वह सब जल पी गये। भगीरथ की प्रार्थना करने पर फिर अपने कान से उन्होंने उस जल को छोड़ दिया। तब से गङ्गाजी का नाम जाह्नवी हुआ।

यह पहाड़ी गङ्गाजी की बीच धारा में शोभायमान है। नदी के किनारे जहाँगीरा गाँव है, जो जाह्नुगृह या जह्नुगिरि का अपभ्रंश है। पहाड़ी पर गैबीनाथ महादेव का मन्दिर है और महन्त रहते हैं। बरसात में दो तीन महीने इस पहाड़ी से लोगों का बाहर आना जाना कठिन है।

जह्नु आश्रम—जहाँगीरा के अतिरिक्त जह्नुऋषि के आश्रम निम्न पाँच स्थानों पर और बतलाये जाते हैं— १- भैरव घाटी, भागीरथी और जाह्नवी के संगम पर गङ्गोत्री के नीचे पहाड़ पर। २-कन्नौज में। ३-शिवगञ्ज में, रामपुर बोलिया से ऊपर। ४- गौर में, मालदा के समीप। ५- जाननगर में, नदिया से ४ मील पश्चिम।

यह सब वे स्थान हैं जहाँ गङ्गाजी की धारा मुड़ी है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होते हैं कि इन स्थानों पर पहले बहाव रुका, फिर बढ़ा। और जैसे जहाँगीरा में कहा जाता है कि जह्नु ऋषि ने गङ्गाजी का सब जल पी लिया और फिर बहाया वैसे ही यहाँ भी हुआ और इस प्रकार इन सब स्थानों को जह्नु ऋषि का आश्रम कहा गया।

२५३ जाजपुर—(उड़ीसा प्रांत के कटक जिले में एक कस्बा)

जाजपुर के प्राचीन नाम विरज क्षेत्र, यज्ञपुर व ययातिपुर हैं।

इस स्थान पर पांडवों ने अपने पितरों का तर्पण किया था।

महर्षि लोमश यहाँ आये थे।

ब्रह्मा ने यहाँ वैतरणी नदी के किनारे दस बार अश्वमेध यज्ञ किया था।

यह स्थान बावन पीठों में से एक है जहाँ सती के शरीर का एक अङ्ग गिरा था।

प्रा० क०—(लिङ्ग पुराण, ४१वाँ अध्याय) समुद्र के उत्तर भाग में विरज क्षेत्र में वैतरणी नदी है। इस तीर्थ के अतिरिक्त उत्कल देश में अनेक और पवित्र तीर्थ हैं और पुरुषोत्तम भगवान् निवास करते हैं। (महाभारत,

वन पर्व, ११४वाँ अध्याय) युधिष्ठिर आदि पांडवों ने महर्षि लोमश सहित कलिङ्ग देश (उड़ीसा व उससे मिला हुआ मद्रास का भाग) में वैतरणी नदी पार उतर कर पितरों का तर्पण किया।

(आदि पर्व, १०४ वाँ अध्याय) बली नामक राजा की सुदेष्णा स्त्री ने एक अन्धे ऋषि से संभोग किया जिससे अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पुंड्र और सुह्म, ५ पुत्र उत्पन्न हुये जिनके नाम से एक एक देश हुआ। कलिङ्ग का दूसरा प्राचीन नाम उत्कल है।

(आदि ब्रह्म पुराण, ४१वाँ अध्याय) जिस क्षेत्र में ब्रह्मा की प्रतिष्ठा की हुई विरजा माता हैं उनके दर्शन करने से मनुष्य अपने कुल का उद्धार करके ब्रह्मलोक में निवास करता है। उस क्षेत्र में सब पापों को हरने वाली और वर को देने वाली अन्य भी अनेक देवियाँ स्थित हैं, और सम्पूर्ण पापों को विनाश करने वाली वैतरणी नदी बहती है। विरज क्षेत्र में पिंडदान करने से पितरों की उत्तम तृप्ति होती है। ब्रह्मा के विरज क्षेत्र में शरीर त्याग करने से मोक्ष प्राप्त होता है। उत्कल देश में निवास करने वाले मनुष्य धन्य हैं।

उड़ीसा (प्राचीन कलिङ्ग) के चार प्रमुख तीर्थ भुवनेश्वर (चक्रक्षेत्र), पुरी (शङ्खक्षेत्र), कोणार्क (कनारक-पद्मक्षेत्र) तथा यजपुर (जाजपुर—गदाक्षेत्र) हैं।

कहते हैं कि विष्णु ने गयासुर को मारकर अपना चरण चिन्ह (पाद) गया में छोड़ा और शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म यहाँ छोड़े थे। शैशुनाग वंशी राजाओं के समय कलिङ्ग स्वतन्त्र राज्य था। सबसे पहले मौर्य सम्राट अशोक ने इसे जीत कर अपने साम्राज्य में मिलाया। इसकी राजधानी तोसली थी। बाद में भुवनेश्वर राजधानी हुई जिसका दूसरा नाम कलिङ्ग नगर पड़ा। जाजपुर एक समय बड़ा प्रसिद्ध शहर था और उड़ीसा के महाराजा ययाति केसरी की राजधानी था।

व० द८०—कटक शहर से ४४ मील पूर्वोत्तर वैतरणी नदी के दाहिने किनारे पर जाजपुर बसा है।

जाजपुर के पास वैतरणी नदी के सुप्रसिद्ध घाट पर पादगया तीर्थ में स्नान और पिण्डदान किया जाता है। नदी के टापू में बाराह जी का बड़ा मन्दिर है। ब्रह्म कुण्ड तालाब के समीप विरजा देवी का शिखरदार मन्दिर है। यहाँ वर्ष में एक मेला होता है।

२५४ जाम्बगाँव—(हैदराबाद राज्य में एक गाँव)

श्री समर्थ गुरु रामदास स्वामी ने यहाँ जन्म लिया था।

[चैत्र शुक्ल नवमी के दिन सन् १६६५ वि० में ठीक रामजन्म के समय रेणुकाबाई ने गोदावरी के तट पर उस महापुरुष को जन्म दिया जिसे संसार समर्थ गुरु रामदास के नाम से जानता है। पिता सूर्याजी पन्त ने इनका नाम नारायण रखा। बारह वर्ष की अवस्था में जब इनका विवाह हो रहा था यह मण्डप से भाग गये और गोदावरी नदी तैर कर, किनारे चलते चलते नासिक पंचवटी पहुँचे। कहा जाता है यहाँ इन्हें भगवान् रामचन्द्र ने दर्शन दिये। नासिक के समीप टाकली ग्राम में, जहाँ गोदा और नन्दिनी का सङ्गम हुआ है, एक गुफा में रामदास जी रहने लगे। इस प्रकार वहाँ तप करते इन्हें तीन वर्ष हो गये।

एक दिन रामदासजी सङ्गम पर ब्रह्मयज्ञ कर रहे थे कि इन्हें एक स्त्री ने प्रणाम किया। इन्होंने आठ पुत्रों की माता होने का आशीर्वाद दिया। स्त्री हँसी। वह पति के साथ सती होने जा रही थी और सती होने से पहले सत्पुरुषों को प्रणाम करने की विधि के अनुसार वहाँ आई थी। उसके पुत्र कोई न था। जब यह विदित हुआ तो श्री समर्थ ने शव वहीं लाने की आज्ञा दी। उसके आते ही समर्थ ने उस पर तीर्थोदक छिड़का। मृतशरीर जीवित हो उठा। यह गिरिधर पन्त का शरीर था और अन्नपूर्णा बाई उनकी स्त्री थीं। श्री समर्थ ने अन्नपूर्णा से कहा कि अब मैं तुझे दश पुत्र होने का आशीर्वाद देता हूँ, और उसके दश पुत्र हुये भी। इस दम्पति ने पहला पुत्र श्री समर्थ को अर्पण किया। वेही उद्धव गोसावी जी के नाम से प्रख्यात हुये हैं।

१२ वर्ष तपस्या और १२ वर्ष यात्रा करके श्री समर्थ माहुली क्षेत्र में रहने लगे। *श्री समर्थ की सत्कीर्ति सुनकर छत्रपति शिवाजी महाराज का मन उनकी ओर दौड़ गया और उन्होंने सम्वत १७०६ में चाफल के समीप शिंगणवाड़ी (ज़िला सातारा) में महाराज शिवाजी को शिष्य रूप में ग्रहण किया। श्री समर्थ पराली (ज़िला सातारा) में रहने लगे और तभी से उस स्थान का नाम सज्जनगढ़ पड़ गया।*

सम्वत् १७१२ में जब महाराज शिवाजी सातारा में थे, श्री समर्थ द्वार पर भिक्षा माँगने पहुँचे। महाराज ने एक कागज लिख कर झोली में डाल दिया। उस पर लिखा था "आज तक मैंने जो कुछ अर्जित किया है, वह सब स्वामी के चरणों में समर्पित है"। दूसरे दिन से छत्रपति महाराज भी

झोली डालकर भिक्षा माँगने को स्वामी के साथ हो लिये। उन्होंने इन्हें राज-कार्य के लिये लौटा दिया और शिवाजी श्री समर्थ जी की मन्त्रणानुसार कार्य करने लगे। सम्वत् १७३८ में श्री रामदास महाराज ने सज्जनगढ़ से वैकुण्ठ को गमन किया। सातारा से ४ मील, सज्जनगढ़ में श्रीसमर्थ की समाधि मौजूद है। चाफल में एक गुफा है जहाँ उन्होंने ध्यान मग्न रह कर आत्म ज्ञान प्राप्त किया था]

२५५ जालन्धर वा जलन्धर—(पंजाब प्रदेश में एक जिले का सदर स्थान)

जालन्धर को दैत्य जलन्धर ने बसाया था।

महाभारत में जलन्धर के दोआब की भूमि त्रिगर्त देश कहलाती थी।

यहाँ के राजा सुशर्मा ने विराट में जाकर विराट के अहीरों से वहाँ की गौवों को हरा था। इस पर अर्जुन ने, जो अन्य पाण्डवों सहित विराट में अज्ञात वास कर रहे थे, उसे मार भगाया था। सुशर्मा ने महाभारत में दुर्योधन का पक्ष लिया था और अर्जुन के हाथ से मारा गया था।

जलन्धर दोआब अति प्राचीन काल में एक चन्द्रवंशी राजा के वंशधरों द्वारा शासित था जिनकी संतान अब तक काँगड़ी की पहाड़ियों में छोटे प्रधान हैं। वे लोग बताते हैं कि वे महाभारत के युद्ध में लड़ने वाले राजा सुशर्मा के वंशधर हैं और उनके पूर्वजनों ने मुलतान से जलन्धर दो आब में आकर कटोच राज्य स्थापित किया था।

(महाभारत, विराट पर्व, ३० वाँ अध्याय) दुर्योधन की सेना ने दो भाग होकर विराट पर चढ़ाई की। प्रथम भाग का सेनापति त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा हुआ, जिसने विराट में जाकर विराट के अहीरों से सब गऊ छीन लीं।

(द्रोण पर्व, १६ वाँ अध्याय) त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा अपने चारों भाइयों और १० सहस्र रथों के सहित अर्जुन से लड़ने के लिये तैयार हुआ।

(शल्य पर्व, २७ वाँ अध्याय) अर्जुन ने त्रिगर्त देश के राजा सुशर्मा को मार डाला।

इस समय जालन्धर पंजाब प्रान्त के एक ज़िले का सदर स्थान और एक बड़ा शहर है।

२५६ जूनागढ़—(काठियावाड़ में एक राज्य)

यहाँ भक्त नरसी मेहता का जन्म हुआ था और उनका निवास स्थान था।

[नरसी मेहता गुजरात के भारी कृष्ण भक्त हो गये हैं और उनके भजन आज दिन सारे भारत में बड़ी श्रद्धा और आदर के साथ गाये जाते हैं। उनका जन्म काठियावाड़ के जूनागढ़ शहर में हुआ था। यह घर का काम न करके ईश्वर भक्ति में लगे रहते थे। एक दिन इनकी भावज ने ताना मारा कि ऐसी भक्ति उमड़ी है तो भगवान से मिलकर क्यों नहीं आते। नरसी जी निकल पड़े और जूनागढ़ से कुछ दूर श्री महादेव जी के पुराने मन्दिर में श्री शङ्कर की उपासना करने लगे। कहते हैं, उनकी पूजा से प्रसन्न होकर भगवान शङ्कर उनके सामने प्रगट हुये और उन्हें भगवान श्री कृष्ण के गोलोक में लेजा कर गोपियों की रास लीला का अद्भुतदृश्य दिखलाया।

कहा जाता है कि पुत्री के विवाह के लिये नरसी जी के पास सामान न था, जितने रूपये और सामग्रियों की जरूरत पड़ी सब भगवान ने पहुंचाई और स्वयम् मण्डप में उपस्थित होकर सब कार्य्य सम्पन्न किये। इसी तरह पुत्र के विवाह में भी हुआ। इनके पिता के श्राद्ध में एक बेर घी की कमी पड़ी। मेहता जी घी लाने बाजार गये पर कीर्त्तन हो रहा था उसमें लग गये। घण्टों बाद याद आई तो घर को दौड़े। ब्रह्मभोज समाप्त हो चुका था। नरसी जी स्त्री से क्षमा मांगने लगे। वह चकराई। उसे क्या खबर थी कि श्री कृष्ण भगवान् नरसी का रूप धर कर घी दे गये थे।

एक बार जूनागढ़ के रायमाण्डलिक ने मेहता जी के विरोधियों के भड़काने से उन्हें बन्दी कर लिया और कहा कि यदि भगवान अपने मूर्त्ति पर की माला उन्हें पिन्हावेंगे तब वे छूटेंगे, नहीं तो भक्त बनने के ढोंग में सजा पावेंगे। लोगों के देखते देखते मूर्त्ति की माला इनके गले में आ गई। नरसी जी का ही भजन है "वैष्णव जन तो तेने कहिये जो पीर पराई जाणे रे" जिसे महात्मा गाधी जी बड़े प्रेम से गाते थे।]

२५७ जेठियन—(देखिए राजगृह)

२५८ जैतापुर—(देखिए भुइला डीह)

२५९ जोशीमठ—(हिमालय पर्वत पर गढ़वाल प्रान्त में एक प्रसिद्ध स्थान)

यह प्राचीन काल का ज्योतिर्धाम है।

इस मठ की स्थापना जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य जी ने की थी।

जोशीमठ से तीन मीलपर विष्णु प्रयाग है जहां महर्षि नारद ने विष्णु भगवान की आराधना कर के सर्वज्ञत्व लाभ किया था।

प्रा० क०—(स्कन्द पुराण-केदार खण्ड प्रथम भाग, ५८ वां अध्याय) विष्णु कुण्ड से दो कोस पर ज्योतिर्धाम है जहां नृसिंह भगवान और प्रह्लाद जी निवास करते हैं। इस पीठ के समान सिद्धि देने वाला और सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला कोई दूसरा तीर्थ नहीं है।

ज्योतिर्धाम से दो कोस पर विष्णु प्रयाग है जिसमें स्नान करने वाला विष्णुलोक में पूजित होता है। महर्षि नारद ने उस प्रयाग में विष्णु भगवान की आराधना कर के सर्वज्ञत्व लाभ किया था, तभी से विष्णु कुण्ड प्रसिद्ध हो गया।

व० द०—श्री शङ्कराचार्य स्वामी ने जोशीमठ को स्थापित किया था। श्री नगर के बाद इतनी बड़ी बस्ती उस देश में नहीं है। यहां पचास से ऊपर मकान, कई धर्मशाले, पनचक्किया, शफ़ाखाना आदि हैं। बस्ती के ऊपरी भाग में बद्रीनाथ के रावल का मकान है। जाड़े में जब बद्रीनाथ के पट बन्द हो जाते हैं तब लगभग ६ मास तक बद्रीनाथ की पूजा जोशीमठ में होती है। पट खुलने के समय रावल बड़ा उत्सव करके जोशीमठ से बद्रीनाथ जाते हैं और लगभग ६ मास वहां रहते हैं।

रावल के मकान से पूर्व, पत्थर के तख्तों से छाया हुआ, दक्षिण मुख का, दो मंज़िला नृसिंह जी का मन्दिर है। मन्दिर में सुनहले मुकुट और छत्र सहित नृसिंह जी की सुन्दर मूर्त्ति है।

जोशीमठ से लगभग तीन मील पर विष्णुप्रयाग है। वहां उत्तर से अलखनन्दा आई है और पूर्व नीति घाटी से धवली गगा, जिसको लोग विष्णु गगा भी कहते हैं, आकर अलखनन्दा मे मिल गई है। वहां की धारा बड़ी तेज़ है। यात्रीगण लोटे में जल भर कर कुण्डम पर स्नान करते हैं। उसी स्थान को विष्णु कुण्ड कहते हैं। विष्णु प्रयाग गढ़वाल के पच प्रयागों में से एक है।

२६० जेष्ट पुष्कर—(देखिये पुष्कर)

२६१ ज्वाला मुखी—(पंजाब प्रदेश के कांगड़ा जिले में एक पहाड़ी कस्बा)

यहाँ ज्वाला मुखी देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है।

यही महाभारत वर्णित वड़वा है।

प्रा० क०—(शिव पुराण, दूसरा खण्ड, ३७ वाँ अध्याय) जब सती ने कनखल में अपना शरीर जला दिया तब उससे एक प्रकाशमय ज्योति उठी जो पश्चिम की ओर एक देश में गिर पड़ी, उसका नाम ज्वाला भवानी हुआ। वह सब को प्रसन्न करने वाली है। उसकी कला प्रत्यक्ष है। उसकी सेवा पूजा करने से सब कुछ मिलता है, उसी को ज्वालामुखी कहते हैं।

(देवी भागवत, ७ वाँ स्कन्द, ३८ वाँ अध्याय) ज्वाला मुखी का स्थान देखने योग्य और सदा व्रत करने योग्य है।

व० द०—ज्वाला मुखी पर्वत ३२८४ फ़ीट ऊँचा है और १८८२ फ़ीट की ऊँचाई पर ज्वाला मुखी देवी का गुम्बजदार मन्दिर है। मन्दिर और जगमोहन दोनों के गुम्बजों पर सुनहला मुलम्मेदार पत्तर पंजाब केसरी महाराज रणजीत सिंह का जड़वाया हुआ लगा है। मन्दिर के किवाड़ों पर चाँदी का मुलम्मा है। मन्दिर की दीवार के नीचे का भाग और इसका फ़र्श संग मरमर का है। मन्दिर के भीतर देवी का प्रकाश है। भूमि की अग्नि से निकलते हुए छोटे बड़े दश लाफ़ (लवें) रात दिन लगातार बलते हैं। लफ़ों के जलने से मन्दिर में रात्रि के समय में दिन का सा प्रकाश रहता है। भीतर के दश लफ़ाओं के अतिरिक्त मन्दिर से बाहर उसकी पीछे की दीवार में कई टेम जलते हैं। ज्वालादेवी को जीव बलिदान नहीं दिया जाता।

मन्दिर के पीछे छोटे मन्दिर में एक कूप है। कूप के भीतर उसकी बग़ल में दो बड़े लाफ़ बलते हैं। इसके पास दूसरे कूप का जल खौलता रहता है। लोग इसे गोरख नाथ की डिमी कहते हैं।

ज्वालपुर में नित्य यात्री आते हैं परन्तु आश्विन की नवरात्र और चैत्र की नवरात्र को बहुत भारी मेले लगते हैं।

२६२ ज्योतिर्लिङ्ग-बारहों—(देखिए वैद्यनाथ)

झ

२६३ झामतपुर—(देखिये कातवा)

ट

२६४ टँड़वा महन्त—(संयुक्त प्रान्त के बहराइच जिले में एक गाँव)

यहाँ कश्यप बुद्ध का, जो सात बुद्धों में छठे बुद्ध थे, जन्म हुआ था और यहीं उन्होंने समाधि ली थी।

भगवान गौतम बुद्ध ने कहा है कि उनसे पहिले छः बुद्ध और हो चुके हैं। उनमें से छठे, अर्थात् अन्तिम, कश्यप बुद्ध थे। फाहियान ने लिखा है कि इनका जन्म स्थान और समाधि की भूमि श्रावस्ती (सहेट-महेट) से ८ मील से ऊपर पच्छिम में है। ह्यानचाँग ने उसको श्रावस्ती से १० मील पच्छिम में,उत्तर की ओर को दबा हुआ, कहा है। वे यह भी कहते हैं कि इस स्थान पर एक स्तूप दक्षिण में और एक उत्तर में था। दक्षिण वाला स्तूप उस स्थान पर था जहाँ कश्यप बुद्ध ने तपस्या की थी, और उत्तर वाला जहाँ उन्होंने समाधि ली थी।

टँड़वा महन्त या टँड़हा गाँव सहेट-महेट (श्रावस्ती) से नौ मील पच्छिम में है। यह बहुत प्राचीन जगह है और पुरानी ईंटों से भरी पड़ी है। गाँव से ३०० गज़ पच्छिमोत्तर में ८०० फ़ीट लम्बा और ३०० फ़ीट चौड़ा ईंटों का खेड़ा है। खेड़े के पच्छिम-दक्षिण कोने में ईंटों का टूटा ठोस स्तूप है जिसका घेरा ७० गज़ है। यही कश्यप बुद्ध की समाधि का स्तूप है जिसे महाराज अशोक ने बनवाया था। इसके आकार से जान पड़ता है कि अपने समय में यह उत्तर देश के बहुत बड़े स्तूपों में रहा होगा। अब इसके ऊपर महादेव जी का लिङ्ग और सीता देवी की मूर्ति है जिनका पूजन होता है। असल में यह मूर्ति सीता देवी की नहीं है। १५० वर्ष हुए यहाँ एक वैरागी अयोध्या दास एक बरगद के वृक्ष के नीचे ठहरे थे। उनको खोदने में यह मूर्ति मिली जो गौतम बुद्ध की माता मायादेवी की है। वे साल वृक्ष के नीचे खड़ी हैं, दाहिना हाथ ऊपर उठा है जिससे वे वृक्ष की एक डाली पकड़े हैं, बायाँ हाथ कमर पर है। ऐसी ही अवस्था में उन्होंने भगवान बुद्ध को जन्म दिया था।

२६५ टङ्कारा—(देखिये मोरवी)

२६६ टाफली—(देखिये जाम्बगाँव)

ड

२६७ डलमऊ—(संयुक्त प्रदेश के रायबरेली ज़िले में एक तहसील का सदर स्थान)

इसका प्राचीन नाम दालभ्य आश्रम मिलता है और दालभ्य ऋषि का यह निवास स्थान था।

यह स्थान गंगा नदी के किनारे बसा है। गुप्तों का प्राचीन किला यहां था। उनके बहुत पीछे भर लोग यहां आये और भरों के बाद मुसलमानों ने यहां किला बनवाया।

डलमऊ में गंगा स्नान के मेले लगा करते हैं।

२६८ डल्ला सुल्तानपुर—(पंजाब प्रान्त के जालन्धर जिले में एक स्थान)

यहां तामस वन बौद्ध सङ्घाराम था जहां महापुरुष कात्यायन ने 'अभिधर्म-ज्ञान प्रस्ताव' ग्रन्थ लिखा था।

ह्वानचांग लिखते हैं कि तामस वन सङ्घाराम के बीच में २०० फीट ऊंचा स्तूप था और महापुरुष कात्यायन के यहां अभिधर्म-ज्ञान-प्रस्ताव ग्रन्थ लिखने के कारण यह जगत प्रसिद्ध हो रहा था। सैकड़ों हज़ारों स्तूप यहां आस पास बने थे और अर्हतों की हड्डियां मिलती थीं।

अब यह सब स्तूप लोप हो गये हैं। जहां तामस वन सङ्घाराम था वहां पर बादशाही सराय बनी है।

दौलत खां लोदी ने इस जगह को फिर से बसाया था और नादिरशाह के आक्रमण के समय यहां ३२ बाज़ार और ५५०० दुकानें थीं। नगर के फिर से बसाने में स्तूप और पुरानी इमारतों का सामान काम आ गया है।

२६९ डेहरा—(अलवर राज्य में एक गांव)

यहां शुक सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी चरणदास जी का जन्म हुआ था।

[वि०सं० १०६० में डेहरा ग्राम में भार्गव-ब्राह्मण के कुल में श्री चरण दास का जन्म हुआ था। कहा जाता है कि पांच वर्ष की अवस्था में डेहरा में नदी तट पर शुकदेव जी ने इन्हें दर्शन दिया था। और फिर फीरोजपुर के सन्निकट शुकतार में ११ साल की अवस्था में दर्शन दिया और विधिवत दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया। इसके बाद अष्टाङ्ग योग की साधना करके इन्होंने दिल्ली में १४ वर्ष की समाधि लगाई। इससे उनके हृदय को शान्ति न हुई और भगवान कृष्ण के दर्शनार्थ चरण दास जी वृन्दावन पधारे। श्री कृष्ण भगवान ने उन्हें प्रेमाभक्ति के प्रचार की आज्ञा दी, और चरण दास जी दिल्ली आकर इसका प्रचार करने लगे। सम्राट मुहम्मद शाह ने सैकड़ों गांव उनकी भेंट करना चाहे, और उनके अस्वीकार करने पर सम्राट ने उनके शिष्यों में उन्हें बांट दिया और बहुत से गांव अब भी उन्हीं

लोगों के पास हैं। वि० सं० १८३६ में स्वामी चरणदास जी परम धाम को गये। यह महापुरुष शुक सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं।]

त

२७० तख्तेभाई—(सीमा प्रान्त के मर्दान ज़िले में एक स्थान)

तख्तेभाई का प्राचीन नाम भीमा स्थान है। यहां भीमा देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है और इसकी यात्रा युधिष्ठिर ने की थी।

यह स्थान पेशावर से २८ मील पूर्वोत्तर और मर्दान से ८ मील पच्छिमोत्तर में है। हानचांग ने भीमा देवी के मन्दिर को लिखा है कि एक अकेली पहाड़ी की चोटी पर था।

२७१ तपबद्री—(देखिए भविष्य बद्री)

२७२ तपोवन—(देखिए भविष्य बद्री व राजगृह)

२७३ तमलुक—(बङ्गाल में मिदनापुर ज़िले का एक कस्बा)

ब्रह्म पुराण वर्णित वर्गा भीमा का मन्दिर यहां है।

इस स्थान का प्राचीन नाम ताम्रलिप्ति था।

ताम्रलिप्ति का उल्लेख महाभारत, पुराणों तथा बौद्ध ग्रन्थों में है। यह प्राचीन काल में बहुत बड़ा बन्दरगाह था और पूर्वी द्वीप समूह, चीन तथा जापान से भारत का व्यापार यहीं से विशेष रूप से होता था। कथासरित् सागर में इस बात का उल्लेख है। दशकुमारचरित के रचयिता दंडिन् के अनुसार यहां ७ वीं श० में विन्दुवासिनी का मन्दिर था।

इत्सिंग (चीनी यात्री) यहां रहा था।

इसी बन्दरगाह से विजय लङ्का विजय, को गये थे और लङ्का विजय की थी। यह नगर सुम्हराढ़ देश की राजधानी था, इसको डेढ़ हज़ार साल हुए। पहिले यह गंगा जी के समुद्र के मुहाने पर स्थित था पर अब रूप नारायण नदी के किनारे पर है जो कि नदी की कई शाखाओं से मिल कर बन गई है।

कहा जाता है कि तमलुक महाभारत के महाराज मयूरध्वज की राजधानी थी (देखिये रतनपुर), पर 'जैमिनि भारत' के अनुसार मयूरध्वज की राजधानी नर्मदा नदी पर थी। इसके साथ यह भी विचारने योग्य है कि ब्रह्मदेश (Burma) का राजवंश अपने को महाभारत के मयूरध्वज की संतान बताता है और मयूर ही उनकी ध्वजा का चिन्ह है। यह वंश तमलुक ही से ब्रह्मदेश जा सकता था।

की सराहौं के सराहौं छत्रसाल कौं'। यह महाराज छत्रसाल वह थे जिन्होंने दिल्ली सम्राट से टक्कर ले लेके अपनी छोटी सी रियासत पन्ना को दो करोड़ सालाना की आमदनी का राज्य बना दिया था।

भूषण जी एक बार पहाड़ी राजाओं के यहाँ गये। उन दिनों शिवाजी महाराज स्वर्ग को सिधार चुके थे। राजा लोग समझे कि यह विदाई लेने आये हैं। भूषणजी ने उनके व्यवहार से यह बात भाँप ली और जब विदाई दी जाने लगी तब उन्होंने कहा कि जिसको शिवा ने दिया है उसको दूसरा कोई क्या देगा, मैं तो देखने आया था कि इन दूरवर्ती पहाड़ियों पर भी महाराज शिवाजी का यश गाया जा रहा है या नहीं। यह कह कर वे वहाँ से चल दिये।

भूषण सदैव राजाओं की भाँति और प्रतिष्ठा पूर्वक रहा करते थे और १७७२ वि० में वैकुण्ठवासी हुए। इनके एक कवित्त का उल्लेख नीचे किया जाता है :—

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाडव सुअम्भ पर,
　　रावण सदम्भ पर रघुकुल राज है।
पौन वारिवाह पर, शम्भु रतिनाह पर,
　　ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है॥
दावा द्रुम दण्ड पर, चीता मृगझुण्ड पर,
　　"भूषण" वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंश पर, कान्ह जिमि कंस पर,
　　त्यों म्लेच्छ वंश पर शेर शिवराज है॥]

[महाकवि मतिराम जी, भूषण जी के छोटे भाई थे। इनका जन्म १६७४ वि० के लगभग, और शरीरान्त १७७३ वि० में अनुमान किया जाता है। भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ कवियों में से यह भी एक हैं। जैसे भूषण वीर रस के आचार्य थे वैसे मतिराम जी शृङ्गार रस के थे। इनकी कविता का उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

कुन्दन को रँग फीको लगै, झलकै अति अंगनि चारु गोराई।
आँखिन में अलसानि चितौनि में मञ्जु विलासन की सरसाई॥
को बिनु मोल बिकात नहीं, मतिराम लहे मुसुकानि मिठाई।
ज्यों ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि, त्यों त्यों खरी निखरै सी निकाई॥]

२८४ तिलपत—(दिल्ली में कुतुब मीनार से १० मील दक्षिण-पूर्व एक बस्ती)

इसका प्राचीन नाम तिलप्रस्थ है, और यह उन पाँच ग्रामों में से है जिन्हें श्रीकृष्ण ने दुर्योधन-से पाण्डवों के लिए माँगा था।

२८५ तिलौरा—(देखिए भुइला डीह)

२८६ तीर्थपुरी—(पश्चिमी तिब्बत में कैलास से पश्चिम एक स्थान)

कहा जाता है कि भस्मासुर यहाँ भस्म हुआ था।

तीर्थपुरी सतलज नदी के किनारे है। दुलजू से आधे दिन का रास्ता है। यहाँ एक बहुत गरम गन्धक का सोता है और राख का एक ढेर है जिसको भस्मासुर के जले हुए शरीर की राख का ढेर बताया जाता है।

बिहार प्रान्त के शाहाबाद ज़िला में ससराम के पास एक पहाड़ी में गुप्तेश्वर महादेव के मन्दिर के नाम से एक गुफ़ा है। उसको भी भस्मासुर के भस्म होने का स्थान बताया जाता है।

२८७ तुङ्गनाथ—(देखिए केदार नाथ)

२८८ तुरतुरिया—(देखिए नासिक)

२८९ तुलजापुर—(मध्यप्रदेश में खँडवा से ४ मील पश्चिम एक नगर)

यह ५२ पीठों में से एक है।

शङ्कर दिग्विजय में इसे 'भवानी नगर' और देवीभागवत में तुलजापुर कहा गया है।

श्री शङ्कराचार्य जी यहाँ पधारे थे।

दुर्गा जी ने महिषासुर दैत्य का वध यहीं किया था।

स्कन्द पुराण, ७ वाँ अध्याय कहता है कि दुर्गा ने रामेश्वरम् की धर्म पुष्करिणी में महिषासुर को मारा था। वह दुर्गा का घूँसा खा कर वहाँ भाग कर जलमें छिप गया था। देवी भागवत पुराण, ७ वाँ अध्याय, ३८ वाँ सर्ग बताता है कि दुर्गा ने महिषासुर को तुलजा भवानी में मारा था। यही ठीक प्रतीत होता है कि वह मारा यहाँ गया था। महा सरस्वती देवी के नाम से दुर्गा का मन्दिर यहाँ विद्यमान है।

२९० तुलसीपुर—(संयुक्त प्रदेश के गोंडा ज़िले में एक क़स्बा)

कुछ लोगों का अनुमान है कि इस स्थान पर प्राचीन मालिनी नगरी थी। यह ५२ पीठों में से एक है। यहाँ सती का दाहिना हाथ गिरा था।

कर्ण को जरासंध ने मालिनी नगरी दी थी जिस पर कर्ण ने दुर्योधन के अधीन राज्य किया था। विक्रमादित्य ने पुराने गढ़ के स्थान पर पाटेश्वरी देवी का मन्दिर बनवाया। इसके डेढ़ हज़ार वर्ष बाद रतननाथ ने उस जीर्ण मन्दिर को फिर से बनवाया। पर उसके दो सौ वर्ष पीछे औरङ्गजेब के समय में उसको तोड़ दिया गया लेकिन शीघ्र ही वर्तमान छोटा मन्दिर बन गया।

तुलसीपुर बलरामपुर राज्य के अन्तर्गत है। इस स्थान का पाटेश्वरी देवी का मन्दिर प्रसिद्ध है, इससे इस स्थान को देवी पाटन भी कहते हैं। चैत्र के नवरात्र को देवी के दर्शन पूजन का बड़ा मेला होता है जिसमें एक लाख से अधिक आदमी आते हैं। पाटेश्वरी देवी ही के नाम पर बलरामपुर के वर्तमान महाराज सर पाटेश्वरी प्रसाद सिंहजी का नाम भी रखा गया है।

बिहार प्रान्त के नाथनगर का भी प्राचीन नाम मालिनी या चम्पा मालिनी था। उसे चम्पापुर व चम्पानगर भी कहते थे और यह बहुत प्रसिद्ध स्थान था। (देखिये नाथ नगर)

२९१ तुसारन विहार—(संयुक्त प्रदेश के प्रतापगढ़ ज़िले में एक स्थान) यहां भगवान बुद्ध ने तीन मास उपदेश दिया था। पूर्व चार बुद्ध भी यहां आये थे।

बौद्ध आचार्य बुद्धदास ने 'महाविभाषा शास्त्र' ग्रन्थ यहां लिखा था।

ह्यानचांग लिखते हैं कि नगर के दक्षिण-पूर्व में गंगा जी के तटपर महाराज अशोक का बनवाया हुआ २०० फ़ाट ऊंचा स्तूप था जहां भगवान बुद्ध ने तीन मास तक उपदेश दिया था। उसके समीप एक स्तूप था जिस पर चार पूर्व बुद्धों के सिंहासन बने थे। यहां वे चला फिरा करते थे। इसके पास एक नीले पत्थर का स्तूप था जिसमें भगवान बुद्ध के नख और केश रखे थे। समीप ही एक सङ्घाराम था जिसमें दो सौ भिक्षुक रहते थे। यहां बौद्ध आचार्य बुद्धदास ने हीनयान पर 'महाविभाषा शास्त्र' ग्रन्थ लिखा था।

एक समय तुसारन विहार अवध के सबसे बड़े स्थानों में था।

विहार कस्बे के दक्षिण-पूर्व में आध मील लम्बा खेड़ा, गंगा जी की पुरानी धारा के उत्तरीय किनारे पर खड़ा है और तुसारन कहलाता है। यह पुराने स्तूपों और सङ्घाराम का खण्डहर है।

२९२ तेजपुर- (देखिए शोणितपुर)

२९३ तेवर—(मध्यप्रदेश के जबलपुर जिला में एक स्थान)

यहां शिव जी ने त्रिपुरा दैत्य को मारा था।

इस स्थान का प्राचीन नाम त्रिपुरा, त्रिपुरी और चेदि नगरी थे।

चेदि राज्य एक विशाल राज्य था। इसके कई टुकड़े हो गये थे। कुलचूरी वंशीय चेदि राजाओं की राजधानी त्रिपुरा थी। (देखिए चन्देरी) हेमकोश में त्रिपुरा को चेदि नगरी भी लिखा गया है। कहा जाता है कि तारकासुर के तीन पुत्रों ने इस नगर को बसाया था। चेदि नगरी के कुलचूरी वंश ने २४८ ईस्वी में कुलचूरी वा चेदि सम्वत् आरम्भ किया था।

जबलपुर से ६ मील पश्चिम नर्मदा तट पर तेवर एक छोटा स्थान है। यहां से आध मील दक्षिण-पूर्व त्रिपुरा की तबाहियां हैं। इस स्थान को करन बेल कहते हैं और इसके समीप पुष्करणी एक पवित्र तालाब है।

द

२६४ दण्ड विहार—(देखिए विहार)

२९५ दर्भशयन—(देखिए रमेश्वर)

२९६ दक्षिण गोकर्ण तीर्थ—(देखिए वैद्यनाथ)

२९७ दिल्ली—(देखिए इन्द्रपाथ)

२९८ दिवर—(गोआ टापू के उत्तर में एक टापू)

इसका प्राचीन नाम दीपवती है।

स्कन्द पुराण वर्णित सप्तऋषियों का स्थापित किया हुआ सप्त कोटेश्वर शिव लिङ्ग यहाँ है।

सप्त कोटेश्वर महादेव का मन्दिर पञ्चगंगा के किनारे पर यहाँ स्थित है।

२९९ दुर्वासा आश्रम—(कुल) (देखिए गोलगढ़)

३०० दुबाउर—(देखिए गोलगढ)

३०१ ढूँढिया—(देखिए अम्बर)

३०२ देवकुण्डा—(देखिए बक्सर)

३०३ देवगढ़—(देखिए वैद्यनाथ)

३०४ देवघर—(देखिए वैद्य नाथ)

३०५ देवदारु वन—(देखिये कारों)

३०६ देवपट्टन—(देखिए सोमनाथ पट्टन)

२८

३०७ देवप्रयाग—(संयुक्त प्रान्त के हिमालय पर्वत पर टेहरी राज्य में एक स्थान)

रामचन्द्र जी ने यहाँ निवास किया था और लक्ष्मण जी भी यहाँ पधारे थे।

वशिष्ठ जी ने इस स्थान पर वास किया था।

पौराणिक कथा है कि ब्रह्मा ने यहाँ दश सहस्र और दश सौ वर्ष तक कठिन तप किया था।

इस स्थान का दूसरा प्राचीन नाम ब्रह्मतीर्थ है।

प्रा० क०—(स्कन्द पुराण, केदार खण्ड तीसरा भाग, पहला अध्याय) गंगा द्वार के पूर्व भाग में गंगा और अलकनन्दा के संगम के निकट देव प्रयाग उत्तम तीर्थ है जिस स्थान पर भागीरथी और अलकनन्दा का संगम है, और साक्षात श्री रामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण के साथ निवास करते हैं, उस तीर्थ का महात्म्य कौन वर्णन कर सकता है?

देवप्रयाग में जिस स्थान पर ब्रह्मा जी ने तप किया था वह ब्रह्मकुण्ड प्रसिद्ध हो गया। गंगा के उत्तर तट में शिवतीर्थ है। गंगा के निकट वैताल की शिला के पास वैताल कुन्ड है और उससे थोड़ी दूर पर सूर्य कुन्ड है। गंगा के दक्षिण भाग में ब्रह्म कुन्ड से ऊपर चार हाथ प्रमाण का वशिष्ठ कुन्ड है। वशिष्ठ तीर्थ के ऊपर ८० हाथ के प्रमाण पर वाराह तीर्थ है। सूर्य कुन्ड से एक बाण के अन्तर पर पौष्पमाल तीर्थ है। उससे ६ दण्ड आगे इन्द्रद्युम्न का तपस्थान इन्द्रद्युम्न तीर्थ है। उसके आधे कोस की दूरी पर बिल्व तीर्थ स्थित है, जहाँ महादेव जी सर्वदा निवास करते हैं।

(दूसरा अध्याय) सतयुग में देवशर्मा नामक प्रसिद्ध मुनि ने देवप्रयाग में विष्णु भगवान का १० सहस्र वर्ष तक पत्ता खाकर और एक हजार वर्ष तक एक पाद से खड़ा रह कर उग्र तप किया, तब विष्णु भगवान ने प्रकट होकर मुनि से वर मांगने को कहा। देवशर्मा बोले कि हमारी निश्चल प्रीति तुम्हारे चरणों में रहे और यह पवित्र क्षेत्र कलियुग में सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला हो। तुम सर्वदा इस क्षेत्र में निवास करो और जो पुरुष इस क्षेत्र में तुम्हारा पूजन और संगम में स्नान करें उनको परम गति मिले। भगवान ने कहा कि हे मुनि! ऐसा ही होगा। मैं त्रेतायुग में राजा दशरथ का पुत्र राम नाम से विख्यात होकर और कुछ दिनों तक अयोध्या का राज भोग करके इस स्थान पर आऊँगा। तब तक तुम इसी स्थान पर

निवास करो। फिर हमारा दर्शन पाकर तुम परम गति प्राप्त करोगे, तब से इस तीर्थ का नाम तुम्हारे नाम के अनुसार देवप्रयाग होगा। विष्णु भगवान ने त्रेतायुग में राजा दशरथ के घर राम नाम से विख्यात हो रावणादि के वध के पश्चात् आकर देवशर्मा को दर्शन दिया, और कहा कि हे मुनिवर! अब से यह तीर्थ लोक में प्रसिद्ध होगा, तुमको सायुज्य मुक्ति मिलेगी। ऐसा कह रामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण के सहित उस स्थान पर रह गये।

(तीसरा अध्याय) ब्रह्माजी ने सृष्टि के आरम्भ में दश सहस्र और दश सौ वर्ष समाधिनिष्ठ होकर कठिन तप किया। विष्णु भगवान प्रकट हुये और ब्रह्मा जी को वर दिया कि तुमको जगत की सृष्टि करने की सामर्थ्य होगी और इस स्थान का नाम ब्रह्मतीर्थ होगा।

(चौथा अध्याय) ब्रह्मतीर्थ के निकट महामति वशिष्ठ जी ने निवास किया।

(१० वां अध्याय) देवप्रयाग में त्रेता युग में लक्ष्मण के सहित श्री रामचन्द्र जी आये।

(११ वां अध्याय) श्री रामचन्द्र जी ने देव प्रयाग में जाकर विश्वेश्वर शिव की स्थापना की।

व० द०—देव प्रयाग के पास गंगा उत्तर से आई हैं और अलकनन्दा पूर्वोत्तर से आकर गंगा में मिल गई है। यहाँ रघुनाथ जी का बड़ा मन्दिर है जिसके शिखर पर सुन्दर कलश और छत्र लगे हैं। लोग कहते हैं कि रघुनाथ जी की मूर्ति शङ्कराचार्य जी की स्थापित की हुई है। रघुनाथ जी के मन्दिर से १०० सीढ़ी से अधिक नीचे भागीरथी और अलकनन्दा का संगम है। इस संगम पर अलकनन्दा के निकट वशिष्ठ कुन्ड और गंगा के समीप ब्रह्म कुन्ड चट्टान में थे, जो सन् १८६४ ईस्वी की बाढ़ के समय जल के नीचे पड़ गये। बद्रीनाथ के पन्डे देवप्रयाग ही में रहते हैं। देवप्रयाग गढ़-वाल जिले के पाँच प्रयागों में से एक है। अन्य प्रयाग रुद्रप्रयाग, कर्ण प्रयाग, नन्दप्रयाग और विष्णु प्रयाग उससे आगे मिलते हैं।

संगम से उत्तर गंगा के किनारों पर वाराह शिला, वैताल शिला, पौष्य-माल तीर्थ, इन्द्रद्युम्न, विल्वतीर्थ, सूर्यतीर्थ और भरत जी का मन्दिर है।

३०८ देवबन्द—(संयुक्त प्रान्त के सहारनपुर जिले में एक नगर) इस स्थान का पुराना नाम द्वैतवन है।

जुए में अपना राज्य हार कर युधिष्ठिर और अन्य पाण्डव यहाँ चले आये थे और बहुत काल तक यहीं रहे थे।

जयमिनि जिन्होंने मीमांसा दर्शन की रचना की है उनकी यह जन्म भूमि है।

राधावल्लभी सिद्धान्त के प्रवर्तक स्त्री हितहरिवंश का यह निवास स्थान था। (देखिए बाद)

यह स्थान यमुना नदी से ढाई मील पश्चिम में है और आजकल भारतवर्ष में इसलाम मत का सबसे बड़ा मदरसा यहाँ है।

३०९ देवयानी—(राजपूताने में जयपुर राज्य में एक कस्बा)

इसी स्थान पर वृषपर्वा दैत्य की कन्या शर्मिष्ठा ने शुक्राचार्य की कन्या देवयानी को कूप में डाल दिया था। राजा ययाति ने उसको कूप से निकाला था, इसलिये ययाति का ब्याह देवयानी से हुआ था।

प्रा० क०—(महाभारत, आदि पर्व, ७८ वां अध्याय) शुक्राचार्य की कन्या देवयानी और दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा अन्य कन्याओं के सहित एक वन में जलक्रीड़ा कर रही थी। इन्द्र ने वायु रूप होकर उनके वस्त्रों को एक दूसरे से मिला दिया। शर्मिष्ठा ने वस्त्रों की मिलावट न जान कर देवयानी का वस्त्र ले लिया। देवयानी बोली कि हे असुर पुत्री! तुम शिष्या होकर क्यों मेरा वस्त्र ले रही हो, तुम में शिष्टाचार नहीं है। शर्मिष्ठा ने देवयानी को वस्त्र के लिए आसक्त देख उसको बहुत दुर्वचन कहे और उसको एक कूप में डाल वह अपने घर चली गई।

राजा नहुष के पुत्र राजा ययाति मृगया के लिये उस वन में आए थे। उन्होंने घोड़े के बहुत थक जाने पर जल ढूंढ़ते हुए एक सूखा कूप पाया, और जब देखा कि कूप में एक कन्या रो रही है, तब उसको कूप से निकाला।

(८१ वां अध्याय) बहुत दिनों के पश्चात् देवयानी पूर्व कथित वन में खेलने गई। इसी समय राजा ययाति मृगया के लिए फिर वहाँ आए थे। परस्पर बात होने पर देवयानी पूर्व वृतान्त को जानकर राजा से बोली कि आप ही ने पहिले मेरा पाणि-ग्रहण किया है इससे मैं आपको अपना पति बनाऊँगी। शुक की आज्ञा से राजा ययाति ने शास्त्रोक्त विधि के अनुसार देवयानी से विवाह किया।

(मत्स्य पुराण के २४ वें अध्याय और श्रीमद्भागवत, नवम स्कन्द के १८ वें अध्याय में भी यह कथा है।)

व० द०—देवयानी साँभर बस्ती से दो मील पर है। वहां एक सरोवर के निकट कई छोटे मन्दिर हैं जिनमें दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य, देवयानी आदि की मूर्त्तियां हैं।

यहां वैशाख की पूर्णिमा को एक मेला होता है जिसमें राजपूताना के अनेक स्थानों से बहुत यात्री आते हैं। एक कूप यहां अब भी दिखाया जाता है कि उस में देवयानी को शर्मिष्ठा ने गिराया था।

३१० देवलवाड़ा—(देखिए कुण्डिनपुर)

३११ देवीकोट—(देखिए शोणितपुर)

३१२ देवीपत्तन—(देखिए रामेश्वर)

३१३ देवीपाटन—(देखिए तुलसीपुर)

३१४ देहरा पातालपुरी—(पंजाब प्रदेश के जिला होशियारपुर में एक स्थान)

छठें सिक्ख गुरु श्री हरि गोविन्द सिंह जी का यहां शरीरान्त हुआ था।

यहां से एक मील पर कीर्त्तिपुर में सातवें सिक्ख गुरु श्री हरिराय जी और आठवें गुरु श्री हरि कृष्ण जी का जन्म हुआ था।

कीर्त्तिपुर में श्री गुरु हरिराय जी ने शरीर भी छोड़ा था।

[सातवें सिक्ख गुरु श्री हरिराय जी का जन्म माघ सुदी तेरस वि० सं० १६८६ (२६ फरवरी १६३० ई०) को कीर्त्तिपुर में हुआ था। आप छठें सिक्ख गुरु श्री हरि गोविन्द सिंह जी के सुपुत्र बाबा गुरुदित्ता जी के पुत्र थे। हरिराय जी का विवाह अनूपशहर (जिला बुलन्दशहर) निवासी दयाराम जी की दो पुत्रियों-कोट कल्याणी जी और कृष्ण कुँवर जी-से हुआ था। पहली से रामराय जी, और दूसरी से हरिकृष्ण जी का जन्म हुआ।

देश देशान्तर में घूम घूम कर गुरु जी ने उपदेश दिया, और संवत् १७११ वि० में-मालवा देश के मिहराज ग्राम में चौधरी करमचन्द के अनाथ पुत्र 'फूल' को राजा होने का वरदान दिया। पटियाला, नाभा व झींद के महाराजे इन्हीं फूल की सन्तान में से हैं और फूल वंशी कहलाते हैं।

औरङ्गजेब ने अपने पिता को बन्दी कर के अपने बड़े भाई दारा का जब पीछा किया था तब एक बार दारा, व्यास नदी के किनारे गोइँदवाल के समीप पकड़े जाने वाले थे। गुरु जी की सहायता से वे निकल गये। औरङ्गजेब को जब यह समाचार मिला तो उसने गुरु जी को बुला भेजा। गुरु जी ने

स्वयम् न जाकर अपने बड़े पुत्र रामराय जी को भेज दिया। रामराय जी ने अपनी बातों से औरङ्गज़ेब को प्रसन्न कर लिया। एक बार औरङ्गज़ेब ने पूछा कि आपके ग्रन्थ में यह क्यों लिखा है कि 'मिट्टी मुसलमान की पेड़े पई कुम्हार'! रामराय जी ने औरङ्गज़ेब को खुश करने के लिए कह दिया कि लेखक ने 'मुसलमान' गलत लिख दिया है, यथार्थ में है—'मिट्टी बेईमान की पेड़े पई कुम्हार'जब यह समाचार गुरु हरिराय-जी को मिला तो रामराय से वे इतने नाराज हुए कि लौटने पर उन्होंने उनका मुहं नहीं देखा, और निकाल दिया। रामराय जी एक दून (घाटी) को चले गये। वहीं मरने पर उनका देहरा (समाधि) बन गया और इससे वह स्थान 'देहरादून' कहलाने लगा और आज कल संयुक्त प्रदेश के एक प्रसिद्ध ज़िले का सदर स्थान है।

कार्त्तिक बदी ८ सम्वत् १७१८ वि० को गुरु हरिराय जी ने कीर्त्तिपुर ही में शरीर छोड़ा, और उनके छोटे सुपुत्र श्री हरिकृष्ण जी आठवें गुरु हुये। आपका जन्म श्रावण बदी १०, वि० सं० १७१३ को हुआ था, और गुरुवाई की गद्दी के समय केवल सवा पांच वर्ष की अवस्था थी। उस अवस्था में भी आप बड़े ठाट बाट से गुरुवाई का दरबार करते थे और अपने अनेकों चमत्कार दिखलाए।

गुरु जी के बड़े भाई रामराय ने औरङ्गज़ेब से शिकायत की कि उसके होते हुए उसके छोटे भाई को गद्दी दी गई है। औरङ्गज़ेब ने गुरु हरिकृष्ण जी को बुला भेजा, और दिल्ली में गुरु जी कुछ दिन जाकर रहे। वह स्थान अब 'बँगलासाहेब' कहलाता है। वहीं आपको चेचक निकल आई और आप शहर से २-३ मील हट कर यमुना तट पर रहने लगे। वह स्थान अब 'बाला-साहेब' के नाम से प्रसिद्ध है। वहीं चैत्र सुदी चतुर्दशी वि० सं० १७२१ को सात वर्ष आठ महीने छब्बीस दिन की आयु में आप ने शरीर छोड़ा।

देहरा पातालपुरी में गुरुद्वारा है। कीर्तिपुर में गुरु हरिराय के जन्म स्थान पर 'गुरुद्वारा जन्मस्थान' और गुरू हरिकृष्ण के जन्म के स्थान पर 'गुरुद्वारा हरिमन्दिर साहेब' हैं। गुरु हरिराय जी के शरीर छोड़ने के स्थान पर 'गुरुद्वारा शीशमहल' बना है।

३१५ देहू—(बम्बई प्रान्त के पूना ज़िले में एक स्थान)

यह स्थान संत तुकाराम जी की जन्मभूमि है और निवास स्थान था।

[सम्वत १६६५ वि० में देहू में कनकाबाई ने श्री **तुकाराम जी** को जन्म दिया। समय पाकर इनकी चित्तवृत्ति अखण्ड नाम स्मरण में लीन होने लगी

और भगवत्कृपा से कीर्तन करते समय इनके मुख से अभंग वाणी निकलने लगी। बड़े बड़े विद्वान ब्राह्मण और साधु संत इनकी प्रकाण्ड ज्ञानमयी कविताओं को इनके मुख से स्फुरित होते देख इनके चरणों में नत होने लगे।

छत्रपति शिवाजी महाराज श्री तुकाराम जी को अपना गुरु बनाना चाहते थे पर संत तुकाराम ने उनको गुरु रामदास जी के शरण जाने का उपदेश दिया। शिवा जी महाराज इनकी हरिकथायें बराबर सुना करते थे। सं० १७०६ वि० में श्री संत तुकाराम जी इस लोक से चले गए।]

३१६ दोहथी—(संयुक्त प्रदेश के फैज़ाबाद ज़िले में एक स्थान)

यहां श्रावण ऋषि का आश्रम था और श्रवण आश्रम कहलाता था।

राजा दशरथ ने ऋषि-पुत्र श्रवणकुमार को यहीं धोखे से मार डाला था जिस पर श्रवण ऋषि ने भी वियोग में प्राण त्याग दिए थे, और दशरथ को शाप दिया था कि वे भी पुत्र वियोग में मरेंगे।

अवध में उन्नाव से २० मील दक्षिण पूर्व एक स्थान शरवन है। उसको भी कहा जाता है कि महाराज दशरथ ने वहां श्रवणकुमार को मारा था, परन्तु दोहथी सही स्थान प्रतीत होता है।

३१७ द्रोणगिरि—(देखिए सेंदप्पा)

३१८ द्वारिका—(काठियावाड़ प्रदेश में बड़ौदा राज्य में एक स्थान)

भगवान कृष्ण ने इस स्थान को अपनी राजधानी बनाया था।

दुर्वासा ऋषि यहाँ आया करते थे।

प्राचीन सप्त पुरियों में से यह एक पुरी है।

मीराबाई द्वारिका में रणछोड़ जी में लीन हो गईं।

इस स्थान के नाम कुशस्थली व द्वारावती भी हैं।

श्री नेमनाथ जी (बाईसवें तीर्थङ्कर) के यहां गर्भ और जन्म कल्याणक हुए थे।

श्री शङ्कराचार्य जी का स्थापित किया हुआ यहां 'शारदा मठ' है।

प्रा० क०—(महाभारत-सभापर्व १४ वां अध्याय) मगध देश का राजा जरासन्ध अपने प्रताप से सम्पूर्ण पृथिवी को अपने अधिकार में कर पृथिवीनाथ बन गया। पृथिवी के बहुत से राजे उसके भय से उसके सहायक बन गए और बहुतेरे अपने देश को छोड़ कर भाग गए। अस्ति और प्राप्ति नामक जरासन्ध की दो पुत्री कंस से ब्याही थीं। जब कृष्ण ने कंस को मारा तब

उन्होंने अपना दुःख जरासन्ध से जा सुनाया। जरासन्ध बारबार मथुरा पर आक्रमण करने लगा। हंस और डिम्बक दो अति बलवान पुरुष जरासन्ध के सहायक थे। १७ वीं लड़ाई में बलराम जी ने हंस को मारा और डिम्बक हंस की ग्लानि से यमुना में डूब कर मर गया। उनकी मृत्यु का समाचार पाकर जरासन्ध उदास हो अपनी राजधानी की ओर चला। उसके लौटने पर कृष्ण आदि यादव प्रसन्न हो फिर मथुरा में बसने लगे। किन्तु कंस की दोनों स्त्रियां कृष्ण व बलराम को मारने के लिए अपने पिता जरासन्ध को फि उभारने लगीं। तब कृष्ण ने उदास हो मथुरा को त्यागने का विचार किया। सब मथुरावासी अनन्त ऐश्वर्य को आपस में बांट कर, प्रत्येक आदमी स्वल्प भार लेकर पश्चिम दिशा में चले गए। वे लोग भारतवर्ष के पश्चिमी भाग में रैवत पर्वत की चोटियों से सुशोभित कुशस्थली अर्थात् द्वारिकापुरी में जा बसे।

(श्री मद्भागवत—दशम स्कन्ध, ६४ वां अध्याय तथा महाभारत-अनुशासन पर्व, ७० वां अध्याय) कुछ प्यासे आदमियों ने जल को ढूंढते हुए द्वारिका के एक स्थान में तृणलताओं से परिपूर्ण एक बड़ा कूप पाया। उसमें उन्होंने एक बड़ा गिरगिट देखा जिसको वे उद्योग करने पर भी कूप से न निकाल सके। यह समाचार श्री कृष्णचन्द्र को पहुँचा और उनके वहाँ पहुँच जाने पर गिरगिट ने कहा कि मैं यथार्थ में राजा नृग हूँ। एक पाप के कारण इस अवस्था को प्राप्त हुआ हूँ। धर्मराज ने मुझसे कहा था कि सहस्र वर्ष पूरे होने पर तुम्हारा पाप-कर्म नष्ट होगा और कृष्ण भगवान तुम्हारा उद्धार करेंगे। ऐसा कह राजा नृग गिरगिट रूप छोड़ दिव्य विमान में बैठे सुर लोक में चले गये।

(महाभारत-अनुशासन पर्व १५९ वां १६० वां अध्याय) महर्षि दुर्वासा कहा करते थे कि मुझको, जो मैं अल्प अपराध में बड़ा क्रोध करता हूँ, कौन मनुष्य सत्कारपूर्वक अपने गृह में रख सकता है? दुर्वासा ने कृष्ण के घर में बहुत काल तक निवास करके दुःसह व्यवहार किया था।

(देवी भागवत-सातवां स्कन्ध, सातवां अध्याय) राजा रैवत द्वारिका में आये और रेवती नामक अपनी कन्या को बलदेव जी को समर्पण करके बद्रिकाश्रम चले गये।

(स्कन्द पुराण-काशी खण्ड, १०४ वां अध्याय) द्वारिका के चारों ओर चारों वर्णों को प्रवेश करने के लिये द्वार बने हुये थे। इसी कारण तत्व वेत्ताओं ने उस को द्वारावती कहा है।

(गरुण पुराण, पूर्वार्द्ध ६६ वां अध्याय) द्वारिका तीर्थ सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला और मुक्ति देने वाला है।

(पद्म पुराण-पाताल खण्ड, १७ वां अध्याय) द्वारावती की गोमती नदी का जल साक्षात ब्रह्म रूप है।

(६५ वां अध्याय) जो पुरुष तीन रात्रि द्वारिका में निवास करके गोमती नदी के जल में स्नान करता है वह धन्य है।

(विष्णु-पुराण, पांचवां अंश, ३८ वां अध्याय तथा श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध ३१ वां अध्याय) कृष्ण के परम धाम जाने के पीछे समुद्र ने रुक्मिणी के महल को छोड़कर सारी द्वारिका नगरी को अपने जल में डुबो लिया। उस महल को समुद्र अबतक नहीं डुबो सका क्योंकि यहां विहार करने के लिये श्रीकृष्ण भगवान नित्य आते हैं।

(महाभारत-मौशलपर्व, ७ वां अध्याय) प्रभास में द्वारिका के क्षत्रियों के विनाश होने के पश्चात द्वारिकावासियों के अर्जुन के साथ नगर से बाहर जाते ही समुद्र ने समस्त द्वारिका नगरी को अपने जल में डुबो दिया।

(आदि ब्रह्म पुराण, ७ वां अध्याय) राजा आनर्त का श्वेत नामक पुत्र आनर्त देश का राजा हुआ। कुशस्थली उसकी राजधानी हुई।

मेवाड़ की सुप्रसिद्ध महारानी मीराबाई घर बार छोड़कर द्वारिका चली आई थीं और कृष्ण भगवान के सामने गान किया करती थीं। जब मेवाड़ से लोग उनको लेने को आये तब यह रणछोड़ जी के मन्दिर में भगवान की उपासना करने चली गई और वहीं रणछोड़जी में लीन हो गई।

[श्री नेमनाथ जी बाईसवें तीर्थङ्कर हुये हैं। आप के पिता का नाम समुद्र विजय और माता का नाम शिवदेवी था। द्वारिका में आप के गर्भ और जन्म कल्याणक हुये थे, और गिरनार में दीक्षा, कैवल्य ज्ञान तथा निर्वाण हुये थे। शंख आप का चिन्ह है।]

व० द० द्वारिका भारतवर्ष के पश्चिमी समुद्र के किनारे पर, भारतवर्ष के चार धामों में से एक धाम और सप्त पुरियों में से एक पुरी है। द्वारिका के पश्चिम में समुद्र और दक्षिण में गोमती नामक लम्बा तालाब है जो समुद्र के ज्वार के पानी से भरा रहता है। गोमती के होने से इस नगर को लोग गोमती द्वारिका भी कहते हैं।

कृष्ण भगवान काल यवन के डर से संग्राम छोड़कर द्वारिका में भाग गये थे। इस कारण से उनका नाम रणछोड़ पड़ा है। रणछोड़ जी का मन्दिर

द्वारिका के सब मन्दिरों में प्रधान और सबसे बड़ा और सुन्दर है। यह मन्दिर सात मंजिला और शिखरदार है, ४० फीट लम्बा और उतना ही चौड़ा तथा लगभग १४० फीट ऊंचा है। ऊपर की मंजिलों में जाने के लिये भीतर सीढ़ियां बनी है। मन्दिर की दीवार दोहरी है। दोनों दीवारों के बीच में परिक्रमा करने की जगह है। मन्दिर के भीतर चांदी के पत्तरों से भूषित किये हुये सिंहासन पर रणछोड़ जी की, जिनको द्वारिकाधीश भी कहते हैं, ३ फीट ऊंची श्यामल चतुर्भुज मूर्ति है। मूर्ति के अङ्ग में बहुमूल्य वस्त्र, गले में सोने की अनेक भांति की ११ मालायें, और सिर पर सुन्दर सुनहरा मुकुट है। मन्दिर की फर्श में श्वेत तथा नील सङ्गमरमर के टुकड़े जड़े हुये हैं, द्वार के चौखटों पर चांदी के पत्तर लगे हैं और छत से सुन्दर झाड़ लटकते हैं।

रणछोड़ जी के मन्दिर से दक्षिण त्रिविक्रम जी का शिखरदार मन्दिर है। पश्चिम में कुशेश्वर महादेव का मन्दिर है। पण्डे लोग कहते हैं कि जब कुश नामक दैत्य द्वारिका के लोगों को क्लेश देने लगा तब दुर्वासा ऋषि त्रिविक्रम भगवान को राजा बलि से मांग लाये। जब कुश दैत्य किसी भांति से नहीं मरा तब त्रिविक्रम जी ने उसको भूमि में गाड़ कर उसके ऊपर शिवलिङ्ग स्थापित कर दिया जो कुशेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस समय कुश ने कहा कि जो द्वारिका के यात्री कुशेश्वर की पूजन करें उनकी यात्रा का आधा फल मुझको मिले तब मैं इसके भीतर स्थिर रहूँगा। त्रिविक्रम जी ने कुश को यह वर दे दिया। कुश भूमि में स्थित हो गया।

रणछोड़ जी के भण्डार से दक्षिण सुप्रसिद्ध शारदामठ है। रणछोड़ जी के मन्दिर से नगर की परिक्रमा की यात्रा आरम्भ होती है। रास्ते में कैलास कुण्ड नामक एक छोटा पोखरा मिलता है। पोखरे के चारों बगलों में पत्थर की सीढ़ियां बनी हैं। उसमें गुलाबी रङ्ग का पानी है। वहां के पण्डे कहते हैं कि राजा नृग गिरगिट होकर इसी कुण्ड में रहते थे और इसी स्थान पर उनका उद्धार हुआ था।

३१९ द्वितवरकूट—(देखिए सम्मेद शिखर)

ध

३२० धनुष्कोटि—(देखिए रामेश्वर)
३२१ धनुषा—(देखिए सीतामढ़ी)
३२२ धरणीकोटा—(मद्रास प्रान्त के कृष्णा जिला में एक स्थान)

बौद्ध महात्मा भावविवेक भगवान मैत्रेय बुद्ध की प्रतीक्षा में यहां रहे थे।

इस स्थान का प्राचीन नाम सुधन्य कटक है।

३२३ धवलकूट---(देखिए सम्मेद शिखर)

३२४ धाड़---(मध्यभारत के मालवा प्रदेश में एक राज्य)

धाड़ के प्राचीन नाम धारापुर और धारानगर हैं।

राजा भोज ने अपनी राजधानी धारापुर में नियत की थी।

धारा नगरी में भोज के समय विद्या की बड़ी उन्नति हुई। भोज ने अढ़ाई दिन का झोपड़ा नामक प्रसिद्ध विद्यालय यहीं स्थापित किया था। धाड़ इस समय एक रियासत की राजधानी है।

३२५ धाम---(भारतवर्ष में चार धाम हैं)

उत्तर में---बद्रिकाश्रम (बद्रीनाथ): दक्षिण में-- रामेश्वर : पूर्व में--- जगन्नाथपुरी : पच्छिम में-- द्वारिकापुरी।

३२६ धोपाप---(संयुक्त प्रान्त के सुलतानपुर जिले में एक स्थान)

इस स्थान का प्राचीन नाम धूतपाप है।

श्री रामचन्द्र जी ने यहीं पर नदी में स्नान करके रावण-वध का प्रायश्चित्त किया था।

धोपाप गोमती नदी के किनारे पर बसा है। (रावण-वध के प्रायश्चित के लिए रामचन्द्र जी ने हत्याहरण नामक स्थान पर भी स्नान किया था। हत्याहरण जिला सीतापुर में गोमती नदी के तट पर है। उन्होंने मुङ्गेर में गङ्गा जी में भी इस प्रायश्चित्त के लिए स्नान किया था।)

३२७ धोसी---(देखिए चौसा)

न

३२८ नगर---(जयपुर राज्य में एक स्थान)

यह राजा मुचुकुन्द की राजधानी थी।

श्रीकृष्ण चन्द्र पर मथुरा में कालयमन ने चढ़ाई की। वे वहां से भाग कर मुचुकुन्द जिस गुफा (मुचुकुन्द गुफा) में सो रहे थे वहां बचने आए। मुचुकुन्द ने कालयमन को मार डाला। उसके बाद कृष्ण ने द्वारिका बसा कर वहां वास किया था।

प्राचीन नगर की तबाहियां यहां ४ मील के घेरे में है और उन्हीं से मिला हुआ नया कस्बा बसा है।

(आनन्दपुर का भी एक दूसरा नाम 'नगर' है—देखिए आनन्दपुर)

३२९ नगर खास—(देखिए भुइलाडीह)

३३० नगरा—(संयुक्त प्रदेश के बस्ती जिले में एक गांव)

यहां क्रकुचन्द बुद्ध का, जो चौथे बुद्ध थे, जन्म हुआ था।

फ़ाहियान ने लिखा है कि श्री क्रकुचन्द का जन्मस्थान कपिलवस्तु से ७ मील पच्छिम था, वे क्षेमवती के राजा के पुरोहित थे।

भुइलाडीह (ज़िला बस्ती) को कपिलवस्तु माना गया है, और नगरा गाँव यहाँ से ७½ मील पच्छिमोत्तर में है। यह गाँव एक ८०० फीट लम्बे और ६०० फीट चौड़े डीह पर बसा है जो पुराने शहर के खण्डहर हैं। इस डीह के दक्षिण भाग में टूटे हुए स्तूप के चिन्ह हैं। ह्वानचाँग ने लिखा है कि क्रकुचन्द बुद्ध के जन्म स्थान पर महाराज अशोक ने एक स्तूप बनवाया था। यह वही स्तूप है।

नगरा से ८ मील पच्छिम-दक्षिण एक गाँव खेमराजपुर है। यह क्षेमवती नगरी थी जहाँ क्रकुचन्द, राजा क्षेम के पुरोहित थे। क्षेमवती मेखला राज्य की राजधानी थी।

नैपाल की तराई में एक स्थान गुटीवा है। कुछ लोगों का मत है कि वह स्थान बुद्ध क्रकुचन्द की जन्म भूमि है। इस मत के लोग रोमिन देई (लुम्बनी) के आसपास, नैपाल तराई में, कपिलवस्तु को मानते हैं, और मेरा (लेखक का) स्वयम् भी यही विश्वास है। (देखिए भुइलाडीह)

३३१ नगरिया—(मेवाड़ राज्य में एक बस्ती)

इसका प्राचीन नाम तम्बावती है। राजा हरिश्चन्द्र ने इसे बसाया था। मध्यमिका नगरी व जेतुत्तर भी इस स्थान के प्राचीन नाम हैं। प्राचीन शिवी देश की यह राजधानी थी।

यहाँ के राजा उशीनर ने एक कबूतर के बचाने को अपना माँस काट कर एक बाज को खिला दिया था।

मध्यमिका का उल्लेख महाभाष्य, गार्गी संहिता आदि ग्रन्थों में मिलता है।

महाभारत की कथा है कि राजा उशीनर की गोद में एक कबूतर बाज से बचने को आ बैठा। राजा ने उसकी रक्षा की, पर बाज ने कहा कि हे राजन ! आप ने कबूतर की तो रक्षा की पर मेरी भूख का कुछ विचार नहीं

किया, मैं भूका हूँ। राजा ने कबूतर के बराबर तौल में अपना माँस काट कर बाज को देने को कहा। बाज ने स्वीकार कर लिया। तराजू के एक पल्ले पर कबूतर को रखा गया। दूसरे पल्ले पर राजा ने अपना माँस काट काट कर रखना शुरू किया, पर तमाम माँस काट डालने पर भी वह कबूतर के बराबर न हुआ। जब राजा ने अपना सारा शरीर तराजू पर रख देना चाहा तब भगवान ने प्रकट होकर उन्हें रोक लिया और उनका सारा शरीर ज्यों का त्यों हो गया। यह राजा उशीनर की परीक्षा थी जिसमें देवता कबूतर और बाज बन कर आए थे।

नगरिया चित्तौड़ से ११ मील उत्तर में है। वर्त्तमान मेवाड़ प्राचीन शिवि देश है।

कुछ लोगों का ख्याल है कि सीमा प्रान्त में जहाँ यूसुफ़जाई रहते हैं वहाँ राजा उशीनर हुए हैं। उस देश का प्राचीन नाम सुवस्तु था।

३३२ नगरीवा—(देखिए चन्देरी)

३३३ नदिया—(बंगाल प्रान्त का एक ज़िला)

यह कस्बा चैतन्य महाप्रभु को ,जिनको कृष्ण चैतन्य और गौराङ्ग महा प्रभु भी कहते हैं, जन्म भूमि है।

नदिया कस्बे से लगभग दो मील पर विद्यानगर नामक एक छोटी बस्ती है। इसी जगह चैतन्य महाप्रभु ने विद्या पढ़ी थी।

[श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म शक-सम्वत् १४०७ (१४८५ ई०) में नवद्वीप (नदिया) में हुआ था। इनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र और माता का नाम शचादेवी था। चौबीस वर्ष की अवस्था तक श्री चैतन्य गृहस्थाश्रम में रहे, बाद को उसे छोड़ दिया। बङ्गाल के वैष्णव उन्हें पूर्ण ब्रह्म मानते और विष्णु का अन्तिम अवतार समझते हैं, अन्य लोग राधा का अवतार कहते हैं। इनके जीवन के अन्तिम ६ वर्ष राधाभाव ही में बीते।

चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन को भी एक बार गये थे, पर विशेष कर बङ्गाल और जगन्नाथपुरी में रहे। यह भक्ति के उमंग में अपने आप को भूल जाते थे। उसी दशा में एक बार समुद्र में दौड़ कर चले गए और शरीर को छोड़ दिया। यह १५३३ ई० में हुआ।]

पूर्व काल में नदिया संस्कृत पाठशालाओं के लिए प्रसिद्ध था और यहाँ के पंडित न्याय शास्त्र और वेदान्त में बड़े प्रवीण होते थे। इसका प्राचीन नाम नवद्वीप है।

अब भी नदिया में संस्कृत की अनेक पाठशालाएँ हैं जिनमें दूर दूर से विद्यार्थी आकर विद्या पढ़ते हैं। विद्यानगर में एक मन्दिर में चैतन्य महा प्रभु की मूर्ति है।

३३४ नन्द प्रयाग—(हिमालय पर्वत के गढ़वाल प्रान्त में एक स्थान)

यहाँ नन्द नामक धर्मात्मा राजा ने यज्ञ किया था।

यह गढ़वाल प्रदेश के पंच प्रयागों में से एक है।

(स्कन्द पुराण, केदार खण्ड प्रथम भाग, ५७ वाँ ५८ वाँ अध्याय) नन्द गिरि (नन्द प्रयाग) तक पूर्ण क्षेत्र है। जो मनुष्य नन्द प्रयाग में स्नान करके नारायण की पूजा करता है उसको सब पदार्थ मिल जाते हैं। पूर्व काल में उस स्थान पर नन्द नामक धर्मात्मा राजा ने विधि पूर्वक यज्ञ किया था। उस स्थान पर नन्दा और अलकनन्दा के संगम में स्नान करने से मनुष्य शुद्ध हो जाता है।

नन्द प्रयाग की बस्ती अलकनन्दा के ऊपर कंटामुगंधि के समीप बसी है। बस्ती से आध मील नीचे नन्वानी नदी, जिसको नन्दा भी कहते हैं, अलकनन्दा में मिली है।

३३५ नन्दि ग्राम—(देखिए अयोध्या)

३३६ नरवार—(ग्वालियर राज्य में मालवा में एक नगर)

यहाँ राजा नल की राजधानी थी और नलपुर कहलाती थी।

इसका प्राचीन नाम पद्मावती था और यह निषध देश की राजधानी थी।

पद्मावती में महाकवि भवभूति का जन्म हुआ था।

पुराणों के नौ नागों का यही राज्य था।

पद्मावती का वर्णन विष्णु पुराण और दूसरे पुराणों में आया है।

महाकवि भवभूति के मालती-माधव नाटक का भी यही क्षेत्र है।

यहाँ का गढ़, राजा नल ने बनवाया था और यह मुसलमानों के समय तक बहुत प्रतिष्ठित माना जाता था।

भवभूति ने इस नगर की बड़ी बड़ाई लिखी है। सिकन्दर लोदी ने १५०८ ईस्वी में इसे बहुत कुछ नष्ट कर डाला। उससे पहिले यहाँ ग्वालियर के बराबर देव मन्दिर व मूर्तियाँ थीं।

पद्मावती में आठवीं शताब्दी में प्रसिद्ध विद्यालय था।

[राजा नल धर्मात्मा और प्रजापालक नरपति थे। विदर्भ देश के महाराज (देखिए बीदर) ने अपनी पुत्री दमयन्ती का स्वयम्बर किया,

उसमें दमयन्ती ने जो उन दिनों भूमण्डल की राजकुमारियों में सबसे रूपवती मानी जाती थीं, राजा नल को जयमाल पहिनाई।

एक बार राजा नल ने अपने भाई से जूआ खेला और उसमें अपना सारा राजपाट हार गये। भाई ने एक वस्त्र देकर नल और दमयन्ती दोनों को निकाल दिया। ये लोग जङ्गल में विचरते फिरे। नल ने एक समय एक पक्षी के पकड़ने को अपना वस्त्र उस पर फेंका। वह पक्षी वस्त्र सहित उड़ गया, और नल नग्न रह गये। दमयन्ती उस समय सो रही थीं। नल ने उनका आधा वस्त्र फाड़ कर आप ले लिया और उनको सोता हुआ अकेला छोड़ कर चल दिये। जाग कर दमयन्ती यह दशा देख बहुत घबड़ाई पर कठिनाइयाँ झेलती हुई किसी प्रकार अपने पिता के यहाँ तक पहुँच गई। नल की सर्वत्र खोज कराई गई परन्तु पता न चला।

दमयन्ती का दूसरा स्वयम्वर रचा जाने लगा। अयोध्यापति ऋतुपर्ण भी उसमें पधारे। राजा नल अद्वितीय सारथि थे, और अयोध्यापति के यहाँ इसी काम पर चाकरी कर ली थी। महाराज ऋतुपर्ण को वे रथ पर अयोध्या से विदर्भ देश लाये थे। दमयन्ती ने उन्हें पहिचाना और पति पत्नी पुनः मिल गये।

महाराज ऋतुपर्ण ने नल को द्यूत विद्या (जूआ का खेल) सिखाया, और उसे सीख कर राजा नल फिर अपने भाई से जूआ खेलने गये, और अपना सारा राजपाट जीतकर फिर राजा हुए।]

३३७ **नरसी ब्राह्मणी**—(देखिए पण्ढरपुर)

३३८ **नवल**—(संयुक्त प्रान्त में कन्नौज से १६ मील दक्षिण-पूर्व एक कस्बा)

इसके प्राचीन नाम नवदेव कुल व अलावि हैं।

भगवान बुद्ध ने १६ वां चर्तुमास यहाँ व्यतीत किया था।

महावीर स्वामी ने जैन धर्म के प्रचार को यहीं से उपदेशकों को भेजा था।

नवल गंगा तट पर बसा है और बँगरामऊ के समीप है।

३३९ **नागार्जुनी पर्वत**—(बिहार प्रान्त में गया से १६ मील उत्तर एक पहाड़ी)

इस पहाड़ी की नागार्जुनी गुफा में बौद्ध महात्मा नागार्जुन का निवास स्थान था।

पास की एक पहाड़ी में जिसे लोमश गिरि कहते हैं लोमश गुफा है जहाँ ऋषि लोमश ने वास किया था।

[महात्मा नागार्जुन पच्छिम के निवासी थे और मगध में शिक्षा प्राप्त करने आये थे। पीछे इनकी और महाराज मिलिन्द की सुप्रसिद्ध वार्ता साँगल में हुई थी।]

नागार्जुनी गुफा, लोमश गुफा और कई गुफायें इन छोटी पहाड़ियों में पहाड़ काट कर बनाई गई हैं। रास्ता होकर जाने से यह गुफायें गया से १६ मील पर हैं। वैसे सीधे १६ मील उत्तर में हैं।

मौखरी वंश की एक शाखा का अधिकार गया और उसके आसपास के प्रदेश में ई० पांचवीं छठीं शताब्दी में था। नागार्जुनी पहाड़ी की गुफा से दो लेख मिले हैं, जिनसे इस शाखा के तीन शासकों यज्ञ वर्मा, शार्दूल वर्मा और अनन्त वर्मा का पता चलता है।

नागार्जुनी गुफा में एक बहुत सुन्दर अर्धनारीश्वर की मूर्ति है।

३४० नागेश—(हैदराबाद राज्य में अवढ़ा बस्ती में एक मन्दिर)

नागेश शिवलिङ्ग शिव के १२ ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है।

प्रा० क०—(शिवपुराण -ज्ञान संहिता ३८ वां अध्याय) शिव के १२ ज्योतिर्लिङ्गों में से नागेश लिङ्ग दारुका वन में स्थित है।

(ज्ञान संहिता, ५६ वां अध्याय) चारों ओर से १६ योजन विस्तीर्ण, दारुका नामक राक्षसी का वन था। उसमें वह अपने पति दारुक सहित रहती थी। यह दोनों वहाँ के लोगों को कष्ट देते थे। इस पर वे लोग दुखी होकर और्व ऋषि की शरण में गये और उन्होंने शाप दिया कि यदि राक्षस लोग प्राणियों को दुख देंगे तो प्राण रहित होंगे। देवता लोग राक्षसों से युद्ध की तय्यारी करने लगे। दारुका को पार्वती का वरदान था कि वह जहाँ जाने की इच्छा करे वहीं दारुका का वन, पृथिवी, वृक्ष, महल और सब सामग्री सहित चला जावे। दारुका ने इस वरदान के प्रभाव से स्थल सहित अपने वन को पश्चिम के समुद्र में स्थापित किया। राक्षस लोग स्थल पर न आते थे, परन्तु जो मनुष्य नौका से समुद्र में जाते थे उन्हें पकड़ ले जाते थे और दन्ड देते थे। एक बार इसी प्रकार एक वैश्य के आधीन बहुत से लोग नौकाओं में गये थे और उन सबको राक्षसों ने कारागार में बन्द कर दिया। वैश्य बड़ा शिव भक्त था और बिना शिव का पूजन किये भोजन नहीं करता था। कारागार में बन्द हुये उन को ६ मास व्यतीत हो गये। राक्षसों

ने एक दिन शिव जी का सुन्दर रूप वैश्य के सामने देख कर अपने राजा से सब समाचार कह सुनाया। राजा ने आकर वैश्य को मारने की आज्ञा दी। भयभीत होकर वैश्य ने शङ्कर को स्मरण किया। शिव जी अपने ज्योतिर्लिङ्ग और अपने सब परिवार के सहित प्रकट हुये। शिव जी ने वहाँ के राक्षसों को नष्ट भ्रष्ट कर डाला और वैश्य को वर दिया कि उस वन में अपने धर्म के सहित विद्यमान रहेगें। दारुका ने पार्वती से अपने वंश की रक्षा के निमित्त प्रार्थना की। पार्वती जी के कहने से शिव जी ने स्वीकार किया कि कुछ काल तक दारुका वहाँ रह कर राज करे, और पार्वती का वचन स्वीकार कर के कहा कि मैं इस वन में निवास करूंगा। जो पुरुष अपने वर्णाश्रम में स्थित रह कर यहाँ मेरा दर्शन करेगा वह चक्रवर्ती होगा। ऐसा कह कर पार्वती जी सहित महादेव जी नागेश नाम से वहाँ स्थित हो गये।

व० द०—अवढ़ा बस्ती में अवढ़ानागनाथ अर्थात नागेश, का शिखर दार बड़ा मन्दिर है। मन्दिर के पश्चिम ओर जगमोहन है। मन्दिर और जगमोहन दोनों खाली हैं। मन्दिर के भीतर एक बगल में एक बहुत छोटी कोठरी में चार सीढ़ियों के नीचे एक हाथ ऊँचा नागेश शिवलिङ्ग है। यात्री गण सीढ़ी से दर्शन करते हैं। कोठरी में दिनरात दीप जलता है।

३४१ नागोर—(उड़ीसा प्रान्त के संथाल परगना में एक स्थान)

यहाँ वक्र मुनि का स्थान था।

नागोर में गढ़ी का एक हाता बना है। हरिहरपुर परगना पूरा इस हाते के अन्दर घिरा है। ताँतीपारा गाँव के पास बकेश्वर तीर्थ स्थान है। एक बहुत बड़े और पुराने मन्दिर में वक्रेश्वर शिव लिङ्ग है जिसे कहा जाता है कि वक्र मुनि ने स्थापित किया था। मन्दिर के पास एक पक्का कुन्ड है जिस में यात्री स्नान करते हैं। कहा जाता है कि इससे उनके पाप धुल जाते हैं। बड़े मन्दिर के अतिरिक्त और बहुत मन्दिर और गरम व ठन्डे पानी के कुन्ड यहाँ हैं।

३४२ नाटक कूट—(देखिए सम्मेद शिखर)

३४३ नाथद्वारा—(राजपूताने के मेवाड़ राज्य में एक कस्बा)

यह बल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णवों का मुख्य तीर्थ स्थान है।

श्री नाथ जी का प्रसिद्ध मन्दिर यहाँ है।

[श्री वल्लभाचार्य जी के माता पिता श्री इलम्मा व लक्ष्मण भट्ट जी तैलङ्ग देश के रहने वाले तैलङ्ग ब्राह्मण थे। उनके काशी यात्रा के समय

बिहार प्रदेश के चम्पारण्य (चम्पारन) जिले में चौरा गाँव के निकट सम्वत १५३५ वि० में वल्लभाचार्य जी का जन्म हुआ। बहुत से महानुभाव इन्हें अग्नि का अवतार मानते हैं। इन्होंने काशी में विद्याध्ययन किया और सम्वत् १५४८ में दिग्विजय को निकले। पंढरपुर, त्र्यम्बक, उज्जैन, ब्रज, अयोध्या, नैमिषारण्य, काशी, जगन्नाथ और दक्षिण फिर कर सम्वत १५५४ में इन्होंने पहला दिग्विजय समाप्त किया। श्री वल्लभाचार्य ने तीन बार पर्यटन करके सारे भारत में वैष्णव मत फैलाकर सम्वत् १५८७ वि० में, काशी में शरीर त्याग किया।

श्री वल्लभ के परम धाम पधारने के विषय में एक घटना प्रसिद्ध है। वे एक दिन हनुमान घाट पर गङ्गा स्नान को गये। जहाँ खड़े होकर वे स्नान करते थे वहाँ से एक उज्वल ज्योति शिखा उठी और बहुत से आदमियों के सामने श्री वल्लभ सदेह ऊपर उठने लगे और आकाश में लीन हो गये।]

श्री वल्लभाचार्य जी को उस सम्प्रदाय वाले श्री कृष्णचन्द्र का अवतार मानते हैं और देवताओं के समान पूजा करते हैं।

श्री अभयङ्कर शास्त्री, स्वामी वल्लभाचार्य जी का जन्म स्थान चम्पारण्य, जिला रायपुर मध्यप्रान्त, में बतलाते हैं पर भन्डारकर और अन्य विद्वान चम्पारण्य, बिहार, मानते हैं, और यही ठीक जान पड़ता है।

श्रीनाथ जी की मूर्ति पहिले ब्रज के गोकुल में थी। लगभग सन् १६७१ ईस्वी में जब औरङ्गजेब ने श्री नाथ जी के मन्दिर के तोड़ने की इच्छा की तब वल्लभाचार्य सम्प्रदाय के स्वामी इस मूर्ति को लेकर मेवाड़ चले गये और श्रीनाथद्वारा में उसकी स्थापना की।

श्री नाथ जी का मन्दिर वल्लभाचार्य गोस्वामियों के अधिकार में है। कार्तिक शुक्ल १ को यहाँ के अन्नकूट की तय्यारी देखने योग्य होती है। इस मन्दिर के लिए भारतवर्ष के सब भागों से वल्लभाचार्यी व्यापारी बहुत धन भेजते हैं।

३४८ नाथ नगर—(बिहार प्रान्त के भागलपुर जिला में एक कस्बा) इस स्थान का प्राचीन नाम चम्पापुर तथा चम्पा नगर था।

चम्पा नगर का प्राचीन नाम मालिनी या चम्पा मालिनी भी था। यह अङ्ग देश की राजधानी थी। महाराज दशरथ के बहनोई रोमपाद यहाँ के शासक थे।

महाभारत के समय यह देश कर्ण के अधिकार में था और चम्पा उनकी राजधानी थी।

चम्पा में ही विरज जिन पैदा हुये थे, जिन्होंने लङ्कावतार सूत्र की रचना की।

पालकाप्य मुनि का भी यही जन्म स्थान है, जिन्होंने हस्तायुर्वेद की रचना की है।

चम्पा के निवासी सोन कोलविस ने 'थेरीगाथा' लिखी थी।

जैनों के तीर्थंकर महावीर स्वामी ने यहाँ तीन चतुर्मास वास किया था।

स्वायंभुव ने यहीं 'दशवैकालिक सूत्र' की रचना की थी।

यहाँ श्री वास पूज्य स्वामी (बारहवें तीर्थंकर) के चार कल्याणक, गर्भ, जन्म, दीक्षा और कैवल्य ज्ञान हुए थे।

प्रा० क०—[श्री वास पूज्य स्वामी बारहवें तीर्थङ्कर, की माता का नाम विजया और पिता का नाम वासुपूज्य था। आप के गर्भ, जन्म, दीक्षा व कैवल्य ज्ञान कल्याणक चम्पापुरी (नाथ नगर) में हुये, और निर्वाण मन्दार पर्वत पर हुआ था। आपका चिन्ह भैंसा है।]

बिंबिसार की मृत्यु के बाद अजातशत्रु ने चम्पा को अपनी राजधानी बनाया, परन्तु उसके पुत्र उदायी ने फिर पाटलीपुत्र (पटना) में राजधानी स्थापित की।

दशकुमार चरित से ज्ञात होता है कि चंपा में दंडिन (दश कुमार चरित के रचयिता) के समय में बहुत से धूर्त रहते थे।

बुद्ध भगवान के समय चंपा भारत की ६ बड़ी नगरियों में से था। अन्य नगरियाँ राजगृह, श्रावस्ती, अयोध्या, कौशांबी तथा काशी थीं।

व० द०—नाथ नगर में दो बड़े जैन मन्दिर व धर्मशाला हैं और भादों सुदी ११ से १५ तक मेला रहता है। चम्पापुरी, जो मुख्य स्थान है, नाथ नगर स्टेशन से एक मील व भागलपुर से ३ मील पर है।

संयुक्त प्रान्त के जिला गोंडा के तुलसीपुर का भी प्राचीन नाम मालिनी बताया जाता है।

३४५ नानकाना साहेब—(पाकिस्तानी पंजाब प्रान्त के जिला लाहौर में एक सिक्ख तीर्थ स्थान)

यहाँ गुरु नानक देव का जन्म हुआ था।

उदासीन सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री श्रीचन्द्र जी का भी यह जन्म स्थान है।

[गुरु नानक देव जी ने जिन्होंने सिक्ख धर्म की स्थापना की है, वैशाख सुदी ३ सम्वत् १५२६ वि० (१५ अप्रैल १४६६ ई०) में खत्री कुल के वेदी कालचन्द पटवारी के घर श्रीमती तृप्ता जी के उदर से यहाँ जन्म लिया था। इस स्थान का असल नाम राइभोई की तलवराडी अथवा तलवराडी था, पर गुरु नानक देव जी के नाम से अब नानकाना साहेब कहलाता है। द्वेष, ईर्षा, वैर, विरोध की प्रचण्ड आग से जलती हुई सृष्टि की अग्नि बुझाने को आपने सं० १५५४ वि० में देशाटन आरम्भ कर दिया। आपकी चार यात्रायें प्रसिद्ध हैं:—

(१) एमनाबाद, हरद्वार, दिल्ली, काशी, गया, जगन्नाथपुरी आदि।
(२) आबू पर्वत, सेतुबन्ध रामेश्वर, सिंहल द्वीप आदि।
(३) सरमौर, गढ़वाल, हेमकूट, गोरखपुर, सिक्किम, भूटान, तिब्बत आदि
(४) बिलोचिस्तान, ईरान, काबुल, कन्धार, बगदाद, मक्का आदि।

मक्का पहुँच कर गुरु जी काबा की ओर पैर करके सो गये। जब क़ाज़ी क्रुद्ध हुआ तो आपने कहा कि जिधर अल्लाह का घर न हो उधर मेरे पैर कर दीजिये। उसने जिधर पैर घुमाये उधर ही उसे काबा देख पड़ा।

वि० सं० १५७६ में पच्चीस वर्ष भ्रमण करने के बाद गुरु जी कर्त्तारपुर में, जिसे उन्होंने स० १५६१ वि० में स्वयम् आबाद किया था, रहने लगे। सं० १५४४ में आप का विवाह मूलचन्द जी की सुपुत्री सुलक्षणी देवी से हुआ था जिनसे आप के दो पुत्र श्री श्रीचन्द और बाबा लक्ष्मीदास उत्पन्न हुये थे, पर गुरु जी ने अपनी गद्दी अपने एक योग्य शिष्य श्री अङ्गद जी को दी और आसोज सुदी १० सं० १५९६ वि० (२२ सितम्बर सन् १५३९ ई०) को परलोक गमन किया। अन्तिम संस्कार करने के लिये सिख हिन्दू मुसलमानों में परस्पर विवाद हुआ। अन्त में जब गुरु जी का वस्त्र उठाया गया तब वहां गुरु जी का शरीर नहीं मिला, इसलिये आधा वस्त्र लेकर मुसलमानों ने क़ब्र बनाई और आधा वस्त्र हिन्दू सिखों ने लेकर संस्कार किया।]

[श्री श्रीचन्द्र जी गुरु नानक के प्रथम पुत्र थे और इनका जन्म भाद्रपद शुक्ल ९, सं० १५५६ में हुआ था। आप विद्याध्ययन को कश्मीर भेज दिये गये और अल्प काल में वेदों का अध्ययन कर लिया। जब धर्मोद्धार का

समय देखा तब आप भारत भ्रमण के लिये निकल पड़े। उत्तर भारत से दक्षिण भारत के प्रायः सब तीर्थों का आपने परिभ्रमण किया और आपके उपदेशों ने धार्मिक जगत में एक नवीन जागृति फैला दी। फिर कश्मीर जा कर आपने वेद भाष्यों की रचना की। आप उदासीन सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं और उसके द्वारा सनातन धर्म की दिग्विजय कराते हुये आप १५० वर्ष इस धरा धाम पर विद्यमान रहे, और जब आप के निर्वाण का समय आया तब चम्पा की पार्वत्य गुफाओं में जाकर तिरोहित हो गये।]

नानकाना साहेब के समीप 'गुरुद्वारा क्यारा साहेब' हैं। यहां गुरु नानक देव ने बचपन में गायें भैंसें चराई थीं। कुछ खेत गायें भैंसें चर गईं। इसकी शिकायत हाकिम से की गई। पर जब गुरुनानक ने हाकिम को खेत दिखलाये तो सब खेत हरे भरे मिले।

'गुरुद्वारा माल साहेब' भी नानकाना साहेब में है। यहां गुरु नानक गायें भैंसें चराते हुये बचपन में सो गये थे। मुंह पर धूप आने लगी तो एक नाग फन काढ़ कर मुंह पर छाया कर के बैठ गया। वहां के जमींदार रायबोलार ने देखा कि किसी आदमी को सांप ने ढक लिया है। जब वे पास आये तो सांप वहां से हट गया।

नानकाना साहेब में बड़ा भारी गुरुद्वारा है जिसकी सालाना आमदनी करीब सवा लाख रुपये है।

३४६ नान्नुर— (देखिए कातवा)

३४७ नारायणसर—(बम्बई प्रान्त के कच्छ नामक राज्य में एक बस्ती)

पौराणिक कथा है कि चन्द्रमा ने यहां तप किया था।

दक्ष प्रजापति के पुत्रों ने यहां तपस्या की थी।

प्रा० क०—(श्रीमद्भागवत, छठा स्कन्ध, ५ वां अध्याय) दक्ष प्रजापति ने १० पुत्र उत्पन्न कर के उनको सृष्टि करने की आज्ञा दी। वे सब पश्चिम दिशा के नारायण सर नामक पुण्यदायक तीर्थ में, जहां सिन्धु नदी समुद्र में मिली है, जाकर सृष्टि उत्पत्ति की कामना से कठोर तप करने लगे। किन्तु जब नारद जी ने वहां जाकर उनको ज्ञान का उपदेश दिया तब उन लोगों ने सृष्टि की कामना की इच्छा को छोड़ कर जिस मार्ग से फिर लौटना नहीं होता, उस मार्ग को ग्रहण किया। यह समाचार सुन कर दक्ष ने एक सहस्र पुत्र उत्पन्न कर के उनको प्रजा उत्पन्न करने की आज्ञा दी। वे लोग भी

नारायण सरोवर पर गये और उसके पवित्र जल के स्पर्श से विशुद्ध चित होकर सृष्टि की कामना से तप करने लगे। फिर नारद जी ने वहां जाकर उनको ज्ञान उपदेश देकर विरक्त कर दिया। वे लोग भी अपने भ्राताओं के मार्ग में चले गये।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, कृष्ण जन्म खण्ड, १२२ वां अध्याय) चन्द्रमा ने देव गुरुवृहस्पति की स्त्री तारा को भादों सुदी ४ को हरण किया और भादों वदी ४ को छोड़ दिया। वृहस्पति ने तारा को ग्रहण कर लिया। उस समय तारा ने चन्द्रमा को शाप दिया कि जो मनुष्य तुम्हारा दर्शन करेगा वह कलंकी और पापी होगा। तब चन्द्रमा ने नारायण सरोवर में जाकर नारायण की आराधना की। नारायण ने प्रकट हो कर चन्द्रमा से कहा कि हे चन्द्र! तुम सर्वदा कलंकी नहीं रहोगे। जो मनुष्य भादों सुदी ४ को तुमको देखेगा वही कलंकी होगा।

व० द०—नारायण वस्ती में आदिनारायण, लक्ष्मी नारायण और गोवर्द्धन नाथ जी के मन्दिर हैं। यहां बहुतेरे यात्री अपनी छाती पर छाप लेते हैं।

नारायण सर से १ मील दूर कोटेश्वर महादेव और नीलकंठ महादेव हैं। वहां बहुतेरे यात्री अपनी दाहिनी बाँह पर छापलेते हैं।

३४८ नालन्दा—(देखिए बड़गावां)

३४९ नासिक—(बम्बई प्रान्त में एक ज़िले का सदर स्थान)

इस स्थान का पुराना नाम सुगन्धा है।

नासिक में गोदावरी के बायें किनारे का हिस्सा प्राचीन पंचवटी है।

चित्रकूट से चलकर श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और जानकी ने सीताहरण के समय तक यहां निवास किया था।

रावण ने सीता जी का हरण इसी स्थान से किया था। यहां गोदावरी में रामकुण्ड नामक स्थान पर रामचन्द्र जी ने दशरथ जी को पिण्ड दिया था।

नासिक से दो मील दूर गोदावरी नदी के बायें किनारे पर गौतम ऋषि का तपोवन है।

नासिक से कुछ मील दक्षिण ओर जटायु की मृत्यु का स्थान है।

नासिक से कई मील पूर्व अकोल्हा नामक गांव में अगस्त्य मुनि और सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम के स्थान हैं। यहीं पर अमृतवाहिनी नदी तीर्थ

है। अगस्त्य का आश्रम आजकल अगस्त्याश्रम या अगस्त्यपुरी कहलाता है।

अकोल्हा से कुछ मील पश्चिम साईं खेड़ा नामक गांव में मारीच के मारे जाने का स्थान है।

नासिक में रावण की बहन शूर्पणखा की नाक काटी गई थी।

नासिक ५२ पीठों में से एक है जहां सती की 'नासिका' (नाक) गिरी थी।

श्री समर्थ गुरु रामदास ने नासिक में तप करके रामचन्द्र जी के दर्शन पाये थे।

प्रा० क०—(महाभारत, वनपर्व, ८३ वां अध्याय) पंचवटी तीर्थ में जाने से बड़ा फल होता है और स्वर्ग मिलता है।

(वाल्मीकीय रामायण, अरण्य काण्ड, १३ वां सर्ग) रामचन्द्र जी ने अगस्त्य मुनि के आश्रम पर जाकर उनसे अपने रहने का स्थान पूछा। मुनि बोले कि हे राघव ! यहां से एक योजन पर गोदावरी नदी के समीप पंचवटी नाम से विख्यात एकान्त, पवित्र तथा रमणीय देश है, तुम वहां जाकर आश्रम बना कर रहो। राम और लक्ष्मण अगस्त्य मुनि से बिदा हो ऋषि के कहे हुये मार्ग से पंचवटी को पधारे।

(१४ वां सर्ग) रास्ते में जटायु गृद्ध से भेंट हुई।

(१५ वां सर्ग) रामचन्द्र जी पंचवटी पहुँच कर लक्ष्मण से बोले कि देखो यह गोदावरी नदी, जो अति दूर भी नहीं है, देख पड़ती है। लक्ष्मण जी ने मिट्टी के अनेक स्थान और बांस के खंभों, वृक्ष की शाखाओं की टट्टियों की दीवारों और पत्तों के छप्पर से मनोहर पर्णकुटी बनाई। उसमें वे लोग निवास करने लगे।

(१७ वां सर्ग) एक समय रावण की बहन शूर्पणखा नामक राक्षसी वहां आई। वह रामचन्द्र जी की सुन्दरता देख काम से मोहित हो गई। वह उनके पास जाकर बोली कि हे राम ! तुम अपनी पत्नी को अङ्गीकार कर मुझे नहीं मानते हो, मैं अभी इस मानुषी को भक्षण कर जाऊँगी। ऐसा कह वह सीता पर झपटी। रामचन्द्र उस को रोक कर लक्ष्मण से बोले कि इस राक्षसी को कुरूप करो। लक्ष्मण जी ने क्रोध कर खड्ग निकाल शूर्पणखा के नाक कान काट लिये।

(४७—५४ वां सर्ग) रावण सन्यासी का वेष धारण कर सीता जी के पास पहुँचा। सीताजी ने उसका अतिथिसत्कार किया। रावण बोला कि मैं राक्षसों का राजा रावण हूँ। तुम मेरी पटरानी बनो। ऐसा कह रावण सन्यासी वेष छोड़ अपने रूप को धारण कर सीता को रथ में बैठा कर चल-दिया। रास्ते में सीता जटायु को वृक्ष पर बैठे हुए देखकर बोली कि हे जटायु! देखो यह पापी रावण मुझको अनाथ के समान हर ले जा रहा है। ऐसा सुन जटायु रावण से युद्ध करने लगा। अन्त में जटायु पङ्ख रहित हो भूमिपर गिर पड़ा। उसकी थोड़ी सांस रह गई। रावण सीता को ले लङ्का पहुँचा।

[प्रजापति कश्यप की विनीता नामक स्त्री से गरुण और अरुण नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। अरुण के दो पुत्र हुए, एक सम्पाति दूसरे जटायु यह दोनों समस्त गृद्धों के राजा थे। जटायु पंचवटी के पास रहने लगे। रावण जब सीता जी को हर ले जाने लगा, तब जटायु सीता जी का विलाप सुनकर रावण पर टूट पड़े पर बहुत घायल हो गये और जब रामचन्द्र जी पहुँचे तब उनकी गोद में जटायु ने नश्वर शरीर को त्याग दिया।]

व० द०—नासिक के लोग उसको पश्चिमी भारत की काशी कहते हैं। नासिक तीर्थ में बहुत यात्री जाते हैं। बारह वर्ष पर जब सिंह राशि के वृहस्पति होते हैं तब नासिक में बहुत बड़ा मेला होता है। गोदावरी के बायें किनारे के नासिक कस्बे को लोग पंचवटी कहते हैं। नासिक से १८ मील पश्चिम गोदावरी के निकास का स्थान त्र्यम्बक है। वहां से ६ मील पर चक्र-तीर्थ में गोदावरी नदी प्रगट हुई है। नासिक के पास नदी की धारा गर्मी के मौसम में बहुत छोटी रहती है। करीब ४५० गज की लम्बाई में गोदावरी के किनारे पर पत्थर की सीढ़ियां बनी हुई हैं और नदी के मध्य में १२ पक्के कुण्ड तथा पोखरे बने हैं जिनमें से एक का नाम रामकुण्ड और राम गया है। लोग कहते हैं कि वनवास के समय श्री रामचन्द्र जी ने जिस स्थान पर गोदा-वरी में स्नान कर दशरथ जी को पिण्डदान दिया था उसी स्थान का नाम राम गया व राम कुण्ड हुआ। यहां पिण्डदान का बड़ा माहात्म्य है।

गोदावरी के किनारों पर तथा उसके भीतर बहुत से मन्दिर और स्थान हैं। नदी के बायें किनारे पर रामकुण्ड के पास ५० सीढ़ियों के ऊपर ७०० वर्ष का पुराना कपालेश्वर शिव का मन्दिर है। नदी के बायें किनारे से दे

मील दूर ६३ फीट लम्बा ६५ फीट चौड़ा और ६० फीट ऊंचा रामचन्द्र जी का उत्तम मन्दिर है। गोदावरी के बायें किनारे से ¾ मील दूर कई आँठियों का एक वट वृक्ष है जिसको लोग पंचवटी कहते हैं।

नासिक क़स्बे से दो मील दूर गोदावरी नदी के बायें गौतम ऋषि का तपोवन है। पंचवटी से आगे जाने पर लक्ष्मण जी का स्थान मिलता है जिससे आगे हनुमान जी की मूर्ति है। उससे आगे पहाड़ से गिरती हुई गोदावरी और कपिला नदी का संगम है। वहां पंचतीर्थ नाम के ५ कुण्ड हैं (१) ब्रह्मयोनि (२) विष्णु योनि (३) रुद्र योनि (४)मुक्त योनि और (५) अग्नि योनि। पहले वाले तीनों कुण्ड एक में मिले हैं। अन्दर अन्दर एक से दूसरे में और दूसरे से तीसरे में जाना होता है। अग्नि योनि विशेष गहरा है। पूर्व कथित पंचतीर्थों में सौभाग्य तीर्थ, कपिला संगम और शूर्पणखा तीर्थ मिल कर अष्ट तीर्थ बनते हैं। गोदावरी और कपिला के संगम के पार सप्त ऋषियों का स्थान है। एक जगह गोदावरी के किनारे पर शूर्पणखा की पाषाण प्रतिमा है।

लोग कहते हैं कि पंचवटी से एक कोस दक्षिण जटायु की मृत्यु का स्थान, है और कई एक कोस पूर्व अकोल्हा नामक गांव में अगस्त्य मुनि के आश्रम का स्थान अगस्त्य कुण्ड, सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम का स्थान और अमृतवाहिनी नदी तीर्थ हैं। अकोल्हा से कई कोस पश्चिम साईं खेड़ा नामक गांव में मारीच की मृत्यु का स्थान है।

मध्य प्रदेश के बिलासपुर ज़िले में एक स्थान तुरतुरिया है जो महानदी के पास है। कुछ लोगों का विचार है कि वहां रामचन्द्र जी रहे थे और सीता-हरण वहां से हुआ था। तुरतुरिया में महानदी के किनारे एक वटवृक्ष है। बताया जाता है कि खरदूषण की रामचन्द्र जी से लड़ाई वहां हुई थी। उस स्थान को पंचवटी कहा जाता है। तुरतुरिया की पहाड़ी में एक गुफा है। कहते हैं कि शूर्पणखा की नाक यहीं काटी गई थी। और सीता जी का हरण करके जटायु से युद्ध करने रावण इसी पर्वत पर ठहरा था।

तुरतुरिया महानदी के दक्षिण में है। लगभग ३० मील पर नदी के उत्तर में खरोद है जहाँ खरदूषण रहते थे और जिनके नाम से उसका नाम खरोद है। खरदूषण को कहा जाता है कि रावण के भाई थे। यह चार भाई थे। दूसरे दो भाई त्रिशिरा और जवल थे जो लवन और तुरतुरिया में रहते थे। लवन तुरतुरिया से लगभग १० मील उत्तर में है।

खरोद से ४-५ मील दक्षिण में सेवरी नारायण है। इस स्थान पर महाराज रामचन्द्र ने शबरी के जूठे बेर खाये थे। इस प्रकार खरोद, लवन, तुरतुरिया और सेवरी नारायण सब ३० मील के घेरे के भीतर ही हैं। यह आबादी द्राविड़ जाति की थी खरदूषण और उसके भाई उनके सरदार थे। रावण भी उसी जाति का राजा था। इससे यह सब भाई कहलाते हैं। पंचवटी का यथार्थ में इसी स्थान पर होना बहुत सम्भव है।

अगस्त्य आश्रम--अकोल्हा के अतिरिक्त नासिक से २४ मील दक्षिण पूर्व अगस्त्य पुरी नामक स्थान में भी अगस्त्य ऋषि की कुटी थी। बम्बई प्रान्त के कोल्हापुर में भी उनका निवास स्थान था। संयुक्त प्रान्त में एटा से ४० मील दक्षिण-पच्छिम और संकिशा से एक ही मील पच्छिमोत्तर सराय अगहट स्थान पर भी अगस्त्य ऋषि रहे बतलाए जाते हैं। मद्रास प्रान्त के तिनावली जिला में अगस्त्य कूट पर्वत पर जहां से ताम्रपर्णी नदी निकलती है वे अब भी निवास करते विश्वास किए जाते हैं। गढ़वाल में रुद्र प्रयाग से १२ मील अगस्त्य मुनि नामक गाव में भी उनका आश्रम था। सतपुरा पहाड़ी (वैदूर्यपर्वत) पर भी उन्होंने निवास किया था। और पुष्कर (अजमेर) में भी इनका आश्रम था। इनके रचे हुये ग्रन्थों में 'अगस्त्य संहिता', 'अगस्त्य गीता', 'सकलाधिकार' आदि हैं।

३५० निकुम्भिला--(देखिए लङ्का)

३५१ निगलीवा--(देखिए भुइलाडोह)

३५२ निधिवन--(देखिए मथुरा)

३५३ निम्बपुर--(देखिए आना गन्दी)

३५४ निर्जरा कूट--(देखिए सम्मेद शिखर)

३५५ नीमसार--(संयुक्त प्रान्त के सीतापुर जिले में एक कस्बा)

यह स्थान प्राचीन नैमिषारण्य है।

यहीं अठारहों पुराण लिखे गये हैं।

त्रेतायुग में रामचन्द्र जी ने अयोध्या से यहीं आकर अश्वमेध यज्ञ किया था।

रोमहर्षण जी के पुत्र उग्रश्रवा ने शौनक जी के यज्ञ में पहुँच कर महाभारत की कथा यहीं कही थी।

देवताओं ने नैमिषारण्य में महायज्ञ प्रारम्भ किया था।

पाण्डवों ने यहां आकर गोमती में स्नान किया था।

बलराम जी यहां आये थे और सूत जी, अर्थात् रोमहर्षण जी, का वध किया था।

सतयुग में नैमिष नामक ऋषियों ने यहां १२ वर्ष का यज्ञ आरम्भ किया था।

पूर्व काल में सारे भारतवर्ष में नैमिषारण्य तपस्वियों का प्रधान स्थान था।

ब्रह्मा का धर्म चक्र इसी स्थान पर प्रवर्तित हुआ था।

इसी स्थान पर लव और कुश महाराज रामचन्द्र से प्रथम बार आकर मिले थे।

वाल्मीकि मुनि यहां आये थे।

ललिता देवी ने इस स्थान पर घोर तप किया था।

नीमसार से ५ मील पर मिश्रिक में दधीचि ऋषि ने भारी तपस्या की थी और देवताओं की प्रार्थना पर अपना शरीर छोड़ा था।

मिश्रिक से ८-१० मील दूर हत्याहरण में महाराज रामचन्द्र ने ब्राह्मण रावण के मारने के पाप से मुक्त होने को स्नान किया था। (ऐसा स्नान धोपाप और मुङ्गेर में भी किया जाना बताया जाता है।)

मिश्रिक में सीता कूप के स्थान पर सीता जी भूमि में समा गई थीं।

प्रा० क०—(शंखस्मृति, १४ वां अध्याय) नैमिषारण्य में पितर के निमित्त जो दिया जाता है उसका फल अक्षय होता है।

(व्यास स्मृति, चौथा अध्याय) मनुष्य नैमिषतीर्थ में जाने से सब पापों से छूट जाता है।

(महाभारत, आदि पर्व प्रथम अध्याय) सूत वंशीय रोमहर्षण जी के पुत्र उग्रश्रवा जी नैमिषारण्य में शौनक जी के यज्ञ में पहुंचे और व्यासकृत महाभारत की कथा कहने लगे।

(१६८ वां अध्याय) देवताओं ने नैमिषारण्य में महायज्ञ प्रारम्भ किया था।

(वन पर्व, ८४ वां अध्याय) पूर्व दिशा में नैमिषारण्य तीर्थ है जहां पवित्र गोमती नदी बहती है। वही देवताओं के यज्ञ का स्थान है।

(८५ वां अध्याय) पाण्डवों ने नैमिषारण्य में जाकर गोमती में स्नान किया।

(महाभारत-शल्य पर्व, ३७ वां अध्याय) बलराम जी नैमिषारण्य में गये, जहां सरस्वती नदी बहने से बन्द हो गई है। वह वहां सरस्वती की निवृत्ति देख कर विस्मित हो गये।

पहिले सतयुग में नैमिषनामक ऋषियों ने १२ वर्ष का यज्ञ आरम्भ किया था। उस यज्ञ में इतने मुनि आये कि सरस्वती के तीर्थ नगर के समान दीखने लगे। तट में कुछ भी अवकाश नहीं रहा। जब सरस्वती जी ने उन ऋषियों को चिन्ता से व्याकुल देखा तब अपनी माया से अनेक मुनियों को अनेक कुञ्ज दिखाये। उसी दिन से इस स्थान का नाम नैमिष कुंज है।

(३८ वां अध्याय) जब नैमिषारण्य में अनेक मुनि इकट्ठे हुये, तब वेद के विषय में अनेक प्रकार के शास्त्रार्थ होने लगे। वहां थोड़े से मुनि आकर सरस्वती का ध्यान करने लगे। यज्ञ करने वाले मुनियों के ध्यान करने से बाहर से आये हुए मुनियों की सहायता के लिये कांचनाक्षी नामक सरस्वती नैमिषारण्य में आई।

(महाभारत, शान्ति पर्व, ३५५ वां अध्याय) पूर्व समय में जिस स्थान पर धर्म चक्र प्रवर्तित हुआ था, उस नैमिषतीर्थ में गोमती नदी है।

(वाल्मीकीय रामायण, उत्तर काण्ड, १०४ सर्ग से ११० सर्गतक) महाराज रामचन्द्र ने अयोध्या से नैमिषारण्य में आकर अश्वमेध यज्ञ किया। उसी समय उनके पुत्र लव और कुश वाल्मीकि मुनि के साथ आकर उनसे मिले और महारानी सीता को पृथिवी देवी सिंहासन पर बिठा कर रसातल को ले गईं।

(कूर्म पुराण-ब्राह्मी संहिता-उत्तरार्ध, ४१ वां अध्याय) ऋषियों ने ब्रह्मा से पूछा कि पृथिवी पर तपस्या के लिये सब से पवित्र स्थान कौन है? ब्रह्मा जी बोले कि हम यह चक्र छोड़ते हैं, तुम लोग उसके साथ जाओ जिस स्थान पर चक्र की नेमि अर्थात् पहिया गिरे, वही देश तपस्या के लिये उत्तम है। ऐसा कह ब्रह्मा ने चक्र छोड़ा। ऋषि लोग शीघ्रता से उसके पीछे चले। जिस स्थान पर चक्र की नेमि गिरी वहां ही पवित्र और सर्वपूजित नैमिष नामक क्षेत्र हुआ। शिव जी पार्वती सहित नैमिषारण्य में विहार करते हैं। वहां मृत्यु होने से ब्रह्मलोक मिलता है और यज्ञ, दान, श्राद्धादिक कर्म करने से सम्पूर्ण पाप का नाश हो जाता है।

(देवी भागवत-प्रथम स्कन्ध दूसरा अध्याय) शौनक जी ने सूत जी से कहा कि कलि काल से डरे हुये हम लोग ब्रह्मा जी की आज्ञासे नैमिषारण्य में आये

है। पूर्व समय में उन्होने हमें एक चक्र देकर कहा था कि जहां इसकी नेमि गिरे वह देश अतिपावन जानना। वहां कलियुग का प्रवेश कभी नहीं होगा। यह सुन कर हम उस चक्र को चलाते हुये चले आये। जब चक्र यहां पहुँचा तो उसकी नेमि टूट गई और वह उसी भूमि में प्रवेश कर गया। इसी से इस क्षेत्र का नाम नैमिष हुआ। यहां कलि प्रवेश नहीं करता। इससे मुनि, सिद्ध और महात्माओं के सङ्ग हम यहां बसते है (पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड प्रथम अध्याय में भी इस विषय का वर्णन है।)

(वाराह पुराण-१७० वां अध्याय) त्रयोदशी के दिन नैमिषारण्य के चक्रतीर्थ में स्नान करने से उत्तम गति प्राप्त होती है।

(स्कन्द पुराण-सेतुबन्ध खण्ड, १६ वां अध्याय) महाभारत युद्ध के आरम्भ के समय बलदेव जी द्वारिका से प्रभास आदि तीर्थों में भ्रमते हुये नैमिषारण्य में पहुँचे। उनको देख कर नैमिषारण्य के समस्त तपस्वी आसनों से उठे। उन्होंने बड़े आदर से उनको आसन पर बिठाया। परन्तु व्यास जी के शिष्य सूत जी ने जो ऊंचे आसन पर बैठे थे, बल्देव जी को उत्थान नहीं दिया। यह देख कर बल्देवजी जी को बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने कुश के अग्रभाग से सूत जी का सिर काट लिया। यह देख मुनियों ने हाहाकार किया और बल्देव जी से कहा कि आप को ब्रह्महत्या लगी, आप इसका प्रायश्चित्त कीजिये। (श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध के ७८ वें अध्याय में भी यह कथा है।)

(वामन पुराण, ७ वां अध्याय) पृथिवी में नैमिष तीर्थ, आकाश में पुष्करतीर्थ और पाताल में चक्रतीर्थ उत्तम हैं।

(३६ वां अध्याय) वेद व्यास जी ने दधीचि ऋषि के लिये मिश्रिक तीर्थ में बहुत तीर्थ मिला दिये हैं। जिसने मिश्रिक तीर्थ में स्नान किया, वह सब तीर्थों में स्नान कर चुका।

(शिव पुराण, ८ वां खण्ड, ५ वां अध्याय) श्री रामचन्द्र, ब्राह्मण रावण के वध करने से बहुत समय तक पश्चात्ताप करते रहे। निदान उन्होंने नैमिषारण्य के हत्याहरण तीर्थ में अपने भाई सहित जाकर अपना पाप दूर किया और लक्ष्मण सहित स्नान करके शिवलिङ्ग की स्थापना की जिससे वे पवित्र हो गये।

(१४ वां अध्याय) नैमिषक्षेत्र में ललितेश्वर शिव लिङ्ग है, जिसको ललिता जगदम्बा ने स्थापित किया था। उसी स्थान पर ललिता ने कठिन

तप किया था। वहां एक दधीचीश्वर शिवलिङ्ग है जिसको दधीचि मुनि ने स्थापित किया था।

[महर्षि दधीचि ब्रह्मा के पौत्र और अथर्वा ऋषि के पुत्र थे। यह बड़े भारी शैव थे और विष्णु भी इनसे परास्त होगये थे। एक बार जब देवताओं को असुरों ने जीत लिया तब इन्द्र और अन्य देवताओं ने इनसे इनकी हड्डियों का दान मांगा। महात्मा दधीचि ने अपना शरीर छोड़ दिया, और उनकी हड्डियों के अस्त्र से देवताओं ने असुरों पर विजय पाई।]

[महर्षि रोमहर्षण सूत जाति के थे। यह भगवान वेद व्यास के परम प्रिय शिष्य थे। भगवान व्यास ने इन्हें समस्त पुराणों को पढ़ाया और आशीर्वाद दिया कि तुम समस्त पुराणों के वक्ता हो जाओगे। यह सदा ऋषियों के आश्रमों में घूमते रहते थे और सब को पुराणों की कथा सुनाया करते थे। यद्यपि यह सूत जाति के थे, किन्तु पुराणों के वक्ता होने के कारण सब ऋषि इनका आदर करते थे और उच्चासन पर बिठा कर इनकी पूजा करते थे।

नैमिषारण्य में यह ऋषियों को कथा सुना रहे थे। बल्देव जी वहां आये, और सब ऋषियों ने उठकर उनका स्वागत किया। रोमहर्षण जी जो व्यास गद्दी पर थे, न उठे। इस पर बल्देव जी ने उनका सिर काट लिया। ऋषियों ने बल्देव जी को बहुत धिक्कारा और प्रायश्चित कराया, और महर्षि रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा को व्यास गद्दी पर बिठाया। तब से रोमहर्षण जी की जगह उग्रश्रवा जी पुराणों के वक्ता हुये।]

[नैमिषारण्य में अठासी हजार ऋषि कलियुग को बढ़ते देख, इकट्ठे हुये थे। उनमें शौनक ऋषि प्रधान थे। भृगुवंश में उत्पन्न होने से भार्गव और शुनक के अपत्य होने के कारण इनका नाम शौनक पड़ा। समस्त पुराणों और महाभारत को इन्हों ही ने सूत जी (महर्षि रोमहर्षण) के मुंह से सुना था। सब पुराणों में 'शौनक उवाच' पहिले लिखा रहता है।]

प० द०— नीमसार सीतापुर से २० मील पश्चिम की ओर है। इसकी डेढ़ कोस की परिक्रमा है जिसमें निम्नलिखित स्थान पड़ते हैं :—

(१) चक्रतीर्थ—गोलाकार लगभग १२० गज घेरे का पक्का कुण्ड है। ऊपर से नीचे तक चारों ओर पक्की सीढ़ियां और बीच में जालीदार दीवार है जिसके बाहर यात्री लोग स्नान करते हैं और भीतर अथाह जल है। इसी स्थान पर नेमि समा गई थी।

(२) पञ्च प्रयाग—एक पक्का सरोवर।

(३) ललिता देवी—नीमसार का सबसे प्रतिष्ठित मन्दिर।

(४) गोवर्द्धन महादेव।

(५) क्षेमकाया देवी।

(६) जानकी कुण्ड।

(७) हनुमान जी।

(८) काशी—एक पक्के सरोवर के किनारे एक मन्दिर में विश्वनाथ और अन्न पूर्णा हैं। यहाँ पिण्ड दान संस्कार बहुत होता है।

(९) धर्मराज का मन्दिर।

(१०) एक मन्दिर में शुकदेव जी की गद्दी, बाहर व्यास जी का स्थान और मैदान में मनु और शतरूपा के अलग अलग चबूतरे हैं। शुकदेव जी और व्यास जी के यही स्थान थे।

(११) व्यास गङ्गा—अब केवल बालू है। पहले यहाँ नदी थी, और कहते हैं व्यास जी उसमें स्नान करते थे।

(१२) ब्रह्मावर्त—बालू से भरा हुआ पक्का सरोवर।

(१३) गङ्गोत्री—यह पक्का सरोवर भी बालू से भर गया है।

(१४) पुष्कर नामक सरोवर।

(१५) गोमती नदी।

(१६) दशाश्वमेध टीला—टीले पर एक मन्दिर में राम और लक्ष्मण जी की मूर्तियाँ हैं। इसी स्थान पर महाराज रामचन्द्र ने अश्वमेध यज्ञ किया था।

(१७) पाण्डव किला—एक लम्बे टीले पर मन्दिर में श्री कृष्ण और पाण्डवों की मूर्तियाँ हैं। कहते हैं यहाँ पाण्डवों का किला था। यहाँ पर साधुओं के लिए गुफाएं हैं।

(१८) एक मन्दिर में बड़े सिंहासन पर सूत जी की गद्दी—यह सूत जी का स्थान था। इसके निकट राधा, कृष्ण और बलदेव जी की मूर्तियाँ हैं।

और (१९) एक मन्दिर में त्रेता के रामचन्द्र जी की मूर्ति है।

नीमसार में भारतवर्ष के जितने तीर्थ हैं सबके स्थान मौजूद हैं। कहा जाता है कि कलियुग में सारे तीर्थ इसी स्थान पर कर दिये गये जिससे यहाँ आकर दर्शनों से सब तीर्थों के दर्शन का लाभ हो जावे।

हर अमावस्या को नीमसार में भारी मेला लगता है। लोग चक्रतीर्थ में स्नान करते हैं।

मिश्रिक—नैमिषारण्य से ५ मील पर सीतापुर की ओर मिश्रिक पवित्र तीर्थ है। अवध के सब से पुराने कस्बों में से यह एक है। यहाँ दधीचि कुण्ड नामक बड़ा भारी पक्की सुन्दर सरोवर है। कहा जाता है कि महाराज विक्रमादित्य ने इसके चारों ओर पक्की दीवार बनवाई थी। सरोवर के किनारे ऋषि दधीचि का पुराना मन्दिर खड़ा है जहाँ दधीचि ऋषि ने तपस्या की थी। पक्के सरोवर में मन्दिर के समीप वह कुण्ड है जहाँ देवताओं ने ऋषि के स्नान के लिए सब तीर्थों का जल इकट्ठा किया था। मन्दिर के महन्त के पास दस हजार की आय का इलाका मुआफ़ी है। ऐसा प्रसिद्ध है कि एक समय देव गण एक बड़े संग्राम में दैत्यों से परास्त हुए। उन्होंने ब्रह्मा की आज्ञानुसार तपस्वी दधीचि के पास जाकर अपना अस्त्र बनाने के लिये उनसे उनकी हड्डियाँ माँगी। दधीचि ने कहा कि मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करके तब अपनी हड्डियाँ दूँगा। देवताओं ने सम्पूर्ण तीर्थों का जल लाकर यहाँ के एक कुण्ड में प्रस्तुत कर दिया। भगवान् दधीचि ने उस कुण्ड में स्नान करके अपना शरीर छोड़ दिया। देवताओं ने उनकी हड्डियों के अस्त्र बनाकर उससे दैत्यों को जीता। सम्पूर्ण तीर्थों का जल मिश्रित होने के कारण इस स्थान का नाम मिश्रिक हुआ। जिस कुण्ड में दधीचि ने स्नान किया था उसका नाम दधीचि कुण्ड है।

मिश्रिक में सीता कूप है जहाँ कहा जाता है कि सीताजी भूमि में समा गई थीं।

३५६ नूरलिया—(देखिए लङ्का)

३५७ नेवासे—(देखिए आलन्दी)

३५८ नैनागिरि—(मध्य भारत के पन्ना राज्य में एक बस्ती)

यहाँ से श्री वर्दत्त मुनि (जैन) मोक्ष को पधारे थे।

यहाँ तेईसवें तीर्थङ्कर, श्रीमत्पार्श्वनाथ महाराज, का समोसरण आया था।

इस स्थान पर ३० से अधिक जैन मन्दिर हैं।

३५९ नोलास—(देखिए सरहिन्द)

३६० नौराही—(संयुक्त प्रान्त के फ़ैजाबाद जिला में एक स्थान)

इस स्थान को रत्नपुरी भी कहते हैं।

श्री धर्मनाथ स्वामी (पन्द्रहवें तीर्थङ्कर) के यहां गर्भ, जन्म, दीक्षा तथा कैवल्य ज्ञान कल्याणक हुये थे।

[श्री धर्मनाथस्वामी, पन्द्रहवें तीर्थङ्कर, के पिता का नाम भानु और माता का नाम सुव्रता था। आप के गर्भ, जन्म, दीक्षा तथा कैवल्यज्ञान कल्याणक रत्नपुरी में, और निर्वाण पार्श्वनाथ में हुआ था। आप का चिन्ह वज्रदण्ड है।]

नौराही सयू नदी के किनारे, अयोध्या से १२ मील पर एक बड़ा गांव है। यहां कई जैन मन्दिर हैं।

कहा जाता है कि जब अयोध्या से वनवास जाते समय अयोध्या निवासी श्री रामचन्द्र जी के साथ हो लिये थे, तब नौराही से श्री रामचन्द्र ने रात्रि में ऐसे रथ हकँवाया कि सवेरे लोगों को नौ रास्तों से रथ के जाने का भ्रम हुआ, और इस प्रकार वे उनके पीछे न जा सके और नौराही से लौट आयें।

प

३६१ पञ्चनद— (पंजाब प्रदेश में जहाँ सतलज नदी चिनाव नदी में मिली है वहां से जहां चिनाव सिन्ध में गिरी है वहां तक का नदी भाग)

पञ्चनद के समीप अभीरों ने अर्जुन से गोपियों को छीना था।

प्रा० क०— (महाभारत, मौशल पर्व, ७वां अध्याय) अर्जुन ने (यदुवंशियों का नाश होने पर) द्वारिका वासियों को लिए हुये प्रभास से चल कर वन, पर्वत तथा नदियों के तट पर निवास करते हुये पञ्चनद के समीपवर्ती किसी स्थान में निवास किया था। यहा अभीरों ने अर्जुन को परास्त करके वृष्णि और अंधक वंशीय स्त्रियों को छीन लिया।

(वन पर्व ८२ वां अध्याय) पञ्चनद तीर्थ में जाने से ५ यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है।

महाभारत, द्रोण पर्व अ० ४० ४५; कर्ण पर्व अ० ४५ में पञ्चनद का दूसरा नाम आरट्ट (संस्कृत रूप अराष्ट्र) है, जहां अच्छे घोड़े मिलते थे।

कौटिल्य के अर्थ शास्त्र (भाग २ अ० ३०) में भी इसका उल्लेख है।

व० द०—सतलज नदी मुजफ्फर गढ़ ज़िले के नीचे दक्षिण कच्छ के निकट चिनाव में मिलती है। चिनाव नदी दक्षिण-पश्चिम मिठन कोट के निकट जाकर सिन्ध में गिरती है। सतलज के संगम से सिन्ध नदी के संगम

तक-लगभग ५० मील की लम्बाई में चिनाव नदी पञ्चनद करके विख्यात है।

३६२ पञ्च सरोवर—(देखिये पुष्कर)

३६३ पटना—(बिहार की राजधानी)

इसके प्राचीन नाम पाटलिपुत्र, कुसुमपुर, पुष्पपुर और पालीबोथ्रा हैं।

रामचन्द्र जी ऋषि विश्वामित्र और लक्ष्मण सहित जनकपुर जाते समय यहां गंगा जी के पार उतरे थे।

भगवान बुद्ध ने अन्तिम बार नालन्दा से वैशाली जाते समय यहां गंगा जी को पार किया था।

संसार के सर्वश्रेष्ठ सम्राट पियदसी महाराज अशोक की यह राजधानी थी।

महाराज अशोक का जन्म इसी नगर में हुआ था और भगवान बुद्ध के स्मारक में जो उन्होंने ८४,००० स्तूप बनवाए थे उनमें पहिला और सब से बड़ा स्तूप पटना ही में था। यहाँ के कुक्कुटारामविहार में महाराज अशोक के गुरु उपगुप्त रहा करते थे।

यूनानीसेना-विजयी महाराज चन्द्रगुप्त और भारतीय-नैपोलियन महाराज समुद्रगुप्त की भी यह राजधानी थी। पीछे महाराज समुद्रगुप्त ने पटना को छोड़ कर अयोध्या को अपनी राजधानी बनाया था।

महापुरुष कात्यान और कौटिल्य नीतिज्ञ चाणक्य यहाँ साम्राज्य के महा मन्त्री रहे थे।

प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य आर्य भट्ट की यह जन्मभूमि है (४७६ई०)।

सिक्खों के अन्तिम गुरु श्री गोविन्दसिंह जी का यहाँ जन्म हुआ था। जन्म स्थानपर सिक्खों के चार तख्तों में से एक तख्त 'पटना साहिबा' है।

सुदर्शन सेठ (जैन) ने इस स्थान से निर्वाण प्राप्त किया था।

राजा राममोहनराय ने तीन साल पटना में अर्बी व फारसी का अध्ययन किया था।

प्रा० क०—पुराण के कथनानुसार शिशुनागवंश के राजा अजातशत्रु के पोते उदयाश्व ने पाटलिपुत्र को बसाया था और उसे कुसुमपुर और पुष्पपुर भी कहते थे। यूनानियों ने इसको पालीबोथ्रा कहा है। औरङ्गजेब ने इसका नाम अपने पुत्र अजीम के नाम पर अजीमाबाद रक्खा था, पर वह चला नहीं। बौद्ध ग्रन्थ महापरिनिर्वाण सूत्र में लिखा है कि अन्तिम बार

नालन्दा से वैशाली जाते समय भगवान बुद्ध पातलीगांव में आये। उस समय यह नगर बसाया जा रहा था। भगवान बुद्ध ने कहा था कि यह बड़ा नगर होगा पर धोखा, खून, अग्नि, फरेब आदि से यह नष्ट हो जावेगा। इस प्रकार बुद्ध ग्रन्थों के अनुसार बुद्ध के जीवन के अन्तिम वर्षों में यह नगर बसा था।

यूनानी एलची, मेगस्थनीज जो सम्राट सिल्यूकस की ओर से सम्राट चन्द्रगुप्त के दर्बार में रहता था लिखता है कि पटना की लम्बाई १० मील और चौड़ाई दो मील है। उसके चारों ओर १५ गज गहरी और ३०० गज चौड़ी खाई है। नगर के चारों ओर चहार दीवारी है जिसमें ५७० बुर्ज और ६४फाटक हैं।

'महावंश' कहता है कि अजात शत्रु का राज्याभिषेक पाटलिपुत्र में हुआ। यह भगवान बुद्ध के शरीर छोड़ने से ८ साल पहिले हुआ था, इससे प्रतीत होता है कि धीरे धीरे बहुत दिनों तक यह नगर बसता रहा।

महर्षि विश्वामित्र रामचन्द्र और लक्ष्मणजी को जब अपने आश्रम से, मिथिलापुर (सीता स्वयम्बर) में ले गये थे तो गंगाजी को यहीं पार करके गये थे।

वर्तमान पटना प्राचीन पाटलिपुत्र के बहुत थोड़े भाग पर है। ७५० ई० में गङ्गा और सोन की बाढ़ में बाकी सारा प्राचीन नगर पानी में चला गया।

[नवें गुरु तेगबहादुर साहेब की पत्नी गुजरी देवी के गर्भ से सम्वत् १७२३ वि० में पूस सुदी सप्तमी को पटना में गुरुगोविन्दसिं का जन्म हुआ था। गुरु गोविन्दसिंह नौ साल के भी नहीं थे जब औरङ्गजेब ने दिल्ली में इनके पिता का वध करवा दिया। सं० १७३२ वि० से ही इन्हें आनन्दपुर में गुरुगादी का काम सम्भालना पड़ा। १७३४ वि० में लाहौर निवासी श्रीमती जीतो देवी से आप का विवाह हो गया। आप के चार पुत्र हुये जिनमें से दो मुगलों से युद्ध में मारे गये और दो को सरहिन्द के नवाब ने जिन्दा दीवार से चुनवा दिया। १७५६ वि० में गुरुजी ने सिक्ख खालसा समुदाय की सृष्टि की जिसके जोड़ का नर समाज शायद सारे संसार में न होगा। औरङ्गजेब के मरने पर गुरुजी की सहायता से बहादुर शाह गद्दी पर बैठा और उनका मित्र रहा। १७६४ वि० में गुरुजी गोदावरी किनारे नंदेड़ ग्राम में पहुँचे और वहाँ एक नया शहर 'अबिचल नगर' बसाया। सं० १७६५ वि० में गुरुग्रन्थ साहेब को गुरु मानने का आदेश देकर गुरुगोविन्दसिंह जी घोड़े पर सवार होकर बाहर चले गये और कहा जाता है अन्तरधान हो गये।]

व० द०—पटना चौक के पास एक गली की बगल में एक मन्दिर जिसे 'हरिमन्दिर' कहते हैं विद्यमान है। इसी स्थान पर गुरुगोविन्दसिंह जी का जन्म हुआ था।

चौक से तीन मील पच्छिम महाराजगंज में बड़ी पाटनदेवी का मन्दिर है। लोग कहते हैं कि पार्वती के पट गिरने से यहाँ पाटनदेवी हुई, और इस शहर का नाम पटना पड़ा।

जहाँ रामचन्द्रजी ने गंगाजी को पार किया था वह स्थान रामभन्द्रक कहलाता है।

३६४ पड़रौना—(संयुक्त प्रान्त के देवरिया जिले में एक गाँव)
इसका प्राचीन नाम पावा था।

अपनी अन्तिम यात्रा में कुशीनगर (कसिया) जाते समय भगवान बुद्ध ने यहाँ विश्राम और स्नान किया था। उनके प्रधानशिष्य महाकश्यप (बौद्ध ग्रन्थों के महात्मा कस्यप) ने भी भगवान् के निर्वाण का समाचार पाकर कुशीनगर की यात्रा में यहाँ विश्राम किया था !

प्रा० क०—बौद्ध ग्रन्थों में लिखा है कि वैशाली में अपना अन्तिम काल निकट आने की घोषणा करके भगवान बुद्ध ने कुशी नगर की यात्रा की और मार्ग में पावा में विश्राम किया, जल पिया और स्नान किया। ह्यानचाँग ने लिखा है कि उस स्थान पर स्तूप बनवा दिया गया था !

व० द०—पड़रौना, कसिया से १४ मील उत्तर है और यहाँ एक स्तूप के चिन्ह हैं। इस समय यह एक तहसील का सदर स्थान है।

आर्कियालाजिकल मुहकमे के मिस्टर ए० सी० एल० कार्लायल का विचार है कि पावा वर्तमान फाजिल नगर गाँव के स्थान पर था जो कसिया से १२ मील पूर्व-दक्खिण में है। पर जेनरल सर ए० कनिङ्घम का मत है कि पड़रौना प्राचीन पावा का स्थान है। जेनरल कनिङ्घम को बौद्ध स्थानों के पहिचानने की अद्भुत दैवी शक्ति थी। डाक्टर होई (Hoey) का ख्याल है कि 'पर्वार, जो विहार प्रान्त के जिला छपरा में सिवान से ३ मील पूर्व है, प्राचीन पावा है पर इस से कसिया की दूरी ठीक नहीं बैठती, और कसिया का कुशीनगर होना सिद्ध है।

'पावा पुरी' जो जिला पटना में है उससे इस 'पावा' से कोई सम्बन्ध नहीं है।

३६५ पण्ढरपुर—(बम्बई प्रान्त के शोलापुर जिले में एक कस्बा)

विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के आदि आचार्य श्री नामदेवजी का जन्म पंढरपुर के समीप नरसी ब्राह्मणी नामक गाँव में हुआ था।

पंढरपुर को उन्होंने निवास स्थान बना लिया था।

राँका जी परम भक्तों में यहाँ हुये हैं, और यही उनका जन्मस्थान था।

पंढरपुर भक्त नरहरि सुनार की भी जन्मभूमि है।

माता पिता का परम भक्त पुण्डरीक ब्राह्मण यहाँ रहता था।

प्रा० क०—कथा है कि वामदेव नाम का एक द्वीप पंढरपुर में रहता था। उसकी पुत्री बाल विधवा हो गई। वामदेव ने उसे भगवान से व्याह करके उन्हीं की सेवा में छोड़ दिया और वह भगवत भजन करने लगी। विवाह होने पर भगवान के प्रभाव से उसको गर्भ रह गया जिससे नामदेव का जन्म हुआ। बालकपन ही से नामदेव भगवान में भक्ति रखते थे। एक समय इनके नाना बाहर गये और भगवान के पूजन का भार नामदेव पर छोड़ गये। नामदेव समझते थे कि भगवान भोग खाते होंगे। उन्होंने तीन दिन तक दूध रक्खा परन्तु भगवान ने भोग न किया। नामदेव जी समझे कि उन्हें पूजन की रीति नहीं आती और उनके नाना लौट कर उनसे रुष्ट होंगे। तीन दिन तक नामदेव जी ने भी भोजन नहीं किया और जब फिर भी भगवान ने भोग ग्रहण न किया तब वह अपना गला काटने लगे। उसी समय भगवान ने प्रकट हो कर दूध पी लिया। जब वे बहुत सा दूध पी गये तब नामदेवजी ने कहा कि मैं भी तीन दिन का भूखा हूँ, मेरे लिए कुछ नहीं छोड़ते। तब भगवान ने हंस कर उन्हें प्रसाद दिया।

[नामदेवजी का जन्म सं० १३२७ वि० को नरसी ब्राह्मणी नामक स्थान में हुआ था। बड़े होकर वे अपना घरबार छोड़ कर पण्ढरपुर ही में जाकर बस गये। गुरुग्रन्थ साहेब में इनके साठ से अधिक पद मिलते हैं।

नामदेवजी १८ वर्ष पंजाब में रहे थे, पीछे पण्ढरपुर लौट आये।

पण्ढरपुर में श्री विट्ठल मन्दिर के महाद्वार की सीढ़ी पर १४०७ वि० में ८० साल की अवस्था में इन्होंने शरीर त्यागा।]

[पण्ढरपुर में परमभक्त राँकाजी अपनी पत्नी सहित जंगल से लकड़ी लेने जाया करते थे। एक दिन भगवान और नामदेवजी ने उनके मार्ग में स्वर्ण की थैली छोड़ दी। राँकाजी उससे बच कर चले गये, परन्तु नामदेवजी

और भगवान ने सूखी लकड़ी भी इकट्ठा करके रख दी थी। दूसरे की लकड़ी समझकर राँकाजी ने उसे भी नहीं छुआ परन्तु और लकड़ी न मिलने से वे वैसे ही अपने घर चले आये। वहीं उनको भगवान ने दर्शन दिया।

राँकाजी का जन्म महाराष्ट्र ब्राह्मण के घर वि० सं० १३४७ में पण्ढरपुर में हुआ था। १०५ वर्ष तक इस धरा धाम पर लीला करके सं० १४५२ वि० में वे परमधाम को पधारे।]

[पुण्डरीक ब्राह्मण अपने माता पिता का परम भक्त था। एक दिन कृष्ण भगवान रुक्मिणी सहित पुण्डरीक के यहाँ पहुँचे। परन्तु माता पिता के सम्मुख पुण्डरीक ने श्री कृष्ण की ओर ध्यान न दिया। कृष्णजी ने उनकी माता पिता पर भक्ति देख कर वर माँगने को कहा। पुण्डरीक ने कहा तुम जैसे हो वैसे ही यहाँ सर्वदा स्थित रहो। पुण्डरीक ने एक पाषाण दिया जिस पर कृष्ण भगवान स्थित हुये और विट्ठल अथवा विठोबा नाम से प्रख्यात हो गये।]

[नरहरि सुनार पण्ढरपुर के ही रहने वाले थे। वह ऐसे शिवभक्त थे कि कभी विट्ठलजी के मन्दिर की ओर भूल कर भी न जाते थे। एक महाजन ने विट्ठलजी की सोने की करधनी इन्हें बनाने को दी और कमर का नाप दे दिया। पर हर दफे करधनी या तो दो अंगुल छोटी हो जावे या दो अंगुल बड़ी हो जावे। अन्त में यह स्वयं नाप लेने गये और वहीं इन्हें परम ज्ञान प्राप्त हुआ।]

व० द०— पंढरपुर कस्बे का एक भाग जिसमें विट्ठलनाथ जी का एक मन्दिर है पुण्डरीक क्षेत्र करके प्रसिद्ध है। वर्तमान मन्दिर सन् ८० ई० का बना हुआ है। इसकी लम्बाई ३५० फ़ीट और चौड़ाई १७० फ़ीट है। चाँदी के पत्र से मढ़ा हुआ एक स्तम्भ है जिसको यात्री गण अङ्कमाल कहते हैं। विट्ठलनाथ की मूर्ति पाण्डु वर्ण की है और उनके मन्दिर के पास अनेक पवित्र स्थल, देव मन्दिर और घाट बने हैं। यह स्थान भीमा नदी के तट पर है। यहाँ यात्रा नित्य आते हैं, परन्तु प्रति वर्ष ३ बड़े मेले, आषाढ़, कार्तिक और चैत्र की शुक्ल पक्ष एकादशी को होते हैं। वैसे प्रत्येक मास शुक्ल पक्ष की एकादशी को भीड़ रहती है।

३६६ पपोसा—(देखिए पफोसा)
३६७ पणौर—(देखिए पड़रौना)
३६८ पम्पासर—(देखिए आनागन्दी व पवित्र सरोवर)
३६९ पम्पी ग्राम—(देखिए वैद्यनाथ)

३७० परली—(देखिए जाम्बगांव)

३७१ परसागांव—(देखिए भुइलाडीह)

३७२ परासन—(देखिए काल्पी)

३७३ पवित्र सरोवर (कुल)—(पांच पवित्र सरोवर निम्नलिखित हैं) मानसरोवर—उत्तर में (कैलास पर्वत के समीप, तिब्बत की सीमा पर): त्रिन्दु सरोवर—पूर्व में (भुवनेश्वर, उड़ीसा प्रान्त, में) : पम्पासर—दक्षिण में (विलारी ज़िला, मद्रास प्रान्त, में): पुष्कर—मध्य में (अजमेर में): नारायणसर—पश्चिम में (इन्डस नदी के मुहाने पर, कच्छ की खाड़ी में)

३७४ पशुपतिनाथ—(देखिए काठमाँडू)

३७५ पाँडुआ—(बंगाल प्रान्त के हुगली जिला में एक नगर)

इस स्थान के प्राचीन नाम रिक्तवन्त, मारपुर व प्रद्युम्ननगर हैं।

श्री कृष्णचन्द्र के पुत्र प्रद्युम्न ने शम्बरासुर को यहां मारा था।

श्रावस्ती के सम्राट विरुढक ने जब कपिलवस्तु के सम्राट पाण्डु को परास्त किया था तो पाण्डु यहां आकर रहने लगे थे।

भगवान बुद्ध के राज्य त्याग कर देने पर और अपने पुत्र को भी भिक्षु सङ्घ में ले लेने पर, उनके पिता के पश्चात् कपिलवस्तु का राज्य अन्य वंशजों को मिला। जब पाण्डु कपिलवस्तु में राजा थे उन दिनों श्रावस्ती (सहेट महेट) के राजा विरुढक ने उन पर चढ़ाई की और उन्हें परास्त किया। पाण्डु कपिलवस्तु छोड़ कर पाण्डुआ में जा बसे। उन्होंने सिंहपुर (जिला हुगली) के राजा पाण्डु वासुदेव के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। बाद को पाण्डु वासुदेव लङ्का विजय के पश्चात् लङ्का की गद्दी पर बैठे थे।

एक दूसरा पाण्डुआ, जिसे फीरोजाबाद भी कहते हैं, मालदा के पास है। उसका सम्बन्ध पूर्ण वर्धन से है।

३७६ पाटन—(मध्यभारत के बिजावर राज्य में एक बस्ती)

यहां अकबर बादशाह के सुविख्यात मन्त्री बीरबल का जन्म हुआ था। [महाराजा बीरबल का जन्म १५८५ वि० में पाटन में हुआ था। एक साधारण कान्यकुब्ज ब्राह्मण गंगादास के यह पुत्र थे। कुछ लोगों का मत है कि इनका जन्म तिकावाँपुर [जिला कानपुर] में हुआ था। केवल अपने बुद्धि बल से बीरबल अकबर बादशाह के परम मित्र और भारी जागीरदार हुये थे और महाराजा की पदवी पायी थी। यह ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे और 'ब्रह्म' के उपनाम से कविता करते थे। हाजिर जवाबी में इनके जोड़ का कोई

दूसरा नहीं हुआ। कहते हैं कि इनके पिता मूर्ख थे। दरबारियों ने बादशाह द्वारा उन्हें एक बार दरबार में बुलवा कर बीरबल को झेंपाना चाहा। बीरबल ने उन्हें सलाम करने तथा शाही अदब के साथ उचितरीति से बैठने के नियम सिखा दिए पर समझा दिया कि अन्य एक शब्द भी न बोलें और किसी के साधारण से साधारण प्रश्न का भी उत्तर न दें। उनके दरबार में आने पर अकबर ने उनसे कई साधारण प्रश्न किये पर वे एकदम मौन ही धारण किये रहे। इसपर बादशाह ने कहा बीरबल अगर बेवकूफ से साबिका पड़े तो कोई क्या करे ? बीरबल ने जवाब दिया, जहाँपनाह ! खामोशी अख्तियार करे। यह उत्तर 'जवावे जाहिलाँ बाराद खमोशी' के आधार पर कहा गया था।]

(देखिए ओड़छा)

३७७ पाटनगिरि—(देखिए गङ्गोत्री)

३७८ पाण्डुकेश्वर—(हिमालय पर्वत के गढ़वाल प्रान्त में एक स्थान)

इस स्थान पर पाण्डु ने तप किया था। इसी स्थान के समीप पाँचों पाण्डवों युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव का जन्म हुआ था।

यहाँ पाँच बद्रियों में से एक, योगबद्री, का स्थान है।

पाण्डुकेश्वर से ६ मील पर वैखानस मुनि की तपोभूमि है।

प्रा० क०—(स्कन्दपुराण, केदार खण्ड, प्रथम भाग, ५८ वाँ अध्याय) राजापाण्डु ने मृगरूपधारी मुनि के शाप से दुखी हो कर तप किया। तभी से वह स्थान पाण्डु स्थान के नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस समय विष्णु भगवान प्रकट हो कर बोले कि हे पाण्डु तुम्हारे क्षेत्र में धर्मादिकों के अंश से बलवान पुत्र उत्पन्न होंगें। ऐसा कह कर विष्णु चले गये। उस स्थान पर पाण्डुकेश्वर विराजते हैं।

(महाभारत आदि पर्व, ११८ वाँ अध्याय) हस्तिनापुर के राजा पाण्डु हिमालय पर्वत के दाहिने छोर में घूमघाम कर अपनी कुन्ती और माद्री स्त्रियों के सहित पर्वत की पीठ पर बैठकर आखेट करने लगे। एक समय उन्होंने मैथुनधर्म में आसक्त एक मृग को मारा। कोई तेजस्वी ऋषिकुमार मृग का स्वरूप धारण करके मृगी से मिला था। उसने पाण्डु को शाप दिया की तुम जब काम युक्त होकर अपनी स्त्री से मिलोगे तब मृत्यु को प्राप्त होगे।

(११९ वाँ अध्याय) उसके उपरान्त राजा पाण्डु ने अपने और अपने स्त्रियों के सब वस्त्र और भूषण ब्राह्मणों को देकर सारथियों और नौकरों को

हस्तिनापुर भेज दिया। पश्चात् वे अपनी दोनों स्त्रियों के साथ नागशत पर्वत को पधारे और हिमालय से होते हुए गन्ध मादन पर्वत पर जा पहुँचे। अन्त में वह इंद्रद्युम्न काल को प्राप्त करके हंसकूट को पीछे छोड़ कर शतशृङ्ग नामक पर्वत पर पहुँच कर तप करने लगे।

(१२३ वाँ अध्याय) अनन्तर शतशृङ्ग पर्वत ही पर पाण्डु के युधिष्ठिर आदि ५ पुत्र जन्मे।

(१२५ वाँ अध्याय) एक समय वसन्त ऋतु में माद्री को देखकर पाण्डु कामासक्त हो गए। उसी समय उनका देहान्त हो गया और माद्री इनके साथ सती हो गई।

(स्कन्द पुराण, केदार खण्ड, प्रथम भाग ५८ वाँ अध्याय) बद्रिकाश्रम से ५ कोस पर वैखानस मुनि का आश्रम और यज्ञ भूमि है जिसके हवन के स्थान पर विन्दुमती नदी बहती है और अब तक जले हुए जौ और तिल देख पड़ते हैं।

(महाभारत, द्रोणपर्व, ५३ वाँ अध्याय) राजा मरुत के यज्ञ में जिसकी सम्पूर्ण वस्तु स्वर्ण भूषित बनी थी बृहस्पति के सहित सम्पूर्ण देवता हिमालय पर्वत के स्वर्ण शिखर पर एकत्र हुए थे।

(अश्वमेधपर्व, ६४ वाँ अध्याय) युधिष्ठिर आदि पाण्डवगण व्यासजी की आज्ञानुसार राजा मरुत के यज्ञ स्थान के नाना प्रकार के धन और रत्न लदवाकर हस्तिनापुर ले गए।

व० द०—पाण्डुकेश्वर चट्टी गढ़वाल ज़िले की बड़ी बस्तियों में से है। यहाँ सरकारी धर्मशाला और कई एक पनचक्कियाँ हैं। योगबद्री का शिखर दार मन्दिर पश्चिम मुख से खड़ा है। इसको लोग धानबद्री भी कहते हैं। इनकी धातु की मूर्ति सुनहले मुकुट, छत्र और वस्त्रों से सुशोभित है। पाण्डुकेश्वर से ६ मील अलकनन्दा के उस पार क्षीर गङ्गा और घृतगङ्गा अलकनन्दा में मिली हैं। उसी स्थान पर वैखानस मुनि ने तप किया था। लोग कहते हैं कि यज्ञ को राख अब तक पाई जाती है। राजा मरुत ने भी इसी स्थान पर यज्ञ किया था।

३७९ पाण्ढरीक क्षेत्र—(देखिए पंढरपुर)

३८० पानीपत—(देखिए करनाल)

३८१ पारबती—(विहार प्रान्त के पटना जिले में एक स्थान)

भगवान बुद्ध ने कबूतर बन कर यहाँ एक चिड़ीमार और उसके परिवार की भूख बुझाई थी।

प्रा० क०—एक चिड़ीमार और उसके परिवार की भूख देखकर भगवान बुद्ध ने कबूतर का रूप धर कर और उनके हाथ पड़कर उनकी भूख बुझाई थी। बाद को जब चिड़ीमार अपनी कृतज्ञता प्रकट करने भगवान के पास आया तब उन्होंने उपदेश दिया और वह शिष्य हो गया, और अन्त में अर्हत पद को प्राप्त हुआ।

फ़ाहियान और ह्वानचांग दोनों ने इस पहाड़ी की यात्रा की थी। जहाँ कबूतर का रूप धारण किया गया था वहाँ महाराज अशोक का बनवाया हुआ प्रसिद्ध कबूतर वाला संघाराम था। इसके अतिरिक्त यहाँ बहुतायत से संघाराम और बोधिसत्व का एक बड़ा मन्दिर था।

व० द०—पारवतीगाँव बिहार नगर से १० मील दक्षिण-पूर्व और गिरियक से १० मील पूर्वोत्तर है। इसके समीप ५१० गज लम्बी और ३४० गज़ चौड़ी भूमि पुरानी इमारतों की निशानियों से भरी पड़ी है। इसके बीच में बोधिसत्व का प्रसिद्ध मन्दिर था। इस पहाड़ी के नीचे सकरी नदी बहती है। पहाड़ी पर एक खड्हर ४०० फ़ीट लम्बा ४०० फ़ीट चौड़ा और १०-१२ फ़ीट ऊँचा है। यह कबूतर वाले संघाराम की जगह है, और इसी के समीप महाराजा अशोक का स्तूप था।

३८२ पारशरामपुर—(संयुक्त प्रान्त के परतावगढ़ ज़िला में एक स्थान)

यह ५२ पीठों में से एक है जहां सती के शरीर का एक अङ्ग गिरा था।

३८३ पार्श्वनाथ—(देखिए सम्मेद शिखर)

३८४ पावागढ़—(गुजरात प्रान्त के पंचमहाल जिला में एक स्थान)

जैनियों के मतानुसार इस पहाड़ी पर से श्रीरामचन्द्र के पुत्र लव और अंकुश (जैन) निर्वाण को पधारे थे।

इस स्थान के पास कई जैन मन्दिर हैं, परन्तु मोक्ष स्थान के समीप कालिका देवी का मन्दिर है जहाँ सीढ़ियों पर चढ़ कर जाना होता है। माघ सुदी १२ से १५ तक यहाँ मेला लगता है।

३८५ पावापुरी—(बिहार के पटना ज़िले में एक ग्राम)

इस स्थान का प्राचीन नाम अपापापुरी (पुण्यभूमि) था।

यहाँ श्री महावीर स्वामी, अन्तिम तीर्थङ्कर, को कैवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ था, और इसी स्थान से वे मोक्ष को पधारे थे।

श्री महावीर स्वामी के मोक्ष स्थान पर सुन्दर संगमरमर का मन्दिर ग्राम के निकट एक बड़े व पक्के तालाब के मध्य में है। बाहर से मन्दिर में जाने के लिए सदर फाटक से मन्दिर तक कंगूरेदार पक्का पुल बना है। फाटक पर नित्य नौबत बजती है। यहाँ कुल चार मन्दिर हैं। महावीर स्वामी के निर्वाण गमन की तिथि कार्तिक बदी अमावस्या है। इस कारण कार्तिक बदी चौदस से अमावास्या तक यहाँ बहुत बड़ा मेला और रथ यात्रा होती है।

३८६ पिण्डार्क तीर्थ—(देखिए गंगागढ़)
३८७ पिहोवा—(देखिए कुरुक्षेत्र)
३८८ पुनडड़ा—(देखिए सीतामढ़ी)
३८९ पुरानाखेड़ा—(देखिए बिठूर)
३९० पुष्कर—(राजपूताने के अजमेर मेरवाड़ा में एक तीर्थ)

पुष्कर तीर्थ सब तीर्थों में श्रेष्ठ माना गया है।

इसी स्थान पर क्षीर सागर में शयन करते हुए भगवान की नाभि से कमल पर ब्रह्मा जी प्रकट हुए थे।

ब्रह्मा ने इस स्थान पर महायज्ञ किया था। पुष्कर, कुरुक्षेत्र गया, गंगा और प्रभास पंचतीर्थ कहलाते हैं।

यहाँ अगस्त्य मुनि का एक आश्रम था।

राम लक्ष्मण और जानकी ने यहाँ स्नान किया था।

पूर्वकाल में पुष्कर भारतवर्ष के ऋषियों का मुख्य स्थान था और यहाँ बहुत ऋषि गण निवास करते थे।

प्रा० क०—(पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड, १५ वाँ १६ वाँ अध्याय)

ब्रह्मा जी ने विचार किया कि हम सबसे आदि देव हैं। हमारे जहाँ हम प्रथम विष्णु की नाभी से उपजे हुए कमल पर उत्पन्न हुए थे, यहाँ अपने यज्ञ करने के लिए अपूर्व तीर्थ बनावें। सो बनाना भी नहीं है क्योंकि यह स्थान तो है ही। इसके उपरान्त ब्रह्मा जी पुष्कर तीर्थ में आए और सहस्र वर्ष पर्यन्त वहां रहे।

इसके पीछे ब्रह्मा जी ने अपने हाथ का कमल यहाँ फेंक दिया इसलिए यह स्थान 'पुष्कर' नाम से प्रसिद्ध हो गया। चन्द्र नदी के उत्तर और सरस्वती के पश्चिम नन्दन स्थान के पूर्व और कान्य पुष्कर के दक्षिण जितनी भूमि है ब्रह्मा जी ने उसमें यज्ञ की वेदी बनाई है। उसमें प्रथम ज्येष्ठ पुष्कर नाम से

प्रसिद्ध तीर्थ बनाया जिसके देवता ब्रह्मा हैं। दूसरा मध्यम पुष्कर बनाया जिसके देवता विष्णु हैं। और तीसरा कनिष्ठ पुष्कर तीर्थ बनाया जिसके देवता रुद्र हैं।

सब ऋषियों ने पुष्कर में आकर जब पुराण, वेद, स्मृति और संहिता पढ़ी तब ब्रह्मा के मुख से वराह जी प्रकट हुए। वराह जी के मुख से प्रथम सब वेद वेदांग उत्पन्न हुए, और दाँतों से यज्ञ करने के लिए स्तम्भ प्रकट हुए। इसी प्रकार हाथ आदि अङ्गों से यज्ञ की बहुत सी सामग्री उत्पन्न हुई। *वराह जी के दाँत के अग्र भाग पर्वत के शृङ्गों के समान ऊँचे थे जिस पर* रख कर उन्होंने ब्रह्मा के हित के लिए प्रलय के जल के भीतर से पृथिवी को लाकर जहाँ पुष्कर तीर्थ बना है वहाँ स्थापित किया और आप अन्तरधान हो गए।

(१६ वाँ अध्याय) सब तीर्थों में पुष्कर तीर्थ आदि है। यज्ञ पर्वत *(जहाँ ब्रह्मा जी ने पुष्कर में यज्ञ किया) के समीप अगस्त्य जी का आश्रम* है। ब्रह्मा जी ने कहा जो कोई पुष्कर तीर्थ की यात्रा करके अगस्त्य कुंड में स्नान नहीं करेंगे उनकी यात्रा सफल नहीं होगी।

(स्वर्गखण्ड, दूसरा अध्याय) पुष्कर में जहाँ ब्रह्मा जी यज्ञ कर रहे थे यज्ञ पर्वत की दीवार में नाग लोग जा बैठे। उनको थका हुआ देख जल की बड़ी धारा उत्तर को निकली। उसी से वहाँ *नाग तीर्थ उत्पन्न हुआ। यह तीर्थ सर्पों के भय को नाश करता है।*

(चौथा अध्याय) राम, लक्ष्मण और जानकी ने पुष्कर में विधि पूर्वक स्नान किया।

[महर्षि अगस्त्य वेदों के एक मन्त्र द्रष्टा ऋषि हैं। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की कथाएं मिलती हैं। पुलस्त्य की पत्नी हविर्भू *के गर्भ से विश्रवा के साथ इनकी उत्पत्ति का वर्णन आता है। किसी किसी ग्रन्थ के अनुसार पुलस्त्य तनय दत्तोलि ही अगस्त्य के नाम से प्रसिद्ध हुए।*

महर्षि अगस्त्य ने विदर्भ राज्य में पैदा हुई अपूर्व सुन्दरी और परम पतिव्रता लोपामुद्रा को पत्नी रूप में स्वीकार किया। वाल्मीकीय रामायण उत्तर काण्ड की अधिकांश कथायें इन्हीं के द्वारा कही हुई हैं। दक्षिण देश में *आर्य सभ्यता की ज्योति लेकर यही गए थे और इन्होंने* पहिले वहाँ धर्म का प्रचार आरम्भ किया था। इनके पिता महर्षि पुलस्त्य सप्तर्षि में से एक हैं और ब्रह्मा जी के मानस पुत्र थे।]

व० द०—पुष्कर अजमेर से ७ मील पर बड़ी सुन्दर बस्ती है। इसकी सीमा के अन्दर कोई भी मनुष्य जीव हिंसा नहीं कर सकता। इसके निकट भारत के सम्पूर्ण तालावों से अधिक पवित्रज्येष्ठ पुष्कर नामक तालाब है। पुष्कर के बहुतेरे पुराने मन्दिरों का औरङ्गज़ेब ने विनाश कर दिया। पुष्कर तालाब १½ कोस के घेरे में है और इसके किनारे पर बहुतेरे उत्तम घाट, राज पूताने के बहुत से राजाओं के बनवाए हुए अनेक मकान, धर्मशालाएं और मन्दिर हैं। पूर्व समय में असंख्य यात्री यहाँ आते थे। अब भी लाखों यात्री आते हैं। कार्तिक शुक्ल ११ से पूर्णिमा तक ५ दिन पुष्कर स्नान की बड़ी भीड़ होती है।

ज्येष्ठ पुष्कर की परिक्रमा के अतिरिक्त पुष्कर तीर्थ की कई परिक्रमा की जाती हैं। पहली तीन कोस की, दूसरी ५ कोस की, तीसरी १२ कोस की, चौथी २४ कोस की जिनमें बहुतेरे ऋषियों के पुराने स्थान मिलते हैं।

ज्येष्ठ पुष्कर से सरस्वती नदी निकली है जो सागरमती में मिलने के पश्चात् लूनी कहलाती है और कच्छ के रन में जाकर गुप्त हो जाती है।

ज्येष्ठ पुष्कर से दो मील पर मध्यपुष्कर और कनिष्ठ पुष्कर हैं।

२९१ पेशावर—(सीमा प्रान्त का प्रदर स्थान)

इसका प्राचीन नाम पुरुषपुर था। बाद को परशावर हुआ।

भगवान बुद्ध का भिक्षा पात्र यहाँ रक्खा था। उनकी चिता का कुछ भाग भी यहाँ था।

कनिष्क का प्रसिद्ध संघाराम जिसमें आर्य्य पार्श्विक, मनोरथ, असङ्ग और वसुबन्धु जैसे सुविख्यात धर्माचार्य रहते थे, यहीं था।

वसुबन्धु की यह जन्म भूमि है।

फाहियान ने ४०२ ई० में लिखा है कि एक स्तूप में यहाँ भगवान् बुद्ध का भिक्षापात्र रक्खा था। आरम्भ में यह पात्र वैशाली (बसाढ़) में था जहाँ से यहाँ आया था। ह्यानचांग के समय ६३० ई० में भिक्षापात्र का स्तूप शहर के पश्चिमोत्तर में टूटा पड़ा था। भिक्षापात्र पारस (ईरान) ले जाया जा चुका था। इस समय अब यह पात्र कन्धार के समीप है और सर एच० रालिन्सन लिखते हैं कि मुसलमान उसको श्रद्धा पूर्वक पूजते हैं।

महाराज कनिष्क ने उस काल के सबसे बड़े स्तूप में, जिसका घेरा ½ मील और ऊँचाई ४०० फीट थी, भगवान् बुद्ध की चिता की कुछ विभूति भी यहाँ लाकर रक्खी थी।

महाराज कनिष्क का भारी संधाराम जो भारतवर्ष भर में प्रसिद्ध था पेशावर में था। ईसा की प्रथम शताब्दी के समय के सबसे बड़े धर्माचार्य आर्य पार्श्विक, मनोरथ और वसुबन्धु के यहाँ रहने से उसका नाम और भी फ़ैल गया था। ह्यानचांग की यात्रा के समय तक यह इमारत बहुत कुछ टूट फूट चुकी थी पर उस समय भी आबाद थी।

अकबर ने यहाँ का नाम परशावर से बदल कर पेशावर किया था। पेशावर आजकल का बड़ा शहर है और अफ़गानिस्तान का पेरी (PARIS) कहलाता है पर पुराने निशानात लुप्त हो चुके हैं।

३९२ पैठण या पैठन—(हैदराबाद राज्य के औरङ्गाबाद जिले में एक नगर)

प्राचीन काल में यह नगर प्रतिष्ठानपुर नाम से प्रसिद्ध था और विद्या के लिये प्रख्यात था। अब तक लोग इसको दक्षिण का प्रतिष्ठानपुर कहते हैं। (उत्तर का प्रतिष्ठानपुर इलाहाबाद जिले में झूंसी है और केवल 'प्रतिष्ठान' बिट्ठूर है।

पैठन प्रसिद्ध सम्राट शालिवाहन की राजधानी थी जिन्होंने ७८ ई० में शक सम्वत आरंभ किया।

श्री एकनाथ महात्मा का यहाँ जन्म हुआ था और यहीं उन्होंने शरीर छोड़ा था।

भक्त कूर्मदास यहाँ जन्मे थे।

सन्त ज्ञानेश्वर ने यहाँ वास किया था।

[महात्मा एकनाथ का जन्म सम्वत् १५८० वि० के लगभग, और शरीरान्त १६५६ वि० में हुआ था। इन्होंने गृहस्थाश्रम का दिव्य आदर्श संसार के सामने रक्खा था। लोगों का विश्वास है कि महाराज रामचन्द्र ने स्वयम् इनका 'भावार्थ रामायण' ग्रन्थ लिखवाया था।]

[भक्त कूर्मदास, ज्ञानदेव और नामदेव जी के समकालीन एक ब्राह्मण थे। जन्म से ही इनके हाथ पैर नहीं थे। एक दिन पैठन में हरि कथा हो रही थी। यह ध्वनि सुन कर रेंगते हुए वहाँ पहुँचे। कथा में पन्ढर पुर की आषाढ़ी कार्तिकी यात्रा का माहात्म्य सुना। यह यात्रा को चल पड़े और पेट के बल रेंगते रेंगते लहुल नामक स्थान में चार महीने में पहुँचे। एकादशी आ गई और पन्ढरपुर ७ कोस रह गया। यात्रियों के झुंड के झुंड

जाते देख यह रो पड़े। भगवान की विनती करते रहे। श्री विट्ठल भगवान ने वहीं आकर इन्हें दर्शन दिये।]

सन्त ज्ञानेश्वर जब बालक थे,तब पैठन ही के ब्राह्मणों से उन्होंने शुद्धि पत्र प्राप्त किया था और यहीं,एक भैंसे में भी परम ब्रह्म का अंश प्रमाणित करने को उससे वेद मन्त्रों का उच्चारण करवाया था। यह चमत्कार ईश्वर की लीला थी। ज्ञानेश्वर जी उस समय निरे बालक थे। वे केवल यही कहते थे कि सब में केवल एक ब्रह्म है। (देखिए आलन्दी)

३९३ पोन्नुर—(मद्रास प्रदेश के चितूर जिला में एक ग्राम)

पोन्नुर प्रसिद्ध जैन कवि श्री एलाचार्य महाराज,का निवास स्थान था।

हर रविवार को इन कवि के स्मरणार्थ यहाँ यात्रा होती है। पर्वत पर उनके चरण चिन्ह हैं।

३९४ पोरबन्दर—(काठियावाड़ के पश्चिमी भाग में एक राज्य की राजधानी)

पोरबन्दर को सुदामापुरी भी कहते हैं।

यह श्री कृष्णचन्द्र के सखा सुदामा की नगरी थी।

भारत के भाग्य विधाता राष्ट्र पिता महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी जी की यह जन्म भूमि है (१८६६) ई०)।

श्री कृष्ण जी ने सांदीपन मुनि से उज्जैन में विद्याध्ययन किया था और उनके अन्य सहपाठियों में एक सुदामा भी थे। जब श्री कृष्ण जी मथुरा छोड़ कर द्वारिका में आकर बसे थे, उन दिनों सुदामा बहुत दरिद्रावस्था में थे। उनकी पत्नी ने उन्हें आग्रह करके श्री कृष्ण से मिलने को भेजा और कहा जाता है कि कहीं से माँग कर कुछ मुट्ठी चावल भी भेंट को बाँध दिये। सुदामा द्वारिका पहुँच कर बहुत सकुचाये और श्री कृष्ण का वैभव देख कर पत्नी के दिये हुये चावल छिपा लिये। यह बात श्री कृष्ण से छिप न सकी और खींचा खाँची में चावल जमीन पर बिखर गये। उनका एक एक दाना श्री कृष्णचन्द्र और उनकी रानियों ने बीन बीन कर खाया और सराहा कि ऐसी स्वादिष्ट वस्तु उन्हें जीवन पर्यन्त खाने को न मिली थी सुदामा का श्री कृष्ण ने अनुपम आदर किया। द्वारिका से लौट कर सुदामा का सारा दरिद्र दूर हो गया।

पोरबन्दर नगर समुद्र के तट पर बसा है और मूल द्वारिका से, जहाँ श्री कृष्ण जी पहिले आकर बसे थे, १२ मील पर है। यहाँ के निवासी

जहाज बनाने में बड़े सिद्धहस्त हैं और अपनी नौकाओं पर दूर दूर तक व्यापार करने जाते हैं।

३९५ प्रभास-कूट—(देखिए सम्मेद शिखर)

३९६ प्रभास पट्टन—(देखिये सोमनाथ पट्टन)

३९७ प्रभास क्षेत्र—(देखिए फफोसा)

३९८ प्रमोद वन—(देखिए चित्रकूट)

३९९ प्रवर्षण गिरि—(देखिए आना गन्दी)

४०० प्रह्लादपुरी—(देखिए मुल्तान)

फ

४०१ फफोसा—(संयुक्त प्रान्त के इलाहाबाद जिले में एक गाँव)
इसे पभोसा और पपोसा भी कहते हैं। यहाँ पद्मप्रभु स्वामी (छठे तीर्थङ्कर) के दीक्षा और कैवल्य ज्ञान कल्याणक हुये थे।

यहाँ एक पहाड़ी है जिसको प्रभास क्षेत्र कहते हैं। इस पर ११६ सीढ़ियाँ चढ़ने पर एक प्राचीन जैन मन्दिर मिलता है जिसमें प्रतिमायें हैं। यह स्थान कोसम (प्राचीन कौशाम्बी) से ३ मील पर है। कोसम में पद्म प्रभु स्वामी के गर्भ और जन्म कल्याणक हुए थे। (देखिए कोसम)

४०२ फाजिल नगर—(देखिए पडरौना)

ब

४०३ बँदर पुच्छ—(देखिए यमुनोत्री)

४०४ बकरोर—(बिहार प्रान्त में बोधिगया से आध मील पर एक गाँव)
एक पूर्व जन्म में भगवान बुद्ध यहाँ हस्ती रूप में रहे थे।

ह्वानचाँग ने यहाँ की यात्रा की थी। एक राजा ने एक गन्ध हस्तिनी को पकड़ा था। इससे हस्ती रूप में बुद्ध का जन्म हुआ था। इस स्थान पर एक स्तूप बनवाया गया था।

बकरोर गाँव से मिला हुआ एक टूटा स्तूप मौजूद है जिसका घेरा १५० गज और ऊँचाई १७ गज है। यह १५½ इंच × ३½ इंच की ईंटों से बना है।

४०५ बकेश्वर तीर्थ—(देखिए नागोर)

४०६ वक्सर—(विहार के शाहावाद जिले में एक करवा)

इसके प्राचीन नाम वेदगर्भ पुरी, विश्वामित्र आश्रम, सिद्धाश्रम, व्याघ्रसर और व्याघ्रपुर मिलते हैं।

यह विश्वामित्र ऋषि का आश्रम है।

ताड़का-वन इसी स्थान पर था, और यहीं रामचन्द्र जी ने ताड़का को मारा था।

यहीं राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र जी ने धनुष विद्या सिखलाई थी।

सिद्धाश्रम वामनदेव का जन्मस्थान है। यहीं वामनावतार हुआ था। जब विश्वामित्र जी के यज्ञ में राक्षस उत्पात करने लगे तब वह अयोध्या आकर राम और लक्ष्मण को अपने यज्ञ की रक्षा के लिये राजा दशरथ से माँग ले गये थे। रामचन्द्र जी ने विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा सिद्धाश्रम में की थी और महर्षि ने उनको और लक्ष्मण को धनुष विद्या सिखाई थी। यहीं से विश्वामित्र जी राम और लक्ष्मण को मिथिलापुर ले गये थे जहाँ धनुष यज्ञ में सीता जी के स्वयम्वर में रामचन्द्र जी ने सीता जी को पाया था।

वक्सर में गंगा जी के तट पर चरित्र वन महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ का स्थान है जहाँ अब भी नदी से कट कट के जो भूमि गिरती है उसमें यज्ञ के चिन्ह देख पड़ते हैं। यहां एक मन्दिर में रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी की मूर्तियाँ हैं और नीचे की तह में महर्षि विश्वामित्र हैं। कहा जाता है इसी स्थान पर विश्वामित्र ने राजकुमारों को शस्त्र विद्या सिखाई थी। यहाँ से लगभग एक मील पर ताड़का के मारे जाने का स्थान है। उस स्थान से गंगा जी तक एक नाली सी बनी है। लोग कहते हैं इसी राह से ताड़का का शरीर खींच कर गंगा जी में डाला गया था।

वक्सर के पश्चिम थोरा नदी के तट पर, जहाँ वह गंगा जी से मिली है एक ऊँची जगह है। उसी को वामनावतार का स्थान कहा जाता है। भादों मास में यहां वामन अवतार का मेला लगता है।

पवित्र स्थान होने के कारण गंगा जी के किनारे यहां बहुत से अच्छे घाट और मन्दिर बने हैं।

विश्वामित्र आश्रम—विश्वामित्र जी का आश्रम गया से २५ मील पश्चिमोत्तर देवकुण्डा में भी बताया जाता है। सरस्वती के पश्चिमी तट पर स्थाणु तीर्थ कुरुक्षेत्र में भी इनका निवास रहा था, और कौशिकी (कोशी)

नदी के तट पर भी इन्होंने वास किया था। पर इनका मुख्य निवास स्थान बक्सर ही था।

४०७ बक्सर घाट—(संयुक्त प्रान्त के रायबरेली जिला में एक घाट)
यहाँ भगवान कृष्ण ने बक्सासुर को मारा था।

यह घाट गंगा जी के किनारे पर है। यहाँ बहुत से मेले लगते हैं पर इसमें दो बहुत बड़े हैं—एक कार्तिक पूर्णमासी और दूसरा माघ की अमावास्या को। इनमें हज़ारों लोग गंगा जी में स्नान को आते हैं। कहा जाता है कि यहाँ नागेश्वर नाथ का मन्दिर भी कृष्ण जी का बनवाया हुआ है।

४०८ बखर—(देखिए बसाड़)

४०९ बटद्रवा—(आसाम प्रान्त के नौगाँव ज़िला में एक गाँव)
यहाँ स्वामी शङ्करदेव का जन्म हुआ था।

[स्वामी शङ्करदेव का जन्म बटद्रवा ग्राम में १३७१ शकाब्द में कायस्थ कुल में हुआ था। इनको लोग शङ्कर का अवतार मानते हैं। आप आसामी साहित्य के पिता माने गये हैं। १२० वर्ष की अवस्था में एक वृक्ष के नीचे समाधि लगा कर शंकर देव जी साकेत लोक को पधारे।]

बटद्रवा आज आसाम में हिन्दुओं का एक प्रधान तीर्थ स्थान है।

४१० बटेश्वर—(संयुक्त प्रान्त के आगरा जिले में एक कस्बा)
यह स्थान नौऊखलों में से एक है जहाँ से प्रलय के समय जल निकल कर सारी पृथिवी को डुबो देगा।

इस स्थान पर प्राचीन सूर्य्यपुर या सूरजपुर नगर था। इसे सुरपुर भी कहते थे और कहा जाता है कि भगवान् कृष्ण के नाना शूरसेन का यह बसाया हुआ है।

बटेश्वर आगरा शहर से ३५ मील दक्षिण-पूर्व यमुना नदी के किनारे पर है। कार्तिक पूर्णिमा को यहां का प्रसिद्ध मेला लगता है जो दो सप्ताह तक रहता है और जिसमें लगभग दो लाख आदमी जमा होते हैं, और ५० हजार से ऊपर जानवर, विशेषकर घोड़े बिक्री को आते हैं। मदावर के राजा बदन सिंह ने यहाँ १०० से अधिक शिवमन्दिर बनवाये थे।

बटेश्वर से दो मील उत्तर 'औंधा खेड़ा' है। इस पर कई जैन मन्दिर हैं। इससे आध मील पर एक गढ़ी के चिन्ह हैं। यह गढ़ी और औंधा खेड़ा प्राचीन नगर के स्थान बतलाये जाते हैं। इस खेड़े से एक मील पूर्व और बटेश्वर

से एक मील पूर्वोत्तर 'पुराना खेड़ा' है। नदी के कारण औंघे खेड़े से उजड़ कर प्राचीन नगर यहां बसा था और फिर यहाँ से भी नष्ट हो गया। पुराने खेड़े पर कई हिन्दू मन्दिर हैं।

४११ बड़गाँवाँ—(विहार प्रान्त में राजगृह से ७ मील उत्तर एक गाँव)

यहाँ प्राचीन काल में जगत विख्यात बौद्ध विद्या केन्द्र नालन्दा था।

भगवान बुद्ध ने यहां तीन मास देवताओं के हित के लिए उपदेश दिया था। इसके अतिरिक्त चार मास और भी निवास किया था।

महाराज अशोक ने नालन्दा विहार की स्थापना की थी। द्वितीय ईस्वी सदी के प्रसिद्ध महात्मा नागार्जुन ने यहां विद्याध्ययन किया था।

नालन्दा से चार मील पूर्व-दक्षिण आर्य्य सारि पुत्र, जो भगवान बुद्ध के दाहिने हाथ कहे जाते हैं, का जन्म हुआ था, और डेढ़ मील दक्षिण-पश्चिम आर्य्य मुग्दल (मौग्दलायन) जो भगवान बुद्ध के बाँऐ हाथ कहलाते हैं, का जन्म हुआ था।

परम पूज्य जैन महात्मा महावीर (अन्तिम तीर्थङ्कर) ने यहाँ चौदह चौमास वास किया था।

[संस्कृत ग्रन्थों में महात्मा सारिपुत्र को शारिपुत्र, शरद्वती पुत्र और शालिपुत्र आदि कहा है। इनका पहला नाम उपतिश्य था। उनकी पदवी धर्म सेना पति की थी। 'सूत्र निपात' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि भगवान बुद्ध ने पूछे जाने पर कहा था कि उनके न रहने पर सारिपुत्र ही धर्म चक्र का प्रवर्त्तन और संचालन करेंगे। सारिपुत्र के नाम से बौद्ध ग्रन्थों में अनेक आख्यान लिखे मिलते हैं।

सारिपुत्र के बाद भगवान बुद्ध के द्वितीय शिष्य मौग्दलायन, मोगल्लान या मुग्दल थे। सारिपुत्र और मुग्दल दोनों ही ज्ञानामृत की खोज में अलग अलग चले थे और दोनों ने निश्चय किया था कि यदि एक को अमृत मिला तो वह दूसरे को भी बतलावेगा। सारिपुत्र को भगवान बुद्ध के उपदेशों का पता चला। उन्होंने मुद्गल को सूचना दी और दोनों भगवान के चरणों में साथ-साथ पहुँचे।]

बड़गावाँ जिसे बड़गाँव भी कहते हैं, इस समय एक साधारण ग्राम है। यहां १६०० फीट लम्बे और ४०० फीट चौड़े ईंटों के ढेर उस स्थान को

बता रहे हैं जहां पहिले प्रसिद्ध विद्या क्षेत्र था। उसके आस-पास ऊँचे-ऊँचे टीले, पुरानी धर्मशालाओं और मन्दिरों के चिन्ह हैं।

फाहियान व ह्वानचाङ्ग ने यहाँ की यात्रा की थी और ह्वानचाङ्ग ने पाँच साल रह कर धर्मग्रन्थ पढ़े थे। उन दिनों विद्यालय के प्रधान श्री शीलभद्र थे जिन्होंने १५ मास ह्वानचाँग को योग शास्त्र पढ़ाया था। ह्वानचाङ्ग ने लिखा है कि यहाँ एक ताल था जिसमें नालन्दा नाग एक समय में रहा करता था। आजकल जो करगरिया पोखरा कहलाता है यह वही ताल है। जिस स्थान पर भगवान बुद्ध ने तीन मास देवताओं को शिक्षा दी थी वहां एक विशाल धर्मशाला बनायी गयी थी। उसका उजड़ा खेड़ा इस समय ५३ फीट ऊँचा और ७० फीट लम्बा-चौड़ा है। दूसरे स्थान पर जहाँ बुद्ध भगवान ने चार मास वास किया था, एक भारी विहार बनवा दिया गया था। उसके स्थान पर अब ६० फीट ऊँचा खेड़ा खड़ा है। एक व्यक्ति ने जहाँ भगवान बुद्ध से जीवन-मरण के विषय पर बहस की थी वहाँ एक स्तूप बनवाया गया था। उसका टीला बलनताल के पास इस समय मौजूद है।

जहां आर्य्य मौद्गलायन का जन्म हुआ था वह स्थान इस समय जगदीश पुर कहलाता है और बड़गावाँ से डेढ़ मील दक्षिण-पश्चिम में है। इसका प्राचीन नाम कुलिका था।

आर्य्य सारिपुत्र का जन्म नालन्दा से लगभग ४ मील पर कल्पिनाक के समीप हुआ था।

कन्नौज के सुप्रसिद्ध चक्रवर्ती सम्राट हर्षवर्धन ने १०० गाँव नालन्दा विद्याक्षेत्र के खर्च को लगा रखे थे। बड़े बड़े धनी मानी लोगों ने अन्य जायदादें दे रखी थीं। यह विद्या क्षेत्र सारे संसार में विख्यात था, पश्चिमी संसार के लिए पूर्वकाल में जो रोम (इटली की राजधानी) और एथेन्स (यूनान की राजधानी) थी, वैसा पूर्वी संसार के लिये ७०० ईस्वी तक नालन्दा था।

४१२ बड़वानी—(देखिए चूलगिरि)
४१३ वड़ागाँव—(देखिए बड़गावाँ)
४१४ बदरिया—(देखिए सोरों)
४१५ बद्रिकाश्रम
वा
बद्रीनाथ—(हिमालय पर्वत के [illegible] में एक प्रसिद्ध स्थान)

यहाँ जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी ने व्यास जी के रचे हुए सूत्रों पर भाष्य बनाया था।

यह स्थान पुराणों का मन्द्राचल, नर नारायण आश्रम, महाक्षेत्र और गन्धमादन पर्वत है।

भारतवर्ष के चार प्रसिद्ध धामों में से यह एक है।

जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने बद्रीनाथ की मूर्ति को स्थापित किया था।

श्री वेद व्यास इस स्थान पर पधारे थे और पास ही अपना आश्रम बनाया था। बद्रीनाथ के निकट मनाल नामक स्थान में महर्षि व्यास का आश्रम था और वहीं उन्होंने महाभारत और पुराणों की रचना की थी।

मनु पराशर जी ने यहाँ धर्म की शिक्षा दी थी।

यहाँ नर-नारायण ने तप किया था।

पाण्डव लोग इस स्थान पर आए थे।

नारद जी ने यहाँ तपस्या की थी।

भक्त प्रह्लाद यहाँ पधारे थे।

कृष्ण की आज्ञा से उद्धव यहाँ तप करने आए थे।

राजा ध्रुव ने यहाँ तप किया था और यहीं से उनका स्वर्गवास हुआ था।

बद्रीनारायण से सवा दो मील पर वसुधारा है जहाँ पूर्व काल में अष्ट वसुओं ने तप किया था।

चन्द्रमा ने भी यहीं तप किया था।

वैवस्वत मनु ने बद्रीनाथ में तपस्या की थी।

बद्रिकाश्रम से एक मील पर राजा पुरुरवा ने उर्वशी के साथ विहार किया था।

प्रा० क०—(पराशर स्मृति, पहला अध्याय) ऋषिगण धर्म तत्व को जानने के लिए व्यास जी को आगे करके बद्रिकाश्रम में गए थे। व्यास जी ने ऋषियों की सभा में बैठे हुए महर्षि पराशर की पूजा करके उनसे पूछा कि हे पिता! आप चारों वर्णों के करने योग्य उनका साधारण आचार मुझ से कहिए। ऐसा सुन पराशर जी ने धर्म का निर्णय कहा।

(महा भारत, वन पर्व, १२ वां अध्याय) अर्जुन बोले कि हे कृष्ण! पूर्व जन्म में तुम एक सौ वर्ष तक वायु भक्षण करके ऊर्ध्वबाहु होकर विशाल

बद्रिकाश्रम में एक चरण से खड़े रहे थे। कृष्ण बोले, हम तुम हैं और तुम हमारे रूप हो अर्थात् तुम नर हो और हम नारायण हैं। हम दोनों नर-नारायण ऋषि, समय पाकर जगत में प्राप्त हुए हैं।

(१४१ व १४५ वां अध्याय) युधिष्ठिर बोले ! अब हम लोग उस उत्तम पर्वबत को देखेंगे जहाँ विशाल बद्रिकाश्रम तथा नर-नारायण का स्थान है। लोमस ऋषि ने कहा कि यह महानदी अलकनन्दा बद्रिकाश्रम से आती है। इसी के जल को शिव ने अपने शिर पर धारण किया है। यही नदी गङ्गाद्वार में गई है। जिस समय पाण्डवलोग गन्धमादन पर्वत पर पहुंचे उस समय महा वर्षा और आँधी आई। दूर जाने पर उन्होंने कैलास पर्वत केनीचे नर और नारायण के आश्रम को देखा और वे उसी स्थान पर रहने लगे।

(१८७ वां अध्याय) सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु ने बद्रिकाश्रम में जाकर ऊर्ध्व बाहु होकर दस सहस्र वर्ष तक घोर तप किया।

(शान्ति पर्व, ३४ वां अध्याय) नर और नारायण ने बद्रिकाश्रम का अवलम्बन करके माया में शरीर से निवास करते हुए तपस्या की थी।

(३४४ वां अध्याय) नारद ने नर-नारायण के आश्रम में देव प्रमाण से सहस्र वर्ष तक वास करके अनेक प्रकार से नर-नारायण मंत्र का विधि पूर्वक जप किया और वे नर-नारायण की सब प्रकार से पूजा करते हुए उनके आश्रम में निवास करने लगे।

(वाराह पुराण, ४८ वां अध्याय) काशी का विशाल नामक राजा शत्रुओं से पराजित होकर बद्रिकाश्रम में जाकर गन्धमादन पर्वत की कन्दराओं में तप करने लगा।

(देखो भागवत, ८ वां स्कन्ध, पहला अध्याय) नारद जी पृथिवी पर्य्यटन करते हुए नर नारायण आश्रम में पहुँचे और टिक कर नारायण से प्रश्न करने लगे।

(आदिब्रह्मपुराण, ८८ वां अध्याय) कृष्ण जी बोले कि हे उद्धव ! तुम गन्धमादन पर्वत पर नर नारायण के स्थान पवित्र बद्रिकाश्रम में तप की सिद्धि के लिए जाओ। कृष्ण की आज्ञा से उद्धव वहाँ गए।

(श्रीमद्भागवत, १२ वां अध्याय) राजा ध्रुव ३६ हज़ार वर्ष राज्य करने के उपरान्त अपने पुत्र को राज तिलक देकर बद्रिकाश्रम को चले गए और

वहाँ बहुत समय तक भगवान के स्वरूप का ध्यान करके विमान पर चढ़ ध्रुव लोक में चले गए।

(गरुड़ पुराण, पूर्वार्द्ध, ८१ वां अध्याय) नर नारायण का स्थान बद्रिकाश्रम भक्ति मुक्ति का देने वाला है।

(स्कन्दपुराण, केदारखण्ड, प्रथम भाग ५७ वाँ अध्याय) गन्धमादन पर्वत पर बद्रिकाश्रम में कुबेरादिक शिलाओं और नाना तीर्थों से सुशोभित नर नारायण का पवित्र आश्रम है।

(५८ वां अध्याय) बद्रीनाथ के धाम से पश्चिम आध कोस पर उर्वशी कुण्ड है। उसी स्थान पर राजा पुरुरवा ने पाँच वर्ष उर्वशी के साथ रमण करके पुत्रों को उत्पन्न किया था।

बद्रीनाथ के वाम भाग में सब पापों का नाश करने वाला वसुधारा तीर्थ है। स्नान करके धर्म शिला पर बैठकर वहाँ अष्टाक्षर मंत्र से आठ लाख जप करने से विष्णु के समान रूप मिलता है। वहाँ सोमतीर्थ है जहाँ चन्द्रमा ने तप कर के सुन्दर रुप पाया।

(६२ वां अध्याय) गङ्गाद्वार से ३० योजन पूर्व भोग और मोक्ष का देने वाला महाक्षेत्र बद्रिकाश्रम है। मनुष्य एक बार बद्रीनाथ के दर्शन करने से संसार में फिर जन्म नहीं लेता। बद्रीनाथ का नैवेद्य भोजन करने से अभक्ष भक्षण का दोष छूट जाता है।

(वामन पुराण, ७९ वां अध्याय) प्रह्लाद जी कुब्जाभ्रक तीर्थ (हृषीकेश) में गए। वहाँ से वे बद्रिकाश्रम तीर्थ चले गए।

चे० द०—अलकनन्दा के दाहिने किनारे पर टेहरी गढ़वाल के राज्य में बद्रीनाथ की बस्ती है। बद्रीनाथ की सबसे ऊँची चोटी समुद्र के जल से २३,२०० फीट ऊंची है। पूर्व और पश्चिम वाले पहाड़ों को लोग जय और विजय कहते हैं। पर्वतों के बीच में समुद्र से १०,४०० फीट की ऊंचाई पर उत्तर-दक्षिण लम्बा दलुआ मैदान है जिसमें अलकनन्दा बहती है और बद्रीनाथ की पुरी है। साधारण लोग ३ या ५ अथवा ७ रात्रि वहाँ वास करते हैं परन्तु गरीब लोग जाड़े के भय से उसी दिन या एक रात्रि निवास करके चले आते हैं।'

बद्रीनाथ जी का मन्दिर अलकनन्दा के दाहिने किनारे पर पत्थर से बना हुआ ४५ फीट ऊंचा है। मन्दिर के भीतर एक हाथ ऊंची बद्री नारायण की

द्विभुजी श्यामल मूर्त्ति विद्यमान है। बहुमूल्य वस्त्राभूषण और विचित्र मुकुट से सुशोभित वह ध्यान में मग्न बैठी है। ललाट पर हीरा लगा है और ऊपर सोने का छत्र है। पास ही लक्ष्मीजी, नर-नारायण, नारद, गणेश, सोने के कुबेर, गरुड़ और चाँदी के उद्धव हैं। कहा जाता है कि पहले बद्रीनारायण-गुप्त थे। सन् ईस्वी की नवीं सदी में श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने इन की मूर्त्ति को नदी में पाया और मन्दिर बनाकर स्थापित किया। भगवान बद्री-नारायण जी को प्रातः समय कुछ जलपान और शाम को कच्ची रसोई का भोग लगता है। प्रति दिन तीन मन का भोग लगता है, जिसको यात्री लोग जाति भेद के विचार विना, जगन्नाथपुरी के प्रसाद के समान,भोजन करते हैं। छः महीने जब जाड़े में पट बन्द रहते हैं तब बद्रीनारायण का पूजन जोशी मठ में होता है।

बद्रिकाश्रम में ऋषि गङ्गा, कूर्मधारा, प्रहलाद धारा, तप्त कुण्ड और नारद कुण्ड इन पाँच को पञ्चतीर्थ कहते हैं।

(१) ऋषि गङ्गा-बद्रीनारायण के मन्दिर से चौथाई मील पर और बद्रीनाथ की बस्ती से थोड़े ही दक्षिण अलकनन्दा में मिली है।

(२) बद्रीनाथ के मन्दिर से कुछ दक्षिण एक दीवार में कूर्म का मुख बना है जिससे झरने का पानी एक हौज में गिरता है। इसे कूर्म धारा कहते हैं।

(३) कूर्मधारा से उत्तर एक चबूतरे के नीचे एक नल द्वारा एक हौज में झरने से गर्म जल गिरता है जिस को प्रहलाद धारा कहते हैं।

(४) बद्रीनाथ के मन्दिर के सामने ६५ सीढ़ियों के नीचे अलकनन्दा के दाहिने किनारे पर खुले हुए मकान में पन्द्रह-सोलह हाथ लम्बा और बारह-तेरह हाथ चौड़ा तप्त कुण्ड है। कुण्ड में ढाई हाथ ऊँचा गर्म जल रहता है। यात्रियों को इस बर्फीले देश में तप्त कुण्ड के गर्म जल में स्नान करते समय बड़ा सुख मिलता है।

(५) तप्तकुण्ड के पास पूर्वोत्तर के कोने पर अलकनन्दा में नारदशिला नामक पत्थर का एक बड़ा ढोंका है जिसके नीचे अलकनन्दा का पानी सङ्कीर्ण गुफा से गिरता है। इसको नारद कुण्ड कहते हैं।

बद्रिकाश्रम में नारदशिला, वाराहशिला, मार्कण्डेयशिला, नृसिंहशिला और गरुड़ शिला प्रसिद्ध है। वाराहशिला नारदशिला से पूर्व अलकानन्दा में

है, और मार्कण्डेयशिला तथा नृसिंहशिला एक ही जगह नारदशिला से दक्षिण अलकनन्दा में हैं। गरुड़शिला तप्तकुण्ड से पश्चिम एक कोठरी में है। ये पाँचों शिलाएँ पत्थर के बड़े बड़े ढोंके हैं।

बद्रीनाथ के मन्दिर से लगभग ४०० गज उत्तर अलकनन्दा के दाहिने किनारे पर ब्रह्म कपाली चट्टान है जिस पर बैठकर यात्रीगण पितरों को पिण्डदान करते हैं।

बद्रीनाथ से सवा दो मील उत्तर वसुधारा तीर्थ है। आषाढ़ और श्रावण के महीनों में बर्फ कम होने पर कोई-कोई यात्री वसुधारा में स्नान करने को जाते हैं। वहाँ पूर्वकाल में अष्ट वसुओं ने तप किया था। वहाँ ऊँचे पहाड़ से वसुधारा नामक बड़ी धारा गिरती है। वसुधारा के आगे बर्फीला पर्वत है।

बद्रीनारायण के मन्दिर का पट ज्येष्ठ की संक्रान्ति से दो चार दिन पहले शुभ सायत में खुलता है और अगहन की संक्रान्ति के कुछ दिन पीछे शुभ सायत में बन्द हो जाता है। जाड़े के दिनों में पाण्डुकेश्वर से उत्तर कोई नहीं रहता। बद्रीनाथ का पुजारी सुयोग्य दक्षिणी नम्बोरी ब्राह्मण बनाया जाता है जिसको रावल कहते हैं। रावल विवाह नहीं करता परन्तु पाण्डुकेश्वर, जोशीमठ और टेहरी आदि पहाड़ी बस्तियों का कोई कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय अपनी पुत्री को बद्रीनाथ की पूजा चढ़ाता है। वहाँ की परम्परा के अनुसार वही लड़की रावल की स्त्री होती है। रावल अपनी स्त्री का बनाया हुआ भोजन नहीं करता। ब्राह्मण स्त्री से जो सन्तान होती है वह ब्राह्मण और क्षत्रिय स्त्री से जो सन्तान होती है वह क्षत्रिय कहलाती है। रावल के मरने पर रावल के पुत्र उत्तराधिकारी नहीं होते किन्तु नया रावल दक्षिण से बुलाया जाता है।

बद्रीनाथ की आमदनी लगभग पचास हज़ार रुपया सालाना है। आय और व्यय के प्रबन्ध के लिए अब सरकारी इन्तिजाम है। बद्रीनाथ के सब पण्डे देव प्रयाग के रहने वाले हैं। ये लोग सुफल करने के समय अपने यात्री के दोनों हाथों को फूलों की माला से बाँध देते हैं और जितनी अधिक दक्षिणा कबूल करवा सकते हैं कबूल करवा कर तब यात्री को फूल माला के बन्धन से मुक्त करते हैं।

बद्रीनारायण में कितनी ही धर्मशालाएँ और ऐसे घर बने हैं जिनमें यात्री लोग टिकते हैं। कई रजवाड़ों और साहूकारों के सदाव्रत बराबर जारी रहते हैं।

४१६ बनारस—(संयुक्तप्रान्त के एक ज़िले का सदर स्थान)

बनारस के प्राचीन नाम काशी, अविमुक्तक्षेत्र, पुष्पवती, आनन्दवन, रुद्रक्षेत्र, शिवपुरी, महास्मशान और वाराणसी हैं।

इसे राजा देवदास (रिपुंजय) ने बसाया था जिनका जन्म स्वायम्भुव मन्वन्तर में मनु के कुल में हुआ था। पौराणिक लेख है कि राजा देवदास पर विजय पाने को महाशिव ने सूर्य्य, ब्रह्मा, गणेश और ६४ योगनियों व विष्णु को काशी में भेजा था।

ब्रह्मा ने काशी में 'संगमेश्वर' और 'ब्रह्मेश्वर' शिवलिङ्ग स्थापित किए थे, तथा 'कपिलाह्रद' नामक तीर्थ की रचना और दश अश्वमेध यज्ञ किए थे।

विष्णु ने गङ्गा और वरुणा के सङ्गम पर स्नान किया था और वह स्थान 'पदोदक' तीर्थ कहलाया। उन्होंने यहाँ 'पुष्करिणी' को खोदा था।

विष्णु के तप से प्रसन्न होकर शिवजी काशी में प्रकट हुए और उसे अपनी राजधानी बनाया। गिरजा भी काशी में रहगईं। शिवजी के ज्योतिर्लिङ्गों में से ज्योतिर्लिङ्ग 'विश्वनाथ' यहाँ है।

दुर्गा ने काशी को अपना निवास स्थान बनाया।

भैरव ने ब्रह्मा का पाँचवां शिर काटने की हत्या से काशी में मुक्ति पाई थी।

काशी में यक्षराज के पुत्र हरिकेश ने तप किया था जिस के प्रभाव से उन्हें 'दण्डपाणि' का पद मिला।

गजासुर को शिव ने काशी में मारा था।

ऋषि बाल्मीक ने यहाँ तप किया था।

राजा हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल के हाथ यहां अपने को बेचा था।

जैगषिव्य मुनि ने यहाँ से परम गति पाई थी।

बाबा गोरखनाथ यहाँ पधारे थे।

श्री आदिशङ्कराचार्य ने काशी में निवास किया था।

श्री वल्लभाचार्य काशी में रहते थे और यहीं उन्होंने शरीर छोड़ा था।

इस नगर में सुपार्श्वनाथ (सातवें तीर्थङ्कर) के गर्भ, जन्म, दीक्षा व कैवल्य ज्ञान कल्याणक हुए थे, तथा श्री पार्श्वनाथ तेईसवें (तीर्थङ्कर) के गर्भ और जन्म कल्याणक हुए थे।

स्वामी रामानन्द जी यहाँ वास करते थे।

कबीर दास का जन्म काशी में हुआ था, यहाँ उन्होंने निवास किया था और श्री गुरु रामानन्द जी से दीक्षा ली थी।

हरिजन भक्त रैदास का जन्म काशी में हुआ था।

गोस्वामी तुलसीदास यहाँ निवास करते थे और यहीं से परम धाम को गए थे। 'रामचरित मानस' उन्होंने विशेष कर यहीं लिखा था।

स्वामी भास्करानन्द का निवास स्थान काशी था।

भारतवर्ष के सब महात्मा, आचार्य और सन्त सदा से काशी के दर्शनों को आते रहे हैं और यह स्थान संस्कृत विद्या का मुख्य स्थल और संसार में सनातन धर्म्म का केन्द्र है। राजा राम मोहन राय ने भी यहां चार साल संस्कृत का अध्ययन किया था।

यहाँ से ७ मील उत्तर में सारनाथ है जहाँ से भगवान बुद्ध ने बौद्ध मत के प्रचार का आरम्भ किया था। (देखिए सारनाथ)

काशी से थोड़ी दूर आगगङ्गा के दक्षिण तट पर रामगढ़ गाँव है जहाँ बाबा किनाराम अघोरी का जन्म हुआ था और वह निवास करते थे।

काशी नौ ऊखलों में से एक है, जहाँ से प्रलय के समय जल निकल कर सारी पृथिवी को डुबो देगा।

राधा-स्वामियों के तीसरे गुरु 'महाराज साहब' पण्डित ब्रह्म शङ्कर मिश्र ने बनारस में जन्म लिया था और बनारस में ही शरीर छोड़ा था।

काशी में देवी एनी बेसेन्ट और महात्मा जद्दू कृष्णमूर्ति ने निवास किया है और यह स्थान भारतवर्ष की थियासाफ़िकल सोसाइटी का केन्द्र है।

प्रा० क०—(महाभारत, अनुशासन पर्व ३० वां अध्याय) काशीराज्य में हर्यश्व नामक एक राजा था। वह वीतहव्य के वंशधरों के हाथ से गङ्गा-यमुना के बीच युद्ध में मारा गया। अनन्तर हर्यश्व का पुत्र सुदेव उस राज्य पर अभिषिक्त हुआ। वीतहव्य के वंशवालों ने आकर उसे भी पराजित किया, तब सुदेव का पुत्र दिवोदास उस राज्य पर अभिषिक्त हुआ। महा तेजस्वी दिवोदास ने हैहय वंशियों के बल को जानकर इन्द्र की आज्ञानुसार गङ्गा के उत्तर तट के निकट और गोमती के दक्षिण तट पर वाराणसी पुरी बसाई। राजा दिवोदास वाराणसी में रहने लगा। तब हैहयगण ने फिर आकर उस पर आक्रमण किया। राजा दिवोदा० ने बहुत दिनों तक संग्राम करने के पश्चात् अनेक वाहनों के मारे जाने पर स्वयम् दीनता अवलम्बन की और पुरी परित्याग करके बृहस्पति के ज्येष्ठ पुत्र भरद्वाज के आश्रम में जाकर उनके शरणागत हुआ। भरद्वाज ऋषि ने उसके लिए पुत्र कामना से यज्ञ किया, जिसके प्रभाव से राजा को प्रतर्दन नामक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ।

(आदि ब्रह्म पुराण, ११ वाँ अध्याय) जब दिवोदास काशी में राज्य करता था, उस समय शिवजी पार्वती की प्रीति के निमित्त हिमालय के समीप रहने लगे। पार्वती की माता मेना ने कहा कि हे पुत्री! तेरे पति महादेव सब काल में दरिद्री बने रहते हैं, उनमें कुछ शील नहीं है। यह वचन सुन पार्वती क्रोध कर शिव से बोलीं कि मैं इस जगह नहीं रहूँगी, जहाँ आप का स्थान है, वहाँ मुझको ले चलिए। तब महादेवने तीनों लोक में सिद्धक्षेत्र काशीपुरी में बसने के लिए विचारा परन्तु उस समय राजा दिवोदास काशी में राज्य करता था। शिव जी निकुम्भ पार्षद से बोले कि हे राक्षस! तू अभी जाकर कोमल उपाय से काशीपुरी को शून्य बना दे। निकुम्भ ने काशीपुरी में कुण्ड नामक नापित से स्वप्न में कहा कि तू मेरा स्थान बना दे, मैं तेरा कल्याण करूँगा। तब नापित राजा के द्वार पर निकुम्भ की मूर्ति स्थापित कर नित्य पूजा करने लगा। निकुम्भ पार्षद पूजा को पाकर काशी वासियों को पुत्र, द्रव्य और आयु इत्यादि देने लगा। परन्तु राजा की रानी को एक पुत्र माँगने पर उसने वरदान नहीं दिया। इससे राजा ने क्रोध में आकर निकुम्भ के स्थान का नाश कर दिया। तब निकुम्भ ने राजा को शाप दिया कि विना अपराध तूने मेरा स्थान गिरा दिया है, इसलिए तेरी पुरी आप ही आप शून्य हो जायगी। इसी शाप से काशी शून्य हो गई। (राजा गोमती के तीर जा बसा।) तब महादेव पार्वती के सहित काशी में अपना स्थान बनाकर रहने लगे।

दिवोदास के राज्य के समय काशी शून्य हो गई थी क्योंकि निकुम्भ ने काशी को शाप दिया था कि एक हजार वर्ष तक यह शून्य रहेगी।

(शिवपुराण-१ खण्ड-चौथा अध्याय) सदाशिव ने उमा के साथ विहार करने के लिए एक लोक बनाया। उस स्थान को किसी समय वे नहीं छोड़ते थे इसी कारण उसको अविमुक्त क्षेत्र कहते हैं। वह स्थान सम्पूर्ण सृष्टि के जीवों को आनन्द देने वाला है। इसीलिए उसका नाम आनन्दवन है। और यह स्थान सिद्ध-रूप, तेज स्वरूप और अद्वितीय है। इसी से उसका नाम काशी रक्खा गया।

(२ खण्ड १७ वाँ अध्याय) सम्पूर्ण तीर्थों में से ७ पुरियों को बहुत बड़ा कहा है, उनमें से काशी की बड़ाई सर्वोपरि है।

(६ वाँ खण्ड-पाँचवाँ अध्याय) स्वायम्भुव मन्वन्तर में मनु के कुल में राजा रिपुंजय (दिवोदास) हुआ। उसने काशी में तप करके ब्रह्मा से यह वरदान माँग लिया कि देवता आकाश में स्थित हों और नागादि पाताल

में रहकर फिर पृथिवी में न आवें। इस वृत्तान्त को सुनकर शिवजी भी अपना लिङ्ग काशी में स्थित कर अपने गणों सहित मन्दराचल पर चले गए। इसी लिङ्ग का नाम 'अविमुक्त' हुआ जो काशी में वर्तमान है। (यही कथा काशी खण्ड के ३६ वें अध्याय में है।) सब देवताओं के पृथिवी छोड़कर चले जाने पर दिवोदास काशी में राज्य करने लगा।

(७ वाँ अध्याय) शिवजी को काशी बिना नहीं रहा गया इसलिए कुछ दिनों के पश्चात् उन्होंने ६४ योगिनियों को दिवोदास से काशी छुड़ाने के लिए भेजा। जब काशी में योगिनियों की युक्ति नहीं चली तब वे मणिकर्णिका के आगे स्थित हो गई।

(८ वाँ अध्याय) फिर शिवजी ने सूर्य्य को काशी में भेजा। एक वर्ष बीत गया। सूर्य्य की भी कुछ न चली तब वे अपने १२ शरीर धारण कर काशी में स्थित हुए, जिनके नाम ये हैं—

१-लोलार्क, २-उत्तरार्क, ३-साम्बादित्य, ४-द्रौपदादित्य, ५-मयूखादित्य, ६-खखोलकादित्य, ७-अरुणादित्य, ८-वृच्छादित्य, ९-केशवादित्य, १०-विमलादित्य, ११-कनकादित्य, १२-यमादित्य।

शिवजी ने फिर ब्रह्मा को काशी में भेजा। ब्रह्मा दश अश्वमेध यज्ञ करके काशी में रह गए।

(११ वाँ अध्याय) शिवजी की आज्ञा से गणपति काशी में गए। (१२ वाँ अध्याय) गणपति का विलम्ब देख शिवजी ने विष्णु को काशी में भेजा।

(१४ वाँ अध्याय) गणपति के कहने के अनुसार १८ वें दिन विष्णु ने ब्राह्मण का रूप धर राजा दिवोदास के गेह पर जाकर उसे ज्ञान का उपदेश देकरराज्य से विमुख कर दिया और गरुड़ को शिव के समीप भेजा।

(१५ वाँ अध्याय) राजा दिवोदास ने एक बहुत सुन्दर शिवमन्दिर बनवाकर 'नरेश्वर' के नाम से शिवलिङ्ग स्थापित कियाऔर विमान पर बैठकर शिवपुरी को प्रस्थान किया। जिस स्थान से राजा शिवपुरी को गया, वह स्थान भूपालश्री के नाम से बड़ा तीर्थ हुआ और लिङ्ग 'दिवोदासेश्वर' नाम से प्रसिद्ध है। उसको पूजा करने से फिर आवागमन का भय नहीं रहता।

(८ वाँ खण्ड-३२ वाँ अध्याय) प्रलय के उपरान्त शिवजी सब सृष्टि को अपने में लीन करके अकेले थे। तब उनका कोई वर्ण और रूप न था। उसी

निर्गुण ब्रह्म ने सगुण रूप धरने का विचार किया और तुरन्त पाँच भौतिक शरीर धर सगुण रूप होकर शिव 'हर' के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके शंभु, महेश और बहुत से नाम हुए। फिर उस सगुण ब्रह्म ने अपने शरीर से शक्ति को उत्पन्न किया और एक से दो स्वरूप हो गए। उन्हीं शिव और शक्ति ने अपनी लीला के निमित्त पाँच कोस का एक क्षेत्र निर्माण किया जिसको आनन्दवन, काशी, वाराणसी, अविमुक्तक्षेत्र, रुद्रक्षेत्र, महाश्मशान आदि बहुत नामों से मनुष्य जानते हैं। शिव और शक्ति ने उस स्थान में बहुत विहार किया।

(३३ वाँ अध्याय) अनन्तर शिवने अपने लिङ्ग अविमुक्त अर्थात् विश्वनाथ को उसी काशी में स्थापित कर दिया।

(लिङ्ग पुराण, पूर्वार्द्ध-६१ वाँ अध्याय) अविमुक्त क्षेत्र काशी में जाकर किसी प्रकार से देह छोड़ने वाला पुरुष निःसन्देह शिवसायुज्य को प्राप्त होता है।

(६२ वाँ अध्याय) पूर्व काल में शिवजी विवाह करने के उपरान्त पार्वती और नन्दी आदि गणों को साथ लेकर, हिमालय के शिखर से चले और अविमुक्त क्षेत्र में आकर अविमुक्तेश्वर लिङ्ग को देख वहाँ ही उन्होंने निवास किया। शिव जी बोले कि हे पार्वती! देखो हमारा यह आनन्दवन शोभित हो रहा है। यह वाराणसी नामक हमारा गुप्त क्षेत्र सब जीवों को मुक्ति देने वाला है। हमने कभी इस क्षेत्र का त्याग नहीं किया और न करेंगे, इससे इसका नाम अविमुक्त क्षेत्र है। यहाँ किसी समय भी जीव शरीर को त्यागे वह मोक्ष ही पाता है। हमारा भक्त जैगीषव्य मुनि इसी क्षेत्र के माहात्म्य से परम सिद्धि को प्राप्त हुआ।

(पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड १४ वाँ अध्याय) वरुणा और अस्सी नदियों के मध्य में अविमुक्त नामक स्थान है। काशीपुरी के निकट गङ्गा उत्तर वाहिनी और सरस्वती पश्चिम वाहिनी है। एक वृषभ और एक गाय जो वहाँ छोड़ देता है वह परमपद को जाता है।

(स्वर्गखण्ड, ५७ वाँ अध्याय) विराट पुरुष के ७ धातु और ७ पुरियाँ हैं, जिनमें अस्सी-वरुणा के बीच में काशी है, जिसमें योग दृष्टि वाले योगी लोग रहते हैं।

(गरुड़ पुराण, प्रेतकल्प, सत्ताईसवाँ अध्याय) अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काँची, अवन्तिका और द्वारावती, ये सात पुरी मोक्ष देने वाली हैं।

(कूर्म पुराण, ब्राह्मी संहिता, ३० वाँ अध्याय) शिवजी ने कहा कि हमारी पुरी वाराणसी सब तीर्थों में उत्तम है। हम काल रूप धर कर यहाँ रह, सब जगत का संहार करते हैं। चारों वर्ण के मनुष्य, वर्णशङ्कर, स्त्री, म्लेच्छ, कीट, मृग, पक्षी और अन्य सकल जन्तु जिनकी मृत्यु काशी में होती है, वे वृषभ पर चढ़के शिवपुरी में जाते हैं। काशी में मृत्यु होने पर किसी पापी को नरक में नहीं जाना पड़ता।

(पातालखण्ड, ५१ वाँ अध्याय) चन्द्र ग्रहण में काशी का स्नान मोक्ष दायक होता है।

(अग्नि पुराण, ११२वाँ अध्याय) महादेवजी ने पार्वती से कहा कि वाराणसी महातीर्थ है, जो यहाँ के बसने वालों को मुक्ति प्रदान करती है। यहाँ स्नान, जप, होम, श्राद्ध, दान, निवास और मरण इन सबों ही से मुक्ति प्राप्त होती है।

(महाभारत, वनपर्व, ८४ वाँ अध्याय) तीर्थ सेवी पुरुष को काशीपुरी में जाकर वहाँ शिवकी पूजा करनी चाहिए। कपिल कुण्ड में स्नान करने से राजसूय यज्ञ का फल होता है। वहाँ से अविमुक्तेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए। उन देवाधिदेव के दर्शन करते ही पुरुष ब्रह्म हत्या से छूट जाता है। वहाँ प्राण छोड़ने से मोक्ष होता है।

(भीष्म पर्व, २४ वां अध्याय) काशीराज-कुरुक्षेत्र के युद्ध में पाण्डवों की ओर थे। (कर्णपर्व, ५ वां अध्याय) वसुदान के पुत्र ने काशीराज को मारा।

(लिङ्ग पुराण, ९२ वां अध्याय) शिवजी ने कहा कि काशी में ब्रह्माजी ने गौवों के पवित्र दुग्ध से कपिलाह्रद नामक तीर्थ रचा है और वृषभध्वज रूप से हमारा स्थापन किया है।

(शिवपुराण, ६ वां खण्ड, १७ वां अध्याय) जिस समय शिवजी पार्वती के सहित मन्दराचल से काशी में पहुँचे, उसी समय गोलोक से सुन्दर, सुमना, शिला, सुरसी और कपिला ये पाँच गौएँ आकर उनके सम्मुख खड़ी हुईं। शिव जी ने प्रसन्नता से उनकी ओर देखा। इससे गौवों के थनों में से दूध टपक कर एक कुण्ड होगया, जो कपिलाह्रद नाम से प्रसिद्ध है। शिवजी ने कहा कि जो मनुष्य इस ह्रद में तर्पण और श्राद्धादिक कर्म करेगा उसको गया से भी अधिक फल प्राप्त होगा।

(५ वां खण्ड, ५५ वां अध्याय) महिषासुर के पुत्र गजासुर ने ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त करके पृथिवी को जीत लिया परन्तु जब काशी में आकर उसने उपद्रव किया तब शिवजी ने गजासुर के शिर को त्रिशूल से छेद दिया। उस समय वह पवित्र होकर शिव से विनय करने लगा। शिवजी ने गजासुर को वरदान दिया कि तेरा यह शरीर हमारा लिङ्ग होकर कृतवासेश्वर के नाम से विख्यात हो, जिस के केवल दर्शन से ही मोक्ष प्राप्त होगी। यह कहकर शिवजी ने गजासुर को परम गति दी।

(६ वां खण्ड, २१ वां अध्याय) राजादिवोदास के काशी छोड़ने पर जब शिवजी काशी में पहुँचे तब हिमांचल गिरिजा को देखने और उसको धन देने के निमित्त बहुत से मुक्ता, मूँगा और हीरा आदि धन अपने साथ लेकर काशी में आए परन्तु उन्होने काशी का ऐश्वर्य देखा तब अति लज्जित हुए। शिव से भेंट नहीं की और रात भर में एक शिवालय बनवाकर चन्द्रकान्ति मणि का शिवलिङ्ग उसमें स्थापित किया। जो कुछ धन द्रव्य शिवालय बनवाने से रह गया था, वह इधर उधर फेंक कर वे गृह चले गए। हिमाचल ने जो रत्न फेंक दिए थे, वे अपने आप इकट्ठे होकर एक शिवलिङ्ग बन गए।

(३२ वां अध्याय) एक दिन शिवजी ने संसार के लाभ के निमित्त यह समझा कि ब्रह्मा ने हमारी आज्ञा से सृष्टि उत्पन्न की तो सब ब्रह्माण्ड के जीव अपने अपने कर्मों में बधे रहेंगे, वे हमारे रूप को क्यों कर जान सकेंगे, ऐसा विचार कर शिव जी ने पाँच कोस तक काशी को जो अपने त्रिशूल पर उठा रक्खा था धरती में छोड़ दिया और अपने लिङ्ग अविमुक्त अर्थात् विश्वनाथ को भी काशी मे स्थापित कर दिया और कहा कि काशी प्रलय में भी नष्ट न होगी।

व० द०—काशी म इतने पौराणिक स्थान हैं कि वर्तमान स्थानों का पुराण से सम्बन्ध जानने के लिए वर्तमान स्थान व पौराणिक दोनों का, एक ही साथ लिखना सुविधाजनक है। इससे यही किया गया है।

बनारस शहर गङ्गाजी के बाएँ किनारे पर वरुणा असी के बीच बसा है। वरुणा नदी इलाहाबाद के उत्तर में निकली है और १०० मील बहकर बनारस में गङ्गाजी से मिल गई है। यह नदी बनारस के पूर्वोत्तर में बहती है। और अस्सी जो बहुत छोटी नदी है नगर के दक्षिण पश्चिम म बहती हुई गङ्गाजी से मिल जाती है।

भारतवर्ष के पुराने शहरों में बनारस सब से उत्तम और सुन्दर है।

पुराणों में लिखे हुए, कितने ही शिव लिङ्ग, देवमूर्तियाँ, देवमन्दिर और कुण्ड लुप्त होगए हैं, कितने नए स्थापित हुए और बने हैं तथा कितने ही स्थान बदल गए हैं। मुसलमानी राज्य के समय बहुत से पुराने मन्दिर तोड़ दिए गए थे। पौराणिक स्थानों का विवरण निम्नलिखित है।

१—वरुणा-सङ्गमघाट—यहाँ वरुणा नदी पश्चिम से आकर गङ्गा नदी में मिल गई है जिसके तट में सङ्गम से पूर्व (अर्थात् वरुणा के बाएँ) 'वशिष्ठेश्वर' अृत्त्वीश्वर शिव हैं। यह घाट काशो के अति पवित्र ५ घाटों में से एक है। दूसरे चार पंचगङ्गा, मणिकर्णिका, दशाश्वमेध और अस्सी सङ्गम घाट है।

वरुणा सङ्गम के पास विष्णु 'पादोदक' तीर्थ और 'श्वेतद्वीप' तीर्थ हैं। भादों सुदी १२ को वरुणासङ्गम पर स्नान और दर्शन की भीड़ होती है और महावारुणी के समय भी यहाँ भीड़ होती है।

सङ्गम की ऊंची भूमि पर सीढ़ियों के सिरे पर आदिकेशव का पत्थर का शिखरदार मन्दिर और जगमोहन है। आदिकेशव की श्याम रङ्ग की सुन्दर चतुर्भुजमूर्ति दो हाथ लम्बी विराजमान है। काशी के द्वादश आदित्यों में से मण्डलाकार केशवादित्य हैं।

आदिकेशव के मन्दिर से आगे सङ्गमेश्वर का, जो काशी के ४२ लिङ्गों में से एक हैं, शिखरदार मन्दिर है।

(लिंग-पुराण, ५२ वां अध्याय) वरुणा और गङ्गा नदियों के सङ्गम पर ब्रह्मा जी ने सङ्गमेश्वर नामक लिङ्ग स्थापन किया।

(शिवपुराण, ६ वां खण्ड, १२ वां अध्याय) शिवजी ने राजा दिवोदास को काशी से अलग करने के लिए विष्णु को मन्दाराचल से काशी में भेजा। विष्णु ने पहले गङ्गा और वरुणा के सङ्गम पर जाकर और हाथ पाँव धोकर सचैल स्नान किया। उसी दिन से वह स्थान 'पादोदक' तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। विष्णु ने उस स्थान पर अपने स्वरूप को पूजा, वही मूर्ति आदि केशव नाम से प्रसिद्ध है। (१३ वां अध्याय) विष्णु अपने पूर्ण स्वरूप से केशवी रूप धर वहां स्थित हुए।

२—पंच गङ्गा घाट—यह घाट काशी के पाँच अति पवित्र घाटों में से एक है, यहाँ नदियाँ गुप्त रह कर गङ्गा में मिली हैं। इसी से इस घाट का नाम पंच गङ्गा है। पंच गङ्गा में विष्णु कांची तीर्थ और बिन्दु तीर्थ हैं।

लगभग ३०० वर्ष हुए अम्बेर (जयपुर) के राजा मानसिंह ने इस घाट को पत्थर से बनवाया था। घाट के कोने के पास पत्थर का एक दीप शिखर है, जिस पर लगभग एक हजार दीप रखने के लिए अलग अलग स्थान बने हैं, जिन पर उत्सव के समय दीप जलाए जाते हैं। कार्तिक भर पंचगङ्गा घाट पर कार्तिक स्नान की भीड़ रहती है।

(स्कन्द पुराण, काशी खण्ड, ५९ वां अध्याय) प्रथम ही धर्मनद का पुण्य धूतपापा में मिल गया था। किरणा, धूतपापा, सरस्वती, गङ्गा और यमुना इन पाँचों के योग होने से पञ्चनद जिसको पंच गंङ्गा कहते हैं, विख्यात हुआ है। इसका नाम सतयुग में धर्मनद, त्रेता में धूतपापा, द्वापर में बिन्दु तीर्थ था और कलियुग में पंचनद है।

२—मणिकर्णिका घाट—यह घाट काशी के अति पवित्र पाँच घाटों में से है। दूसरे चारों से भी यह अधिक पवित्र और विख्यात है। इसके ऊपर मणिकर्णिका कुण्ड है इससे इस घाट का यह नाम पड़ा है। इन्दौर की महारानी अहल्या बाई ने, जिन्होंने सन् १७६५ ई० से सन् १७९५ तक राज्य किया, इस घाट को बनवाया था। गङ्गा और मणिकर्णिका के बीच में विष्णु के चरण चिन्ह हैं, जिसके पास मरे हुए राजा लोग और दूसरे मान्य-गण जलाए जाते हैं

कुन्ड से दक्षिण-पश्चिम अहल्या बाई का बनवाया हुआ विशाल मन्दिर है।

मणिकर्णिका कुण्ड, सिरे पर लगभग ६० फीट लम्बा और नीचे लगभग २० फीट लम्बा और दो फीट चौड़ा है। गङ्गा से कुण्ड की पेंदी तक गंगा से पानी आने के लिए एक नाला है। कभी कभी कुन्ड में केवल दो-तीन फीट ऊँचा पानी रहता है।

यहाँ नित्य स्नान करने वालों की भीड़ रहती है और सैकड़ों आदमी जप-पूजा करते हुए बैठे देख पड़ते हैं। काशी में आने वाले यात्री प्रथम मणिकर्णिका कुन्ड और गंगा में स्नान करके तब विश्वनाथ का दर्शन करते हैं।

(शिव पुराण, आठवाँ खन्ड, ३२ वा अध्याय) शिव जी ने अपनी बाँई भुजा से विष्णु को प्रकट किया। विष्णु ने शिव की आज्ञा से तप करने के निमित्त काशी में पुष्करिणी को खोदा और अपने पसीने से उसे भर कर वे तप करने लगे। बहुत दिनों के उपरान्त उमा सहित सदाशिव वहाँ प्रकट

हुए, शिव जी ने अपना शिर हिलाया और विष्णु की स्तुति कर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। उसी दशा में शङ्कर के कान से मणि उस स्थान पर गिर पड़ी जिससे वह स्थान मणिकर्णिका के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

४—दशाश्वमेध घाट—यह घाट शहर के घाटों के मध्य में और काशी के अति पवित्र घाटों में से एक है। यहाँ प्रयाग तीर्थ है। माघ मास में स्नान की भीड़ होती है। वहाँ जल के भीतर रुद्र सरोवर तीर्थ है। मणिकर्णिका के घाट को छोड़ कर काशी के सब घाटों से अधिक लोग यहाँ देख पड़ते हैं।

एक खुले हुए मन्डप, में एक स्थान पर दशाश्वमेधेश शिव लिङ्ग और दूसरे स्थान पर पीतल के सिंहासन में एक छोटी मूर्त्ति है जिसको लोग शीतला देवी कहते हैं। शहर में शीतला रोग फैलने के समय इन देवी की विशेष पूजा होती है।

(शिव पुराण, ६ वां खन्ड, ६ वां अध्याय) शिव जी ने राजा दिवोदास को काशी से विरक्त करने के लिए ब्रह्मा को काशी में भेजा। ब्रह्मा ने काशी में जाकर राजा दिवोदास की सहायता से १० अश्वमेध यज्ञ किए। वही स्थान दशाश्वमेध के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रह्मा भी उस स्थान पर ब्रह्मेश्वर शिव लिङ्ग स्थापित करके रह गए।

५—अस्सी सङ्गम घाट—काशी के पाँच अति पवित्र घाटों में से सबसे दक्षिण का अस्सी नामक कच्चा घाट है, यह हरद्वार तीर्थ है। दक्षिण की ओर एक नाला के समान लगभग ४० फीट चौड़ी 'अस्सी' नामक नदी गङ्गा जी में मिली है।

(स्कन्द पुराण, काशी खन्ड, ४६ वां अध्याय) मार्गशीर्ष में कृष्ण पक्ष की ६ को अस्सी सङ्गम पर स्नान और पिन्ड दान करने से पितर तृप्त होते हैं।

६—त्रिलोचन घाट—तेलिया नाले से आगे पत्थर से बाँधा हुआ 'त्रिविष्टप तीर्थ' है, जो त्रिलोचन घाट के नाम से प्रसिद्ध है।

त्रिलोचन घाट से ऊपर 'त्रिलोचन नाथ' का शिखर दार मन्दिर है। 'त्रिलि-चन मन्दिर के घेरे से बाहर पूर्व ओर एक मन्दिर में काशी के अष्ट महालिङ्गों में से 'नर्मदेश्वर' और दूसरे मन्दिर में ४२ शिव लिङ्गों में से 'आदि महादेव' हैं। आदि महादेव के घेरे में एक दूसरे मन्दिर में अष्टमहा-लिङ्गों में से पार्वतीश्वर लिङ्ग है।

(स्कन्द पुराण, काशी खन्ड, ६६ वां अध्याय) श्रावण शुक्ल चतुर्दशी को आदि महादेव के पूजन करने से बहुत लिङ्गों की पूजा का फल मिलता है।

(७५ वां अध्याय) वैशाख शुक्ल तृतीया को त्रिलोचन के पूजन से प्रमोद कृत पाप निवृत्त होता है।

(६० वां अध्याय) चैत्र शुक्ल तृतीया को पार्वतीश्वर की पूजा करने से सौभाग्य मिलता है।

७—महथा घाट—त्रिलोचन घाट से आगे पत्थर से बँधा हुआ महथा घाट मिलता है, जिसके ऊपर नर-नारायण का मन्दिर है यहाँ पौष की पूर्णिमा को स्नान की भीड़ होती है।

(शिव पुराण, काशी खन्ड, ६१ वां अध्याय) पौष मास में नर नारायण के दर्शन पूजन से बद्रिकाश्रम तीर्थ की यात्रा का फल होता है और गर्भवास का भय छूट जाता है।

८—लाल घाट—'गोपी गोविन्द' तीर्थ लाल घाट के नाम से प्रसिद्ध है। घाट पत्थर से बँधा हुआ है। अगहन की पूर्णिमा को यहाँ स्नान की बड़ी भीड़ होती है। घाट से ऊपर एक मन्दिर में काशी के प्रसिद्ध ४२ लिङ्गों में से 'गोपेच्चेश्वर' शिव लिङ्ग और गोपी-गोविन्द की मूर्त्ति है।

(स्कन्द पुराण, काशी खन्ड, ६१ वां अध्याय) गोपी गोविन्द के पूजन से भगवान् की माया स्पर्श नहीं करती। (८४ वां अध्याय) गोपी गोविन्द तीर्थ में स्नान करने से गर्भवास छूट जाता है।

९—राजमन्दिर घाट—स्नान करने को यहाँ बड़ा लम्बा घाट है। घाट के ऊपरएक पुश्ता है। यहाँ हनुमान जी के मन्दिर में लक्ष्मीनृसिंह की मूर्त्ति है।

(काशी खन्ड, ६१ वां अध्याय और ८४ वां अध्याय) लक्ष्मीनृसिंह के दर्शन से भय छूट जाता है और लक्ष्मीनृसिंह तीर्थ में स्नान करने से निर्वाण पद मिलता है।

१०—दुर्गाघाट—घाट के पास नृसिंह जी की मूर्ति है।

(स्कन्द पुराण, काशी खन्ड, ६१ वां अध्याय) वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को 'सर्वनृसिंह' के दर्शन-पूजन करने से संसार भय निवृत्त होता है।

११—रामघाट—२०० वर्ष से अधिक हुए इस बड़े घाट को जयपुर के महाराजा ने बनवाया था। यहाँ राम तीर्थ है। रामनवमी के दिन यहाँ स्नान की बड़ी भीड़ होती है। घाट के सिरे पर जयपुर के महाराज के बनवाए हुए एक मन्दिर में राम और जानकी जी की धातु विग्रह बहुत सुन्दर मूर्ति है।

(स्कन्द पुराण, काशी खन्ड, ८४ वां अध्याय) चैत्र शुक्ल नौमी को राम तीर्थ यात्रा से सर्व धर्म का फल होता है।

१२—संकटा घाट—यह पत्थर से बाँधा हुआ घाट यम तीर्थ है। घाट पर एक मन्दिर में यमेश्वर और एक मन्दिर में काशी के १२ आदित्यों में से 'यमादित्य' हैं। कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया को यहाँ स्नान की भीड़ होती है।

(स्कन्द पुराण, काशी खन्ड, ५१ वां अध्याय) भरणी, मङ्गल और चतुर्दशी के योग पर यम तीर्थ में तर्पण श्राद्ध करने से पितरों के ऋण से मुक्ति होती है।

१३—सेन्धिया घाट पर 'मङ्गलीश्वर' और 'बुधेश्वर' शिवलिङ्ग और गली की दूसरी ओर के मन्दिर में 'वृहस्पतीश्वर' शिवलिङ्ग और कई देव मूर्त्तियाँ हैं।

(स्कन्द पुराण, काशीखन्ड, १५ वां अध्याय से १७ वें अध्याय तक) बुद्धाष्टमी के योग में बुधेश्वर के पूजन करने से सुबुद्धि प्राप्त होती है। गुरु पुष्य योग में वृहस्पतीश्वर के पूजन से महापातक निवृत होता है और भौम युक्त चतुर्थी होने पर मङ्गलीश्वर के पूजन करने से ग्रह बाधा की निवृत्ति होती है।

सेन्धिया घाट हीन दशा में है। देखने से जान पड़ता है कि यह बहुत उत्तम बना हुआ था। सन् १८३० ई० के लगभग ग्वालियर की महारानी बैजाबाई ने इसको बनवाया था। घाट की सीढ़ियों पर एक बड़ा मन्दिर है, जिसके नीचे का भाग वर्षा काल में पानी में डूब जाता है। यह घाट 'वीर तीर्थ' है।

(स्कन्द पुराण, काशी खन्ड, ८४ वां अध्याय) वीर तीर्थ में स्नान कर के वीरेश्वर के पूजन करने से सन्तान प्राप्ति होती है।

१४—ललिता घाट—ललिता तीर्थ पर साधारण ललिता घाट है। घाट से ऊपर काशी की ६ दुर्गाओं में से 'ललिता देवी' का मन्दिर है जहाँ आश्विन कृष्ण द्वितीया को दर्शन पूजन का मेला होता है। घाट के ऊपर गली में काशी के ४२ लिङ्गों में से करुणेश्वर शिव लिङ्ग है।

(स्कन्द पुराण, काशी खन्ड, ७० वां अध्याय) आश्विन कृष्ण द्वितीया को ललिता देवी के दर्शन पूजन करने से सौभाग्य फल मिलता है। (६४ वां अध्याय) प्रतिमास के सोमवार को करुणेश्वर की यात्रा करने से काशी वास का फल मिलता है।

१५—मीरघाट—यहाँ विशाल तीर्थ है। इस घाट की पत्थर की सीढ़ियाँ सादी हैं।

मीरघाट के ऊपर छोटे छोटे मन्दिरों और दीवार से घेरा हुआ, काशी के पवित्र कूपों में से 'धर्म कूप' है। घेरे के बाहर कूप से पश्चिम 'विश्वबाहुका देवी' का मन्दिर है। धर्म कूप से दक्षिण-पश्चिम काशी की ६ गौरियों में से 'विशालाक्षी गौरी' का मन्दिर है। यहाँ भादों की कृष्णा तीज को दर्शन की भीड़ होती है।

(स्कन्द पुराण, काशी खन्ड, ७० वां अध्याय) भाद्र कृष्ण तृतीया को विशाल तीर्थ की यात्रा और विशालाक्षी के दर्शन पूजन करने से सकल मनोरथ सिद्ध होते हैं।

(७८ वां अध्याय) कार्तिक शुक्ल अष्टमी को धर्म कूप में स्नान और धर्मेश्वर के दर्शन करने से सर्व धर्म करने का फल मिलता है।

(८० वां अध्याय) चैत्र शुक्ल ३ को धर्म कूप में स्नान और धर्मेश्वर आशा विनायक तथा विश्वबाहुका देवी के दर्शन पूजन और व्रत करने से मनोरथ सिद्ध होता है।

१६—मान मन्दिर घाट—अनुमानतः ३०० वर्ष हुए आम्बेर के राजा मान सिंह ने इस घाट को बनवाया था।

घाट से ऊपर एक उत्तर के मन्दिर में 'सेतुबन्ध रामेश्वर' शिवलिङ्ग है।

(स्कन्द पुराण, काशी खन्ड, ६६ वां अध्याय) प्रतिमास की नवमी तिथि को काशी के सेतुबन्ध रामेश्वर का दर्शन और पूजन करना चाहिए।

१७—चौसठ घाट—बंगाल के राजा दिगपति ने इस घाट को बनवाया था। घाट से ऊपर आंगन के बगलों में मकान हैं। पूर्व मुख के ३ द्वार वाले मकान में सर्वाङ्ग पीतल से जड़ी हुई काशी की ६४ योगिनियों में से प्रसिद्ध गजानना 'चतुःषष्ठी देवी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आगे सिंह है। पूर्व बगल के मकान में ऐसी ही सर्वाङ्ग में पीतल जड़ी हुई 'भद्र काली' की मूर्त्ति है। चैत्र प्रतिपदा के दिन चतुःषष्ठी देवी की पूजा का बड़ा मेला होता है।

(शिव पुराण, ६ वां खन्ड ७३ अध्याय) शिव जी ने दिवोदास राजा से काशी छुड़वाने के निमित्त ६४ योगिनियों को भेजा। जब काशी में योगिनियों की युक्ति न चली तब वे मणिकर्णिका के आगे स्थित हो गई।

(स्कन्द पुराण, काशी खन्ड, ४५ वां अध्याय) आश्विन की नवरात्रि में ६ दिन पर्यन्त, प्रतिमास की कृष्ण पक्ष १४ को और चैत्र प्रतिपदा के दिन ६४ योगिनियों के दर्शन-पूजन करने से वर्ष पर्यन्त विघ्न नहीं होता।

१८—केदार घाट—यह घाट काशी के उत्तम घाटों में से एक है। २५ सीढ़ियों के ऊपर 'गौरी कुन्ड' नामक एक चौखूँटा कुन्ड है।

गौरी कुन्ड से ४७ सीढ़ियों के ऊपर 'केदारेश्वर' शिव का मन्दिर है। भीतर अनगढ़ और चिपटे केदारेश्वर लिङ्ग है।

(स्कन्द पुराण, काशी खन्ड, ७७ वां अध्याय) मङ्गलवार को अमावस्या हो तो केदार घाट पर और गौरी कुन्ड में स्नान करके पिण्डदान करने से १०१ कुल का उद्धार होता है। चैत्र कृष्ण १४ का व्रत करके तीन चुल्लू केदारोदक पीने से मनुष्य शिव रूप होता है और जो केवल पूजन ही करते हैं उनके ७ जन्म का पाप छूट जाता है।

१६—तुलसी घाट—इस घाट की शकल पुरानी है। यह 'गङ्गासागर' तीर्थ है। काशी खन्ड के छठवें अध्याय में लिखा है कि गंगासागर में स्नान करने से सर्व तीर्थ में स्नान करने का फल मिलता है।

तुलसी घाट से ऊपर तुलसीदास जी का मन्दिर है। घुमाव से तुलसीदास जी की गद्दी के पास पहुँचना होता है जिसके पास तुलसीदास जी की खड़ाऊँ और एक हाथ से छोटा एक नाँव का टुकड़ा रक्खा हुआ है। बहुत प्राचीन होने से खड़ाउँवों की लकड़ी गली जाती है इससे उन पर कपड़े लपेटे गए हैं। यहाँ के अधिकारी कहते हैं कि खड़ाऊँ तुलसीदास जी की है और जिस नाँव पर वे पार उतरते थे उसी नाँव का यह टुकड़ा है।

इसी स्थान पर तुलसीदास जी रहते थे। सम्वत् १६८० (सन् १६२३ ई०) में यहाँ ही तुलसीदास जी का देहान्त हुआ था।

२०—विश्वनाथ का मन्दिर—ज्ञानवापी से दक्षिण काशी के मन्दिरों में सबसे अधिक प्रख्यात 'विश्वनाथ' शिव का मन्दिर है और सम्पूर्ण शिव लिङ्गों में विश्वनाथ अर्थात् विश्वेश्वर शिव प्रधान हैं।

विश्वनाथ का शिखरदार मन्दिर ५१ फ़ीट ऊँचा पत्थर का सुन्दर बना हुआ है। मन्दिर के चारों ओर पीतल के किंवाड़ लगे हुए एक-एक द्वार हैं। मन्दिर के पश्चिम गुम्बजदार जगमोहन और जगमोहन के पश्चिम इससे मिला हुआ 'दंडपाणीश्वर' का पूर्व मुख का शिखरदार मन्दिर है। इन मन्दिरों को सन् ईसवीकी १८ वीं सदी में इन्दौर की महारानी अहल्या बाई ने बनवाया था। विश्वनाथ के मन्दिर के शिखर पर और जगमोहन के गुम्बज के ऊपर तांबे के पत्तर पर सोने का मुलम्मा है जिसको पंजाब केसरी

महाराज रणजीत सिंह ने अपनी अन्त की बीमारी (सन् १८३९ ई०) में करवाया था।

(शिव पुराण, काशी खंड, ३८ वां अध्याय) विश्वनाथ के समान दूसरा लिङ्ग नहीं है। इनके हरेश्वर मंत्री, ब्रह्मेश्वर वेद-पुराण सुनाने वाले, भैरव कोतवाल, तारकेश्वर धर्माध्यक्ष, दंडपाणी चोबदार, वीरेश्वर भंडारी, ढुंढिराज अधिकारी और दूसरे सब लिङ्ग प्रजापालक हैं।

विश्वनाथ के मन्दिर से पश्चिमोत्तर शिव की कचहरी है। विश्वनाथ के आंगन के पश्चिम की खिड़की से उसमें जाना होता है। यहाँ एक मंडप में और इससे बाहर कई पंक्तियों में लगभग १५० शिव लिङ्ग हैं।

२१—ज्ञानवापी-विश्वनाथ के मन्दिर से उत्तर ४८ खम्भों पर चारों ओर से खुला हुआ पत्थर का सुन्दर मंडप है जिस को ग्वालियर की महारानी बैजबाई ने सन् १८२८ ई० में बनवाया था। इसी में पूर्व किनारे पर 'ज्ञानवापी' नाम से विख्यात एक कूप है। औरंगज़ेब ने जब विश्वनाथ के पुराने मन्दिर को तोड़ दिया, लोग कहते हैं कि तब विश्वनाथ शिव लिङ्ग इसी में चले गए।

(स्कन्द पुराण, काशी खंड, ३३ वां अध्याय) ज्ञानोदय तीर्थ के स्पर्श मात्र से सब पाप छूट जाते हैं और अश्वमेध का फल मिलता है। शिवतीर्थ, ज्ञानवापी, ज्ञानतीर्थ, तारकाख्य तीर्थ और मोक्ष तीर्थ इसके नाम हैं।

विश्वनाथ के मन्दिर के फाटक के पश्चिम एक गली ढुंढराज तक गई है। एक मकान में महावीर जी और कोने के मकान में अक्षयवट नामक एक वट वृक्ष है जिसको यात्री लोग अङ्कमाल करते हैं।

२२ -अन्नपूर्णा का मन्दिर—अक्षयवट से पश्चिम गली के बाएँ, अन्नपूर्णा का मन्दिर है। पूना के पहले बाजीराव पेशवा ने सन् १७२५ ई० में वर्तमान मन्दिर को बनवाया था। आँगन के मध्य में एक उत्तम मन्दिर है, जिसमें चाँदी के सिंहासन पर अन्नपूर्णा की पीतलमई मूर्त्ति पश्चिम मुख से बैठी है।

(शिवपुराण, छठवां खंड, १ ला अध्याय) गिरिजापति काशी में स्थित हुए और उन्होंने काशी को अपनी राजधानी बनाया। गिरिजा भी काशी में रह गई जो अन्नपूर्णेश्वरी देवी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

(स्कन्दपुराण, काशीखंड, ६१ वां अध्याय) चैत्रशुक्ल अष्टमी और आश्विनशुक्ल अष्टमी के दिन अन्नपूर्णा के दर्शन पूजन करके १०८ परिक्रमा करने से पृथिवी परिक्रमा का फल मिलता है।

२२—कामेश्वर का मन्दिर—कामेश्वर शिवलिंग काशी के ४२ शिवलिंगों में से है। इनका मन्दिर मत्स्योदरी तालाब के पूर्व और त्रिलोचन घाट के उत्तर, त्रिलोचन मुहल्ले की गली में है। एक ओर पीतल के हौज में 'कामेश्वर' शिवलिङ्ग है और मोर पर चढ़ी मत्स्योदरी देवी हैं।

(स्कन्दपुराण, काशी खंड, ७ वां अध्याय) वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को 'मत्स्योदरी तीर्थ' की यात्रा से सर्व तीर्थ की यात्रा का फल मिलता है।

(८५ वा अध्याय) चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को कामेश्वर के दर्शन पूजन करने से बहुत पुण्य होता है।

२३—ओंकारेश्वर का मन्दिर—मत्स्योदरी से उत्तर कोयला बाजार के पास, ओंकारेश्वर मुहल्ले में काशी के ४२ लिंगों में से ओंकारेश्वर शिव लिंग है।

(कूर्म्मपुराण, ब्राह्मी संहिता, ३१ वां अध्याय) मत्स्योदरी के तट पर पवित्र और गुप्त 'ओंकारेश्वर' शिव लिङ्ग है।

२४—विन्दुमाधव का मन्दिर—पचगंगाघाट के एक विना शिखर के मन्दिर में बड़े सिंहासन पर छोटी श्यामल चतुर्भुज 'विन्दुमाधव' की मूर्त्ति है।

(स्कन्द पुराण, काशी खंड, ६० वां अध्याय विष्णु ने पञ्चनद तपस्वी अग्नि विन्दु ब्राह्मण को वरदान दिया कि मैं इस स्थान पर विन्दुमाधव के नाम से स्थित हूँगा और इस स्थान का नाम तुम्हारे नाम के अनुसार विन्दु तीर्थ होगा।

२५-गभस्तीश्वर--लक्ष्मण बाला के उत्तर एक छोटे मन्दिर में काशी के अष्ट महालिङ्गों में से 'गभस्तीश्वर' शिव लिंग है। गभस्तीश्वर के मन्दिर के पास एक कोठरी में काशी की ६ गौरियों में से 'मङ्गला' गौरी की मूर्त्ति है।'

(स्कन्दपुराण, काशी खण्ड, ४६ वां अध्याय) अर्कवार को गभस्तीश्वर और मङ्गला गौरी के दर्शन करने से फिर जन्म नहीं होता और चैत्र शुक्ल तृतीया के दिन मङ्गलागौरी के पूजन करने से सौभाग्य मिलता है।

२६—चन्द्रकूप—एक मन्दिर में 'सिद्धेश्वरी देवी हैं जिन के पास सिद्धेश्वर और कलियुगेश्वर तथा काशी के ४२ लिङ्गों में से चन्द्रेश्वर शिव लिङ्ग है। आँगन में चन्द्रकूप नामक एक पक्का कुँआ है।

(स्कन्दपुराण, काशीखंड, १४ वां अध्याय, प्रतिमास की अमावस्या को चन्द्रकूप यात्रा से भुक्ति-मुक्ति मिलती है और सोमवती अमावस्या को चन्द्रकूप पर श्राद्ध करने से गया श्राद्ध का फल मिलता है।

२७ ढुंढिराज गणेश—अन्नपूर्णा के मन्दिर के पश्चिम, गली के बाएँ बगल पर कोठरियों में बहुत से शिव लिंग और देव मूर्त्तियां हैं, जिससे थोड़े ही पश्चिम गली की मोड़ पर दाहिनी ओर एक छोटी कोठरी में काशी के प्रसिद्ध देवताओं में से एक 'ढुंढिराज गणेश' हैं। इन के चरण, शुण्ड, ललाट और चारों भुजाओं पर चाँदी लगी है।

(गणेशपुराण, उत्तरखण्ड, ४८ वां अध्याय) राजा दिवोदास के काशी छोड़ने पर शिवजी ने काशी में आकर सुन्दर बने हुए मन्दिर में गंडकी के पाषाण से बनी हुई ढुंढिराज जी की मूर्त्ति की स्थापना की।

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, ५७ वां अध्याय) माघ शुक्ल चौथ को ढुंढिराज के पूजन से आवर्ष विघ्न की निवृत्ति होती है और काशी वास का फल मिलता है।

२८ दण्डपाणि—ढुंढिराज के पास से उत्तर जो गली गई है, उसके बाएँ एक कोठरी में दण्डपाणि खड़े हैं, जिनके दाहिने बाएँ 'शुभ्रम-विभ्रम' दो गण खड़े हैं और आगे कई लिंग हैं।

(शिवपुराण, ६ वां खण्ड, २ अध्याय) शिवजी ने आनन्दवन में हरिकेश नामक तपस्वी को वरदान दिया कि काशीपुरी की तुम रक्षा करो और शत्रुओं को दण्ड दो तुम दण्डपाणि के नाम से प्रसिद्ध होगे। उस दिन से दण्डपाणि काशी में स्थित रहते हैं। वीरभद्र ने दण्डपाणि का अनादर किया इससे उनको काशी का वास न मिला। वे दूसरे स्थान पर जा रहे।

अगस्त्य मुनि को भी दण्डपाणि की सेवा न करने से काशी छोड़ देनी पड़ी।

२९-चित्रघण्टादेवी—चाँदनी चौक में उत्तर चन्दू नाऊ की गली में काशी की ९ दुर्गाओं में से 'चित्रघण्टा' दुर्गा हैं। यहाँ चैत्र शुक्ल तृतीया और आश्विन शुक्ल तृतीया को दर्शन पूजन का मेला होता है। काशी·

खण्ड के ७० वें अध्याय में लिखा है कि जो चित्र घण्टादेवी का दर्शन करता है उस मनुष्य के पातक को चित्रगुप्त नहीं लिखते।

३०-पशुपतीश्वर—गली के बाहर पूर्व, कुछ दक्षिण दूर जाने पर एक छोटे मन्दिर में काशी के अष्ट महालिंगों में से अनगढ़ चिपटा 'पशुपतीश्वर' शिव लिंग है। मन्दिर में मार्वल का फर्श लगा हुआ है।

(स्कन्दपुराण,काशीखण्ड, ६१ वां अध्याय) चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को पशुपतीश्वर के दर्शन पूजन करने से यमराज का भय छूट जाता है।

३१—कालभैरव—इनको भैरवनाथ भी लोग कहते हैं। भैरवनाथ मुहल्ले में शिखरदार मन्दिर में सिंहासन के ऊपर 'काल भैरव' की पाषाण प्रतिमा है। इनके मुख मण्डल और चारों हाथों में चाँदी लगी है। मन्दिर के द्वार, तीन ओर हैं। मन्दिर और जगमोहन दोनों में श्वेत और नीले मार्वल का फर्श है। दरवाजे के बाएँ ओर पत्थर का एक बड़ा कुत्ता और दोनों ओर सोंटे लिए दो द्वारपाल खड़े हैं। भैरव के वर्तमान मन्दिर को सन् १८२५ ई० में पूना के बाजीराव पेशवा ने बनवाया था। यहाँ के पुजारी मोरपंख के सोंटे से बहुतेरे यात्रियों की पीठ ठोंकते हैं। पापी लोगों को दण्ड देने के लिए काल भैरव काशी के कोतवाल हैं।

(शिवपुराण, ७वां खण्ड, १५ वां अध्याय) ब्रह्मा और विष्णु के परस्पर झगड़े के समय दोनों के मध्य में एक ज्योति प्रकट हुई जिसको देख, ब्रह्मा ने अपने पाँचवें मुख से कहा कि हे विष्णु ! उस ज्योति में किसी मनुष्य का स्वरूप दिखाई देता है। इतने में एक मनुष्य नील लोहित वर्ण चक्र भाल-त्रिशूल हाथ में लिए सर्पों का भूषण बनाए देख पड़ा। ब्रह्मा ने कहा कि तुम तो हमारे भ्रूमध्य से उपजे हुए रुद्र हो, हमारी शरण में आओ, हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। ब्रह्मा का ऐसा गर्व देख शिवजी ने महाकोप करके भैरव को उत्पन्न किया और कालराज, काल भैरव, पाप भक्षण आदि नाम उसका रक्खा। भैरव ने अपनी बाँई उंगली के नख से ब्रह्मा का पाँचवां शिर काट लिया (१६ वां अध्याय) ब्रह्म हत्या शिव से प्रकट होकर भैरव के पीछे पीछे दौड़ने लगी। (१७ वां अध्याय) भैरव,ब्रह्म का शिर हाथ में लेकर सब देशों की परिक्रमा कर जब काशी में आए तब ब्रह्म हत्या पृथिवी के नीचे चली गई। भैरव के हाथ से ब्रह्मा का शिर धरती में गिर पड़ा। उसी स्थान का नाम कपाल मोचन तीर्थ हुआ।

मार्ग शीर्ष कृष्णाष्टमी को भैरव का जन्म हुआ। उसी तिथि को भैरव का व्रत होता है। अष्टमी, चतुर्दशी और रविवार को भैरव के दर्शन पूजन से बड़ा फल मिलता है।

३२—मध्यमेश्वर शिवलिङ्ग-कम्पनी बाग़ के उत्तर एक मन्दिर में काशी के ४२ लिङ्गों में से 'मध्यमेश्वर शिवलिंग है।

(लिंगपुराण, ६२ वाँ अध्याय) शिवजी ने कहा कि काशी में मध्यमेश्वर नामक लिंग आप ही प्रकट हुआ है।

(स्कन्द पुराण, काशी खण्ड. ६७ वाँ अध्याय) शिवजी ने कहा चैत्र शुक्ल अष्टमी को मध्यमेश्वर के दर्शन और मन्दाकिनी में स्नान करने से २१ कुल का उद्धार होता है।

३३—रत्नेश्वर—वृद्धकाल जाने वाली सड़क पर वृद्धकाल मुहल्ले में एक छोटे से मन्दिर में काशी के ४२ लिगों में से 'रत्नेश्वर' शिवलिंग है।

(स्कन्द पुराण, काशी खण्ड, ६७ वाँ अध्याय) फाल्गुण कृष्ण १४ को रत्नेश्वर की यात्रा से स्त्री, रत्नादि और ज्ञान प्राप्त होते हैं।

३४—हंसतीर्थ (हंसतीर्थ)—आलमगिरी मस्जिद से पूर्व-दक्षिण हंसतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक बड़ा सरोवर है जिसका नाम काशी खण्ड में रुद्र कुण्ड है और लिखा है कि कौआ इस सरोवर में गिरने से हंस हो गया। इसीलिए इस सरोवर का नाम 'हंस तीर्थ' हो गया। सरोवर के पश्चिम घाट के ऊपर एक छोटे मन्दिर में हंसेश्वर और रुद्रेश्वर शिवलिंग हैं। इस मन्दिर में काशीखण्ड में लिखे हुए देवता हैं।

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, ६७ वाँ अध्याय) आर्द्रा चतुर्दशी के योग होने पर हंस तीर्थ में स्नान और हंसेश्वर तथा रुद्रेश्वर के पूजन करने से मनुष्य रुद्र लोक पाता है।

३५—वृद्ध कालेश्वर—विश्वेश्वरगंज बाजार से जो उत्तर सड़क गई है उसके मोड़ के पास वृद्धकाल मुहल्ला है। रत्नचूड़ामणि कूप से वृद्धकाल पर्यन्त के स्थान को काशी खण्ड में अवंतिका पुरी लिखा है। काशी के ४२ लिंगों में से 'वृद्ध कालेश्वर' का मन्दिर वृद्धकाल मुहल्ले में है। यह मन्दिर काशी के पुराने मन्दिरों में से है।

३६—मृत्युंजय—इनका नाम काशी खण्ड में 'अपमृत्यु हरेश्वर' लिखा है। वृद्धकालेश्वर के मन्दिर से दक्षिण-पश्चिम एक गली के बगल पर मृत्युंजय

का छोटा सा मन्दिर है, जिसके चारों ओर दर्वाज़े हैं। पीतल के हौज में मृत्युंजय शिवलिंग है। यहाँ पूजा, जप और दर्शन की भीड़ रहती है।

३७ गोरखनाथ का मन्दिर—मन्दाकिनी मुहल्ले में ऊँची भूमि पर जिसको गोरखटीला कहते हैं, एक आंगन के बीच में एक शिखरदार बड़ा मन्दिर है जिसमें ऊँची गद्दी पर गोरखनाथ का चरण चिन्ह है। मन्दिर के बाँए कोने के पास गहरे हौज़ में काशी के ४२ लिंगों में से 'वृषेश्वर' शिवलिंग है। यहाँ गोरख सम्प्रदाय के साधु लोग रहते हैं।

३८ बड़े गणेश—सदर सड़क से थोड़ी दूर पर बड़े गणेश का मदिन्र है, जिनको लोग 'महाराज विनायक' और'वक्रतुण्ड विनायक' भी कहते हैं। मन्दिर के शिखर पर सुनहला कलश और पताका लगी है। गणेश की विशाल मूर्ति के हाथ, पाँव और सूंड तथा सिंहासन पर चाँदी लगी है और छत्र मुकुट सुनहले हैं। गणेशजी के बग़ल में उनकी स्त्रियाँ सिद्धि और बुद्धि की मूर्तियाँ हैं जिनके मुख मण्डल चाँदी के हैं। माघकृष्ण ४ को यहाँ दर्शन की बड़ी भीड़ होती है।

(स्कन्दपुराण, काशी खंड, १०० वाँ अध्याय) माघ कृष्ण ४ को वक्रतुण्ड की यात्रा से दर्प पर्यन्त विघ्न नहीं होता।

३६-ज्येष्ठेश्वर—भूत भैरव से पूर्व एक बड़े मठ में 'जैगीषव्येश्वर' शिवलिंग है। इसी जगह जैगीषव्य गुफा गुप्त है। यहाँ बहुतेरे शिवलिंग और देव मूर्तियाँ गुप्त हैं। यह ज्येष्ठेश्वर शिवलिंग काशी पुरी मुहल्ले में काशी के ४२ लिंगों में से है।

(शिवपुराण, ७ वाँ खंड, ६ वाँ अध्याय) शिवजी ने मन्दराचल से काशी में आकर ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी को जैगीषव्य की गुफा के निकट निवास किया और वहाँ से ज्येष्ठेश्वरलिंग का स्थापित होना और ज्येष्ठनाम देवी का प्रकट होना सुना।

४०-कबीरचौरा—कबीरचौरा मुहल्ले में बड़े बड़े आँगन के चारो ओर मकान, और मध्य में सुनहले कलश तथा पताका वाले गुम्बज़दार छोटे मन्दिर में कबीर जी का चरण चिन्ह, तथा एक बग़ल के दो मंज़िले मकान में कबीर जी की गद्दी है। गद्दी के निकट कबीर जी की टोपी, रामानन्द स्वामी और कबीर जी की तस्वीरें हैं। पैर धोकर जाना होता है। आँगन से बाहर दीवारों से घेरा हुआ बड़ा बाग़ है। कबीरजी रामानन्द स्वामी के १२ चेलों में सब से प्रसिद्ध थे।

४१—लाठ भैरव—कपाल मोचन के उत्तर ६ गज लम्बे और इतने ही चौड़े घेरे के भीतर ७ फ़ीट ऊँची और ७ फ़ीट के घेरे की पत्थर के ऊपर ताँबे से मढ़ी हुई भैरव की लाठ है, जिसको 'लाठ भैरव' और 'कपाल भैरव' भी कहते हैं। इसकी पूजा होती है। पहले यह लाठ मंदिर के घेरे में था, जो (मन्दिर) औरंगज़ेब के हुक्म से तोड़ दिया गया।

भादों शुक्ल पूर्णिमा को कपाल मोचन तीर्थ (लाठ भैरव के तलाब) में स्नान और लाठ भैरव के दर्शन की बड़ी भीड़ होती है।

(स्कन्द पुराण, काशी खंड, १०० वाँ अध्याय) भाद्रशुक्ल पूर्णिमा को कुल स्तम्भ की यात्रा से भैरवी यातना का भय निवृत होता है।

४२—लोलार्क कुण्ड—यह भदैली महल्ले में तुलसी घाट से थोड़ी ही दूर पर एक प्रसिद्ध कुँआ है जिसको महारानी अहल्याबाई के बाद अमृतराव और कूच बिहार के राजा ने बनवाया था। कुएँ का व्यास १५ फ़ीट है जिसके एक ओर बिना पानी का चौखूँटा बड़ा हौज है। उसके तीन ओर ऊपर से नीचे तक पत्थर की ४० सीढ़ियाँ और एक ऊँचा मेहराब है जिससे होकर नीचे सीढ़ियों द्वारा कुँआ में पैठना होता है। यहाँ भाद्रपद कृष्ण शष्ठी को मेला होता है। सब लोग लोलार्क तीर्थ में स्नान करते हैं। लोलार्क कुण्ड की सीढ़ी पर काशी के १२ आदित्यों में से लोलार्कादित्य हैं। कुण्ड के ऊपर दक्षिण 'लोलार्केश्वर' शिवलिंग है।

(स्कन्द पुराण, काशी खड,'४६ वाँ अध्याय) शिवजी ने राजा दिवोदास को काशी से विरक्त करने के लिए सूर्य को काशी में भेजा। शिव के कार्य के लिए आने पर सूर्य का मन लोल (चंचल) हुआ, इस करके उनका नाम लोलार्क पड़ा। कार्य सिद्ध न होने पर वह दक्षिण दिशा में असी के सङ्गम के निकट स्थित हुए। मार्गशीर्ष की सप्तमी, षष्ठी व रविवार को वहाँ यात्रा करने से मनुष्य पाप से छूट जाते हैं। लोलार्क के दर्शन करने से वर्ष भर का पाप निवृत्त होता है। सूर्य ग्रहण में यहाँ स्नान दान करने से कुरुक्षेत्र से अधिक फल मिलता है। माघ शुक्ल सप्तमी को असी संगम पर स्नान करने से सप्त जन्म का पाप छूट जाता है। प्रत्येक रविवार को लोलार्क की यात्रा करने से कुष्ठादि रोग नहीं होते।

४३—दुर्गाकुण्ड—असी घाट से आध मील पश्चिम दुर्गा कुण्ड मुहल्ले में दुर्गाकुण्ड नामक बड़ा सरोवर है जिसके पास पत्थर से बना हुआ काशी की नौ दुर्गाओं में से 'कूष्माण्डाख्या दुर्गा' का उत्तम मन्दिर है। सरोवर

और मन्दिर दोनों को पिछले शतक में रानी भवानी ने बनवाया था। मन्दिर में नक़्क़ाशी का सुन्दर काम है।

दुर्गा कुण्ड के पास एक बाग़ में सुविख्यात गुरु भास्करानन्द स्वामी दिगम्बर वेष में रहते थे।

(देवी भागवत, ३ स्कन्द, २४ वाँ अध्याय) देवी जी सुबाहु राजा पर प्रसन्न हुईं। राजा ने कहा हे देवी! जब तक काशीपुरी रहे, तब तक आप इसकी रक्षा के निमित्त दुर्गानाम से प्रसिद्ध होकर निवास करें। देवी ने कहा जब तक पृथिवी रहेगी तब तक हम काशी वासिनी होंगी।

(स्कन्द पुराण, काशी खण्ड, ७२ वाँ अध्याय) अष्टमी, चतुर्दशी और मङ्गलवार को काशी की दुर्गा का सर्वदा पूजन करना चाहिए। नवरात्रों में यत्न से दुर्गा की पूजा करने से विघ्न नाश होता है। आश्विन के नवरात्रि में दुर्गाकुण्ड में स्नान करने से दुर्गति नाश होती है और दुर्गा की पूजा करने से ६ जन्म का पाप छूट जाता है।

४४—मातृ कुण्ड— सिगिरा के टीला से पूर्व दूर लाला पुरा में 'मातृ कुण्ड तीर्थ' है। काशी खंड के ६७ वे अध्याय में लिखा है कि इस कुण्ड में स्नान करने से मातृदेवी की कृपा से मनोवाँछित फल मिलता है और मनुष्य माता के ऋण से छुटकारा पाता है।

४५—पिशाच मोचन कुण्ड-एक बड़ा सरोवर है। पूर्व के घाट से ऊपर 'कर्पर्दीश्वर' शिवलिंग, और एक इमली के वृक्ष के नीचे पिशाच का एक बड़ा शिर, वाल्मीकि मुनि और कई शिवलिंग तथा देवमूर्त्तियाँ हैं। कुण्ड के उत्तर वाल्मीकि टीले के ऊपर 'वाल्मीकेश्वर' और काशी के ५६ विनायकों में से 'हेरम्ब विनायक' हैं।

(शिवपुराण, ६ वाँ खण्ड, १० वा अध्याय) कर्पर्दीश्वर लिङ्ग की कौन बड़ाई कर सकता है। उसी स्थान पर विमलोदक है। त्रेतायुग में वाल्मीकि ऋषि इसी कुण्ड विमलोदक पर स्नान कर तप करते थे। एक दिन ऋषि ने एक बड़े भयानक पिचाश को देख और उस पर प्रसन्न हो उसको कुण्ड के भीतर शिव लिङ्ग दिखा कर स्नान कराया और उस के सर्वाङ्ग में भस्म लगा दी जिस से वह पिशाच मुक्ति पाकर सुन्दर शरीर धर शिव लोक को चला गया। उसी समय से यह कुण्ड पिशाच मोचन नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(स्कन्दपुराण काशी खंड, ५४ वां अध्याय) मार्गशीर्ष शुक्ल १४ को पिशाच मोचन कुण्ड में स्नान, पिण्डदान और कपर्दीश्वर शिव के दर्शन करने से पितरों की पिशाच योनि से मुक्ति होती है।

४६-वकरिया कुण्ड-सिकरौर से राजघाट को जो सड़क आई है उसके दक्षिण 'वर्करी' कुण्ड है जिस को वकरिया कुण्ड कहते हैं। यह अब गड़हा के समान एक पुराना कच्चा तालाब है जिस में मिट्टी खोदी जाती है और वर्षाकाल में पानी रहता है। दक्षिण ओर टूटे फूटे छोटे पक्के घाट की निशानी देख पड़ती है जिस पर काशी के १२ आदित्यों में से 'उत्तरार्क' हैं।

स्कन्दपुराण, काशी खंड, ४७ वां अध्याय में वकरिया कुण्ड का वृत्तान्त और उस में पौष मास में स्नान करने का माहात्म्य कहा गया है और लिखा है कि पौष मास के रविवार को उत्तरार्क की यात्रा करने से काशीवास का फल प्राप्त होता है।

४७-कपाल मोचन—वकरिया कुण्ड से लगभग एक मील पूर्व 'कपाल मोचन कुण्ड' नामक एक बड़ा सरोवर है जो चारों ओर पत्थर की सीढ़ियों से घेरा हुआ है। भाद्रशुक्ल पूर्णिमा को यहाँ स्नान और लाठ भैरव के दर्शन पूजन का मेला होता है। कपालमोचन पञ्चपुष्करिणियों में से एक है, शेष चार पुष्करिणियों के नाम हैं:—ऋणमोचन, पापमोचन, ऐतरणी, वैतरणी।

(शिवपुराण; ६ वां खंड, १ अध्याय) ब्रह्मा बोले कि भैरव ने हमारे पाँचवे शिर को काट डाला क्योंकि मैंने उस मुख से शिव की निन्दा की थी इसलिए भैरव को हमारे शिर काटने से) चाण्डाली हत्या लगी, इससे संसार भर में फिर कर काशी में आने पर तुरन्त उनकी हत्या जाती रही। जहाँ पर कि भैरव ने हमारा शिर गिराया वहाँ बड़ा तीर्थ हो गया और कपाल मोचन के नाम से ख्यात हुआ।

४८—रेवड़ी तालाब—जैनारायण कालेज के पास एक कच्चा तालाब है जिसे अब रेवड़ी तालाब कहते हैं। यह पुराणों का 'रेवती तीर्थ' है।

काशी की परिक्रमा ४६ मील की है। इसे पंचकोशी यात्रा कहते हैं और मणिकर्णिका घाट से आरम्भ होती है। इसमें स्थान स्थान पर देवता और सड़क के किनारे बड़े बड़े वृक्ष हैं। हर मास में पञ्चकोशी यात्रा की जाती है, पर यहाँ के लोग अगहन और फाल्गुन महीने में विशेष कर यह यात्रा करते हैं। फाल्गुन मास में ठाकुर जी यात्रा के लिए जाते हैं। उस समय स्थान-

स्थान पर रामलीला और कृष्णलीला होती है और उन्न में गवैए लोग भी गाते बजाते और अबीर उड़ाते चलते हैं।

श्री सुपार्श्वनाथ व पार्श्वनाथ तीर्थङ्करों के स्थान बनारस के मेलपुरा मुहल्ले में हैं।

कहा जाता है कि काशी की पंचकोशी के भीतर मनुष्यों की संख्या से अधिक देव मूर्त्तियों की संख्या है।

[श्री सुपार्श्वनाथ (सातवें तीर्थङ्कर) की माता का नाम पृथ्वी और पिता का नाम प्रतिष्ठित था। इनका चिन्ह स्वस्तिका है। गर्भ, जन्म, दीक्षा और कैवल्य ज्ञान कल्याणक आपके काशी में और निर्वाण पार्श्वनाथ में हुआ था।

श्री पार्श्वनाथ तेईसवें तीर्थङ्कर) की माता वामा और पिता अश्वसेन थे। चिन्ह आपका सूर्य है। आपके गर्भ और जन्म कल्याणक काशी में हुए थे और दीक्षा तथा कैवल्यज्ञान रामनगर में हुए। निर्वाण का स्थान पार्श्वनाथ है !]

[श्री कबीरदास—का जन्म काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था। लज्जा के मारे वह नवजात शिशु को लहरतारा के ताल के पास फेंक आई। नीरू नाम का जुलाहा उस बालक को अपने घर उठा लाया और पाला पोसा। एक अमुद्रित प्राचीन पुस्तक कहती है की किसी महान योगी के औरस और प्रतीचि नामक देवाङ्गना के गर्भ से भक्त प्रहलाद ही कबीर के रूप में स० १४५५ वि० में प्रकट हुए थे।

एक दिन पहर रात रहते ही कबीर पंचगङ्गा घाट की सीढ़ियों पर जा पड़े। वहीं से रामानन्द जी स्नान करने को उतरा करते थे। रामानन्द जी का पैर कबीर जी पर पड़ गया। रामानन्द जी चट "राम-राम" बोल उठे। कबीर ने इसे ही श्री गुरु मुख से प्राप्त दीक्षा मान लिया और स्वामी रामानन्द को अपना गुरू कहने लगे। उनकी इस युक्ति का कारण यह था कि रामानन्द जी उन्हें शिष्य नहीं बना रहे थे।

कबीर जी पढ़े-लिखे नहीं थे पर उनकी वाणी का क्या कहना है। बुढ़ापे में कबीर जी का काशी में रहना लोगों ने दूभर कर दिया। यश और कीर्ति की उन पर वृष्टि सी होने लगी और उससे तङ्ग आकर वे मगहर (जिला बस्ती) चलेगए। ११६ वर्ष की अवस्था में वहीं से वे परमधाम को गए]

[श्री रैदास का जन्म ईस्वी सन् की १५ वीं सदी में काशी में हुआ था और यह कई बार कबीर साहेब के सत्सङ्ग में शामिल हुए थे। बचपन से ही रैदास साधु सङ्गी थे, इससे इनके पिता रघु इनसे रुष्ट रहा करते थे। बात यहाँ तक बढ़ी कि उन्होंने रैदास को घर से निकाल दिया। रैदास जी जूता टाँकते जाते और हरि भजन करते जाते थे। पूरे १२० वर्ष के होकर रैदास जी ब्रह्म में लीन हो गए। उनके पन्थ के अनुयायियों का विश्वास है कि वे सदेह गुप्त हो गए। रैदास जी जाति के चमार थे। हरिजन लोग प्रायः अपने को "रैदासी" ही कहते हैं]

[बाबा किनाराम अघोरी का जन्म काशी से कुछ दूर बाणगङ्गा के दक्षिण तट पर रामगढ़ गाँव में वि० स० १६८४ में क्षत्रिय कुल में हुआ था। तेरह साल की अवस्था में इनके गौने का दिन निश्चित हुआ। एक दिन सवेरे उठते ही उन्होंने कहा 'वह माई तो पिता के पास पहुँच गई'। सब लोग बहुत बिगड़े पर जब गौने को जाने लगे तब खबर आई कि कन्या अचानक मर गई और रथी गङ्गा तट पर रखी है सब लोग मृतक संस्कार को चलें। अब लोग इन्हें वचन सिद्ध सन्त समझने लगे।

कुछ दिनों बाद इन्होंने वैराग्य के आवेश में आकर घर से निकल कर बलिया के कारों नामक गाँव में जाकर बाबा शिवाराम जी का शिष्यत्व स्वीकार किया और गुरु की आज्ञा से फिर घर लौट आए। माता पिता ने दूसरा विवाह करना चाहा तब ये फिर घर से निकल गए। चारों धामों और तीर्थों की यात्रा करके घर लौटे। हजारों यात्री इनके दर्शनार्थ आने लगे। यात्रियों को जल का कष्ट होते देख इन्होंने एक कुँआ और उसके चारों ओर एक बरामदा बनवा दिया। बरामदा पाटने के बजाय उस पर कपड़े रख दिए और कहते हैं कि, कहा 'बाबा तू पक्का हो जा'। बरामदा पक्का हो गया। यह कुँआ रामसागर कहलाता है और मौजूद है।

अपनी तीसरी यात्रा में बाबा किनाराम जूनागढ़ गए थे। वहाँ के नवाब ने सब हिन्दू साधुओं को बन्दी कर लिया था : कहता था कि तुम फकीर हो तो चमत्कार दिखाओ नहीं तो यह दाना दलो। किनाराम भी पकड़े गए। जेल गए तो और साधुओं से चक्की चलवाई जा रही थी। इन्होंने कहा "छोड़ दो यह माई अपने आप ही चलेगी" चक्की आप से आप चलने लगी। नवाब ने इस पर सब साधुओं को छोड़ दिया। कहते हैं कि, सं० १८२६ वि० में १४२ वर्ष की अवस्था में इन्होंने जीवित समाधि ले ली।]

[पंडित ब्रह्मशंकर जी मिश्र का जन्म काशी के सुप्रसिद्ध ब्राह्मण कुल में १८ मार्च १८६६ को हुआ था। आपके पिता का नाम पंडित रामदत्त था। आपकी धर्म पत्नी का नाम श्रीमती नेइयां जी है। आपने एम० ए० तक शिक्षा प्राप्त करके नवम्बर १८८५ ई० में गुरू हुज़ूर साहब की शरण ली, और ६ दिसम्बर १८९८ ई० को स्वयम् गुरू पद प्राप्त किया। आप एका उन्टेन्ट जनरल एलाहाबाद के कार्यालय में काम करते थे और वहीं सत्सङ्ग भी करते थे। १२ अक्टूबर १९०७ ई० को आप बनारस ही से परमधाम को पधारे। बनारस में कबीरचौरा मुहल्ले में आपका समाधि मन्दिर है और 'स्वामी बाग़' के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ प्रतिवर्ष आश्विन शुक्ल पंचमी तथा नवमी को आप का वार्षिक भण्डारा हुआ करता है।]

सुप्रसिद्ध कवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का भी जन्म और निवासस्थान काशी था। सं० १९०७ वि० में इनका जन्म अग्रवाल वैश्य कुल में हुआ था और केवल ३४ वर्ष की अवस्था पाकर भी (१९४१ वि० में इनका काशी में शरीरान्त हुआ) इन्होंने ऐसा अलौकिक चमत्कार दिखलाया कि सभी लोग मुग्ध हो गए और सब ने मिल कर इन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि से विभूषित किया। वर्तमान हिन्दी की इनके कारण इतनी उन्नति हुई कि इनको उसका जन्मदाता कहने में भी अत्युक्ति न होगी। आपकी कविता का उदाहरण है—

हरिचन्द जू यामैं न लाभ कछू,
हमैं बातन क्यों बहरावती हौ।
सजनी मन हाथ हमारे नहीं;
तुम कौन को का समझावती हौ॥

काशी में निम्नलिखित और अच्छे कवि हो गए हैं—गजन (दो सौ वर्ष पूर्व), रघुनाथ (दो सौ वर्ष पूर्व), हरिनाथ (पौने दो सौ वर्ष पूर्व), ब्रह्मदत्त (डेढ़ सौ वर्ष पूर्व), जय गोपाल (सवा सौ वर्ष पूर्व), दीन दयाल गिरि (सौ वर्ष पूर्व), बलवान सिंह (सौ वर्ष पुर्व) और सरदार (पचास वर्ष पूर्व)।

वर्तमान काल में काशी की सब से बड़ी बात वहां का हिन्दू विश्वविद्यालय है जो महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी तथा देवी एनीबेसेंट के उद्योग से बना है। यह विद्या क्षेत्र संसार की एक अद्वितीय वस्तु है और एक साधारण मनुष्य का उसे खड़ा कर देना केवल चमत्कार कहा जा सकता है। इसके बीच में भी मालवीय जी ने विश्वनाथ का एक विशाल मन्दिर

बनवाया है जो समय पाकर काशी के सर्व विख्यात मन्दिरों में गिना जावेगा।

काशी भारतवर्ष की थियासाफ़िकल सोसाइटी का केन्द्र है और सोसाइटी के हाते में यहां देवी एनीबेसन्ट का निवासस्थान शान्तिकुंज था। थियासाफ़िकल सोसाइटी का लड़कों और लड़कियों का स्कूल और महिला कालेज (Women's college) यहाँ की उत्तम संस्थाएँ हैं। राजघाट पर महात्मा जद्दू कृष्ण मूर्ति के विचारों के अनुसार एक अति उत्तम स्कूल खोला गया है।

४१७ बनौसी—(बम्बई प्रान्त के उत्तर कनारा जिला में एक बस्ती)

इसका प्राचीन नाम बनवासी है। मधु और कैटभ दैत्य यहाँ रहते थे जिनका विष्णु ने संहार किया था।

छठीं सदी ईस्वी तक बनवासी कदम्ब वंश की राजधानी था। सम्राट अशोक ने बौद्ध मत के प्रचार को रक्खित भिक्षु को २४५ बी० सी० में यहाँ भेजा था। यहाँ मधुकेश्वर महादेव का मन्दिर है जिसे मधु दैत्य के बड़े भाई ने बनवाया था। बनौसी बर्दा नदी के किनारे बसा है।

४१८ बयाना—(देखिए शोणितपुर)

४१९ बरनावा—(संयुक्त प्रान्त के मेरठ जिले में एक स्थान)

इसका प्राचीन नाम वारणावत है। दुर्योधन ने लक्षा भवन में पांडवों को यहाँ जलाने का प्रयत्न किया था। वारणावत उन पाँचों गावों में से एक है, जिनको श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से पांडवों के लिए माँगा था।

बरनावा मेरठ से १६ मील उत्तर-पश्चिम में है। स्कन्द पुराण में वारणावत का उत्तर-काशी के समीप होना लिखा है पर यह भूल जान पड़ती है। (देखिए उत्तर काशी)

४२० बरसाना—(देखिए मथुरा)

४२१ बरहट—(देखिए बिठूर)

४२२ बरामुला—(देखिए कश्मीर व वाराह क्षेत्र)

४२३ बरुआ गाँव—(देखिए बिठूर)

४२४ बलरामपुर—(देखिए अयोध्या)

४२५ बलिया—(संयुक्त प्रान्त में एक ज़िले का सदर स्थान)

इस स्थान पर भृगु जी का आश्रम था।

इस स्थान को भृगु आश्रम व भृगुक्षेत्र कहते हैं। इसी से बलिया का नाम 'बागराशन' (भृगु आश्रम) का अपभ्रंश भी था।

गोस्वामी तुलसीदास जी बलिया और इस ज़िले के हंस,नगर,परसिया, ब्रह्मपुर और कान्त गाँवों में पधारे थे ।

बलिया, गाज़ीपुर और जौनपुर ज़िलों का देश मिलाकर धर्मारण्य कहलाता था।

प्रा० क०— ऋषि मण्डली ने भृगु जी को इस काम पर नियत किया था कि वे पता लगाएँ कि विष्णु बड़े हैं या शिव। जिस समय भृगु जी विष्णु के समीप पहुँचे वह शेषनाग पर शयन कर रहे थे, लक्ष्मी पैर दबा रही थीं। भृगुजी ने इस बात पर रुष्ट होकर कि विष्णु ने उनका स्वागत नहीं किया, उनकी छाती में एक लात मारी। विष्णु की आंख खुली तो वे भृगुजी का पैर दबाने लगे कि पैर को बड़ा कष्ट हुआ होगा। भृगुजी वहाँ से चल कर शिवजी के स्थान पर पहुँचे और इसी प्रकार उनको भी क्रुद्ध करना चाहा। शिवजी को क्रोध आ गया और भृगुजी वहाँ से चले आए। ऋषि मण्डली में आकर उन्होंने निर्णय दिया कि विष्णु और शिव में, विष्णु बड़े हैं। पर विष्णु को लात मारने के लिए अपना प्रायश्चित पूछा। ऋषियों ने उन्हें एक सूखी लकड़ी देकर कहा कि जहाँ रखने से यह लकड़ी हरी हो जावे उस स्थान पर तप करने से वह पाप से छूट जाँयगे। भृगुजी काशी इत्यादि सब स्थानों में घूमते रहे पर वह लकड़ी हरी न हुई। जब वह गङ्गा के तट पर एक स्थान पर पहुँचे तो भूमि पर रखते ही लकड़ी हरी हो गई। वहीं भृगुजी ने तप किया और वह स्थान भृगुक्षेत्र कहलाया।

[भृगु, ब्रह्मा के मानस पुत्रों में से एक हैं। ये प्रजापति भी हैं। चाक्षुप मन्वन्तर में इनकी गप्त ऋषियों में गणना होती है। इनकी तपस्या का अमित प्रभाव है। सुप्रसिद्ध महर्षि च्यवन इनके पुत्र थे। प्रायः सभी पुराणों में महर्षि भृगु की चर्चा आई है।]

व० द०— बलिया, गङ्गा के बाँए किनारे पर बसा है। असल स्थान गङ्गा जी की धारा में आ गया है। भृगुजी का नया मन्दिर बलिया के समीप बनाया गया है। कार्तिक की पूर्णिमा को भारतवर्ष के प्रख्यात मेलों में से भृगुक्षेत्र का मेला होता है जिसको ददरी का मेला कहते हैं। भृगुजी के शिष्य के नाम पर इस मेले का नाम 'ददरी' पड़ा है। मेला एक सप्ताह से अधिक रहता है और चार लाख के लगभग आदमी जमा होते हैं।

भृगु आश्रम— बलिया के अतिरिक्त, बम्बई प्रान्त के भड़ोच में भी भृगुऋषि का आश्रम था। जबलपूर से १८ मील पश्चिम भेड़ाघाट भी भृगुतीर्थ कहलाता है।

४२६ बसाढ़— (विहार प्रान्त के मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले में एक ग्राम)
इस स्थान पर बौद्ध ग्रन्थों का सुप्रसिद्ध वैशाली नगर था।
लच्छिवी क्षत्रियों की यह राजधानी थी।
भगवान बुद्ध ने यहाँ कई चौमास वास किया था।

यहीं उन्होंने महापरे निर्वाण, अर्थात् अपना शरीर छोड़ने, का समय आने की सूचना दी थी और भिक्षुको को अन्तिम उपदेश दिया था।

बौद्धों की दूसरी धर्म्म सभा ४४३ बी० सी० में महात्मा रेवत के सभापतित्व में यहाँ हुई थी।

भगवान बुद्ध के शिष्य आनन्द के शरीर की आधी भस्म यहाँ रक्खी गई थी।

प्रा० क०—बौद्ध ग्रन्थों में वैशाली नगर का बहुत वर्णन मिलता है। यहाँ पर आम्रवाटिका थी जिसे अम्बापाली ने भगवान बुद्ध को दान में दिया था।

वैशाली प्रदेश आधुनिक मुज़फ़्फ़रपुर जिला का दक्षिणी भाग था। इसके उत्तर में विदेह राज्य और दक्षिण में मगध राज्य था।

ह्वानचाङ्ग ने ६४० ई० के लगभग लिखा है कि वैशाली नगर के भीतर व बाहर इतनी धार्मिक इमारते हैं कि उनकी गिनती करना असम्भव है। बौद्ध भिक्षुकों के रहने के विहार के समीप एक स्तूप था जहाँ भगवान बुद्ध ने अपना शरीर छोड़ने का समय निकट आ जाने की सूचना दी थी। उससे आगे बढ़कर एक स्तूप था जहाँ भगवान बुद्ध व्यायाम किया करते थे। दूसरा स्तूप था जहाँ उन्होंने कुछ धार्मिक ग्रन्थ समझाए थे। एक स्तूप था जिसमें आनन्द के शरीर की आधी भस्म रक्खी थी; बाकी आधी राजगि में एक स्तूप में थी।

वैशाली के राज भवन से एक मील पश्चिमोत्तर एक स्तम्भ था जिस प सिंह बना था। इसके दक्षिण में एक तालाब था जो बानरों ने भगवान बुद्ध के लिए खोदा था। इस ह्रद (ताल) के पश्चिम में एक स्तूप था जहाँ बानरों ने वृक्ष पर चढ़ कर भगवान बुद्ध के कमण्डल को मधु (शहद से)

भर दिया था। ह्रद के दक्षिण में एक स्तूप था जहाँ बानरों ने भगवान बुद्ध को मधु अर्पण करना चाहा था।

च० द०—बसाढ़ पटना से २७ मील उत्तर को है और यहाँ एक पुरानी गढ़ी के चिन्ह हैं। गढ़ी के दक्षिण फाटक से पश्चिम की ओर दूर तक ईंटों के खेड़े चले गए हैं और यही पुराने स्तूपों की जगहें हैं। एक खेड़े के ऊपर एक मुसल्मान की कब्र है और चैत्र में यहाँ एक मेला लगता है जिसमें हजारों यात्री आते हैं। मेला सूर्य महीनों (Solar) के हिसाब से लगता है, चन्द्रमा (Lunar) के हिसाब से नहीं। इससे यह स्पष्ट है कि यह बौद्ध मेला है, मुसल्मानी मेला नहीं है।

बसाढ़ गढ़ी से दो मील उत्तर-पश्चिम एक गाँव बखर है। यहाँ एक सिंह स्तम्भ मौजूद है। स्तम्भ के दक्षिण में एक ताल है। यह वही ताल जान पड़ता है जो बानरों ने भगवान बुद्ध के लिए खोदा था। इस ताल के दक्षिण और पश्चिम में ईंटों के खेड़े पड़े हैं जो पुराने स्तूपों के जगह बताते हैं। 'मानधात्री सूत्र' से पता चलता है कि जिस कुटागार भवन में भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों को अन्तिम उपदेश दिया था वह इसी बानरों वाले तालाब के किनारे पर था।

जिस समय भगवान बुद्ध ने अपने आने वाले निर्वाण के समय की घोषणा की और वैशाली छोड़ कर जाने लगे तो वहाँ के लिच्छिवी निवासी विलाप करते हुए उनके साथ हो लिए। लगभग ३० मील तक वे उनके साथ चले गए। वहाँ भगवान बुद्ध ने उनको रोक दिया और योग बल से अपने और उनके बीच एक ऐसी खाई उत्पन्न कर दी जिसे वे पार न कर सके। वहाँ से भगवान बुद्ध ने अपना भिक्षा पात्र उन्हें दे कर बिदा कर दिया। यह स्थान केसरिया है जो बसाढ़ से ३० मील उत्तर पश्चिम में है। भिक्षा-पात्र देने के स्थान पर एक टूटा हुआ स्तूप है जिसके पास एक बड़ी खाई है।

ह्वानचाङ्ग लिखते हैं कि केसरियाँ में भगवान बुद्ध ने एक पूर्व जन्म में महादेव नामक एक चक्रवर्ती राजा होकर राज किया था।

पद्मपुराण की कथा है कि राजा वेन चक्रवर्ती की रानी कमलावती अपने पुण्य प्रताप से कमल पर खड़ी होकर नहाया करती थी। एक दिन कमल, रानी कमलावती का बोझ न सह सका और वे डूब गईं। राजा अपनी प्रजा से बहुत कम कर लिया करते थे। पीछे कर बढ़ा दिया था और प्रजा पर बड़ा

अत्याचार करने लगे थे उसी का यह फल हुआ। राजा ने भी इसके पीछे सपरिवार समाधि ले ली। रानी के निवास का स्थान वैशाली में पुराने स्तूपों के खेड़े से ६ फर्लाङ्ग पूर्वोत्तर में अब भी 'रनवास' कहलाता है और टूटे फूटे खेड़े की शक्ल में है।

वैशाली से हाल में अनेक प्राचीन वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। जिनमें मिट्टी के खिलौने और मुहरें मुख्य हैं। इन मुहरों में गुप्त सम्राट कुमार गुप्त प्रथम, गोविन्द गुप्त तथा अनेक अफसरों की ब्राह्मीलेख-युक्त मुहरें विशेष उल्लेखनीय हैं जिनसे गुप्त कालीन इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ा है। गुप्तकाल में वैशाली में मुहरें बनाने का केन्द्र था।

डाक्टर होई (Dr. Hoey) चिराँद को, जो छपरा से ६ मील पूर्व है, वैशाली समझे थे परन्तु पीछे जो खुदाई हुई है उससे बसाढ़ का वैशाली होना सिद्ध है। चिराँद के लोग उस स्थान को महाभारत के महाराज मयूर्ध्वज की राजधानी बतलाते हैं पर मयूर्ध्वज की राजधानी रतनपुर या तमलुक है। (देखिए रतनपुर और तमलुक)। चिराँद के लोग इसे च्यवन ऋषि का आश्रम भी बतलाते हैं (देखिए चौसा)। इसमें सन्देह नहीं कि चिराँद एक प्राचीन और पवित्र स्थान था।

४२७ वसुधारा तीर्थ—(देखिए बद्रीनाथ)

४२८ बाँसेडीला—(संयुक्त प्रान्त के गोंडा जिले में एक स्थान)

इसका प्राचीन नाम सेतव्या है।

यहाँ काश्यप बुद्ध का जन्म हुआ था।

यह गाँव बलरामपुर से ६ मील और श्रावस्ती (सहेट-महेट) से १७ मील पूर्व में है।

४२९ बागपत—(संयुक्त प्रान्त के मेरठ जिला में एक स्थान)

बागपत का प्राचीन नाम भागप्रस्थ है और ~~ उन पाँच ग्रामों में से एक है जिनको श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से पाण्डवों के लिए माँगा था।

बागपत मेरठ से ३० मील पश्चिम में है।

४३० बागान—(सीमाप्रान्त के बन्नू ज़िले में एक बस्ती)

इसका प्राचीन नाम कारा पथ है। महाराज रामचन्द्र ने अपने भाइयों के बाँटने में यह स्थान लक्ष्मण जी के पुत्र अङ्गद को दिया था।

बागान सिन्धु नदी पर है और काला बाग या कारो बाग भी कहलाता है।

४३१ बाघेरा—(देखिए वाराह क्षेत्र)

४३२ वाण तीर्थ—(देखिए सोमनाथ पट्टन)

४३३ वाद—(संयुक्त प्रान्त के मथुरा ज़िले में एक गाँव)

राधावल्लभी सिद्धान्त के प्रवर्तक श्री हितहरिवंश जी का यहाँ जन्म हुआ था।

[मथुरा में गोकुल के पास वाद ग्राम में सं० १५३० वि० में राधावल्लभीय सिद्धान्त के प्रवर्तक गोस्वामी श्री हित हरिवंश जी का जन्म हुआ। आप के पिता का नाम केशवदास मिश्र और माता का नाम तारावती था। ये लोग देववन्द जिला सहारनपुर)के रहने वाले थे। यात्रा को आए थे और उसमें हित हरिवंश जी का प्राकट्य हुआ था। कहते हैं कि थोड़ी अवस्था में ही श्री राधिका जी ने इन्हें गुरु मंत्र दिया था। इनका बाल्यकाल और कौमार्य अलौकिक घटनाओं से पूर्ण है। श्रीहितहरिवंश आदि ग्रन्थों में इनके विविध चरित्रों का वर्णन है। वृन्दावन में निवास कर सं० १६०६ वि० में इन्होंने निकुञ्ज धाम को गमन किया।]

४३४ वाराह क्षेत्र—(नेपाल राज्य में धौलागिरि शिखर पर एक तीर्थ स्थान)

भगवान विष्णु ने इस स्थान पर बाराह अवतार लेकर शरीर छोड़ा था। इसका दूसरा नाम कोका मुख भी है।

प्रा० क०—(मत्स्य पुराण, १६२ वां अध्याय) जहां जनार्दन भगवान बाराह रूप धारण कर सिद्ध होकर पूजित हुए हैं वह बाराह तीर्थ है।

(आदि ब्रह्मपुराण, १०५ वां अध्याय) त्रेता और द्वापर की सन्धि में पितरगण दिव्य मनुष्य रूप होकर मेरु पर्वत की पीठ पर विश्वदेवों सहित स्थिर हुए। चन्द्रमा से उत्पन्न हुई कान्तियुक्त एक दिव्य कन्या हाथ जोड़ कर उनके आगे खड़ी हुई और पितरों से बोली कि मैं चन्द्रमा की कला हूँ, तुम को वरुंगी। मैं पहले ऊर्जा नाम वाली थी, पश्चात् स्वधा हुई और अब मेरा नाम कोका है। पितृदेव उस पर मोहित हो गए। तब विश्वदेवा पितरों को योग से भ्रष्ट देख,उनको त्याग कर स्वर्ग चले गए। चन्द्रमा ने अपनी आत्मा को न देख पितरों को शाप दिया कि तुम योग से भ्रष्ट हो जाओ, और इसने जो तुम पर मोहित हो पति भाव से तुम को बरा है इस कारण से यह नदी हो कर लोक में कोका नाम से प्रसिद्ध हो और इस पर्वत के शिखर पर स्थित रहे। ऊर्जा, कोका नदी नाम से विख्यात होकर वहाँ पर वेग से बहने लगी। इसी तरह पाप युक्त होकर पितर दस हज़ार वर्ष तक वास करते रहे। सब लोक

स्वधाकार और पितरों से रहित हुए और दैत्यादि बली हो गए और विश्वदेवों से रहित पितरों को देख कर चारों ओर से घिर आए। उन्हें आते देख कोका ने क्रोध से युक्त हो अपने वेग से हिमाचल को डुबा कर पितरों को घेर लिया, परन्तु राक्षसादिक भय देने के लिए वहीं स्थित हो गए। पितर जल में दुखित हो श्री हरि की शरण में गए और उनकी बहुत स्तुति की। तब विष्णु ने दिव्य मूर्ति शूकर रूप धारण कर जल में डूबे हुए पितृगणों का उद्धार किया। वाराह जी ने कहा कि कोका के जल का पान पापों का नाश करता है। इस तीर्थ में स्नान करने वाला धन्य है। माघ मास के शुक्ल पक्ष में प्रातःकाल कोका में स्नान करे और पाँच दिन वहाँ ठहरे। एकादशी और द्वादशी वहाँ रहने योग्य है।

(नृसिंह पुराण, ३६वां अध्याय) वाराहजी ने कोका नामक तीर्थ में वाराह रूप छोड़ कर वैष्णवों के हित के लिए उसको उत्तम तीर्थ बना दिया।

(गरुड़ पुराण, पूर्वार्द्ध, ८१वां अध्याय; पद्मपुराण सृष्टि खण्ड, ११वां अध्याय; कूर्म्म पुराण, उपरि भाग, ३४वां अध्याय) कोका मुख तीर्थ सम्पूर्ण काम को देने वाला है।

(महाभारत, वनपर्व, ८७ वां अध्याय) गया की ओर कौशिकी नामक नदी है। विश्वामित्र वहीं ब्राह्मण बने थे।

(वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड ३४ वां सर्ग) विश्वामित्र ने रामचन्द्र से कहा कि कौशिकी नदी हिमवान पर्वत से निकली है और मैं उसके स्नेह से उसके पास निवास करता हूँ।

(वाराह पुराण, उत्तरार्द्ध, पहला अध्याय) कोकामुख क्षेत्र जिसको शूकर क्षेत्र भी कहते हैं भागीरथी गङ्गा के निकट है। कोका मुख के समीप मत्स्य शिला नामक एक पवित्र तीर्थ है जिसमें पर्वत के ऊपर जल की धारा गिरती है। वाराह जी बोले कि, कोका मुख हमारा क्षेत्र पाँच योजन विस्तार का है।

व० द०— वाराहक्षेत्र कोशी नदी के किनारे पर है। एक साधारण मन्दिर में चतुर्भुज वाराह जी की मूर्ति है। उत्तर ओर कोवरा नदी बहती है। कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन स्नान और जल चढ़ाने की यहां बड़ी भीड़ होती है। मेला चार दिन पहिले से चार दिन बाद तक रहता है।

कुछ लोग सोरों (जिला एटा-संयुक्त प्रान्त) को वाराह क्षेत्र कहते हैं परन्तु यह पुराणों से प्रमाणित नहीं होता। (देखिए सोरों)

बस्ती (संयुक्त प्रान्त) से ७ मील उत्तर में भी एक ग्राम बाराहक्षेत्र कहलाता है और उधर के लोग इसी को बाराह अवतार की जगह बतलाते हैं। इस बाराहक्षेत्र व सोरों में, दोनों जगह, बाराह जी के मन्दिर हैं और मेले लगते हैं।

बस्ती वाले बाराहक्षेत्र का पुराना नाम व्याघ्रपुर था। यह भगवान बुद्ध की माता, माया देवी, के पिता राजा सुपरबुद्ध की राजधानी थी और इसे कोली भी कहते थे।

बाघेरा जो अजमेर से ४७ मील पूर्व-दक्षिण राजपूताना के जयपुर राज्य में एक क़स्बा है, उसको भी बाराह क्षेत्र कहा जाता है। बाघेरा का पुराना नाम बसन्तपुर था और यहाँ एक १६०० फीट लम्बी और ६०० फीट चौड़ी झील के किनारे बाराहजी का विशाल मन्दिर खड़ा है। झील का नाम बाराह सागर है और बताया जाता है कि बाराह अवतार इस स्थान पर हुआ था। मन्दिर में चौबीसों घंटे दीप जलता है। बाराह जी के पुराने मन्दिर को औरङ्गजेब ने तोड़ डाला था इससे उसके पश्चात् यह नया मन्दिर बनवाया गया है। बाघेरा में सूकर कभी नहीं मारा जाता। लोगों का विश्वास है कि यदि किसी ने मारा तो मारने वाला बच नहीं सकता। यहाँ प्राचीन सिक्के जिन पर 'श्री आदि बाराह' खुदा है अक्सर मिलते हैं। कहते हैं कि इस स्थान का नाम सत्युग में तीर्थराज, त्रेता में रूतविज, द्वापर में बसन्तपुर और कलियुग के आरम्भ में व्याघ्रपुर था।

आर्कियालाजिकल मुहकमे के मिस्टर ए० सी० एल० कार्लायल का विचार है कि बाघेरा का प्राचीन स्थान ही बाराह भगवान के अवतार का क्षेत्र हो सकता है। वे कहते हैं कि बाराह अवतार ने हरी हुई पृथिवी को फिर से निकाला है और प्रत्यक्ष है कि बाघेरा के आस पास का देश और राजपूताना बाद को जल से बाहर निकले हैं। मेरा (लेखक का) स्वयम् भी यही विचार है। कोशी नदी के किनारे वाले बाराह क्षेत्र की पुरानी कथा भी यही बताती है कि तमाम जलमय हो गया था तब बाराह जी ने आकर वहां रक्षा की और भूमि को जल से निकाला।

नरसिंह पुराण ने कहा है कि, कोशी नदी के किनारे बाराहक्षेत्र में बाराह जी ने शरीर छोड़कर उसे पवित्र स्थान बनाया। इस से माना जा सकता है कि बाघेरा में बाराह अवतार हुआ था और बाराह क्षेत्र में उन्होंने शरीर छोड़ा

तथा रास्ते में सोरों व बस्ती के वाराह क्षेत्र में भी कुछ समय विताया हो अर्थात् यहाँ भी डूबी हुई ज़मीन जल से बाहर आई हो।

श्रीनगर (कश्मीर) से ३२ मील बरामुला में भी वाराह अवतार का होना बतलाया जाता है। यह निश्चय है कि कश्मीर की घाटी एक समय जल से भरी हुई थी और भूमि भी पीछे जल से बाहर आई है।

पद्मपुराण की कथा है कि चम्पावती नगर के राजा चन्द्रसेन ने एक मृग के आखेट में बाण मारा परन्तु निकट जाकर देखा तो मृग के स्थान पर एक वृद्ध तपस्वी को तड़पते पाया। ऋषि के श्राप से उनका सारा शरीर काला पड़ गया। मात्रि ऋषि के कहने पर चन्द्रसेन ने बसन्तपुर में वाराह सागर में स्नान करके आरोग्य लाभ किया था। बाघेरा (बसन्तपुर) से एक मील पर एक ताल है जिसे सनकादिक ऋषि का कुण्ड कहते हैं। बाघेरा में कई प्राचीन मन्दिरों के चिन्ह हैं और मिली हुई एक नदी बहती है जिसे डांगर नदी कहते हैं। कहा जाता है कि यह पुराणों की बावा नदी है।

चम्पावती नगर (जहाँ के राजा चन्द्रसेन थे) का वर्तमान नाम चातसू है और यह जगह इन दिनों जयपुर राज्य में, जयपुर से २५ मील दक्षिण है। यह स्थान बहुत प्राचीन है और कहा जाता है कि इसे तम्बावती भी कहते थे।

चित्तौड़ से ११ मील उत्तर एक अति प्राचीन स्थान नगरिया है। यही प्राचीन तम्बावती है जिसे राजा हरिश्चन्द्र ने बसाया था। (देखिए नगरिया)

४३५ बालाजी—(मद्रास प्रान्त के उत्तरी अर्काट ज़िले में तिरुपती क़स्बे से ६ मील दूर एक प्रख्यात मन्दिर)

शुक, भृगु, प्रह्लाद, अम्बरीष आदि महर्षियों ने यहाँ तप किया था।

इसका दूसरा नाम वेंकटगिरि है। वेंकटेश्वरनारायण तथा बालाजी विश्वनाथ की मूर्तियों को यहाँ स्वामी रामानुजाचार्य ने स्थापित किया था।

कहा जाता है कि श्रीरामचन्द्र, सीता व लक्ष्मण लङ्का से लौटती समय यहाँ एक रात्रि ठहरे थे।

बलदेव जी यहाँ आए थे।

प्रा० क० (श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध, ७६ वां अध्याय) बलदेव जी श्री शैल से चलने के पश्चात् द्रविड़ देश में परम पवित्र श्री वेंकट पर्वत का दर्शन करके काञ्चीपुरी में गए।

रामानुज स्वामी के शिष्य अनन्ताचार्य ने अपनी 'श्री वेंकटाचल इतिहास माला' नामक संस्कृत पुस्तक में वेंकटेश जी का प्राचीन वृत्तान्त लिखा है कि

स्वर्णमुखरी के तीर पर वैङ्कटाचल नामक पर्वत है जिसके ऊपर सिद्ध और मुनिजन तप करते हैं। इस पर चांडाल, यवन आदि, वेद, से बाह्यलोग चढ़ नहीं सकते। शुक्र, भृगु, प्रह्लाद आदि महर्षि और राजर्षिगण पर्वत को विष्णु का अंश समझकर उस पर नहीं चढ़े। उन्होंने उसके निकट तप किया था। पर्वत के ऊपर स्वामिपुष्करणी के पश्चिम किनारे पर पृथिवी को अङ्क में लिए हुए शूकर भगवान स्थित हैं।

गरुड़ ने वैकुण्ठ से वैङ्कटाचल को लाकर द्रविड़ देश में स्वर्ण मुखरी नदी के तट पर रक्खा और भगवान की क्रीड़ा वापी स्वामिपुष्करणी को भी लाकर उस पर स्थापित किया। वैङ्कटगिरि पर लक्ष्मी देवी, पृथिवीदेवी और नीलादेवी के सहित विष्णु भगवान विराजने लगे।

विष्णु भगवान वैवस्वत मन्वन्तर के प्रथम सत्युग में वायु के तप से प्रसन्न होकर गङ्गा से दो सौ योजन दक्षिण और पूर्व के समुद्र से पाँच योजन पश्चिम में वैङ्कटगिरि के ऊपर स्वामिपुष्करणी के तट पर, सूर्य मंडल के तुल्य विमान (मन्दिर) में लक्ष्मी और देवताओं के सहित आ विराजे। वह कल्प के अन्त-तक उस विमान में निवास करेंगे। भगवान की आज्ञा से शेष जी ने पर्वत रूप अर्थात् वैङ्कटगिरि बन कर पृथिवी पर निवास किया।

व० द०—चिपदी क़स्बे से लगभग १ मील दक्षिण स्वर्णमुखी नदी बहती है। तिरूमला पहाड़ी के ऊपर की तिरूपदी जहाँ बाला जी का प्रसिद्ध मन्दिर है, बसी है। रामानुज स्वामी के सम्प्रदाय की पुस्तक 'प्रपन्नामृत' के ५१ वें अध्याय में लिखा है कि श्रीरामानुज स्वामी ने वैङ्कटाचल के पास गोविन्दराज को स्थापित किया था। गोविन्दराज भुजङ्ग पर शयन किए हुए विष्णु की मूर्ति हैं। गोविन्दराज के मन्दिर के पास भी भट्टनाथ दिव्य सूरि की कन्या गोदा देवी का मन्दिर है जिसको रामानुज स्वामी ने स्थापित करवाया था। वैङ्कटाचल की चोटी समुद्र के जल से लगभग २५०० फ़ीट ऊँची है। तिरूपदी से ६ मील पर श्री बाला जी का मन्दिर है। जूता पहिन कर पहाड़ के ऊपर कोई नहीं जाता। बाला जी का मन्दिर पत्थर की तीन दीवारों से घिरा हुआ है। मन्दिर का हाता ४१० फीट लम्बा और २६० फीट चौड़ा है।

बाला जी को दक्षिण भारत के लोग वेङ्कटेश, वेङ्कटाचल पदी आदि नामों से पुकारते हैं किन्तु उत्तरी भारत के अधिक लोग उनको बाला जी कहते हैं। इनकी झांकी अतिमनोहर है।

बालाजी में राजसी कारखाना है। भोग-राग का खर्च बे हिसाब है। चौखट किंवाड़ों में चांदी-सोना के पत्तर जड़े हुए हैं। प्रतिवर्ष दशहरे के दिन बड़े धूम धाम से रथयात्रा होती है। हर साल लगभग एक लाख पचीस हजार यात्री श्री वैङ्कटेश भगवान का दर्शन करते हैं।

मन्दिर के पास १०० गज लम्बा और ५० गज चौड़ा स्वामिपुष्करणी नामक एक सरोवर है जिसके चारों तरफ पत्थर काट कर सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। यात्री लोग उसी में स्नान करके बाला जी का दर्शन करते हैं। बद्रीनारायण के समान यहाँ भी प्रसाद में छूत नहीं है।

मन्दिर के पास हुंडी नाम से प्रसिद्ध एक तरह के हौज के समान एक पात्र बना है जिसका मुख ऊपर से बन्द है। रुपया, पैसा, गहना, सोना, चांदी, धान्य, मसाला, केसर, फूल, फल, इत्यादि वस्तु जो जिसके मन में आता है, वह इस हुंटी में डाल देता है जिसको नियत समय पर मन्दिर के अधिकारी निकाल लेते हैं। बहुतेरे व्यापारी या दूसरे लोग अपने घर में बालाजी के निमित्त रुपए पैसे निकालते हैं जिसको कानगी कहते हैं। मन्दिर की वार्षिक आमदनी लगभग दो लाख रुपया है। खर्च भी भारी है।

बालाजी से ३ मील दूर, पहाड़ी की ऊँची-नीची चढ़ाई उतराई के बाद पापनाशिनी गङ्गा मिलती है। दो पहाड़ियों के बीच में बहती हुई धारा दूर से आई है और यहाँ पहाड़ी पर ऊपर से नीचे गिरती है। उसके नीचे यात्री लोग खड़े होकर स्नान करते हैं।

४३६ वाल्मीकि आश्रम—(देखिए विठूर)

४३७ वासर या वासिर—(पंजाब प्रान्त के जिला अमृत सर में एक स्थान)

यहाँ सिक्खों के तीसरे गुरु श्री अमरदासजी का जन्म हुआ था।

[संवत् १५३६ वि० में वासिर गाँव में तेजमान भल्ले खत्री के घर श्री सुलक्षणीदेवी के उदर से गुरु अमरदास जी का जन्म हुआ था। यह वैष्णव थे और बड़े आचार विचार से रहते थे पर हृदय [illegible] शान्ति नहीं मिलती थी। इसी प्रकार ६० साल बीत गए। एक दिन [illegible] कान में प्रातःकाल कुछ सुन्दर शब्द की मधुर ध्वनि पड़ी। यह शब्द इनके भाई के घर से आ रहे थे। वहाँ जाकर मालूम हुआ कि इनके भाई के लड़के की नव विवाहिता स्त्री गा रही थी। उसने बताया कि ये शब्द गुरु नानक के थे जिनकी गद्दी पर उस समय उसके पिता श्री अङ्गददेव जी विराजमान थे। यह तुरन्त जाकर

अङ्गददेव जी के शिष्य हो गए और रात दिन खडूर साहेब में उनकी सेवा में लग गए।

अपने हाथ से यह तीन मील से जल लाकर गुरु को स्नान कराया करते थे। एक दिन रात्रि के समय अंधेरे में पैर फिसल गया और एक जुलाहे के घर के सामने यह मय घड़े के गिर पड़े। उसने अपनी स्त्री से पूछा, इस समय कौन गिरा। वह बोली। 'वही होगा अमरू निथावां (निघरा), उसके न घर है न घाट, इसी से न रात का होश है न दिन का होश'। इस घटना की सूचना गुरु अङ्गददेव जी तक भी पहुँची। उन्होंने इन्हें छाती से लगा लिया और उस दिन उस जल से आप स्नान न करके अपने हाथ से अमरदास जी को स्नान कराया और गुरुआई की गद्दी उनको देकर बोले कि यह 'अमरूनिथावां' नहीं, यह आज से श्री गुरु अमरदासजी निथावों के थान होंगे। १६०८ वि० में गुरू अमरदास जी गद्दी पर बैठे। आपने खडूर साहब को छोड़ कर गोइँदवाल को अपना निवास स्थान बनाया और १६३१ में परलोक गमन किया।]

बासिर में एक सिक्ख गुरुद्वारा है।

४३८ बिठूर—(संयुक्त प्रान्त के कानपुर जिले में एक तीर्थ स्थान)

बिठूर ब्रह्मावर्त तीर्थ करके प्रसिद्ध है।

इसका नाम बर्हिष्मती पुरी भी था और अन्य प्राचीन नाम उत्पलारण्य, प्रतिष्ठान तथा उत्पलावत्कानन हैं।

राजा स्वायम्भुव मनु और ध्रुव जी का जन्म बिठूर में हुआ था।

बिठूर राजा मनु की राजधानी थी।

ध्रुव के पिता उत्तानपाद की भी यही राजधानी थी। (पर देखिए लौरिया नवन्दगढ़)

पृथिवी को रसातल से ले आने के पश्चात् शरीर कँपाते समय श्री बराह भगवान के रोम झड़ कर यहाँ गिरे थे।

राजा पृथु ने यहाँ यज्ञ किए थे।

बिठूर से ६ मील पर बेलारुद्रपुर में महर्षि वाल्मीकि का जन्म हुआ था। इसी स्थान पर महर्षि का निवास और कुटी थी। सीता जी, रामचन्द्र जी द्वारा बनवास दिए जाने पर यहीं रही थीं। लव और कुश का जन्म इसी बेलारुद्रपुर में हुआ था। यहीं वाल्मीकि जी द्वारा आदि-ग्रन्थ रामायण की रचना हुई थी।

[स्वायम्भुव के पुत्र उत्तानपाद के सुनीति और सुरुचि नामक दो स्त्रियाँ थीं। सुनीति से ध्रुव और सुरुचि से उत्तम उत्पन्न हुए। राजा सुरुचि को चाहते थे और उसके पुत्र को खिला रहे थे। ध्रुव भी आकर अपने पिता की गोद में बैठ गए। सुरुचि ने इन्हें उतरवा दिया। ध्रुव रोते हुए अपनी माता के पास गए। वह निस्सहाय थीं केवल रोने लगीं और ध्रुव को परमात्मा की ओर मन लगाने की शिक्षा दी। ध्रुव पाँच ही वर्ष के बालक थे, पर वह घर से निकल पड़े। देवर्षि नारद ने इन्हें भगवान के आराधना की शिक्षा दी। मथुरा जाकर ध्रुव ने आराधना की और भगवान के दर्शन पाए। उन्होंने इन्हें वह स्थान दिया जो संसार में किसी ने नहीं पाया। भगवान ने इन्हें लौट जाकर राज्य करने को कहा और यह अपने पिता के पास लौट कर चले गए। इनके पहुँचने पर इनके पिता इन्हें सिंहासन देकर स्वयम् वन में वास करने को चले गए।]

[महर्षि वाल्मीकि का जन्म अंगिरा गोत्र के ब्राह्मण कुल में हुआ था पर डाकुओं के संसर्ग में रहकर यह लूट मार और हत्यायें करने लगे। एक दिन नारदजी चले आ रहे थे, यह देखते ही उन पर झपटे। उनके पास केवल वीणा थी उसे छीन लिया। उसका उपयोग न समझ इन्होंने नारदजी को उसे देकर कहा कि इसका क्या करते हो सो करो। नारद जी ने हरिकीर्तन सुनाया और वाल्मीकिजी का हृदय पिघल गया। नारदजी ने इन्हें राम नाम की शिक्षा दी और न जानें कितने वर्ष एक ही जगह बैठ कर यह नाम के रटन में निमग्न हो गए। उनके सम्पूर्ण शरीर पर दीमक का पहाड़ सा जम गया। दीमकों के घर को 'वाल्मीक' कहते हैं, इसी से इनका नाम वाल्मीकि पड़ गया, पहिले नाम रत्नाकर था। संसार में लौकिक छन्दों के आदि कवि यही हैं। सीता जी ने अपने अन्तिम वनवास के दिन इन्हीं महर्षि के आश्रम में बिताये थे और वहीं लव और कुश का जन्म महारानी सीता से हुआ था।]

व० द०—बिठूर गङ्गा के दाहिने किनारे पर स्थित है। पुराने बिठूर में ब्रह्मघाट प्रधान है। गङ्गा के खास घाट की सीढ़ियों पर लगभग एक फुट ऊंची लोहे की कील खड़ी हुई है। इसको पंडा लोग ब्रह्मा की खूंटी कहते हैं। स्मृतियों में सरस्वती और दृषद्वती नदियों के मध्य के देश को जो अम्बाले जिले में है ब्रह्मावर्त देश लिखा है किन्तु ब्रह्मावर्त तीर्थ करके बिठूर ही प्रसिद्ध है।

ब्रह्मा वर्तघाट से करीब दो मील दक्षिण बर्हिष्मतीपुरी है, जिसमें मनु की उत्पत्ति हुई और किला था जिसको लोग बरद्दट भी कहते हैं। ब्रह्मावर्त घाट से थोड़ा उत्तर ध्रुव किला नामक ध्रुव के स्थान का टीला है।

बिठूर से ६ मील पश्चिम-गङ्गाजी से डेढ मील दक्षिण, वैलारुद्रपुर एक बस्ती है, जिस को पूर्वकाल में बैलव कहते थे। बैलव का अपभ्रंश वैलव और वैलव से बैला होगया है। लोग कहते हैं कि बैलारुद्र पुर महर्षि वाल्मीकि की जन्मभूमि है। यहाँ एक पुराना कूप है। ऐसा प्रसिद्ध है कि वाल्मीकि जब वधिक का काम करते थे तो इसी कूप में छिप कर रहते थे। वहाँ से दो मील दक्षिण तमसा नदी है जिसे लोन नदी भी कहते हैं।

कहा जाता है कि जब लक्ष्मण गङ्गा के तीर सीता को छोड़कर अयोध्या चले गए तब महर्षि वाल्मीकि के शिष्यों ने वैलारुद्रपुर से डेढ मील दूर वर्तमान बरुआ गाँव के निकट गंगा के तीर पर सीता को देखा और यह समाचार मुनि को जा सुनाया। मुनि ने बरुआ के निकट आकर जब सीता को नहीं पाया तब उनको खोजते वे गङ्गा के तीर तीर पश्चिम को चले। उन्होंने वहाँ से एक मील दूर जहाँ खोजकीपुर गाँव है गंगा के किनारे सीता को पाया। उस स्थान पर गंगा का किनारा ऊँचा था इसलिए मुनि ने गर्भवती जानकी को वहाँ ऊपर नहीं चढ़ाया किन्तु उसके एक मील आगे, तरी गाँव के समीप वह उनको ऊपर चढ़ाकर वैलारुद्रपुर अपने आश्रम में लाये। जब जानकी के यमज पुत्र जन्मे तब महर्षि वाल्मीकि ने इस गाँव के स्थान को उत्पन्न बन का जङ्गल होने से मन्त्र से कील दिया था, इस कारण अब तक इस गाँव के सम्पूर्ण निवासी निर्भय रह कर अपने मकानों में किवाड़ नहीं लगाते हैं। किवाड़ लगाने वाला सुखी नहीं रहता। चोर गाँव में चोरी नहीं करता है। यहाँ ही महर्षि वाल्मीकि जी ने आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण को बनाया था इससे अब तक उस स्थान का दर्शन करने बड़े बड़े लोग जाते हैं।

बिठूर में अहल्या बाई और बाजीराम पेशवा के बनवाए कई एक घाट हैं और घाटों के ऊपर अनेक देव मन्दिर बने हुए हैं। इनमें वाल्मीकेश्वर शिव का मन्दिर प्रधान है। बिठूर में प्रति वर्ष कार्तिक पूर्णिमासी को गंगा स्नान का बड़ा मेला १५ रोज रहता है।

गंगा के किनारे एक पुराने किले के अवशेष, ध्रुव के पिता उत्तानपाद के किले के टुकड़े कहे जाते हैं।

४३९ बिन्दुसर—(देखिए गंगोत्री, भुवनेश्वर व पवित्र सरोवर)

४४० विपुलाचल पर्वत—(देखिए राजगृह)

४४१ विरहना—(राजपूताने के जयपुर राज्य में सांभर के पास एक स्थान)

यहाँ दादूजी का देहान्त हुआ था।

दादू पन्थी सम्प्रदाय का यह मुख्य स्थान है।

४४२ विसपी—(विहार प्रान्त के दरभँगा जिले में एक स्थान)

यहाँ कवीन्द्र महात्मा विद्यापति का जन्म हुआ था।

[महामहोपाध्याय विद्यापति ठाकुर का जन्म मैथिल ब्राह्मण कुल में सम्वत् १४२० वि० के लगभग विसपी में हुआ था। यह पूर्ण महात्मा थे और इनके पद मिथिला में काम काज के अवसर पर गृहस्थों के यहाँ गाए जाते हैं। बिहारी और बंगाली इनकी कविता को परमपूज्य दृष्टि से देखते हैं। हिन्दी मे पहले नाटककार विद्यापति जी ही हैं। इनकी कविता चैतन्य महाप्रभु को बहुत प्रिय थी और वह पूर्वीय प्रान्तों के गले का हार हो रही है। विद्यापतिजी दीर्घायु हुए थे।]

४४३ विहार—(विहार प्रान्त के पटना जिला में एक कस्बा)

इसके प्राचीन नाम उद्दण्डपुर, दण्डपुर, व यशोवर्मनपुर हैं।

प्रा० क०—यहाँ दण्डी सन्यासियों को बड़ी आबादी थी। कहा जाता है कि एक सन्यासी के योग बल की प्रशंसा सुनकर एक मुसल्मान पीर ने उन्हें भ्रष्ट करने को गोमांस का भोजन भेजा। सन्यासी ने धन्यवाद सहित उसे वापस कर दिया। जब वह खोला गया तो सब मिठाई निकली।

यह स्थान १२०० ई० में मगध की राजधानी था। विहार प्रान्त की राजधानी १५४१ ई० तक विहार नगर में ही थी। इसी वर्ष शेरशाह ने यहाँ से हटाकर पटना राजधानी बनाई।

पालवंश के प्रथम राजा गोपाल ने विहार में एक बड़ा बौद्धमठ बनवाया था। सातवीं शताब्दी में जब ह्वेनसांग भारत आए तो उन्होंने यहाँ चन्दन की लकड़ी की बनी हुई बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की मूर्ति को देखा था।

य० द०—विहार नगर का असल नाम यशोवर्मनपुर था, पर यशोवर्मनपुर के बजाय लोग इस स्थान को जयपुर कहने लगे और यहाँ एक बहुत बड़ा विहार होने के कारण इसका नाम दंड विहार हो गया जो पीछे केवल विहार कहलाने लगा।

अब एक लांबी पतली सड़क के किनारे यह कस्बा बसा है। पुराने वड़प्पन के चिन्ह सब तरफ टूटे-फूटे दिखाई देते हैं और भरे पड़े हैं।

एक दूसरा विहार गांव, बङ्गाल प्रान्त के बोगरा जिले में है। यह पुराना बौद्ध विहार था और यहाँ विहारों के खंडहर पड़े हैं। यह विहार भासु-विहार के समीप है। (देखिए भासु विहार)

४४४ बीदर—(हैदराबाद राज्य में एक जिले का सदर स्थान)

यह स्थान प्राचीन विदर्भ नगरी है।

इसका दूसरा प्राचीन नाम वैदूर्य्य पट्टन है। इसी के समीप अरुण ऋषि का अरुणाश्रम था।

सुप्रसिद्ध विदर्भ देश के राजा, दमयन्ती के पिता और राजा नल के श्वसुर भीम की यह राजधानी थी।

प्रा० क०—विदर्भ देश आधुनिक बरार व खान्देश प्रदेश है।

(महा भारत, अरण्यपर्व,५३ वां अध्याय) विदर्भ नगरी में एक अति पराक्रमी राजा भीम था। एक समय महर्षि दमनक राजा के समीप आए और उनके बरदान से राजा के एक कन्या और तीन पुत्र उत्पन्न हुए। कन्या का नाम दमयन्ती रक्खा गया और उसके रूप की प्रशंसा चारों ओर फैल गई। निषधदेश (नरवार) में राजा वीरसेन के पुत्र राजा नल थे। राजा नल दमयन्ती की प्रशंसा सुनकर उस पर मोहित थे। दमयन्ती ने भी नल के यश का गान सुना था। एक समय कुछ सुवर्ण के हंस जङ्गल में आए। वहीं उस समय राजा नल दमयन्ती के प्रेम में व्याकुल होकर चले गए थे, और उन्होंने एक हंस को पकड़ लिया। हंस ने नल से अपने छोड़े जाने की प्रार्थना की और कहा कि यदि वह उसे छोड़ देगा तो वह दमयन्ती से जाकर उस की प्रशंसा करेगा। नल ने हंस को छोड़ दिया और वह उड़ कर दमयन्ती के उपवन में जा पहुँचा। ऐसे सुन्दर हंस को देख कर दमयन्ती ने उसे पकड़ने का प्रयत्न किया। हंस ने नल के गुण वर्णन करके दमयन्ती से कहा कि पृथिवी पर उसके समान पुरुष नहीं है और वह उसी को बरे।

राजा भीम ने दमयन्ती का स्वयम्बर रचा। उसमें सब स्थानों के राजाओं को निमन्त्रण दिया गया था। इन्द्र, वरुण यम और अग्नि भी दमयन्ती के पाने की लालसा से पहुँचे परन्तु दमयन्ती ने नल ही के गले में माला डाली और दोनों का विवाह हो गया।

व० द०—बीदर एक पुराना कस्बा है। मुसलमानों के समय में बाहमी-राज्य के टूटने पर यह एक स्वतंत्र राज्य बन गया था।

रुक्मिणी के पिता राजा भीष्म भी विदर्भ देश के राजा थे। पर उनकी राजधानी कुण्डिनपुर मानी जाती है। (देखिए कुण्डिनपुर)। विदर्भ देश का दूसरा प्रसिद्ध नगर भोजकट पुर था। पुराणों में उल्लिखित भोज राजा यहीं रहते थे। यह स्थान अब भोजपुर कहलाता है जो भोपाल राज्य में भिलसा से ६ मील पर है। उन दिनों विदर्भ देश वर्तमान भूपाल तक फैला हुआ था। श्रीकृष्ण से पराजित होकर रुक्मिणी के भाई रुक्मी ने नर्मदा नदी के उस पार भोजकटपुर को बसाया था।

४४५ बीरसिंह—(बङ्गाल प्रान्त के मेदिनीपुर जिले में एक स्थान)

यहाँ दया मूर्ति ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का जन्म हुआ था।

[सन् १८२० ई० में बीरसिंह ग्राम में श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम ठाकुरदास बन्द्योपाध्याय था। स्त्रियों की दशा सुधारने का बीड़ा हिन्दू समाज में आपने अपने समयमें उठाया था। उनकी अधोगति आपसे देखी न गई। आपने बालिकाओं के लिए ५०-६० स्कूल खोले। विद्यादान और दीन सेवा आपके जीवन की मुख्य वासना थी। विद्यासागर की परोपकारिता और दानशीलता इनके अमर यश की स्तम्भ शिला है। दीन की दरिद्रता और विधवा का दुःख इनके लिए सर्वथा असह्य था। १८११ ई० में आपका परलोक गमन हुआ।

४४६ वृन्दावन—(देखिए मथुरा)

४४७ वृषभानुपुर—(देखिए मथुरा)

४४८ बेटद्वारिका—(कच्छ की खाड़ी में बड़ौदा राज्य के अन्तर्गत एक टापू व ग्राम)

बेटद्वारिका श्रीकृष्ण का विहार स्थल माना जाता है।

यहाँ श्रीकृष्ण ने शङ्खासुर को मारा था।

बेटद्वारिका टापू के उत्तरी किनारे के पास बेटद्वारिका ग्राम है। यहाँ बड़े घेरे के भीतर दो मँजिले, तिमँजिले पाँच महल बने हैं। घेरा पूर्व से पश्चिम को लगभग ६० फीट लम्बा और उत्तर से दक्षिण को लगभग ६० फीट चौड़ा है। रणछोड़जी, अर्थात् श्रीकृष्ण, के महलों के दक्षिण सत्यभामा और जाम्बवती के महल; पूर्व, साक्षी गोपाल का मन्दिर; उत्तर रुक्मिणी और राधा के महल हैं। जाम्बवती के महल में जाम्बवती के मन्दिर के पूर्व लक्ष्मीनारायण

का मन्दिर है, और रुक्मिणी के महल में रुक्मिणी के मन्दिर से पूर्व गोवर्धन नाथ का मन्दिर है। सब मन्दिरों के किवाड़ों में चाँदी के पत्तर लगे हैं, छतों में झाड़ लटकते हैं, मूर्तियों की झाँकी मनोरम है सत्यभामा, जाम्बवती, रुक्मिणी और राधा इन चारों के भंडार कारखाने तथा भंडार के मालिक अलग-अलग हैं। चारों महलों के भंडारों से भाँति-भाँति के भोग की सामग्री नियमित समयों पर बनाकर रणछोड़ जी के मन्दिर में भेजी जाती है। वहाँ दिन रात में १३ बार भोग लगता है।

बेटद्वारिका में गोमती द्वारिका (अर्थात द्वारिका) से अधिक राग भोग का प्रबन्ध रहता है। दिन रात में नौ बार आरती लगती है। नित्य मन्दिरों के पट १२ बजे दिन में बन्द हो जाते हैं और ४ बजे खुल कर फिर रात में ६ बजे के बाद बन्द होते हैं।

श्री कृष्ण के महल से लगभग डेढ़ मील दूर बेट द्वारिका के टापू के भीतर शङ्खोद्धार नामक तीर्थ में शङ्ख तालाब नामक पोखरा और शङ्खनारायण का सुन्दर मन्दिर है। सिंहासन तथा मन्दिर के किवाड़ों में चांदी के पत्तर लगे हैं। पंडा लोग कहते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान ने इस स्थान पर शंखासुर का उद्धार किया था। इसीलिए इसका नाम शङ्खोद्धार तीर्थ हुआ।

खाड़ी से लगभग दो मील दक्षिण-पश्चिम गोमती द्वारिका के मार्ग में गोमती द्वारिका से १३ मील पूर्वोत्तर गोपी तालाब नामक कच्चा सरोवर है। मार्ग में पीले रङ्ग की भूमि पड़ती है। गोपी तालाब के भीतर की पीतरङ्ग की मिट्टी ही पवित्र गोपीचन्दन है।

४४९ बेताल वरद—(देखिए रामेश्वर)

४५० बेललिमास—(देखिए उडूपीपुर)

४५१ बेसनगर—(मध्य भारत के भोपाल राज्य में एक स्थान)

इसे राजा रुक्माङ्गद ने बसाया था और इसका प्राचीन नाम विश्वनगर था। चितियागिरि और बेश नगर भी इसके नाम थे।

कथा है कि विष्णु का विमान यहाँ रुका था।

प्रा० क०—[परम भागवत महाराज रुक्माङ्गद अयोध्या के महाराज ऋतध्वज के पुत्र थे। यह इक्ष्वाकुवंश में बड़े प्रतापी राजा हो गए हैं। राज्य करते-करते थक कर अपने पुत्र धर्माङ्गद को राज्य देकर ये हिमालय की ओर तप करने चले गए पर एक अप्सरा विश्वमोहिनी पर आसक्त हो गए और उसके नाम से विश्व नगर बसा कर उसके साथ उसमें निवास करने लगे थे।]

एक बार विष्णु भगवान का विमान विश्व नगर केकांटों में रुक गया और यह कहा गया कि जिसने एकादशी का व्रत किया हो वही उसे कांटों से छुड़ा पायेगा। वह दिन एकादशी का था। एक तेलिन जो अपने पति से लड़ कर भूखी रह गई थी, वही उस विमान को छुड़ा सकी और विष्णु भगवान की आज्ञा पाकर विमान का एक पाया पकड़ उसके साथ स्वर्ग को चलने लगी। इस पर राजा रुक्माङ्गद और समस्त नगरवासी विमान के पाए को पकड़ कर स्वर्ग को चले गए।]

महाराज अशोक पटना से उज्जैन जाते समय वेसनगर में ठहरे थे। बुद्ध घोष ने इस स्थान का नाम 'वेशनगर' लिखा है पर महावंश में इसको 'चितियागिरि' कहा गया है।

वेसनगर प्राचीन दशार्ण देश की राजधानी था। अशोक ने यहाँ के सर्दार की 'देवी' नामक पुत्री से विवाह किया था, जिससे महेन्द्र और संघ मित्रा पैदा हुए थे जिन्हें धर्म्म प्रचारार्थ अशोक ने लङ्का भेजा था।

व० द०—वेसनगर, वेतवा और वेस नदियों के बीच में बसा है। दोनों नदियों का सङ्गम त्रिवेणी कहलाता है क्योंकि वेतवा नदी की एक और शाखा यहाँ मिली है। त्रिवेणी से आध मील पर पहाड़ी चट्टान में दो चिन्ह हैं जिन्हें विष्णु का चरण चिन्ह माना जाता है। कार्तिक कृष्ण पक्ष की एकादशी को यहाँ बड़ा मेला लगता है।

पुराने नगर के चिन्ह पाँच मील के घेरे में हैं और कितनी ही मूर्त्तियाँ यहाँ मौजूद हैं जिनमें एक सात फुट की, एक स्त्री की मूर्त्ति है। यह शायद उसी तेलिन की है जिसने भगवान विष्णु के विमान को कांटों से छुड़ाया था। यह नगर भारत के प्राचीन नगरों में से एक है।

४५२ वैजनाथ—(देखिए वैद्यनाथ)
४५३ वैलारुद्रपुर—(देखिए विठूर)
४५४ वोधिगया—(देखिए गया)
४५५ वोरास—(देखिए सरहिन्द)
४५६ ब्रजमण्डल—(देखिए मथुरा)
४५७ ब्रह्मपुरी—(देखिए मान्धाता)
४५८ ब्रह्मा की वेदी—(ब्रह्मा की पाँच वेदी हैं)
पूर्व वेदी—गया: पच्छिम वेदी—पुष्कर (अजमेर) : उत्तर वेदी—समन्त

पञ्चक (कुरुक्षेत्र) : दक्षिण वेदी—विर्जा (जाजपुर): मध्य वेदी प्रयाग (इलाहाबाद) ।

४५९ ब्रह्मावर्त—(सरस्वती तथा दृसद्वती नदियों के मध्य का प्रदेश) आर्य्य लोग सबसे पहले यहीं बसे थे और इसके पश्चात् ब्रह्मर्षि देश पर फैले। ब्रह्मावर्त का दूसरा नाम कुरुक्षेत्र भी हुआ । ब्रह्मर्षि देश, ब्रह्मावर्त और यमुना के बीच का प्रदेश था जिसमें मत्स्य, पान्चाल और सूरसेन के प्राचीन राज्य थे।

ब्रह्मावर्त वर्तमान थानेसर, कर्नाल, सोनपत व पानीपत की भूमि है।

४६० ब्लैकपोल—(देखिए लङ्का)

भ

४६१ भड़ौच—(देखिए शुक्ल तीर्थ)

४६२ भद्रसा—(देखिए अयोध्या)

४६३ भदरिया—(बिहार प्रान्त के भागलपुर जिला में एक बस्ती) इस स्थान का प्राचीन नाम भद्दिय है।

बौद्ध धर्म की सुप्रसिद्ध भिक्षुनी विशाखा की यह जन्मभूमि है। अन्तिम तीर्थङ्कर श्री महावीर स्वामी ने दो चौमास यहाँ निवास किया था।

भगवान बुद्ध ने भद्दिय में तीन मास व्यतीत किए थे।

[विशाखा, अङ्ग देश के कोटाध्यक्ष धनञ्जय की पुत्री थीं । जब यह सात साल की थीं तब भगवान बुद्ध ने भद्दिय के जातियावन विहार में ३ मास निवास किया था। इसी समय इन पर भगवान बुद्ध का प्रभाव पड़ा था। विशाखा के पिता इसके पश्चात् साकेत चले आए क्योंकि अङ्गदेश को मगध के सम्राट ने जीत लिया और अपने राज्य में मिला लिया था। विशाखा का विवाह श्रावस्ती (सहेट महेट) के कोटाध्यक्ष के पुत्र पूर्णवर्धन या पुन्यवर्धन के साथ हुआ था। बौद्ध धर्म में भगवान बुद्ध की माता और पत्नी को छोड़ कर दूसरा कोई स्त्री इतनी प्रसिद्ध नहीं है। श्रावस्ती का सुविख्यात पूर्वाराम-विहार इन्हीं देवी का बनवाया हुआ था।]

भदरिया, भागलपुर से ८ मील दक्षिण है।

४६४ भद्दिया—(देखिए साँची व अयोध्या)

४६५ भद्दिलपुर—(देखिए साँची)

४६६ भरतकुण्ड—(देखिए अयोध्या)

४६७ भरत कूप—(देखिए चित्रकूट)

४६८ भरद्वाजाश्रम—(देखिए इलाहाबाद)

४६९ भवन—(देखिए कांगड़ा)

४७० भविष्यवद्री—(हिमालय पर्वत पर संयुक्त प्रान्त में गढ़वाल में एक स्थान)

महर्षि अगस्त्य ने इस स्थान पर तपस्या की थी।

अग्नि ने यहाँ तप किया था।

प्रा० क०—(स्कन्द पुराण, केदार खंड, ५८ वाँ अध्याय) गन्धामादन के दाहिने भाग में धवली गङ्गा के तट पर भविष्य बद्री है। पूर्वकाल में महर्षि अगस्त्य ने इस स्थान पर हरि की आराधना की थी। उस स्थान पर दो पवित्र धारा हैं जिसमें एक धारा का जल गर्म है। इस स्थान पर अग्नि ने तप किया था।

व० द०—जोशीमठ से ६ मील पूर्व तपोवन है। उस देश के लोग कहते हैं कि हनुमानजी ने इसी स्थान पर कालनेमि राक्षस को मारा था। तपोवन से ५ मील दूर धवली गङ्गा के निकट पंचबद्री में से एक, भविष्य बद्री, का मन्दिर है जिसको तपबद्री भी कहते हैं।

तपोवन से दक्षिण की ओर काठ गोदाम है। उस मार्ग से भोटियें व्यापारी जो खास करके शोके कहलाते हैं और पुराणों में शक लिखे गए हैं, जानवरों पर जिन्स लाद कर व्यापार करते हैं। भोटिए लोग भारत, नैपाल और तिब्बत इन तीनों देशों की सीमाओं के निकट और सीमाओं पर बसे हैं। भोट देश में व्यास जी ने तप किया था। इसलिए उस देश को व्यासखंड भी कहते हैं। कैलास पर्वत और मानसरोवर उस देश के निटक हैं। महाभारत शान्ति पर्व के ३२७ वें अध्याय में लिखा है कि कि व्यासदेव हिमालय की पूर्व दिशा का अवलम्बन करके विविक्त पर्वत पर शिष्यों को वेद पढ़ाते थे। उनके पुत्र शुकदेव उस आश्रम में गए।

४७१ भाल तीर्थ—(देखिए सोमनाथ पः.)

४७२ भासु विहार—(पाकिस्तान बंगाल के बोगरा जिले में एक स्थान)

यहाँ भगवान बुद्ध ने देवजनों को उपदेश दिया था। पूर्व के चार बुद्धों ने भी यहाँ वास किया था।

हानचाङ्ग ने अपनी भारत यात्रा में लिखा है कि जहाँ भगवान बुद्ध ने देवों को उपदेश दिया था वहाँ महाराज अशोक का बनवाया हुआ स्तूप मौजूद था और उसी के समीप वह स्थान था जहाँ पूर्व चार बुद्ध व्यायाम किया करते

थे। वहाँ से थोड़ी दूर पर एक बौद्ध विहार था जिसमें ७०० भिक्षु रहते थे। पूर्व देश के सारे विद्वान यहाँ महायान का ज्ञान प्राप्त करने आते थे।

भासु विहार में दस गज ऊँचे ईंटों के स्तूप चिन्ह हैं। वहाँ से हटकर गाँव में (जिसे विहार कहते हैं), प्राचीन बौद्ध विहार के खंडहर पड़े हैं।

यहाँ से चार मील पर महास्थान है जिसको ह्वानचाङ्ग ने 'पोशीपों' के नाम से लिखा है। भगवान बुद्ध के देवों को उपदेश देनेवाला स्तूप 'पोशीपों' से चार ही मील पर था।

४७३ भिलसा—(देखि साँची व मालवा)

४७४ भीमताल—(हिमालय पर्वत पर नैनीताल जिले में एक स्थान)

यहाँ भीम ने महादेव जी का तप किया था।

(स्कन्द पुराण, केदारखंड प्रथम भाग, ८१ वाँ अध्याय) एक भीम तीर्थ है जहाँ पूर्वकाल में भीम ने महादेवजी का तप किया था। वहीं भीमेश्वर महादेव स्थित हैं। भीमताल का तालाब करीब एक मील लम्बा और चौथाई मील चौड़ा है। पूर्व किनारे पर भीमेश्वर शिव का मन्दिर, कुछ बङ्गले और मकानात हैं।

४७५ भुइलाडीह—(संयुक्त प्रान्त के बस्ती जिले में एक स्थान)

अनुमान किया जाता है कि यह प्राचीन कपिलवस्तु है।

महर्षि कपिल का यहाँ आश्रम था। भगवान बुद्ध के पिता शुद्धोधन की यह राजधानी थी।

भगवान बुद्ध का बाल्यकाल यहीं बीता था। यहीं से अपने पिता, पुत्र और पत्नी को छोड़कर वे सत्य की खोज में चले गए थे।

बुद्ध होकर यहीं अपने पिता को उन्होंने धर्मोपदेश दिया था।

प्रा० क०—ह्वानचाङ्ग ने अपनी यात्रा में लिखा है कि भगवान बुद्ध की पूज्य माता महारानी महामाया के रहने के कमरे पर बाद को एक विहार बना था। उसी के समीप स्तूप था जहाँ ऋषि-असीता ने राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म-पत्र बताया था। नगर से आध मील पर दक्षिण दिशा में एक स्तूप था जहाँ राजकुमार सिद्धार्थ बुद्ध होकर अपने पिता से मिले थे। नगर के बाहर एक और स्तूप था जहाँ राजकुमार की हालत में उन्होंने अपने वंश के सब कुमारों को शस्त्र विद्या में पराजित किया था। कुमारी यशोधरा के पिता ने अपनी पुत्री का विवाह राजकुमार सिद्धार्थ के साथ करने से इंकार कर दिया था क्योंकि उनका विचार था कि सिद्धार्थ क्षत्रियोचित गुणों से वञ्चित हैं। इस पर राजकुमार ने शस्त्र विद्या के अखाड़े में सब कुमारों को परास्त किया

था। इसमें उनके चचेरे भाई देवदत्त भी थे। देवदत्त को लौटती समय एक हाथी मिला जो राजकुमार सिद्धार्थ को वापिस लाने जा रहा था। देवदत्त ने उसको मारकर रास्ते में डाल दिया। राजकुमार सिद्धार्थ जब उधर से निकले तो उन्होंने उसे उठाकर दूर फेंक दिया। जहाँ यह हाथी गिरा था वहाँ गढ़ा हो गया था जिसे हस्तीगर्त कहते थे। जहाँ से राजकुमार ने हाथी फेंका था वहाँ एक स्तूप बनवा दिया गया था। कपिल वस्तु नगर उन दिनों बड़ा शोभायमान था और बड़ी श्रद्धा से लोग उसकी रज माथे चढ़ाते थे।

ब० ए०—भुइलाडीह, बस्ती शहर से १५ मील पश्चिमोत्तर में है। राजभवन का स्थान डीह रूप में पड़ा है। इसमें एक स्थान पर एक कोठरी निकली है जो २६ फ़ीट लम्बी, १५ फीट चौड़ी और ११ फ़ीट ऊँची है। इसकी ईंटें बहुत पुरानी हैं और एक एक ईंट १६ इंच लम्बी ६ इंच चौड़ी और २¾ इंच मोटी है। ऐसे चिन्ह जिनसे ऐसा जान पड़ता है कि मानो इस कोठरी के ऊपर बाद को मन्दिर बनाया गया हो मालूम पड़ते हैं। अनुमान होता है कि महारानी महामाया के रहने का यही भवन था जहाँ भगवान बुद्ध उनके गर्भ में आए थे। इस कोठरी से ४०० फ़ीट पूर्वोत्तर एक स्तूप के निशान हैं जो नीचे ६० गज के घेरे में हैं, पर उँचाई दो गज़ रह गई है। जान पड़ता है कि ऋषि असीता वाला स्तूप यही है।

भुइलाडीह से १८०० गज दक्षिण, परसा गाँव की डीह पर कुछ चिन्ह हैं जो कदाचित् राजकुमार सिद्धार्थ के बुद्ध होकर लौटने पर अपने पिता के मिलने के स्थान के स्तूप के हैं।

भुइलाडीह से ७०० गज दक्षिण-पूर्व एक स्तूप के चिन्ह हैं जो ज़ैतापुर गाँव से २५० गज पूर्व में हैं। यह शायद शस्त्र-विद्या जीतने के स्थान वाला स्तूप है।

ज़ैतापुर गाँव और भुइलाडीह के बीच में एक गढ़ा है जिसे हाथी कुंड कहते हैं। यह हस्ती गर्त का स्थान हो सकता है। हाथी कुंड से ११० गज पूर्वोत्तर एक स्तूप के निशान हैं, यह स्तूप उस स्थान पर बनाया हुआ हो सकता है जहाँ से हाथी फेंका गया था।

भुइलाडीह से १० मील पूर्व बाराह क्षेत्र है जिसे कोली अर्थात् महारानी महामाया के पिता राजा सुप्रबुद्ध की राजधानी माना गया है। महारानी कपिल वस्तु से कोली अपने पिता के घर जा रही थीं जब दोनों स्थानों के बीच लुम्बनी उपवन में उन्होंने भगवान बुद्ध को जन्म दिया था।

भुइलाडीह और बाराह क्षेत्र के बीच में एक स्थान शिवपुर है और आर्कियालाजेकल मुहक्मे के मिस्टर ए० सी० एल० कार्लायल का विचार है कि लुम्बनी उपवन शिवपुर के पास रहा होगा, मगर महाराज अशोक का स्तम्भ जो भगवान बुद्ध के जन्म स्थान पर गाड़ा गया था यह बस्ती ज़िले के बाहर उत्तर में, नैपाल राज्य में गड़ा है। स्तम्भ के कारण उसी नैपाल वाले स्थान को जन्म स्थान मानकर लुम्बनी नाम से पुकारा जाता है। वहाँ वाले उसे रोमिनदेई कहते हैं और अशोक के स्तम्भ को देवी जी करके पूजते हैं। कोई कारण नहीं जान पड़ता कि वह स्तम्भ दूसरे स्थान से उखाड़ कर वहाँ क्यों गाड़ा गया हो। यदि वह अपने स्थान पर है तो भुइलाडीह कपिल वस्तु, और बाराह क्षेत्र कोली नहीं हो सकते।

बस्ती शहर से दक्षिण-पश्चिम पाँच मील पर एक ग्राम 'नगरखास' है। जेनरल ए० कनिङ्घम ने, जिनको बौद्ध स्थानों के ताड़ने की एक दैवी शक्ति थी, कहा था कि शायद नगरखास कपिल वस्तु होगा। जेनरल कनिङ्घम आर्किया-लाजेकल मुहकमे के अधिष्ठाता थे पर इस मुहकमे की ओर से भुइलाडीह व बाराह क्षेत्र ही कपिल वस्तु व कोली समझे जा रहे हैं। नगर खास के कपिलवस्तु होने से लुम्बनी वाली कठिनाई दूर नहीं होती बल्कि और बढ़ जाती है क्योंकि नगर खास भुइलाडीह से और भी सात-आठ मील दक्षिण में है और महाराज अशोक का स्तम्भ भुइलाडीह व बाराह क्षेत्र से भी बहुत ज्यादा उत्तर में है।

उसका-बाज़ार से ३८ मील पश्चिमोत्तर नैपाल राज्य में एक गाँव निगलीवा है। डाक्टर फ्यूरर (Dr Fuhrer) इसको कपिल वस्तु ठहराते हैं। लुम्बनी बारोमिनदेई से निगलीवा ८ मील पश्चिमोत्तर में है और उस गाँव में कुछ पुराने खंडहर है। श्री पी० सी० मुकर्जी तिलौरा गाँव को जो निगलीवा से ३½ मील दक्षिण पश्चिम है, कपिलवस्तु बताते हैं। लुम्बनी के हिसाब से यही स्थान ठीक पड़ सक्ते हैं इनमें निगलीवा सही कपिलवस्तु हो सकता है और कदाचित है।

४७६ भुवनेश्वर—(उड़ीसा प्रान्त के पुरी जिले में एक बस्ती)

यह पुराणों का प्राचीन एकाम्रकानन या एकाम्र क्षेत्र है।

भगवती ने कीर्ति और वास नामक दैत्यों को पैर से कुचिल कर यहाँ मारा था।

प्रा० क०—(आदि महापुराण, ४० वां अध्याय) सम्पूर्ण पापों को हरने वाला कोटिलिङ्ग से युक्त काशी के समान शुभ एकाम्र क्षेत्र है। पूर्वकाल में वहाँ एक आम का वृक्ष था। इसलिए वह क्षेत्र एकाम्रक्षेत्र के नाम से विख्यात हो गया। श्री महादेवजी सब लोगों के हित के लिए वहाँ विराजमान हैं। पृथिवी के समस्त तीर्थ, नदी सरोवर, तालाब, बावली, कूप और समुद्रों से एक एक बूँद इकट्ठा करके सब देवताओं सहित इस क्षेत्र में बिन्दुसर तीर्थ रचा गया। बिन्दुसर में स्नान करके जो भक्ति पूर्वक देवता, ऋषि, मनुष्य और पितरों को तिल और जल से विधानपूर्वक तर्पण करेगा उसको अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होगा। इस तीर्थ में पिंडदान देने से पितरों को अक्षय तृप्ति होती है। यहाँ शिव जी का विधि पूर्वक पूजन करने से २१ पुश्त का उद्धार होता है और मनुष्य शिवलोक में जाता है। यह क्षेत्र महादेव के चारों दिशाओं में ढ़ाई योजन में विस्तृत है। यहाँ भास्केश्वर महादेव हैं जिन को पूर्व काल में सूर्य ने पूजा था।

(स्कन्द पुराण, उत्तर खंड) नीलगिरि अर्थात् पुरुषोत्तमपुर (जगन्नाथ-पुरी) से तीन योजन दूर श्री महादेव जी का क्षेत्र एकाम्रक वन है। पूर्वकाल में महादेव जी पार्वती के सहित अपने ससुर हिमाचल के घर में निवास करते थे। एक दिन उस नगर की स्त्रियों ने पार्वती से हँसी की कि, "हे देवी! तुम्हारे पति अपने ससुर के गृह में अनेक प्रकार के सुख भोग करते हैं, तुम कहो वह अपने घर को कब जाँयगे?" पार्वती की माता ने पूछा कि "पुत्री! तुम्हारे पति में कौन सा ऐसा अपूर्व गुण है कि तुम उनको इतना प्रिय समझती हो?" पार्वती ने लज्जित हो कर महादेव से कहा कि "हे स्वामिन! आप को ससुराल में रहना उचित नहीं है, आप दूसरे स्थान में चलें।" शिव जी पार्वती की बात का कारण समझ कर उनके साथ ससुराल से चल दिए और भागीरथी के उत्तर तट पर वाराणसी नगरी बसा कर उसमें रहने लगे। द्वापर युग में वाराणसी के काशिराज नामक राजा ने घोर तपस्या करके महादेव जी को प्रसन्न किया। महादेवजी ने राजा को ऐसा वरदान दिया कि मैं आवश्यकता होने पर युद्ध में तुम्हारी सहायता करूँगा। उस समय विष्णु भगवान ने क्रोध करके काशिराज पर अपना सुदर्शन चक्र चलाया। महादेव जी राजा की रक्षा के लिए अपने गणों के साथ रणभूमि में उपस्थित हुए। उन्होंने क्रोध करके पाशुपत अस्त्र छोड़ा, पर विष्णु के प्रभाव से वह व्यर्थ हो गया। उस पाशुपत अस्त्र से काशी पुरी जलने लगी; तब महादेव जी घबड़ाकर विष्णु

भगवान की स्तुति करने लगे। उस समय भगवान ने कहा कि, "हे धूर्जटे! तुम्हारा पाशुपतास्त्र अजेय है; किन्तु मेरे चक्र के सामने उसकी शक्ति न चलेगी। यदि वाराणसी को स्थिर रखने की तुम्हारी इच्छा हो तो तुम पुरुषोत्तम क्षेत्र के नीलगिर के उत्तर कोण में जाकर पार्वती के साथ निवास करो।" ऐसा सुनकर महादेव जी नन्दी, भृङ्गी आदि अनेक गणों और पार्वती जी को सङ्ग में लेकर एकाम्रकानन में चले गए। तब से वह स्थान मुक्ति देने में काशी के समान प्रसिद्ध हुआ।

(कूर्म पुराण, उपरिभाग, ३४ वां अध्याय) पूर्व देश में एकाम्रनामक शिव तीर्थ है। जो मनुष्य उस तीर्थ में महादेवजी की पूजा करता है वह गणों का स्वामी होता है। वहाँ के शिव भक्त ब्राह्मणों को थोड़ी सी भूमिका दान देने से सार्वभौम राज्य मिलता है। मुक्ति चाहने वाले मनुष्य को वहाँ जाने से मुक्ति मिलती है।

(दूसरा शिव पुराण, ८ वां खंड, पहिला अध्याय) पुरुपोत्तम क्षेत्र में जगन्नाथ जी के गुरू स्वरूप भुवनेश्वर महादेव विराजते हैं, जिनके दर्शन करने से सम्पूर्ण पाप विनष्ट हो जाते हैं।.

प० द०—भुवनेश्वर में लगभग पांच हजार की बस्ती है और वह, भुवनेश्वर-रामेश्वर-कपिलेश्वर और भास्करेश्वर के मन्दिरों में मध्य के बसी है। यह कस्बा छटी शताब्दी, ब्री० सी० से पाँचवी शताब्दी ए० डी० तक उड़ीसा की राजधानी रहा। राजा ययात केशरी ने लगभग ५०० ई० के भुवनेश्वर के वर्तमान बड़े मन्दिर का काम आरम्भ किया और चौथी पुश्त में सन् ६५६ ई० में राजा ललित केशरी के समय में यह मन्दिर बनकर तैयार हो पाया। मन्दिर, भुवनेश्वर बस्ती के समीप ही है और कारीगरी तथा बनावट में जगन्नाथ जी के मन्दिर से भी अच्छा है। प्रधान मन्दिर की ऊंचाई १६० फ़ीट है और प्रत्येक इंच, ख़ास करके खड़े हिस्से, नक़्क़ाशी के काम से पूर्ण है। मन्दिर में अंधेरा रहता है इसलिए दिन में भी भीतर दीप जलाया जाता है। बहुतेरे यात्री नृत्यमंडप के भीतर जगन्नाथ पुरी के समान एक ही पंक्ति में बैठ कर भोग लगी हुई कच्छी रसोई खाते हैं, पर मंडप से बाहर कोई नहीं खाता। बड़े मन्दिर के उत्तर विन्दु सरोवर नामक परम पवित्र बड़ा तालाब है और पूर्वोत्तर में छठी सदी के आरम्भ का बना हुआ हीन दशा में भास्केश्वर शिव का मन्दिर है। भुवनेश्वर के देवीपाद ताल के चारों ओर १०८ योगिनियों के

मन्दिर हैं कहा जाता है। कि यहीं भगवती ने कीर्ति और वास नामक दैत्यों को पैर से रौंद कर मार डाला था।

राजा नृपति केशरी ने लगभग सन् ६५० ई० में कटक नगर बसा कर भुवनेश्वर छोड़ कटक को अपनी राजधानी बनाया। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की जन्मभूमि कटक ही है।

४७७ भूतपुरी—(मद्रास प्रान्त के चिंगिलपट जिले में एक बस्ती)
यहाँ श्री रामानुजाचार्य्य का जन्म हुआ था।

श्री रामानुज सम्प्रदाय की 'प्रपन्नामृत' नामक पुस्तक में लिखा है कि पूर्व के समुद्र के तट से १२ कोस दूर तुण्डरि देश में भूतपुरी नामक सुन्दर नगरी है।

'भूतपुरी माहात्म्य' में लिखा है कि विष्णु ने सूर्य्यवंशी राजा युवनाश्व के पुत्र राजा हरित को वर दिया था कि तुम इसी शरीर से ब्राह्मण हो जाओगे, तुम्हारे ही वंश में हमारे अंश शेष जी (रामानुज स्वामी) जन्म लेंगे।

भूतपुरी में 'अनन्त सरोवर' तालाब के पास स्वामी रामानुजाचार्य्य का बड़ा मन्दिर बना हुआ है।

४७८ भृगु आश्रम—(कुल) (देखिए बलिया)

४७९ भेत गाँव— (हिमालय पर्वत पर संयुक्तप्रान्त के टेहरी राज्य में एक गाँव)

इस स्थान पर वृकासुर ने जिसको भस्मासुर भी कहते हैं शिव का बड़ा तप करके यह वरदान पाया था कि जिसके मस्तक पर वह हाथ धरे,यह भस्म हो जाय।

(श्री मद्भागवत, १० वां स्कन्ध, ८८ वां अध्याय) शकुनि दैत्य का पुत्र वृकासुर केदार तीर्थ में जाकर अपने शरीर को छुरी से काट-काट कर अग्नि में हवन करने लगा। जब सातवें दिन उसने अपने सिर को काटना चाहा तब शिव ने अग्नि कुंड से निकल कर उसका हाथ पकड़ लिया और प्रसन्न होकर उससे वर माँगने को कहा। दैत्य बोला कि जिसके सिर पर मैं अपना हाथ रख दूँ वह उसी समय भस्म हो जाय। शिव जी ने हँसकर उसको वह वरदान दे दिया। जब वृकासुर शिवजी के मस्तक पर हाथ रखने के लिए चला तब शिव जी वहाँ से भागे। दैत्य उनके पीछे दौड़ा। महादेव जी सम्पूर्ण देशों में भ्रमण करके जब वैकुंठ में विष्णु के सामने होकर भागे तब विष्णु ने ऋषि भेष होकर वृकासुर से पूछा कि तू इतना घबड़ाकर कहाँ जाता है ! जब उसने उनसे सब वृत्तान्त कहा, तब विष्णु ने कहा कि तू अज्ञानी है कि बौरहे

महादेव के वचन का विश्वास करता है। तू अपने सिर पर हाथ धरके पहले उस वरदान की परीक्षा कर ले। यह सुनते ही वृकासुर ने परमेश्वर की माया से उस वचन को सत्य मानकर जैसे ही अपने सिर पर हाथ रक्खा वैसे ही वह भस्म हो गया।

भेत गाँव में छोटे बड़े बहुत से मंदिर हैं। यहाँ एक छोटे कुण्ड में झरने का पानी गिरकर बाहर निकलता है। उसी स्थान पर वृकासुर ने शिवजी का तप करके उनसे वर माँगा था।

जिस स्थान पर भस्मासुर स्वयम् अपने शिर पर हाथ रख कर भस्म हुआ था वह स्थान तीर्थपुरी है। (देखिए तीर्थ पुरी)

४८० भोजपुर--(देखिए बीदर)

४८१ भोपाल---(मध्य भारत में एक राज्य)

महाराज भोज ने यहाँ झील का बाँध बाँधा था जिससे इसका नाम भोजपाल हुआ और अब भोपाल है।

अँग्रेजों की ताकत बढ़ने के पहले भोपाल के नवाब, महाराज ग्वालियर के आधीन थे। अँग्रेजों ने उन्हें 'स्वतंत्र' बनाकर अपने आधीन कर लिया था।

म

४८२ मँकनपुर--(संयुक्त प्रदेश के कानपुर जिले में एक स्थान)

यहाँ ऋषिशृंग का निवास स्थान था।

इस स्थान पर से राजा दशरथ की भेजी हुई अप्सराएँ ऋषि शृङ्ग को मोह कर अयोध्या यज्ञ कराने ले गई थीं।

लोग कहते हैं कि ऋषि शृङ्ग के पिता विभांडक ऋषि ने इस स्थान को, जिससे उनके पुत्र का ब्रह्मचर्य नष्ट न हो, मन्त्र से कील दिया था कि जो स्त्री यहाँ आएगी भस्म हो जावेगी।

अब इस स्थान पर मदारशाह की दरगाह है, परन्तु अब तक कोई स्त्री वहाँ नहीं आती। बसन्त पंचमी से एक मेला जो दस-पन्द्रह दिन रहता है, यहाँ आरम्भ होता है और अब वह मदारशाह की दरगाह का ही मेला हो गया है।

ऋषि शृङ्ग आश्रम---शृङ्गी ऋषि के आश्रम कई स्थानों पर माने गए हैं जिनमें मँकनपुर एक है। दूसरा स्थान सिंगरौर, इलाहाबाद से २१ मील

पश्चिमोत्तर में है। तीसरा स्थान ऋषिकुंड, विहार प्रान्त में भागलपुर से २८ मील पश्चिम है। पहिले गंगाजी इस स्थान के समीप से बहती थीं। मैसूर राज्य में शृङ्गेरी से ६ मील पर ऋष्य शृङ्ग पर्वत पर इनका जन्म होना बतलाया जाता है। महाभारत के अनुसार इनका आश्रम विहार में कौशिकी नदी (कोसी नदी) के किनारे चम्पा नगरी से २४ मील पर था

४८३ मखौड़ा--(देखिए अयोध्या)

४८४ मगहर—(संयुक्त प्रान्त के बस्ती जिले में एक कस्बा)

कबीरदास जी यहाँ से स्वर्ग को पधारे थे।

'निर्भय ज्ञान सागर' में लिखा है कि लोगों ने अन्तकाल में कबीरदास जी से काशी में शरीर छोड़ कर मुक्ति पाने को कहा। उन्होंने कहा कि मैं मगहर में (जहाँ के लिए कहावत है कि मगहर मरे तो गदहा होय) मर कर मुक्ति लूँगा। मगहर में जाकर उन्होंने राजा वीरसिंह देव बघेल और बिजिली खां पठान को उपदेश दिया। सन् १५२० ई० के लगभग कबीरदास ने वहाँ शरीर छोड़ा और बिजिली खां ने दफन कर दिया। वीरसिंह देव ने इस पर युद्ध की तैयारी की। लड़ाई छिड़ने पर आकाशवाणी हुई कि कब्र में मुर्दा नहीं है। खोदने पर वहाँ कबीर जी का शरीर नहीं मिला, एक फूल रक्खा था।

जिस स्थान पर बिजिली खां पठान ने कबीर जी के मृतशरीर को भूमि समर्पण किया था, उस स्थान पर घेरे के भीतर शिखरदार समाध मन्दिर है। यह समाध मन्दिर मगहर बस्ती के पूर्व है, और मुसलमान फकीर पन्थियों के अधिकार में है।

४८५ मङ्गलगिरि—(मद्रास प्रान्त के कृष्णा जिले में एक कस्बा)

यहाँ नृसिंह जी का मन्दिर है जिसका पुराणों में वर्णन है।

(नृसिंह पुराण, ४४ वां अध्याय) नृसिंह भगवान सब लोगों के हित के लिए श्री शैल के शिखर पर देवताओं से पूजित हो विख्यात हुए और अपने भक्तों के हित के लिए इसी स्थान पर स्थित हो गए।

मङ्गलगिरि कस्बे में ११ खन के भारी [illegible] से सुशोभित लक्ष्मी नृसिंह का विशाल मन्दिर है। मन्दिर में सर्वदा दीप जलता है। नृसिंह जी के मुख में पना अर्थात् गुड़ या शक्कर का शर्बत पिलाया जाता है। इसी कारण से लोग इनको पना नृसिंह और गुड़ोदक पान नृसिंह कहते हैं।

४८६ मणिपुरा--(बम्बई प्रान्त के पूना जिले में एक स्थान)

यहाँ शिवजी ने खँडोवा (खाँडेराव) अवतार लेकर मल्ल और मल्ली असुरों को मारा था।

मणिचूड़ा पूना से ३० मील पूर्व है।

४८७ मण्डलगाँव—(देखिए ऊर्जम गाँव)

४८८ मत्ते की सराइ—(पंजाब प्रान्त के फीरोजपुर जिले में एक स्थान)

यहाँ सिक्खों के द्वितीय गुरु श्री अङ्गद देव का जन्म हुआ था।

[सिक्ख मत के द्वितीय गुरु श्रीअङ्गद देव जी का जन्म वैशाख बदी परिवा, सं० १५६१ विक्रमाब्द (३१ मार्च १५०४ ई०) को मत्ते की सराइ में हुआ था। आपके पिता श्री फेरूमल खत्री और माता श्रीमती दया कुँवरि थीं। पहिला नाम आपका लहणा था। संघर ग्राम में देवीचन्द खत्री की सुपुत्री बीबी खीवी जी के साथ आपका विवाह हुआ। बाबर की चढ़ाई के समय मत्ते की सराइ भी लूट ली गई इसलिए भाई लहणाजी ने अपना निवास स्थान वहाँ से हटा कर खडूर साहब में बना लिया। यह पहिले देवी के उपासक थे। सं० १५८६ वि० में ज्वाला देवी की यात्रा को जाते समय कर्तारपुर में श्री गुरु नानकदेवजी से आपकी भेंट हो गई और आप उनके अनन्य शिष्य हो गए और श्री गुरुदेव ही की सेवा में रहने लगे। गुरु नानक जी ने आषाढ़ सं० १५९६ वि० में आप का नाम लहणा से बदल कर 'अङ्गद' रक्खा और अपनी गद्दी पर स्थापित कर दिया। गुरुदेव के स्वर्गवास पर आप खडूर साहब को वापिस चले गए।

सब से पहिला काम जो गुरु अङ्गद देव जी ने किया वह थी नानक देव जी की वाणी तथा शब्दों का संकलित करना था। यह वाणी विशेष कर पंजाबी बोली में होने के कारण इसको लिखने के लिए एक नवीन लिपि की आवश्यकता हुई क्योंकि इससे पहिले कोई पञ्जाबी साहित्य नहीं था, और न पञ्जाबी लिपि ही की आवश्यकता हुई थी। इस कमी को पूरा करने के लिए सं० १५९८ वि० में गुरु अंगद देव जी ने एक लिपि निर्माण की जो अब 'गुरुमुखी' के नाम से प्रसिद्ध है। चैतसुदी ४, सं० १६०९ वि० (२९ मार्च १५५२ ई०) को गुरु जी ने शरीर त्याग किया।

सिक्ख मत में दसों गुरुओं को एक ही ज्योति माना जाता है। बहुधा गुरुओं ने वाणी भी जो उच्चारण की है वहाँ अपना नाम सर्वत्र 'नानक' ही लिखा है। इस ज्ञान के लिए कि यह कौन से नानक की वाणी है, शब्दों के

पहिले 'महला' शब्द लिख कर अङ्क लगा दिया गया है। जैसे—'श्लोक महला २' जहाँ लिखा है उससे यह समझा जायगा कि यह द्वितीय गुरु का उच्चारण किया हुआ है।]

४८९ मथुरा—(संयुक्त प्रान्त में एक जिले का सदर स्थान)

मथुरा पृथिवी के सब से पुराने नगरों में से एक नगर है; और भारत वर्ष की प्रसिद्ध सप्तपुरियों में से एक पुरी है।

मथुरा नगरी के स्थान पर मधुवन नामक वन था और सत् युग में मधु दैत्य उसमें निवास करता था।

श्री रामचन्द्र के समय में मधुवन में मधु का पुत्र दुराचारी लवण रहता था।

रामचन्द्र जी के भ्राता शत्रुघ्न ने लवण को मारकर मथुरा नगरी बसाई थी और मथुरा में राज्य किया था।

ध्रुव जी ने इस स्थान पर तप किया था और भगवान से अटल ध्रुव स्थान पाया था।

राजा अम्बरीष ने यहाँ आकर व्रत किया था।

राजा बलि ने यहाँ यज्ञ किया था।

श्रीकृष्ण भगवान ने यहाँ जन्म लिया था।

श्रीकृष्ण का मामा कंस मथुरा का राजा था। यहीं श्री कृष्ण ने उसको मार कर अपने माता-पिता को बन्दीगृह से मुक्त किया था, और उग्रसेन को राज्य दिया था।

यहीं श्री कृष्ण ने दन्तवक्र को मारा था।

मथुरा से ६ मील दक्षिण-पूर्व महावन (गोकुल) है। यह नन्द और यशोदा का निवास स्थान था। यहाँ वसुदेव कृष्ण को छोड़ कर यशोदा की पुत्री को बदले में लेगए थे। पूतना राक्षसी यहीं मारी गई थी।

मथुरा से ६ मील उत्तर यमुना नदी के दाहिने किनारे पर वृन्दावन है। सतयुग में इस स्थान पर राजा केदार की पुत्री वृन्दा ने तप किया था। इसका नाम कालिकावर्त भी था। गोकुल छोड़ कर बालक कृष्ण को लेकर नन्द वृन्दावन में आ बसे थे। वृन्दावन में श्रीकृष्ण ने कालियनाग को नाथा था। केशी असुर यहीं मारा गया था। वृन्दावन में बलराम जी ने धेनुक और प्रलम्ब असुरों को मारा था। राधा जी और गोपिकाएँ वृन्दावन में श्रीकृष्ण

के साथ क्रीड़ा किया करती थीं। श्री कृष्णचन्द्र ने रासलीला और चीर हरण लीला इसी स्थान पर की थी।

शुक सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी चरणदास जी को वृन्दावन में भगवान् कृष्ण के दर्शन हुए थे।

राधावल्लभी सिद्धान्त के प्रवर्तक श्री हितहरिवंश ने वृन्दावन में वास किया और शरीर छोड़ा था।

मथुरा से १४ मील पर गोवर्धन पर्वत है। इसको श्रीकृष्ण ने अपने एक हाथ पर उठा लिया था। इस पर्वत को गिरिराज भी कहते हैं।

मथुरा से २८ मील पर बरसाना है। यहाँ राधिका जी अपनी जन्मभूमि अरिष्टग्राम (वर्तमान रावल) से आकर रही थीं और यहीं उनके पिता रहते थे। राधिकाजी जब एक साल की थीं रावल से बरसाना ले आई गईं थीं।

मथुरा से २ मील पर ताल वन है। यहाँ धेनुकासुर मारा गया था।

मथुरा से १ मील पर चौरासी है। यहाँ से श्री जम्बू स्वामी (जैन) केवल निर्वाण को पधारे थे।

श्रीकृष्ण का पुत्र साम्ब मथुरा की कृष्ण गंगा में स्नान करके कुष्ट रोग से मुक्त हुआ था। (पर देखिए कनारक)

मथुरा में सोम को विष्णु का दर्शन हुआ था।

सप्त ऋषियों ने मथुरा में तप किया था।

मथुरा के निधिवन में तानसेन के गुरु तथा टट्टी सम्प्रदाय के आद्याचार्य्य स्वामी हरिदास की समाध है। सम्राट अकबर साधुवेष रख कर इनका गान सुनने यहाँ आए थे।

सूर्यावतार आचार्य्य निम्बार्क का यहाँ निवास स्थान था।

मीराबाई मथुरा वृन्दावन के मन्दिरों में भगवान के सामने कीर्त्तन किया करतीं थीं।

महाराज अशोक के गुरु उपगुप्त और उपगुप्त के गुरु सानवासी का मथुरा में निवास स्थान था।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मथुरा में ढ़ाई साल रह कर स्वामी विरजानन्द जी से धर्म्म ग्रन्थों को पढ़ा था।

मथुरा के चारों ओर ८० मील तक का घेरा ब्रजमंडल कहलाता है।

भगवान गौतम बुद्ध ने मथुरा में उपदेश दिया था। यहाँ एक स्तूप में उनके नख (नाखून) रखे थे।

पूर्व चार बुद्ध भी मथुरा में आये और रहे थे।

प्रसिद्ध बौद्ध महापुरुष सारि पुत्र, मुद्गल, पूर्व मैत्रायणी पुत्र और उपालि तथा भगवान बुद्ध के पुत्र राहुल व भिक्षुणी अनन्ता के चिता का सामान मथुरा स्तूप में रखा था।

प्रा० का०—(पद्म पुराण, पातालखंड, ६६ वां अध्याय) मथुरा देश जिसका नाम मधुवन है, विष्णु को अधिक प्रिय है। मथुरा मंडल सहस्त्रदल कमल के आकार का है। इस देश में १२ वन प्रधान हैं—

१—भद्रवन, २-श्रीवन, ३ लोहवन, ४ भांडीरवन,५-महावन, ६-तालवन, ७ खदिरवन, ८-बकुलवन, ६-कुमुदवन, १०-काम्यवन, ११-मधुवन, १२ वृन्दावन। उनमें से सात यमुना के पश्चिम तट पर और पांच पूर्व ओर हैं। इन वनों में भी तीन अत्यन्त उत्तम हैं—गोकुल में महावन, मथुरा में मधुवन और वृन्दावन। इन बारहों को छोड़ कर और भी बहुत से उपवन हैं।

(बाराह पुराण, १५२ वाँ अध्याय) मथुरा मण्डल का प्रमाण २० योजन है।

(वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकांड ७३, ७४ और ७५ वां सर्ग) एक दिन यमुना तीर निवासी ऋषिगण श्री रामचन्द्र की सभा में आए। भार्गव मुनि कहने लगे कि हे राजन! सत्युग में मधुनामक दैत्य बड़ा वीर्यवान और धर्मनिष्ठ था। भगवान रुद्र ने अपने शूलों में से एक शूल उत्पन्न कर उसको दिया और कहा जो तुम से संग्राम करने को उद्यत होगा, उसको यह भस्म कर फिर तुम्हारे हाथ में चला आवेगा। तुम्हारे वंश में तुम्हारे पुत्र के पास जब तक यह शूल रहेगा तब तक वह सब प्राणियों से अवध्य रहेगा। ऐसा वर पाकर मधु ने अपना गृह बनवाया। मधु का पुत्र लवण हुआ जो लड़कपन से ही पाप कर्म करता आया। मधु दैत्य अपने पुत्र का दुराचार देख शोक को प्राप्त हो इस लोक को छोड़ समुद्र में घुस गया परन्तु अपने पुत्र को शूल देकर वर का वृत्तान्त सुना दिया था, हे रामचन्द्र! अब लवण अपने दुराचार से तीनों लोकों को विशेष कर तपस्वियों को सन्ताप दे रहा है। वह प्राणी मात्र को विशेष कर तपस्वियों को खाता है। उसका निवास मधुवन में है।

श्री रामचन्द्र ने यह वृत्तान्त सुन लवण के वध की प्रतिज्ञा की और शत्रुघ्न को युद्ध यात्रा में तत्पर देख उनसे कहा कि मैं मधु के नगर का राजा तुमको बनाऊँगा। तुम वहाँ जाकर यमुना के तीर पर नगर और सुन्दर देशों को बसाओ।

(८२ व ८३ वां सर्ग) लवण अन्त में शत्रुघ्न के वाण से मारा गया। शत्रुघ्न ने सावन मास में उस पुरी को जिसे अब मथुरा कहते हैं बसाने का कार्य आरम्भ किया। बारहवें वर्ष में अच्छी भाँति से यमुना के तीर पर अर्द्ध चन्द्राकार पुरी बस गई।

(वाराहपुराण, १५२ वां अध्याय) कपिलऋषि ने अपने तप के प्रभाव से वराह जी की मूर्त्ति का निर्माण किया। कपिल जी से इन्द्र ने उसको लिया। इन्द्रपुरी से रावण लङ्का को ले गया। रामचन्द्र, रावण को जीतने पर कपिल वराह को लङ्का से अयोध्या में लाए। शत्रुघ्न ने लवणासुर के बध करने पर उस मूर्त्ति को अयोध्या से लाकर मथुरा में दक्षिण दिशा में स्थापित किया।

(देवी भागवत, चौथा स्कन्ध, २० वां अध्याय) यमुना नदी के किनारे मधुवन में मधु दैत्य का पुत्र लवण रहता था। शत्रुघ्न जी ने उसे मारकर वहाँ मथुरा नामक पुरी बसाई और पीछे वहाँ का राज्य अपने पुत्रों को देकर आप निज धाम को चले गए। जब सूर्य वंश का नाश हुआ तब उस पुरी के राजा यदुवंशी हुए जिनमें शूरसेन के पुत्र वसुदेव थे।

(विष्णु पुराण, प्रथम अङ्क, २२ वा अध्याय) जिस वन में मधु दैत्य रहता था उस वन का नाम मधुवन हुआ। मधु के पुत्र का नाम लवण था जिसको शत्रुघ्न जी ने मारकर उसी वन में मथुरा नामक पुरी बसाई।

(गरुड़ पुराण, प्रेत कल्प, २७ वां अध्याय) अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काँची, अवन्तिका और द्वारिका, ये सातों पुरियाँ मोक्ष देने वाली हैं।

(श्रीमद्भागवत, चौथा स्कन्ध, ८ वां अध्याय) ध्रुव जी नारद जी की आज्ञानुसार मथुरा में आकर एकान्त चित्त हो भगवान का ध्यान करने लगे। जब उनके तप से संपूर्ण विश्व का श्वास रुक गया तब भगवान ने मधुवन में आकर ध्रुव को वरदान दिया कि तुमको अटल ध्रुव स्थान मिलेगा।

(९ वां स्कन्ध चौथा अध्याय) भगवान वसुदेव ने राजा अम्बरीष के भक्तिभाव से प्रसन्न हो उसको सुदर्शन चक्र दे दिया था। राजा ने एक वर्ष तक अखण्ड एकादशी का व्रत करने का संकल्प किया और व्रत के अंत में कार्तिक महीने में मथुरा पुरी में जाकर व्रत किया।

(वाराह पुराण, १४६ वां अध्याय) मथुरा में सूर्य तीर्थ में राजा बलि ने सूर्य की आराधना की और सूर्य से एक मणि पाई।

जहाँ ध्रुव ने तप किया था वह ध्रुव तीर्थ है।

(१५१ वां अध्याय) मथुरा के पश्चिम में आधे योजन पर धेनुका सुर की भूमि में तालवन है। तालवन में धेनुकासुर मारा गया था।

(१४७ वां व १४८ वां अध्याय) सोम तीर्थ यमुना के मध्य में है। वहाँ सोम को विष्णु का दर्शन हुआ था।

(आदि ब्रह्मपुराण, ७४ व ७५ वां अध्याय) जब नारद मुनि ने कंस से कहा कि देवकी के आठवें गर्भ में भगवान जन्म लेंगे तब कंस ने देवकी और वसुदेव को अपने गृह में रोक रक्खा। जब बल्देव रोहिणी के गर्भ में आ चुके, तब भगवान ने देवकी के गर्भ में प्रवेश किया। जिस दिन भगवान नें जन्म लिया, उसी दिन गोकुल में नन्द की पत्नी यशोदा के गर्भ से योग-निद्रा भी उत्पन्न हुई। जब वसुदेव कृष्ण को लेकर अर्ध रात्रि में चले, तब योग माया के प्रभाव से मथुरा के द्वारपाल निद्रा से मोहित हो गए। अति गम्भीर यमुना जी थाह हो गई। वसुदेव पार उतर कर गोकुल में गए जहाँ योगनिद्रा से मोहित नन्द गोप की स्त्री यशोदा के कन्या हुई थी। वसुदेव अपने बालक को यशोदा की शय्या पर सुला और उनकी कन्या को लेकर शीघ्र ही लौट आए।

(७७ वां अध्याय) पूतना राक्षसी गोकुल में जाने पर कृष्ण द्वारा मारी गई। जब यमुलार्जुन वृक्षों के गिरने से कृष्ण बच गए, तब नन्दादि सब गोप उत्पातों से डर कर गोकुल को छोड़ वृन्दावन में जा बसे।

(७८ वां अध्याय) कृष्ण ने कालियनाग का दमन किया।

(७९ वां अध्याय) बलराम जी ने धेनुक और प्रलंबासुर को मारा। कृष्ण के उपदेश से ब्रजवासियों ने इन्द्र को छोड़ कर गोवर्धन पर्वत का पूजन किया।

(८० वां अध्याय) इन्द्र ने क्रुद्ध होकर संवर्तक मेघों को भेजा। मेघ गोपों के नाश के लिए भयानक वर्षा करने लगे। कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर एक हाथ पर धारण कर लिया।

(८२ वां अध्याय) कंस ने अक्रूर से कहा कि वसुदेव के पुत्र विष्णु के अंश से उत्पन्न हुए हैं और मेरे नाश के लिए बढ़े हैं, तुम उन्हें यहाँ बुला लाओ। चतुर्दशी के दिन मेरे धनुष यज्ञ में चाणूर और मुष्टिक के संग उन दोनों का मल्ल युद्ध होगा। कुवलयापीड़ हस्ती वसुदेव के दोनों पुत्रों को मारेगा।

कंस का भेजा हुआ केशी दैत्य वृन्दावन में आया और कृष्ण के पीछे मुंह फाड़ कर दौड़ा। कृष्ण ने अपनी बाँह को उसके मुख में डाल दिया जिससे वह मर गया।

(८५ वाँ अध्याय) बलदेव और कृष्ण ने कुवलयापीड़ हस्ती को मारा। कृष्ण चांडूर और बलदेव मुष्टिक के सङ्ग युद्ध करने लगे। अन्त में जब दोनों दैत्य मारे गए तब कृष्ण कूद कर मंच पर चढ़ गए, उन्होंने कंस के शिर के बालों को खींच कर उसको नीचे पटक दिया और वह मर गया।

(बाराह पुराण, १७१ वां अध्याय) कृष्ण का पुत्र साम्ब नारद के उपदेश से मथुरा के वट सूर्य नामक स्थान में जाकर कृष्ण गङ्गा में स्नान कर सूर्य की आराधना करने लगा। थोड़े ही दिनों में कृष्ण गङ्गा के तट पर सूर्य भगवान ने अपने हाथसे साम्ब का शरीर स्पर्श किया। उसी समय साम्ब दिव्य शरीर हो गया। [साम्ब के कुष्ट रोग से मुक्त होने की कथा कनारक के सम्बन्ध में भी प्रचलित है।]

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, कृष्ण जन्म खण्ड; ११ वां अध्याय) सत्युग में केदार नामक राजा था जो जैगीषव्य ऋषि के उपदेश से अपने पुत्र को राज्य दे वन में चला गया। केदार के वृन्दा नामक पुत्री कमला के अंश से थी। जिस स्थान पर वृन्दा ने तप किया वही स्थान वृन्दावन के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

(बाराह पुराण, १५० वां अध्याय) जहाँ हम (कृष्ण) ने गौओं और गोप बालकों के साथ अनेक भाँति की क्रीड़ा की है वह वृन्दावन क्षेत्र है। वृन्दावन में जहाँ केशी असुर मारा गया वहाँ केशी तीर्थ है। वृन्दावन में द्वादश तीर्थ हैं वहाँ ही हमने कालिया सर्प का दमन किया था और सूर्य को स्थापित किया।

(श्रीमद्भागवत, १६वां अध्याय) वृन्दावन में कालीदह में काली नाग के रहने से उसका जल खौलता था। एक दिन कृष्ण जी कदम के वृक्ष पर चढ़ कालीदह में कूद पड़े। काली नाग क्रोध करके दौड़ा। कृष्ण ने उसके सिर का मर्दन करके काली सर्प को कालीदह से निकाल दिया।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, कृष्ण जन्म खण्ड, २७ वां अध्याय) ब्रज की गोपियों ने एक मास दुर्गा के स्तव पढ़ कर व्रत किया और व्रत समाप्ति के दिन नाना विधि और नाना रङ्ग के वस्त्रों को यमुना तट पर रख कर स्नान के लिए जल में नङ्गी पैठीं और जल क्रीड़ा करने लगीं। कृष्ण के सखाओं ने उन वस्त्रों को

लेकर दूर स्थान पर रख दिया। श्री कृष्ण कुछ वस्त्र ग्रहण कर कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गए। जब राधा ने कृष्ण की स्तुति की तब गोपियों के वस्त्र मिल गए। वे व्रत समाप्त करके अपने अपने घर चली गईं।

(ब्रह्मांड पुराण, उत्तर खंड, राधा हृदय छठा अध्याय) वृषभानु गोकुल का राजा था। उसके एक पुत्री हुई। परमाराध्या देवी उग्र तपस्या द्वारा राधिता होकर राध्य हुई थी इस कारण वृषभानु ने उस कन्या का नाम राधा रक्खा।

बौद्धकाल में मथुरा बौद्धमत का एक केन्द्र था। ह्वानचाङ्ग की यात्रा के समय यहाँ केवल पाँच देव मन्दिर थे और बौद्ध संघारामों की संख्या २० थी जिन में २००० भिक्षु रहते थे। उस से पहिले बौद्धों का और ज़्यादा ज़ोर यहाँ था। फ़ाहियान की यात्रा के समय यहाँ ३००० भिक्षु रहते थे।

नगर से एक मील पूर्व महात्मा उपगुप्त का बनाया हुआ संघाराम था जिसके बीच में एक स्तूप में भगवान बुद्ध के नख रक्खे थे। इससे चार मील दक्षिण पूर्व एक सूखा हुआ तालाब और स्तूप थे जहाँ एक वानर ने भगवान बुद्ध को मधुदान दिया था। भगवान ने उसे स्वीकार करके भिक्षुओं को शर्बत बनाकर बाँटने को दे दिया। इस पर वानर मारे खुशी के उछला और तालाब में गिर कर मर गया। कहते हैं दूसरे जन्म में उस को नर शरीर मिला।

इस ताल के उत्तर में एक और पवित्र स्थान था जहाँ पूर्व काल के बुद्ध व्यायाम करते थे। इस स्थान के चारों ओर सैकड़ों स्तूप थे जहाँ १२५० अर्हत (जीवनमुक्त) ध्यान लगाया करते थे। महात्मा सारि पुत्र, मोगलायन, पूर्व मैत्रायणी पुत्र, उपालि, राहुल (भगवान बुद्ध के पुत्र) और भिक्षुणी अनन्ता की चिता का सामान मथुरा में अलग-अलग स्तूपों में रक्खा था।

महात्मा उपगुप्त वह महात्मा थे जिन्होंने महाराज अशोक को बौद्धों के पवित्र स्थान, स्तूपों और स्तम्भों के बनाने के लिए बताए थे। अशोक उनके शिष्य थे।

[सूर्यावतार आचार्य्य निम्बार्क के काल के विषय में बड़ा मतभेद है। इनके भक्त इन्हें द्वापर में हुआ बताते हैं। वर्तमान अन्वेषक ग्यारहवीं शताब्दी का सिद्ध करते हैं।

कहा जाता है गोदावरी तट पर अरुणाश्रम में अरुण मुनि की पत्नी जयन्ती देवी के गर्भ से यह अवतीर्ण हुए थे। कुछ लोग इनको सूर्य का और कुछ सुदर्शन चक्र का अवतार मानते हैं। लोगों का विश्वास है कि इनके उपनयन में स्वयम् देवर्षि नारद ने इन्हें गोपाल मंत्र की दीक्षा दी थी। इन

का मत द्वैताद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं इनका नाम पहिले नियमानन्द था। एक बार रात्रि हो जाने से इनके एक अतिथिने मथुरा में भोजन करने से इन्कार कर दिया। इससे इन्हें दुःख हुआ, पर देखते क्या हैं कि इनके आश्रम के पास एक नीम के वृक्ष पर सूर्य्य निकला हुआ है। अतिथि के भोजन के बाद वह अस्त हो गया। तब से इनका नाम निम्बार्क हुआ।]

च० द०—इस समय मथुरा के मुख्य स्थान निम्नलिखित हैं :—

ध्रुवघाट—मथुरा में ध्रुव घाट पर पिण्ड दान होता है। घाट के पास एक टीले पर मन्दिर में ध्रुवजी की मूर्त्ति है। इसी स्थान पर उन्होंने तप किया था।

अम्बरीष टीला एक ऊँचा टीला है। कहा जाता है कि इस स्थान पर अम्बरीष ने वास किया था।

मोक्षतीर्थ और सप्त ऋषियों का टीला—इस टीले पर सफ़ेद मिट्टी मिलती है जिस को लोग यज्ञ की विभूति कहते हैं। टीले पर साधुओं का मठ है। पूर्व काल में सप्त ऋषियों ने यहाँ तप किया था।

राजा बलि का टीला—इस टीले पर काले ढेले निकलते हैं। इनको भी लोग यज्ञ की विभूति कहते हैं। यहाँ पर राजा बलि ने यज्ञ किया था।

केशवदेव जी का मन्दिर—जिस स्थान पर श्रीकृष्ण भगवान का जन्म हुआ था वहाँ केशवदेवजी का विशाल मन्दिर खड़ा है। यह स्थान मथुरा के सब देव मन्दिरों में अधिक माननीय है।

पोतराकुण्ड—जन्म भूमि के पास पोतरा कुण्ड नामक पत्थर का उत्तम सरोवर है। कृष्ण चन्द्र के जन्म के समय के पोतरा, अर्थात् बिछौने, इस में धोए गए थे।

कंस का किला—अब इस किले का केवल ढेर मात्र रह गया है। परन्तु कुछ मकानों के खण्डहर और टूटी फूटी दीवारें अब तक विद्यमान हैं। राजा कंस का यही किला था।

विश्राम घाट—श्री कृष्ण ने कंस को मारकर यहीं पर विश्राम किया था इससे इसका नाम विश्रामघाट पड़ा। कार्तिक शुक्ल द्वितीया के दिन इसी घाट पर यमुना स्नान के लिए प्रति वर्ष भारत के सब प्रदेशों से लाखों यात्री मथुरा में आते हैं। यमुना स्नान का महत्त्व सब स्थानों से अधिक मथुरा में है और मथुरा के सब स्थानों से अधिक इस घाट पर है। इस घाट पर ऊपर से नीचे

पहाड़ी के पास मानसी गङ्गा नामक एक बहुत बड़ा तालाब है जिसके चारों तरफ पत्थर की सीढ़ियाँ हैं और अनेक देव मन्दिर हैं। मथुरा के यात्री कार्तिक अमावास्या की रात में मानसीगङ्गा पर दीपदान करते हैं। यहाँ के समान दीपोत्सव किसी भी तीर्थ में नहीं होता।

मथुरा से २८ मील पर बरसाना नामक गाँव है। यहाँ लाडिली जी (राधा) का बड़ा मन्दिर है। अन्य मन्दिरों में राधिका जी के पिता वृषभानु आदि की मूर्तियाँ है और वृषभानु कुंड नामक पक्का सरोवर है।

बरसाने और गोवर्धन के निवासी कृष्ण का नाम छोड़कर केवल राधाजी की जय पुकारते हैं।

मथुरा के आसपास ८४ कोस का घेरा व्रजमंडल कहलाता है। व्रज का फाग विख्यात है। ऐसी धूम की होली भारतवर्ष में और कहीं नहीं होती। लोग बरसाने में धूम धाम से फाग खेलने जाते हैं।

व्रजकी भाषा भारत के सब खंडों की भाषा से मीठी है। अकबर को व्रज में आकर इतना आनन्द आया था कि उसने कहा था कि यहाँ की भूमि पर तो लोटने को जी चाहता है।

मथुरा के पुराने क़िले में एक मील पश्चिम जहाँ इस समय कटरा है, वहाँ उपगुप्त का संघाराम था। उपगुप्त के गुरु स्यनवासी का भी यहीं निवास था। यह बौद्धों के तीसरे आचार्य्य थे। (कुल मिलाकर बौद्धों में २८ आचार्य हुए हैं।) इस स्थान से तीन मील दक्षिण-पूर्व में एक तालाब है। यह वह जगह है जहाँ भगवान बुद्ध ने वानर का दिया हुआ मधु (शहद) स्वीकार किया था।

मथुरा में बौद्ध काल की अनेक चीजें मिली हैं जिनमें भगवान बुद्ध की मूर्तियाँ प्रधान हैं।

सभी कृष्ण भक्त, महात्मा और कवि मथुरा-वृन्दावन में रहकर अपना जीवन सफल करते रहे हैं पर मथुरा निवासियों में निम्नलिखित अच्छे कवि हो गए हैं—

कुमार मणिभट्ट—(दो सौ वर्ष पूर्व)
सूदन—(पौने दो सौ वर्ष पूर्व)
हठी—(डेढ़ सौ वर्ष पूर्व)
ग्वाल—(सवा सौ वर्ष पूर्व)

४९० मदनपल्ली—(मद्रास प्रान्त के पश्चिम गोदावरी जिले में एक स्थान)

श्री कृष्ण मूर्त्ति जी की यह जन्म भूमि है।

कृष्ण मूर्त्ति जी के पिता मदनपल्ली में तहसीलदार थे, उन दिनों इनका जन्म वहाँ हुआ था। पीछे ये पेन्शन लेकर अड्यार के थियासोफिकल सोसाइटी में अवैतनिक काम करने लगे। उस समय एक दिन सहसा देवी एनीबेसेन्ट कृष्ण मूर्त्ति जी के पास से निकलीं इनकी आयु उस समय ग्यारह-बारह सालकी थी। देवी एनीबेसेन्ट ने तुरन्त कृष्ण मूर्त्ति जी को, जिन्हें कृष्ण जी कह के पुकारा जाता है, उनके पिता से माँग लिया, और उनकी शिक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। कहा जाता है कि दिव्य दृष्टि से उन्हें प्रतीत हुआ था कि कृष्ण मूर्त्ति का शरीर इस पृथिवी पर वर्तमान काल में महर्षि मैत्रेयजगद्गुरु की आत्मा का वाहन होगा, जैसे ईसा का शरीर ईसा के अन्तिम तीन साल में मसीह की आत्मा का वाहन रहा बताया जाता है।

कृष्ण मूर्त्ति जी साल में चार मास भारतवर्ष, चार मास अमेरिका और चार मास योरुप में भ्रमण करके उपदेश देते रहे हैं। उनके उपदेश के प्रचार के लिए एक सङ्घ जिसका नाम तारा सङ्घ (order of the star in the east) था, बनाया गया था। इसकी शाखाएँ पृथिवी के प्रत्येक देश में थीं और प्रत्येक भाषा में मासिक पत्रिकाएँ निकलती थीं। परन्तु कृष्ण जी धार्मिक विषयों के सङ्गठन के विरुद्ध हैं। उन्होंने ऐसी ही एक संस्था अपने लिये बनते देख न केवल तारा सङ्घ को तोड़ दिया वरन सब पत्रिकाओं को भी बन्द कर दिया। उनका कहना है कि मजहब इसी प्रकार बनते हैं, और मजहब का होना मनुष्य जाति की आध्यात्मिक उन्नति के लिए सबसे भारी रुकावट है।

सङ्घ के टूटने की घटना द्वितीय महायुद्ध से बहुत वर्ष पहले की है। अब तो महायुद्ध ने अमेरिका व यूरोप में उथल पुथल कर रक्खी है, पर इससे पहले विलायत के विचारवान पुरुष कृष्ण मूर्त्ति जी की बातों को बड़े ध्यान से देख रहे थे और उनकी शिक्षा पर विचार कर रहे थे।

हालैन्ड के एक लार्ड (राजा) ने अपना राज्य उनको अर्पण कर दिया। उन्होंने अस्वीकार किया तो उसने उसे तारा सङ्घ के अर्पण कर दिया। वह भी अस्वीकार हुआ। युद्ध से पहले प्रति वर्ष हजारों आदमी विलायत के सब स्थानों से एक सप्ताह हालैन्ड देश में ओमेन में इकट्ठे होकर कृष्ण जी का उपदेश ग्रहण करते थे।

अमेरिका वालों ने कैलीफोर्निया के ओहे में अपना केन्द्र बनाया है। हजारों अमेरिका वासी इस स्थान पर जमा होकर कृष्ण जी का वचन सुनते रहे हैं। इसी प्रकार काशी में राजघाट पर एक स्थान बनाया गया है जहाँ कृष्ण जी आकर रहते और उपदेश देते हैं।

कृष्ण जी का कथन है कि उनकी वाणी को कदापि प्रमाण न माना जाय क्योंकि ऐसा करने से लोग बजाय स्वयम् सोचने और समझने के, प्रमाण का सहारा लेने लगते हैं और इससे निज उन्नति नहीं होती। वे कहते हैं कि उनको कदापि दिव्य पुरुष न माना जावे, केवल उनकी बातें सुन कर उस पर विचार किया जावे, और जिस बात को चित्त ग्रहण न करे उसे स्वीकार न किया जावे, क्योंकि बिना समझे प्रमाण-स्वरूप स्वीकार करने से कोई लाभ नहीं होता। समझने के योग्य होने के लिए, वे कहते हैं कि, मनुष्य को अपने पुराने विचारों को निकाल कर दूर कर देना चाहिए क्योंकि बन्धनों के रहते हुए जीवन की धारा खुलकर नहीं बहने पाती।

श्रीमती ग्लेडीसबेकर, एक अमेरिकन महिला, लिखती हैं :—"कृष्ण जी को चमत्कार दिखाने में भी अरुचि है। उनका कथन है कि जो उच्च जीवन नहीं व्यतीत करना चाहते, वे चमत्कार देख कर कभी उच्च जीवन न व्यतीत करने लगेंगे। वे केवल अपने सांसारिक सुख तथा आराम के लिए चमत्कार चाहते हैं। परन्तु जो लोग कृष्ण जी के समीप रहते हैं, उनका कहना है कि बिना जाने ही वे चमत्कार कर रहे हैं। इसके उदाहरण में श्रोमन के कैम्प की एक बात बताई गई। उस अवसर पर कृष्ण जी ने अंग्रेजी में जनता को उपदेश दिया था। अपनी माता के साथ एक जर्मन बालक भी व्याख्यान सुन रहा था। व्याख्यान समाप्त होने पर बालक ने कहा कि ऐसी अच्छी वार्ता तो मैंने कभी भी नहीं सुनी थी! बालक अंग्रेजी नहीं जानता था और जब बालक ने सारे व्याख्यान की कथा को कह सुनाया तो उसकी माता सन्नाटे में आ गई।"

श्री कृष्ण मूर्ति जी कहते हैं :—

"हे मित्र! तुमको निर्जीव मन्दिरों के बोझ की क्या आवश्यकता जब जीवन गली-गली नाच रहा है,

हे मित्र! तुम भय से, मृत्यु के भय से, उदासी और शोक के भय से क्यों छिपते फिरते हो,

जब कि जीवन तुम्हारे चारों ओर लहलहाते खेतों में आनन्द मना रहा है।

हे मित्र ! तुम थोड़े दिनों का आराम क्यों ढूँढते हो ?
जब कि जीवन तुम को अपना अनन्त शान प्रदान करता है।
मैं जीवन हूँ, मैं प्रियतम हूँ,
मैं वह ज्वाला हूँ जिसके सामने कोई अपवित्र वस्तु ठहर नहीं सकती।

आओ मेरे साथ आओ !
जीवन के मार्ग में—
प्रेम के मार्ग में चलो
जहाँ मृत्यु की पहुँच नहीं है।"

हमारे ऋषियों और मुनियों ने जो बातें बताई हैं वह, उनके चले जाने के बाद अब मृतक शब्दों का रूप धारण करके हमारे सामने हैं। परन्तु प्रतीत होता है कि कृष्ण जी के मुँह से वेही बातें जीती जागती निकल कर इस काल में वही लाभ पहुँचा रही हैं जो पुराने ऋषि-मुनियों के समय में उनकी उपस्थिति में उनकी वाणी मनुष्य जाति को पहुँचती थी।

मदनपल्ली तीस हज़ार आदमियों की बस्ती है, और समुद्रतल से तीन हज़ार फ़ीट ऊपर होने के कारण जलवायु अत्युत्तम है। कृष्ण मूर्ति जी की यादगार में मदनपल्ली के निकट एक कालेज खोला गया है जिसका प्रबन्ध बड़ी उत्तम रीति से चल रहा है।

४९१ मदिया गाँव—(देखिए मँदावर)

४९२ मदुरा—(मद्रास प्रान्त में एक जिले का सदर स्थान)

रामायण और महाभारत में वर्णित पाण्डय राज्य की यह राजधानी थी।

मदुरा ५२ पीठों में से एक है। यहाँ सती की एक आँख गिरी थी। इस स्थान का दूसरा नाम मीनाक्षी है।

श्री यामुनाचार्य का यहीं जन्म हुआ था। ये श्री रामानुजाचार्य के परम गुरू थे।

संत सम्बन्ध यहा निवास करते थे।

प्रां० फ०—(महाभारत, सभापर्व, ५१ वां अध्याय) चोलनाथ और पाण्डयनाथ, राजा युधिष्ठिर के राज सूय यज्ञ के समय इन्द्रप्रस्थ में आए।

(वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धा काण्ड, ४१ वां सर्ग) सुग्रीव ने श्रीजानकी जी को खोजने के लिए अङ्गद, हनूमान आदि वानरों को भेजा

श्रौर उनसे कहा कि तुम लोग दक्षिण में जाकर पाण्डयों के नगर में प्राकार का द्वार देखोगे।

(आदि ब्रह्मपुराण, ११ वां अध्याय) दुष्यन्त का पुत्र क्रुत्थाम, क्रुत्थाम का पुत्र अश्वाक्रीड, और अश्वाक्रीड के चार पुत्र हुए अर्थात् पाण्ड्य, केरल, कोल और चोल जिनके नाम से पाण्ड्य, केरल (वर्त्तमान कोचीन व तिरुवाकूर राज्य और मलाबार) कोल और चोल ये चार देश विख्यात हुए हैं।

(शिवभक्त विलास, ३० वां अध्याय) दक्षिण दिशा के मधुरानामक नगर में मीनाक्षी नाम्नी देवी और पाण्ड्य राजाओं से पूजित परमेश्वर विराज मान हैं।

[श्री यामुनाचार्य्य का जन्म १०१० वि० सं० में मदुरा में हुआ था। जब यह १२ साल के थे तब इन्होंने पाण्डयराज के सबसे प्रधानाचार्य पण्डित को शास्त्रार्थ में हराया था। पांडय राज को यह कदापि ख्याल न था कि यह ऐसा कर सकेंगे; इससे अपनी रानी से बाजी लगाने में कह बैठे थे कि यदि बालक ने आचार्य को हरा दिया तो वे उसे आधा राज्य दे देंगे। उन्होंने यामुनाचार्य को आधा राज्य दे दिया और यह बड़ी दक्षता से सिंहासन पर बैठ कर राज्य काज चलाने लगे। कुछ वर्ष पीछे यह राज-पाट छोड़कर श्री रङ्गम जी के सेवक हो गए। श्रीरामानुजाचार्य के यह परम-गुरू थे।]

[संतसम्बन्ध का जन्म लगभग ६३६ ई० में हुआ था। चार वर्ष की अवस्था में इनके पिता इनको सरोवर में स्नान कराने ले गए। जब इनके पिता स्वयम् नहाने लगे तब एक निकटवर्ती मन्दिर में संतसम्बन्ध को पार्वती और शिव के दर्शन हुए। माता पार्वती ने आध्यात्मिक शक्ति से परिपूर्ण दूध इन्हें पिलाया। इनमें ज्ञान का प्रकाश बल उठा, मुख से गीत की धारा फूट पड़ी और घूम-घूम कर यह लोगों को श्री उमा-शम्भु का यश सुनाने लगे। मदुरा में विरोधियों ने इनकी कुटी में आग लगा दी पर कुछ हानि न कर पाये। पाण्डय राज्य में जैन धर्म के स्थान पर इन्होंने शैव धर्म की फिर से स्थापना की। दक्षिण भारत के शैवाचार्य्यों में यह सर्व श्रेष्ठ माने जाते हैं।]

घ० द०—मदुरा बैगा नदी के किनारे पर बसा हुआ है। इस नदी का प्राचीन नाम कृतमाला था। मीनाक्षी देवी और सुन्दरेश्वर शिव का मन्दिर रेल्वे स्टेशन से क़रीब एक मील पश्चिम ८४५ फीट लम्बा और ७२५

फ़ीट चौड़ा अर्थात् लगभग २२ बीघे में बना है। बाहर की दीवार करीब २१ फ़ीट ऊँची है। उसके चारों बगलों पर प्रतिमाओं से पूर्ण रंगों से चित्रित ग्यारह मंज़िला ग्यारह कलशवाला एक ही समान एक-एक गोपुर है। उनमें से एक गोपुर १५२ फ़ीट ऊँचा १०५ फ़ीट लम्बा और ६६ फ़ीट चौड़ा है। मीनाक्षी के मन्दिर के आगे सोने का मुलम्मा किया हुआ एक बड़ा स्तम्भ है। सुनहले स्तम्भ से उत्तर सुन्दरेश्वर शिव के मन्दिर के घेरे का गोपुर है। उस मन्दिर के पास के कमरों में मीनाक्षी और सुन्दरेश्वर के वाहन रक्खे हुए हैं। उनमें से सुनहली पालकी का मूल्य उस समय के पन्द्रह हज़ार रुपयों से कहीं अधिक और २ चाँदनी का मूल्य, जिनके बेशकीमती चोब हैं, अठारह-अठारह हज़ार रुपयों से ज्यादा है। यहाँ चाँदी से मढ़ा हुआ एक हंस और एक नन्दी (बैल) भी है। मन्दिर के द्वार पर एक बड़ा सुनहला स्तम्भ है। भारत में मदुरा का बड़ा मन्दिर बहुत ही विशाल और अति सुन्दर है।

बड़े मन्दिर के पूर्व तिरुमलई नायक का बनवाया हुआ ३३३ फ़ीट लम्बा और १०५ फ़ीट चौड़ा एक उत्तम मण्डप है। उसके छत के नीचे ४ क़तारों में भिन्न भिन्न तरह की सङ्ग तराशी के १२० स्तम्भ लगे हैं जिनमें से मध्य के दो क़तारों में दोनों तरफ़ पाँच-पाँच स्तम्भों में नायक वंश के राजाओं की मूर्तियाँ बनी हैं, जिनमें तिरुमला नायक की मूर्ति के ऊपर चाँदनी बनी हुई है। उसके पीछे दो सूरतें हैं बाँए की सूरत तंजौर की शाहज़ादी तिरुमलई नायक की है। दरवाजे के पास शिकार खेलने वालों और शिकारों का झुण्ड है। कहा जाता है कि इन सब चीज़ों के बनाने में उन दिनों डेढ़ करोड़ रुपया खर्च पड़ा था। ऐसा उत्तम सङ्गतराशी का काम दूसरी जगह देखने में नहीं आता। मदुरा के मन्दिर में अतुल धन है।

मदुरा के रेलवे स्टेशन से ३ मील पूर्व रामेश्वर के मार्ग में बैग नदी के उत्तर १२०० गज़ लम्बा और इतना ही चौड़ा तेप्पकुलम तालाब है। उसके चारों तरफ़ पत्थर के घाट तथा सड़क, मध्य में सुन्दर टापू पर एक शिखरदार बड़ा मन्दिर और प्रत्येक कोने पर एक छोटा मन्दिर है। टापू पर सुन्दर वाटिका लगी है। तालाब में सर्वदा पानी रहता है। प्रति वर्ष उत्सव के समय उस तालाब के किनारे एक लाख दीप जलाए जाते हैं। उसी समय मदुरा के बड़े मन्दिर की उत्सव मूर्तियों को मन्दिर से लेजाकर तालाब में बेड़े पर घुमाया जाता है।

मदुरा हिन्दुस्तान के बहुत पुराने शहरों में से है। यह पुराने समय से हिन्दुस्तान के दक्षिणी भाग, पाण्डय देश, की राजधानी था। यहाँ सुन्दर पगड़ियाँ जिनके किनारों पर सुनहला काम बनता है, और एक प्रकार के अच्छे लाल कपड़े तैयार होते हैं।

शक सातवाहन काल में मदुरा में रोमसाम्राज्य का व्यापार तथा प्रणिधि सम्पर्क जोरों पर था।

४९३ मद्रास—(मद्रास प्रान्त की राजधानी)

राधा स्वामियों के पाँचवें गुरु 'साहब जी महाराज' सर आनन्द स्वरूप ने २४ जून, सन् १९३७ ई० को यहाँ शरीर छोड़ा था।

मद्रास में अद्यार स्थान संसार भर की थियासाफ़िकल सोसाइटी का केन्द्र है।

देवी एच० पी० ब्लैवटस्की (H. P. Blavatasky), कर्नल एच० एस० अलकट (H. S. olcott), देवी ऐनीबिसन्ट (Annie Besant), महाशय सी० डब्ल्यू० लेडबिटर, (C. W. Lead beater) जैसे महात्माओं का अद्यार निवास स्थान रहा है। यहीं देवी ऐनी बिसन्ट व कर्नल अलकट ने शरीर छोड़ा था। महात्मा जद् कृष्ण मूर्ति ने भी यहाँ वास किया और बाल काल बिताया है।

डाक्टर जी० एस० एरेन्डेल (G. S. Arundale) भी यहां निवास करते थे और यहीं उन्होंने शरीर छोड़ा। उनकी पत्नी रुक्मिणी देवी यहीं वास करती हैं। श्री जिनराजदास का भी यह निवास स्थान है।

अद्यार की वायु मानों मन के मैल को हर लेती है—'अवश देखिए देखन योगू'।

४९४ मध्यमेश्वर—(देखिए केदारनाथ)

४९५ मनारगुड़ी—(मद्रास प्रान्त के तंजौर जिले में एक गाँव)

यह स्थान श्री जीवेन्द्र स्वामी (जैन) की जन्मभूमि है।

४९६ मन्दार गिरि—(बिहार के भागलपुर जिले में एक पहाड़ी)

कहा जाता है कि इसी पर्वत से देवताओं ने समुद्र को मथा था।

इस स्थान पर श्री वासु पूज्य स्वामी (बारहवें तीर्थङ्कर) को मोक्ष प्राप्त हुआ था।

यह पहाड़ी भागलपुर से ३२ मील दक्षिण की ओर है और ७०० फीट ऊँची है। इसके ऊपर दो प्राचीन मन्दिर हैं। पहाड़ी के चारों ओर बीच में खुदा हुआ निशान है, जैसे मथने में इस्तेमाल होने से पड़ गया हो पर यह खोदा हुआ है।

[एक जैन ग्रन्थ में श्री वासु पूज्य स्वामी का मोक्ष स्थान चम्पापुरी लिखा है परन्तु उसका कारण यह है कि चम्पापुरी का प्रमाण ८६ मील लम्बा और ७२ मील चौड़ा लिखा है और यह स्थान (मन्दारगिरि) चम्पापुरी (वर्तमान नाथ नगर) से ३२ मील पर है।]

बद्रीनाथ के लिए कुछ पुराण कहते हैं कि वह मन्दारगिरि पर है। महाभारत का कहना है कि मन्दारगिरि बद्रीनाथ के उत्तर में है और यह कि शिवजी पार्वतीजी से ब्याह करके वहाँ रहे थे। इससे ज्ञात होता है कि कई पर्वतों को मन्दारगिरि कहा गया है।

४९७ मन्दावर—(संयुक्त प्रान्त के बिजनौर जिले में एक स्थान)
इसका प्राचीन नाम मदिपुर है।
बौद्ध महात्मा गुण प्रभा ने यहाँ १०० ग्रन्थ लिखे थे।

महायान पन्थ के प्रमुख आचार्य वसु बन्धु ने हीनयान पन्थ के प्रमुख आचार्य सङ्घभद्र को यहाँ विवाद में जीता था। आचार्य सङ्घभद्र का यह निवास स्थान था और यहीं उन्होंने तथा उनके प्रसिद्ध शिष्य महात्मा विमल मित्र ने शरीर छोड़ा था।

मदिपुर से थोड़ी दूर जङ्गल में मालिनी नदी के किनारे पर कण्व ऋषि का आश्रम था, उसी के पास शकुन्तला का जन्म हुआ था। कण्व ऋषि के आश्रम में शकुन्तला का पालन पोषण हुआ था, और वहीं उनसे राजा दुष्यन्त से भेंट हुई थी।

प्रा० का०—ह्यानचाङ्ग के समय में इस स्थान का नाम मदिपुर था और शहर का घेरा ३½ मील था। नगर से ¾ मील दक्षिण एक छोटा संघाराम था जहाँ महात्मा गुणप्रभा ने एक सौ ग्रन्थ लिखे थे। इससे आध मील उत्तर एक बड़ा संघाराम था जो आचार्य सङ्घभद्र की वहाँ अचानक मृत्यु हो जाने से प्रसिद्ध हो गया था। बौद्ध ग्रन्थ लिखते हैं कि महायान पन्थ के प्रमुख आचार्य वसु बन्धु से धर्म विवाद में हारकर, हीनयान पन्थ के प्रमुखाचार्य सङ्घभद्र का शरीर जल कर तुरन्त राख हो गया था। उनकी राख को सङ्घा-

गणेश जी के उत्पन्न हो चुके थे। कार्तिकेय जी क्रोधित होकर क्रौंच पर्वत (वर्तमान मल्लिकार्जुन) पर चले गए। शिव और पार्वती उनके विद्रोह से दुखी होकर उनके पास गए परन्तु कार्तिकेय जी यहाँ से १२ कोस और दूर चले गए। तब पार्वती के सहित शिव जी अपने एक अंश से ज्योतिर्लिङ्ग होकर उसी स्थान में स्थित हो गए और मल्लिकार्जुन नाम से जगत में प्रसिद्ध हुए।

(३८ वां अध्याय) शिव जी के १२ ज्योतिर्लिङ्ग हैं जिनमें से मल्लिकार्जुन श्री शैल पर विराजते हैं।

(अग्निपुराण, ११४ वां अध्याय) श्री पर्वत अर्थात् श्री शैल पवित्र स्थान है। पूर्व काल में पार्वती जी ने लक्ष्मी का रूप धारण करके यहाँ तपस्या की थी। तब विष्णु ने वर दिया था कि तुमको ब्रह्म ज्ञान का लाभ होगा और यह पर्वत तुम्हारे नाम से ही विख्यात होगा।

हिरण्यकश्यप श्री शैल पर तपस्या करके जगत् विजयी हुआ। देवताओं ने वहाँ तप करके परम सिद्धि लाभ की।

(श्रीमद्भागवत, दशम् स्कन्ध, ७९ वां अध्याय) बलदेव स्कन्द का दर्शन करके श्री शैल पर पहुँचे।

[जगद्गुरु श्री सदा नन्दशिव योगी श्री शैल क्षेत्र के नारशैव गुरु पीठ के स्वामी थे। स्कन्द पुराण के अनुसार द्वापर में इनका स्थिति काल सिद्ध होता है।]

व० द०—मल्लिकार्जुन का मन्दिर विशाल है और चारों ओर सुन्दर गोपुर हैं। श्री पार्वती जी का मन्दिर अलग बना है। मन्दिर के निकट कृष्णा नदी का करार बहुत ऊँचा है। कृष्णा की धारा बहुत नीचे बहती है, इसी कारण लोग इसको पाताल गङ्गा कहते हैं।

क्रौंच पर्वत अर्थात् मल्लिकार्जुन से १२ कोस जिस स्थान पर कार्तिकेय जी चले गए थे उसका वर्तमान नाम कुमार स्वामी है। यहाँ पहाड़ी के ऊपर उनका मन्दिर बना है। यहाँ की प्राचीन कथा निम्नांकित अनुसार है—

(कूर्म पुराण, उपरिभाग, ३६ वां अध्याय) स्वामी नामक तीर्थ तीनों लोक में विख्यात है। यहाँ स्कन्द जी देवताओं से पूजित होकर निवास करते हैं।

(भविष्य पुराण, ४१ वाँ अध्याय) भाद्रपद मास की षष्ठी (६) कार्तिकेय को बहुत प्रिय है। उस तिथि का दक्षिण दिशा में प्रसिद्ध स्वामी कार्तिक का दर्शन करने से ब्रह्महत्यादि पाप छूट जाते हैं।

४९९ मसार—(देखिए शोणितपुर)

५०० महरालीवाला—(पाकिस्तानी पंजाब के गुजरावाला जिला में एक स्थान)

स्वामी रामतीर्थ का यहाँ जन्म हुआ था।

[स्वामी रामतीर्थ का जन्म २२ अक्टूबर सन् १८७३ ई० को दिवाली के दूसरे दिन महरालीवाला में, गोसाईं हीरानन्द के यहाँ हुआ था। कुछ काल बाद उनकी माता का देहान्त हो गया और इनकी बुआ श्रीमती तीर्थ देवी ने इनका पालन पोषण किया। १० वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हो गया। लाहौर के मिशन कालेज से आपने एफ० ए०, बी०, ए०, और गणित में एम० ए० किया और सर्वप्रथम रहे। सिविल सर्विस की छात्रवृत्ति स्वयम् न लेकर एक अन्य विद्यार्थी को दिला दी।

आपका नाम तीर्थराम था। १६०१ ई० में आपने सन्यास ले लिया और अपना नाम तीर्थराम से स्वामी रामतीर्थ रक्खा। अपने गाँव को भी आप महरालीवाला के बजाय मुरलीवाला कहा करते थे।

१६०२ ई० में स्वामी जी विश्वधार्मिक-कान्फरेन्स जापान में उपस्थित हुए और लन्दन, अमरीका, मिश्र आदि की यात्राएँ भी कीं।

१७ अक्तूबर सन् १६०६ ई० को दीपमालिका के दिन ठीक मध्यान्ह के समय टेहरी नरेश के सिमलासु बगीचे के नीचे भृगुगङ्गा में आपने शरीर छोड़ दिया। स्वामी जी फ़ारसी, अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। आपने वेदान्त शास्त्र के अद्वैत तत्व ज्ञान का प्रचार किया और वर्तमान काल के परम ब्रह्मज्ञानी थे।]

५०१ महाथान गाँव व महाथान डीह—(संयुक्त प्रान्त के बस्ती जिले में एक गाँव)

राजकुमार सिद्धार्थ (भगवान बुद्ध) ने इस स्थान से अपने सेवक छन्दक और घोड़े को घर लौटा दिया था और स्वयम् राजपाट छोड़ कर बन चले गए थे। इसी स्थान पर उन्होंने अपने सुन्दर केश काट डाले थे और अपने वस्त्र एक दरिद्र मनुष्य को देकर उसके वस्त्र लेकर धारण कर लिए थे।

प्रा० क०—भगवान बुद्ध के पिता महाराज शुद्धोदन को ऋषि असीता ने बता दिया था कि या तो राजकुमार सिद्धार्थ चक्रवर्ती सम्राट होंगे या संसार को मोक्ष करने वाले परम पूज्य महात्मा होंगे। राजकुमार के जन्म ही से उनके पिता ने ऐसा प्रबन्ध किया कि राजकुमार का मन किसी प्रकार संसार के सुख से न मुड़ने पावे। उनका विवाह होकर एक पुत्र भी हुआ। पर एक रात्रि को राजकुमार सब को छोड़ कर महल से निकल गये। ४२ मील रातों रात घोड़ा दौड़ाते चले गये। साथ में केवल एक सेवक छन्दक था। अनोमा नदी पर घोड़ा कुदाकर और उस पार जाकर राजकुमार ने आभूषण उतार कर छन्दक को दे दिये, और उसे तथा घोड़े को लौटा दिया। खड्ग से अपने केश काट डाले और आगे चलकर एक शिकारी को अपने वस्त्र देकर उस दरिद्र के वस्त्र आप पहिन लिये। जहाँ से राजकुमार ने छन्दक को लौटाया था वहाँ महाराज अशोक ने एक बड़ा स्तूप बनवा दिया था। जहाँ केश काटे थे वहाँ भी एक स्तूप था और तीसरा स्तूप उस स्थान पर था जहाँ उन्होंने वस्त्र बदले थे। ह्वानचाङ्ग ने अपनी यात्रा में इन तीनों स्तूपों का वर्णन किया है।

ब० द०—बस्ती ज़िले में मगहर (जहाँ कबीर साहेब ने शरीर छोड़ा है) प्रसिद्ध स्थान है। मगहर से २½ मील पश्चिम सिरसर ताल है जिसके पास ईंटों के पुराने खेड़े हैं। ताल के किनारे पर खिरसरराउ गाँव बसा है। गाँव से ४०० फीट पूर्व एक स्तूप के चिन्ह हैं। यहाँ राजकुमार ने अपने केश काटे थे। इस स्तूप से २०० फीट पूर्वोत्तर एक बड़ा और गोल खेड़ा है जो १६० फीट के घेरे में है परन्तु अब ५ फ़ीट ऊँचा रह गया है। इस स्थान से राजकुमार सिद्धार्थ ने अपने घोड़े और छन्दक नौकर को लौटाया था। इस स्तूप से ३७० फ़ीट उत्तर, ऊपर की तरफ़ गोल आकार का ईंट का एक खेड़ा है जिसे महाथान डीह कहते हैं। इस स्थान पर राजकुमार सिद्धार्थ ने शिकारी से अपने वस्त्र बदले थे। यहाँ से मिला हुआ महाथान गाँव है। बौद्ध ग्रंथ कहते हैं कि ब्रह्मा शिकारी का रूप धर कर राजकुमार से वस्त्र बदलने आए थे।

महाथान डीह से ४ मील पश्चिम-दक्षिण एक गाँव तामेश्वर है जो पूर्व काल में मैनेय नामक एक बड़ा नगर था। इससे थोड़ी दूर पर कुदवा नाला है, जिसका प्राचीन नाम अनोमा नदी था। इसे राजकुमार सिद्धार्थ ने घोड़ा

कुदाकर नामेश्वर के पास पार किया था। भुइलाडीह जो प्राचीन कपिलवस्तु माना जाता है, वहाँ से कुदवा नाला ३८ मील दक्षिण-पूर्व में है।

५०२ महावन—(देखिए मथुरा)

५०३ महानदी—(देखिए कौञ्चाकाल)

५०४ महास्थान—(देखिए भासु विहार)

५०५ महास्थान गढ़—(देखिये जमनियां)

५०६ महियर या मैहर —(बुन्देलखण्ड में एक छोटा राज्य)

इस स्थान का प्राचीन नाम महीधर है।

यहाँ के प्रसिद्ध शारदा देवी के मन्दिर को बनाफर राय आल्हा ने बनवाया था।

मैहर से तीन मील पश्चिम एक अकेली ऊँची पहाड़ी की चोटी पर शारदा देवी का मन्दिर है। यमुना और नर्मदा नदी के बीच इतना प्रसिद्ध और कोई दूसरा मन्दिर नहीं है। बनाफर सरदार आल्हा, जिनके नाम से आल्हा मशहूर है और गाया जाता है, इन देवी के बड़े उपासक थे और बराबर पूजन को आते थे। नया मन्दिर भी उन्हीं ने बनवाया था, वह अब क्षीण हो रहा है पर मन्दिर में यात्रियों की भीड़ लगी रहती है। कहते हैं कि आल्हा का प्रताप शारदा देवी के ही वरदान का फल था।

वीर आल्हा चन्देल राजाओं के यहाँ रहते थे। चन्देलों की राजधानी महोबा थी जिसका असल नाम महोत्सव नगर था। कथा है कि बनारस के राजा इन्द्रजीत के ब्राह्मण पुरोहित हेमराज की कन्या हेमावती बड़ी सुन्दरी थी। एक दिन जब वह ताल में नहा रहीं थी तो चन्द्रमा ने उससे सहवास किया। गर्भ रहने से हेमावती घबड़ाई पर चन्द्रमा ने बतलाया कि यह पुत्र महाप्रतापी होगा और उससे एक हजार वंश उत्पन्न होंगे। जब यह १६ साल का हो तो अपना कलङ्क मिटाने के लिए भाण्ड यज्ञ करना। यही पुत्र चन्द्र वर्मा था, जिससे चन्देल राजपूत वंश चला। १६ साल की अवस्था में इस बालक ने महोत्सव किया जिससे नगर का नाम महोत्सव नगर पड़ा। उसने उस नगर को अपनी राजधानी बनाया और इधर-उधर के राजाओं को जीता। अन्य रानियों को हेमावती के पैरों पर गिरना पड़ा और उसका कलङ्क धुल गया।

आल्हा के समय में महोबा के राजा परमाल थे जो महाबली पृथ्वीराज के वैरी थे, इससे पृथ्वीराज के सहायक होने के बजाय आल्हा उनके शत्रु थे

और चरई (जिला जालौन) में दोनों का युद्ध हुआ। ये दोनों वीर यदि आपस में मिल गए होते और वीर आल्हा पृथ्वीराज के सहायक होते तो भारतवर्ष का इतिहास कुछ और होता।

कवि जगनिक का जन्म स्थान महोबा था। इन्हीं कवि ने पहले पहिल "आल्हा" की रचना की है; जो अब ठौर ठौर ग्रामों में गाया जाता है। पर इस समय के 'आल्हा' में जगनिक का शायद एक शब्द भी नहीं है, केवल ढङ्ग उनका है। यह कवि चन्द वरदाई के समकालीन थे।

५०७ महेन्द्र पर्वत — (उड़ीसा से लेकर मदुरा तक की पहाड़ियाँ, जिन में मद्रास प्रान्त का पूर्वी घाट शामिल है)

महाराज रामचन्द्र जी से पराजित होकर परशुरामजी इन्हीं पहाड़ियों पर आकर रहने लगे थे। 'चैतन्य चरणामृत' के अनुसार पूर्वीघाट के दक्षिण सिरे पर मदुरा जिले में उनका निवास स्थान था, और 'रघुवंश' के अनुसार उड़ीसा में वे इन्हीं पहाड़ियों पर रहते थे। [इनका कार्यक्षेत्र ट्रावनकूर व मलाबार व मध्य भारत भी था और जन्म जमनियाँ (गाजीपूर जिला) समीप हुआ था।]

५०८ महेश्वर — (देखिए मान्धाता)

५०९ महोबा — (देखिए महियर या मैहर)

५१० माँझी — (बिहार प्रान्त के सारन जिला में एक गाँव)

यहाँ महात्मा धरनीदास का जन्म हुआ था और यहीं उनकी समाधि है।

माँझी के पुराने नाम 'मध्येम' और 'मध्य द्वीप' हैं। कभी कभी इसे दश चेध भी कहते हैं।

[ईसा की सत्रहवीं शताब्दी में एक वैष्णव श्रीवास्तव कायस्थ के यहाँ माँझी में महात्मा धरनीदास का जन्म हुआ था। कहा जाता है कि जब इनके पिता का शरीरान्त हुआ उन दिनों ये स्थानीय नवाब जिमींदार के यहाँ दीवान थे। पिता के मरने पर यह उदासीन रहने लगे और भगवच्चिन्तन में लीन रहने के अभ्यासी होगए। एक दिन बैठे बैठे जिमींदारी के कागजों पर सहसा झुके और लोटे का पानी उड़ेल दिया। पूछने पर बताया कि जगन्नाथपुरी में आरती के समय जगन्नाथ जी के कपड़ों में आग लग गई थी, उसे बुझाया है। दो आदमी पुरी भेजे गए। मालूम हुआ कि घटना सही थी और धरनीदास की आकृति के एक आदमी ने आग को बुझाया था।

एक दिन धरनी दास गङ्गा और घाघरा के सङ्गम पर अपने शिष्यों के साथ गए और पानी पर चादर बिछा कर बैठ गए। कुछ दूर तक लोगों ने उन्हें

उसी तरह पूर्व की ओर बहते देखा, फिर एक ज्वाला मात्र देख पड़ी और वह भी लीन होगई। लोगों ने इनकी समाधि माँझी गाँव में ही बनवा दी। वहाँ इनकी गद्दी भी प्रतिष्ठित है। इनकी मुख्य मुख्य गद्दियां सुवा विहार और संयुक्त प्रान्त के अनेक स्थानों में हैं।]

महात्मा धरनादास के समय में माँझी गाँव तथा उसके आस पास का भूमण्डल 'मध्येम' अथवा 'मध्यदीप' करके प्रसिद्ध था। मध्यदीप की पूर्व की ओर हरिहर क्षेत्र और पश्चिम दिशा में दर्दर क्षेत्र नामक पुण्य क्षेत्र थे और निकटवर्ती ब्रह्मपुर के कारण कभी कभी यह ब्रह्म क्षेत्र भी कहलाता था। हरिहर क्षेत्र में अब सोनपुर वाला मेला, और दर्दरक्षेत्र में बलिया में ददरी मेला होता है।

५११ मांदलपुर—(देखिए शुग)

५१२ माणिक्याला—(पाकिस्तानी पंजाब के रावलपिण्डी जिले में एक स्थान)

एक पूर्व जन्म में भगवान बुद्ध ने भूखे शेर के बच्चों की भूख बुझाने को अपना शरीर यहाँ उन्हें खिला दिया था।

बाघ के सात बच्चों को भूखा देखकर भगवान बुद्ध ने एक पूर्व जन्म में अपने शरीर में बांस की खँपाच भोंकली जिससे उनके बहते हुए रुधिर को बाघ के बच्चे पी सकें और ताक़त आ जाने पर उनका मांस खा सकें। जहां खँपाच भोंकी गई थी वहाँ एक स्तूप बनवाया गया था। उसके १२० गज़ उत्तर में एक दूसरे बड़े स्तूप का फाटक था। फाटक उस स्थान पर था जहाँ उन्होंने अपना शरीर बाघों को खिला दिया था। ह्यानचाङ्ग की यात्रा के समय यहाँ और भी बहुत से स्तूप बने हुए थे। उन्होंने लिखा है कि यह स्थान तक्षशिला (वर्तमान शाहढ़ेरी) से ३३३ मील दक्षिण-पूर्व में था। शाहढ़ेरी से मणिक्याला की यही दूरी है। कहा जाता है कि पहले इस स्थान को माणिकपुर या माणिक नगर कहते थे।

माणिक याला में बहुत से पुराने टूटे फूटे स्तूप हैं। शरीर खिलाने वाले स्तूप के चिन्ह आबादी से क़रीब डेढ़ मील पूर्वोत्तर में हैं। उसी से मिली हुई एक जगह मीरा की ढेरी कहलाती है। इसमे डेढ़ फर्लाङ्ग दक्षिण खून बहाने की बाँस की खँपाच भोंकने वाले स्तूप के चिन्ह हैं।

माणिकयाला से २४ मील दक्षिण एक स्थान राम की ढेरी है, यहाँ भी एक स्तूप का चिन्ह है। ग्यानचाङ्ग लिखते हैं कि शरीर खिलाने वाले स्तूप से २४ मील दक्षिण खून बहाने वाला स्तूप था। इससे राम की ढेरी वाला स्तूप ग्यानचाङ्ग के अनुसार खून बहाने वाल स्तूप हो सकता है। पर यह ग्यानचाङ्ग के फ़ासला लिखने की भूल है क्योंकि खून बहाने वाला स्थान माणिक्याला से इतनी दूर नहीं हो सकता।

५१३ मातङ्ग आश्रम (कुल)—(देखिए गया)

५१४ माधवपुर— (देखिए कुण्डिनपुर)

५१५ मान सरोवर झील— (देखिए कैलास व पवित्र सरोवर)

५१६ मान्धाता—मध्य प्रदेश के निमाड़ ज़िले में नर्मदा के दाँए किनारे पर एक टापू)

इस टापू का प्राचीन नाम वैदूर्य्यमणि पर्वत है।

इस पर मान्धाता ने तप किया था।

१२ ज्योतिर्लिङ्गों में से एक, ओङ्कारनाथ, इस टापू पर है।

च्यवन ऋषि पर्य्यटन करते हुए यहाँ आए थे।

मान्धाता के प्राचीन नाम महेश्वर, महेश और माहिष्मती भी मिलते हैं। यह हैहयों की राजधानी थी जिनमें कार्तवीर्य अर्जुन बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। इनको परशुराम ने यहीं मारा था।

हरिवंश (१-३०) के अनुसार महिष्मान ने इसे बसाया था।

पद्मपुराण (उत्तर. अ. ७५) के अनुसार महिष न इसे बसाया था।

माहिष्मती जिस राज्य की राजधानी थी वह बौद्ध काल में 'अवन्ति दक्षिण पथ' कहलाता था।

मण्डन. मिश्र (विश्वरूपाचार्य) को शङ्कराचार्य ने शास्त्रार्थ में यहीं परास्त किया था।

माहिष्मती कलचुरियों की भी राजधानी थी (अनर्घराघव, अङ्क ७, ११५)

महाभारत (अनु० २५) में मान्धाता का नाम अग्निपुर भी मिलता है। इस टापू के समीप नर्मदा के दक्षिण किनारे पर कावेरी और नर्मदा के सङ्गम पर कुबेर ने तप किया था।

कहा जाता है कि ब्रह्म ने ब्रह्मेश्वर, और मार्कण्डेय ऋषि ने मार्कण्डेश्वर शिवलिङ्ग की यहाँ स्थापना की थी।

यहाँ से दो मील पर सिद्धवर कूट जैन क्षेत्र है जहाँ से २ चक्रवर्ती (जैन) और दस काम कुमारों (जैन) ने मुक्ति पाई थी।

प्रा० क०—(मत्स्यपुराण, १८५ वाँ अध्याय) नर्मदा के तट पर ओंकार, कपिला संगम और अमरेश महादेव पापों को नाश करने वाले हैं।

(१८८ वाँ अध्याय) जहाँ कावेरी छोटी सी नदी है और नर्मदा का सगम है, वहाँ कुबेर ने दिव्य १०० वर्ष तप किया और शिव से वर पाकर यह यक्षों का राजा हुआ। जो मनुष्य वहाँ अग्नि में भस्म होता है अथवा अनशन व्रत धारण करता है उसको सर्वत्र जाने की गति प्राप्त हो जाती है।

(कूर्म्म पुराण-ब्राह्मी संहिता, उत्तरार्द्ध, ३८ वाँ अध्याय) कावेरी और नर्मदा के संगम में स्नान करने से रुद्र लोक में निवास होता है। वहाँ ब्रह्म निर्मित ब्रह्मेश्वर शिवलिंग है। उस तीर्थ में स्नान करने से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है।

(पद्म पुराण, भूमिखण्ड, २२ वाँ अध्याय) च्यवन ऋषि पर्य्यटन करते हुए अमरकण्टक स्थान में नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर पहुँचे जहाँ ओंकारेश्वर नामक महालिंग है। ऋषीश्वर ने सिद्धनाथ महादेव का पूजन और ज्वालेश्वर का दर्शन करके अमरेश्वर का दर्शन किया। फिर वह ब्रह्मेश्वर, कपिलेश्वर और मार्कण्डेश्वर का दर्शन करके ओंकार के मुख्य स्थान पर आए।

(शिवपुराण, ज्ञान संहिता, ३८ वाँ अध्याय) शिव के बारह ज्योतिर्लिङ्ग हैं जिनमें से एक अमरेश्वर में ओंकारलिंग है।

(४६ वाँ अध्याय) एक समय विन्ध्यपर्वत ओंकारचन्द्र में पार्थिव बनाकर पूजन करने लगा। कुछ समय पश्चात् महेश्वर ने प्रकट होकर विन्ध्य की इच्छानुसार वरदान दिया। इसके अनन्तर जब विन्ध्य और देवताओं ने शिवजी की प्रार्थना की, कि हे महाराज! आप इसी स्थान पर स्थित होवें तब वहाँ दो लिंग उत्पन्न हुए, एक ओंकार यंत्र से ओंकारेश्वर और दूसरा पार्थिव से अमरेश्वर। सम्पूर्ण देवगणलिंग का पूजन और स्तुति करके निज निज स्थान को चले गए। जो मनुष्य इन लिंगों का पूजन करता है उसका पुनः गर्भवास नहीं होता।

(स्कन्द पुराण, नर्मदा खण्ड) मान्धाता टापू पर सूर्यवंशी राजा मान्धाता ने शिव का पूजन किया था।

[लोकप्रजापति ब्रह्माजी ने वरुण के यज्ञ में एक पुत्र उत्पन्न किया जिसका नाम भृगु था। भृगु महर्षि ने पुलोमा नाम की स्त्री से विवाह किया। पुलोमा जब गर्भवती थी तभी उन्हें प्रलोमा नाम वाला राक्षस सूकर का रूप धारण कर उठा ले गया। पुलोमा रोती जाती थी। तेज़ दौड़ने के कारण ऋषि पत्नी का गर्भ च्यवित हो गया और एक महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। उसे देखते ही वह राक्षस उसके तेज से भस्म हो गया। वे ही महर्षि च्यवन हुए।]

[सहस्रार्जुन अथवा कार्तवीर्य अर्जुन बड़े बली और पराक्रमी राजा थे जिनको कहा जाता है कि एक हज़ार भुजाएँ थीं। इनको सहस्र बाहु भी कहते हैं। एक बार यह महाराज आखेट खेलते हुए महर्षि जमदग्नि के आश्रम के समीप आ निकले। महर्षि ने इनका और इनकी सेना का अपनी कामधेनु की सहायता से समुचित सत्कार किया। सहस्रार्जुन जबरदस्ती कामधेनु को महर्षि से छीन ले गए। इस पर रुष्ट होकर महर्षि के पुत्र परशुरामजी ने सहस्रार्जुन की नगरी पर चढ़ाई करके उनकी सब भुजाएँ काट डाली और वध कर दिया। परशुराम जी सारे क्षत्रिय वंश के परमशत्रु हो गए।]

च० द०—नर्मदा के उत्तर किनारे पर इन्दौर से ४० मील दक्षिण मान्धाता टापू है। इसका क्षेत्र फल एक वर्गमील से कुछ कम है। ओङ्कारनाथ का मन्दिर टापू के दक्षिण बगल पर नर्मदा के दाहिने ओङ्कारपुरी में है। ओङ्कार जी के मन्दिर के समीप अविमुक्तेश्वर ज्वालेश्वर आदि के मन्दिर हैं। मन्दिरों के नीचे नर्मदा का कोट तीर्थ नामक पक्का घाट है जहाँ स्नान और तीर्थ भेंट होती है। टापू के पूर्व किनारे के पास वहाँ के सब मन्दिरों में बड़ा और पुराना सिद्धेश्वर महादेव का मन्दिर है। इसके आगे नर्मदा के तीर परखड़ी पहाड़ी है, जिससे कूदकर पूर्व समय में अपनी मुक्ति के लिए अनेक मनुष्य आत्महत्या करते थे। सन् १८२४ ई० से बृटिश गवर्नमेण्ट ने यह रीति बन्द कर दी।

टापू के भीतर ही ओंकारपुरी की छोटी और बड़ी दो परिक्रमा हैं। पूर्व में मुसल्मानों ने परिक्रमा के पास के प्रायः सम्पूर्ण पुराने मन्दिरों के शिखर तोड़ दिये और बहुत सी देव मूर्तियों को अंग भङ्ग कर दिया।

ओंकारपुरी के सम्मुख नर्मदा के बाँए अर्थात् दक्षिण किनारे पर एक टीले के ऊपर ब्रह्मपुरी और इसके पश्चिम दूसरे टीले पर विष्णुपुरी गाँव है। दोनों के मध्य में कपिल धारा नामक एक छोटी धारा गोमुखी द्वारा नर्मदा

में गिरती है। उस स्थान का नाम कपिला सङ्गम है। वर्तमान सदी में नर्मदा के दक्षिण किनारे पर बहुत मन्दिर बने हैं।

ब्रह्मपुरी में अमरेश्वर शिव का विशाल मन्दिर है। दूसरे मन्दिर में ब्रह्मेश्वर शिवलिङ्ग है। एक छोटे मन्दिर में कपिल मुनि के चरण चिन्ह और एक स्थान में कपिलेश्वर महादेव हैं।

विष्णुपुरी से थोड़ा पश्चिम नर्मदा के किनारे जल के भीतर मार्कण्डेय शिला नामक चट्टान है जिस पर यमयातना से छुटकारा पाने के लिए यात्री लोग लोटते हैं। उसके समीप पहाड़ी के बगल पर मार्कण्डेय ऋषि का छोटा सा मन्दिर है।

एक जगह नर्मदा से कावेरी निकली है। वहाँ एक इमारत में विष्णु के २४ अवतार पत्थर में बने हुए हैं। कावेरी नदी के उतरते ही सिद्धवर कूट क्षेत्र मिलता है जहाँ जैन मन्दिर और धर्मशाला हैं।

दन्त कथा है कि सहसराम (जिला शाहाबाद, बिहार) सहस्रबाहु की राजधानी थी और उसका नाम सहस्रार्जुनपुर था। इस प्रकार इस कथा के अनुसार परशुराम ने सहस्रबाहु (कार्तवीर्य अर्जुन) को सहसराम में मारा था। कार्तवीर्य अर्जुन में हजार भुजाओं का बल होने के कारण उसे सहस्रबाहु कहते थे। पर पुराणानुसार परशुराम और सहस्रबाहु का युद्ध माहिष्मती में ही हुआ था।

५१७ मायापुरी—(देखिये हरद्वार)

५१८ माकराड—(मध्य प्रदेश के चाँदा जिले में एक तीर्थ स्थान)

यहाँ मार्कण्डेय ऋषि का आश्रम था। इस स्थान पर शिवजी ने मार्कण्डेय ऋषि को यम के भय से छुड़ाया था।

[ऋषि मार्कण्डेय महर्षि मृकण्डु के पुत्र थे। यह भृगुकुल में उत्पन्न हुए थे। श्री हर की आरधना करके मार्कण्डेय जी ने दुर्जेय काल को भी जीत लिया था वृहन्नारदीय पुराण के अनुसार महर्षि मृकण्डु के तप से प्रसन्न होकर भगवान नारायण ही नें पुत्र रूप में उनके यहाँ जन्म लिया था।]

चाँदा से ४० मील पूर्व वेण गङ्गा के किनारे एक मन्दिरों का समूह है, जिसमें मार्कण्डेय ऋषि का मन्दिर प्रधान है। इस मन्दिर के आस पास २० से ऊपर अन्य मन्दिर १९६ फ़ीट लम्बे और ११८ फ़ीट चौड़े घेरे के अन्दर बने हैं। घेरे की दीवार बहुत पुरानी है। मार्कण्डेय ऋषि के बाद सब से बड़ा मन्दिर मृकण्डेय ऋषि का है जो मारकण्डेय ऋषि के भाई कहे

जाते हैं। एक मन्दिर यहाँ धर्मराज (यमराज) का है, जिसमें केवल शिव-लिङ्ग स्थापित है और बिलकुल इसके सामने मृत्युञ्जय का मन्दिर है। मन्दिरों के समूह के पास छोटी सी आबादी है।

५१९ मार्कण्डेय तीर्थ — (देखिए सालग्राम)

५२० मार्तण्ड — (देखिए कश्मीर)

५२१ मालवा — (आधुनिक ग्वालियर रियासत में दक्षिण का भाग, व भोपाल राज्य व इन्दौर राज्य)

इसका प्राचीन नाम मालव मिलता है, जिसके दो भाग थे। पूर्व का भाग 'आकर' या 'आकरावन्ती' कहाता था जिसकी राजधानी विदिशा (भिलसा, भोपाल राज्य में) थी और पश्चिम का भाग 'अवन्ती' कहलाता था जिसकी राजधानी अवन्तिका पुरी या उज्जयिनी (उज्जैन) थी।

महाराज रामचन्द्र ने अपना राज्य बाँटने में विदिशा को शत्रुघ्न के पुत्र शत्रुघाती को दिया था। रामायण और देवी पुराण में इसे वैदिश देश कहा गया है।

मध्यकाल में मालवा की राजधानी धारापुर, धारा नगर या धारा नगरी (वर्तमान धाड़) थी, जिसके शासक राजा भोज बहुत प्रसिद्ध हैं।

मालवा का यह नाम 'मालव' नामक गण के यहाँ बस जाने से हुआ था। उन लोगों ने अपना सम्वत् भी चलाया जो पहिले समय में कृत और मालव सम्वत् कहाता था और बाद में विक्रम सम्वत् कहलाता है।

दक्षिण मालवा का नाम अनूप देश था, जिसकी राजधानी माहिष्मती (मान्धाता) थी।

५२२ माल्यवान पर्वत — (देखिए आनागन्दी)

५२३ माहुली क्षेत्र — (देखिए जाम्ब गांव)

५२४ माही नदी का मुहाना — (मालवा की माही नदी)

माही नदी के मुहाने पर एक गुफा में शिव जी ने अंधक दैत्य को मारा था। (मार्कण्डेय व शिव पुराण)

५२५ मिथिला पुरी — (देखिये सीतामढ़ी)

५२६ मिश्रिक — (देखिये नीमसार)

५२७ मिश्रधर कूट — (देखिये सम्मेद शिखर)

५२८ मीरा की ढेरी — (देखिये माणिक याला)

५२९ मुक्तागिरि—(मध्य प्रदेश के एलिच पुर ज़िले में एक स्थान)
जैन मत का यह प्रसिद्ध क्षेत्र और निर्वाण भूमि है। अनेक जैन मुनि यहाँ कर्म बन्धन से मुक्त हुए हैं।

यह स्थान एलिचपुर से १२ मील ईशानकोण की ओर है और मेढ़गिरि भी कहलाता है। जैनियों के यहाँ अनेक मन्दिर हैं और इसकी बड़ी महिमा है। कहा जाता है कि इस पर्वत पर से साढ़े तीन कोटि मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया है। इस क्षेत्र पर निरन्तर दैव चमत्कार होते कहे जाते हैं जिनमें से सर्व साधारण की दृष्टि में आने वाला केशर वृष्टि का चमत्कार है। इस पर्वत के ऊपरी भाग पर, मन्दिरों पर और वृक्षों के पत्तों पर केशरी रङ्ग के बिन्दु दिखाई देते हैं। कभी कभी रात्रि में, लोग कहते हैं, पर्वत पर मनोहर बाजों का शब्द सुनाई देता है और कभी कभी एकाएक घंटानाद भी होता है। धबधबे (कुंडा) के निकट पर्वत के कूलों पर भयङ्कर मधुमक्खियों के बड़े बड़े छत्ते हैं। रजस्वला स्त्री, सूतक और पातक युक्त मनुष्य की, पर्वत पर चढ़ने पर कहा जाता है कि ये बड़ी दुर्दशा करती हैं। अन्य किसी से नहीं बोलतीं। लोगों का विश्वास है कि यह लीला इस पर्वत के रक्षा करने वाले किसी यक्ष की है।

५३० मुक्तिनाथ—(नेपालराज्य में काटमाण्डू के उत्तर गण्डकी नदी पर स्थित एक स्थान)

यहाँ मुक्तिनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर है। इस स्थान के समीप गज और ग्राह का युद्ध हुआ था जिसमें विष्णु ने आकर ग्राह से गज की रक्षा की थी।

प्रा० क०—(दूसरा शिव पुराण-८ वा खण्ड, १५ वां अध्याय) नैपाल में मुक्तिनाथ शिव लिङ्ग है।

(देवी भागवत, नवाँ स्कन्ध १७ वें अध्याय से २४ वें अध्याय तक और ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृति खंड के १५ अध्याय से २५ वें अध्याय तक, तथा शिव पुराण ५ वें खंड का ३८ वां और ३९ वां अध्याय) लक्ष्मी जी जब शाप के कारण धर्मध्वज की पुत्री हुई तब उनका नाम तुलसी पड़ा। तुलसी का विवाह शंखचूड़ से हुआ। विष्णु ने ब्राह्मण का भेष धारण कर शंखचूड़ का कवच मांग लिया और छल से तुलसी से रमण किया तब शंखचूड़ शिव के हाथ से मारा गया। तुलसी ने विष्णु को शाप दिया कि संसार में पाषाण

रूप होने। विष्णु ने कहा कि तुलसी की देह भारतखण्ड में गण्डकी नदी होगी। उसका शरीर गण्डकी नदी और उसके केशों का समूह तुलसी वृक्ष हुए। विष्णु शालिग्राम शिला हुए।

(वाराहपुराण, १३८ वां अध्याय) जो मनुष्य सम्पूर्ण कार्तिक मास में गण्डकी नदी में स्नान करेंगे वे मुक्ति फल पावेंगे।

एक समय गण्डकी नदी के एक ग्राह ने एक हाथी का पैर पकड़ लिया और ग्राह गज को खींच कर पानी में ले जाने लगा। उस समय वरुण देवता के निवेदन से विष्णु ने वहाँ आकर सुदर्शनचक्र से ग्राह का मुख फाड़ कर गज को जल से बाहर निकाला। विष्णु ने कहा कि भक्त की रक्षा के लिए सुदर्शनचक्र ने गण्डकी नदी में जहाँ-जहाँ भ्रमण किया है, वहाँ सर्वत्र पाषाणों में सुदर्शनचक्र का चिन्ह हो गया है, इसलिए पाषाणों का नाम गण्डकी चक्र होगा और इस क्षेत्र का नाम शालिग्राम क्षेत्र है।

(पद्मपुराण, पाताल खंड, १६ वां अध्याय) गण्डकी नदी के एक छोर में शालिग्राम का महास्थल है। उसमें जो पाषाण उत्पन्न होते हैं वे शालिग्राम कहलाते हैं।

(उत्तर खण्ड ७५ वां अध्याय) गण्डकी नदी में शालिग्राम शिला बहुत होती हैं उस क्षेत्र को भी विष्णु भगवान ने रचा था।

(कूर्मपुराण, उपरिभाग, ३४ वां अध्याय) शालिग्राम तीर्थ विष्णु की प्रीति को बढ़ाने वाला है उस स्थान पर मृत्यु होने से साक्षात् विष्णु का दर्शन होता है।

व० द०—मुक्तिनाथ के आस पास गण्डकी नदी में विविध भांति के असंख्य शालिग्राम निकलते हैं और यात्री गण उनको ले आते हैं। नदी के आस पास छोटे बड़े १५-२० देव मन्दिर हैं। सात गर्म सोतों का पानी निकल कर नदी में गिरता है, जिसमें शालिग्राम निकलने के कारण उसे लोग नारायणी भी कहते हैं।

५३१ मुङ्गेर—(विहार प्रान्त में एक ज़िलें का सदर स्थान)

यह ऋषि मुद्गल का आश्रम था और मुद्गलपुरी व मुद्गल आश्रम कहलाता था।

महाराज रामचन्द्रजी यहाँ आए थे।

भगवान बुद्ध ने मुद्गलपुत्रनामक एक धनी सौदागर को यहीं अपना शिष्य बनाया था।

रावण को मारने की हत्या से रामचन्द्र जी को नींद नहीं आती थी। गुरु वशिष्ठ ने उन्हें मुद्गल ऋषि का दर्शन करने को कहा। महाराज रामचन्द्रजी उनके दर्शनों को मुद्गल गिरि पर आये और वहाँ गङ्गा में स्नान करके उस हत्या से मुक्त हुए। (रामचन्द्रजी ने रावण के मारने के प्रायश्चित्त के लिये गोमती नदी में हत्याहरण और धोपाप स्थानों पर भी स्नान किया बताया जाता है।)

चीनी यात्री ह्यानचांग ने मुङ्गेर को 'हिरण्य पर्वत' लिखा है।

मुङ्गेर की पहाड़ी पर मुद्गल ऋषि का आश्रम था। इसी से वह मुद्गल गिरि कहलाती थी जो बिगड़कर मुङ्गेर हो गई। इसके नीचे गङ्गाजी बहती हैं और उस घाट का नाम 'कष्ट हरण घाट' है क्योंकि वहाँ स्नान करने से रामचन्द्र जी का कष्ट छूट गया था।

५३२ मुचकुन्द—(धौलपुर राज्य में धौलपुर से ३ मील पश्चिम एक झील)

जब कालयवन व गोनर्द प्रथम ने जरासंध का पक्ष लेकर श्रीकृष्ण का पीछा किया था तब इसी स्थान पर मान्धाता के तपस्वी पुत्र मुचकुन्द द्वारा लजाकर वह भस्म कर दिया गया था।

[सूर्य वंशी इक्ष्वाकु कुल के महाराज मान्धाता के पुत्र मुचकुन्द थे। देवता भी इनकी सहायता के लिये लालायित रहा करते थे। देवासुर संग्राम में देवताओं ने इन्हें अपना सेनापति बनाया और इन्होंने बहुत पराक्रम दिखाया। बाद को स्वामि कार्त्तिकेय (शिवजी के पुत्र) सेनापति बनने को मिल गये और मुचकुन्द जिन्हें एक काल से सोने को नहीं मिला था, एक गुफा में जाकर सो गए। इन्होंने देवताओं से वरदान ले लिया था कि जो उन्हें जगाये, भस्म हो जाय। सोते हुए कई युग बीत गये। द्वापर आगया, मथुरा से कालयवन श्रीकृष्ण का पीछा किये चला आ रहा था, उससे बचने को श्रीकृष्णचन्द्र मुचकुन्द की गुफा में घुस गये। कालयवन और करता हुआ घुसा और मुचकुंद के जागने पर दृष्टि पड़ते ही भस्म हो गया।]

५३३ मुण्डकटा गणेश—(देखिए त्रियुगीनारायण)

५३४ मुरार—(बिहार प्रांत के शाहाबाद ज़िले में एक स्थान)

यहाँ राधास्वामियों के चौथे गुरु 'सरकार साहब' बाबू कामताप्रसाद सिन्हा ने १२ दिसम्बर सन् १८७१ ई० को जन्म लिया था।

१२ दिसम्बर सन् १६०७ ई० को आपने गुरुपद प्राप्त किया और ७ दिसम्बर १६१३ ई० को मुरार ही में शरीर छोड़ा था।

५३५ मुल्तान—(पाकिस्तानी पंजाब में एक ज़िले का सदर स्थान)

मुल्तान हिरण्यकश्यप और प्रहलाद की राजधानी थी।

नृसिंहावतार इसी स्थान पर हुआ था।

इसका प्राचीन नाम कश्यपपुर था। पीछे इसे मूलस्थान और गौलिस्तान कहते थे।

रामायण का यह मल्ल देश है जिसे महाराज रामचन्द्र ने लक्ष्मण जी के पुत्र चन्द्रकेतु को दिया था।

[दैत्यराज हिरण्यकश्यप के चार पुत्र थे। उनमें से प्रहलाद अवस्था में सबसे छोटे थे किन्तु भगवद्भक्ति तथा अन्य गुणों में सबसे बड़े थे। इन्हीं की रक्षा के लिए भगवान ने नृसिंह रूप धारण कर अवतार लिया।]

ऐसा प्रसिद्ध है कि पूर्व काल में मुल्तान शहर को महर्षि कश्यप ने बसाया था और कश्यपपुर करके वह प्रसिद्ध था।

उसके पश्चात् कश्यप के पुत्र हिरण्यकश्यप और पौत्र प्रहलाद की वह राजधानी हुआ। सम्वत् १८७४ का लिखा 'तुलसी शब्दार्थ प्रकाश' भाषा का पद्य ग्रन्थ है, उसमें लिखा है कि नृसिंह भगवान का अवतार मुल्तान में हुआ था।

मुल्तान में किले की प्रहलादपुरी में जिसका भाग सन् १८४८-४६ ई० के मुल्तान के आक्रमण के समय उड़ा दिया गया था, नृसिंह जी के पुराने मंदिर की निशानियाँ हैं। क़िले के पश्चिमी फाटक के निकट सूर्य का पुराना बड़ा मन्दिर है जिसको तोड़ कर औरङ्गजेब ने जामा मस्जिद बनवाई थी। सिक्खों ने इस मसजिद को अपना मैगज़ीन (Magazine) बनाया।

मुल्तान के एक बड़े मन्दिर में हिरण्यकश्यप का उदर विदारते हुए नृसिंह जी स्थित हैं। यहाँ नृसिंह चौदस अर्थात् वैशाख सुदी १४ को दर्शन का वृहत् मेला होता है।

मुल्तान से ४० मील पर सुलेमान पर्वत श्रेणी में एक पहाड़ प्रहलाद पर्वत है जहाँ से प्रहलाद को उनके पिता की आज्ञा से पहाड़ पर से गिराया गया था। उसी के समीप एक ताल है जिसमें उन्हें डुबोकर मारने का प्रयत्न किया गया था।

जयपुर राज्य में एक स्थान हिंडौन है जिसे हिरण्यपुरी कहा जाता है। उसे भी कुछ लोग नृसिंह अवतार का स्थान समझते हैं।

ग़ज़नी के प्रसिद्ध सूफ़ी अद्वैतवादी शम्सतबरेज मुल्तान में रहते थे।

५३६ मूलद्वारिका—(काठियावाड़ प्रांत में एक गाँव)

प्रसिद्ध है कि श्रीकृष्ण भगवान मथुरा से प्रथम इसी जगह आये थे।

यहाँ बहुत से पुराने मन्दिर हैं और पोरबन्दर अथवा सुदामापुरी से यह स्थान १२ मील पश्चिमोत्तर में है।

५३७ मेखला—(देखिए नगरा)

५३८ मेड़गिरि—(देखिए मुक्तागिरि)

५३९ मेरठ—(संयुक्त प्रांत में एक बड़ा शहर और कमिश्नरी का सदर स्थान)

इसका प्राचीन नाम मयराष्ट्र था और यह मयदानव की राजधानी थी।

रावण की स्त्री मन्दोदरी मयदानव की पुत्री थी। मन्दोदरी ने यहाँ बिल्वेश्वर महादेव की पूजा की थी।

मय ने मय-मत व मय शिल्पशास्त्र की रचना की थी।

मेरठ एक मनोहर नगर है। नौचन्दी का प्रसिद्ध मेला यहीं होता है। भारत का ईसवी १८५७ का स्वतन्त्रता युद्ध यहीं से आरम्भ हुआ था। अंग्रेजों ने इस युद्ध का नाम 'सिपाही म्यूटिनी' (Sepoy Mutiny) रक्खा था।

५४० मैलकोटा—(मैसूर राज्य के अतिकुप्पा तालुके में एक गाँव)

श्रीरामानुज स्वामी ने यहाँ १४ वर्ष निवास किया था।

इस गाँव में विशेष कर वैष्णव लोग रहते हैं, और रामानुजीय सम्प्रदाय का एक प्रसिद्ध मठ और कृष्ण का मन्दिर तथा ऊँची चट्टान के ऊपर नृसिंह जी का मन्दिर है। गाँव के निकट एक प्रकार की सफेद मिट्टी होती है, जिस को दूर-दूर के आचारी लोग ललाट पर तिलक करने के लिए ले जाते हैं।

५४१ मैसूर—(दक्षिण में एक बड़ा राज्य तथा उसी राज्य की राजधानी)

यह प्राचीन काल का माहिष्क है।

(महाभारत, अश्वमेध पर्व, ८३ वां अध्याय) अर्जुन देश-देश के राजाओं को जीतते हुए दक्षिण की ओर गए। वहाँ उन्होंने द्रविड़ (दक्षिण मद्रास प्रान्त) आन्ध्र (द्रविड़ के उत्तर) माहिषक (मैसूर) कालगिरीय (नीलगिरि)

वाले वीरों को संग्राम में परास्त करके सुराष्ट्र (काठियावाड़) की ओर गमन किया।

(आदि ब्रह्म पुराण, २६ वां अध्याय) भारतवर्ष के दक्षिण भाग में माहिषक, मौलेय (मलयगिरि) इत्यादि देश हैं।

मैसूर का राज्य भारतवर्ष के सबसे बड़े राज्यों में से एक है। यहाँ का प्रबन्ध भी अन्य रियासतों के प्रबन्ध से अच्छा रहा। नगर में बहुत बड़ी-बड़ी उत्तम इमारतें हैं।

मैसूर के क़िले से २ मील दक्षिण-पश्चिम समुद्र से लगभग ३॥ हजार फीट ऊँची चामुण्डा पहाड़ी पर चामुण्डा देवी का मन्दिर है जिनको महिष-मर्दिनी भी कहते हैं।

मैसूर नगर के स्थान पर सन् १५२४ ई० में केवल एक गाँव था। उस सन् में वहाँ एक क़िला बनवाया गया जिसका नाम महिषासुर पड़ा। बनवाने वाले राजा के वंश की इष्टदेवी चामुण्डा ने महिषासुर को मारा था। इसी से राजा ने क़िले का नाम महिषासुर रक्खा था। इसी से शहर का भी नाम पड़ा परन्तु पीछे महिषासुर से बिगड़ कर मैसूर हो गया।

५४२ मोग—(पाकिस्तानी पंजाब के गुजराँ वाला जिले में एक स्थान)

महाराज पुरू और सिकन्दर के बीच यहाँ संग्राम हुआ था।

विदेशियों के विरुद्ध भारतवर्ष ने पहिली पराजय इस दुःखमयी भूमि पर विधाता के हाथ से पाई थी। परन्तु राजा पुरु के पराक्रम और वीरता ने उसे भी पुण्य भूमि बना दिया।

भारतवर्ष की फूट ही उसे रसातल में पहुँचाने का कारण बनी। तक्षशिला के देशद्रोही राजा की सहायता से सिकन्दर ने राजा पुरु पर विजय पाई थी पर सिकन्दर भारतीय पुरु के चरित्र और वीरता से विस्मित हो गया था।

मोग का कस्बा जलालपुर से ६ मील पूर्व है।

५४३ मोहन कूट—(देखिए सम्मेद शिखर)

५४४ मोहरपुर—(संयुक्त प्रान्त के मिर्जापुर जिले में एक स्थान)

अहल्या का सतीत्व नष्ट करने पर गौतम ऋषि के श्राप से मुक्त होने को इन्द्र ने यहाँ तप किया था।

इन्द्र के तप का स्थान मोहरपुर से ३ मील उत्तर में है और विन्ध्याचल कस्बे से मोहरपुर १४ मील उत्तर है।

५४५ मौरवी—(काठियावाड़ देश में एक राज्य)

आर्य्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म मौरवी राज्य के अन्तर्गत टंकारा नामक स्थान में हुआ।

[सम्वत् १८८१ वि० में स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म टंकारा में हुआ था। इनका बचपन का नाम मूलशंकर था। इनकी उपरत वृत्ति देख कर माता पिता ने विवाह कर देना चाहा पर ऐसा प्रस्ताव सुनकर यह घर से निकल पड़े और नैष्ठिक ब्रह्मचारी बन गए तथा 'शुद्ध चैतन्य' नाम धारण किया। यहाँ भी पिता पहुँच गए परन्तु अवसर पाकर यह फिर निकल गए और सन्यास की दीक्षा लेकर अपना नाम 'स्वामी दयानन्द' रक्खा।

स्वामी दयानन्द सच्चे गुरु की खोज में घूमते फिरे पता चला कि मथुरा में स्वामी विरजानन्द जी एक प्रज्ञाचक्षु सन्यासी हैं जो वेदों के अद्वितीय ज्ञाता हैं। यह वहाँ पहुँचे। आज्ञा मिली कि जो पुस्तकें तुम्हारे पास हैं उन्हें यमुना में डुबो दो। इन्होंने वैसा ही किया। ढाई वर्ष स्वामी विरजानन्द ने इन्हें वेदों का ज्ञान कराया। तत्पश्चात् वेदों के प्रचार की प्रतिज्ञा करके वहाँ से यह कार्य क्षेत्र में ३६ वर्ष की अवस्था में उतरे। बम्बई में स्वामी जी ने आर्य-समाज की स्थापना की। इनके ऊपर भ्रमण में काशी और अमृतसर में पत्थर फेंके गए किन्तु वे यही कहते रहे कि जो आज पत्थर फेंकते हैं वे कल मुझ पर पुष्पों की वर्षा करेंगे।]

५४६ मौरावाँ—(देखिए रतनपुर)

य

५४७ यकलिङ्ग—(राजपूताने में उदयपुर से ६ मील उत्तर एक स्थान)

हारित ऋषि जिन्होंने एक संहिता की रचना की है, उनका यह आश्रम था।

उदयपुर राज्य में एक और भी स्थान यकलिङ्ग जी है जहाँ महाराणाओं के इष्ट देव श्री यकलिङ्ग जी का मन्दिर है। यही देवता मेवाड़ के अधिपति हैं, महाराणा केवल उनके दीवान हैं।

५४८ यमुनोत्री—(हिमालय में बन्दर पुच्छ पर्वत में एक स्थान)

कहते हैं कि हनुमान जी ने लङ्का में आग लगाकर अपनी पूँछ की आग यहाँ की झील में गोता लगा कर बुझाई थी, जिससे इसका नाम बन्दरपुच्छ पड़ा। यहीं से यमुना नदी निकली है।

५४९ यलोरा—(देखिए घुश्मेश्वर)

५५०-यादवस्थल—(देखिए सोमनाथ पट्टन)

र

५५१ रंगनगर—(देखिए श्री रङ्गम)

५५२ रंगपुर—(देखिए गोहाटी)

५५३ रङ्गून—(ब्रह्मदेश की राजधानी)

रङ्गून का प्राचीन नाम पुष्करावती नगर है। ब्रह्मदेश (वर्मा) को स्वर्ण भूमि कहते थे। रङ्गून में एक पैगोड़ा में भगवान् बुद्ध के बाल रखे हैं।

अपने बाल भगवान बुद्ध ने रङ्गून निवासी दो भाइयों को दिए थे जिन्होंने उन्हें रङ्गून लाकर उन पर यह सुविख्यात पैगोड़ा निर्माण किया। वर्मा का राजवंश अपने को महाभारत के महाराज मयूर ध्वज की सन्तान बताता है। मयूर ही उनकी पताका का चिन्ह है।

५५४ रतनपुर—(मध्य प्रान्त में बिलासपुर जिले का एक कस्बा)

राजा मयूरध्वज ने अपना आधा शरीर यहाँ आरे से चिरवाकर ब्राह्मण को दान देना चाहा था। इसका प्राचीन नाम 'रत्ननगर' है।

(जैमिनि पुराण, ४१-४६ वां अध्याय) युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ के समय अर्जुन और कृष्ण की रक्षा में भ्रमण करता हुआ, उनका यज्ञ अश्व मणिपुर (वर्तमान सिरपुर) के समीप पहुँचा।

राजा मयूरध्वज का पुत्र ताम्रध्वज, अर्जुन और कृष्ण को मूर्छित कर अश्व को पकड़ अपने पिता के पास रत्न नगर ले आया। श्री कृष्ण ने ब्राह्मण का रूप धरकर रत्न नगर में प्रवेश किया और राजा से उसके आधे शरीर की भिक्षा मांगी। राजा ने अपनी रानी और पुत्र को आज्ञा दी कि उसके शरीर को आरे से चीर दें। जब शरीर चीरा जाने लगा तब श्री कृष्ण ने प्रकट होकर उसकी रक्षा की।

[द्वापर के अन्त में रतनपुर के अधिपति महाराज मयूरध्वज एक बहुत बड़े धर्मात्मा तथा भगवद्भक्त सन्त हो गए हैं। एक बार इनके अश्वमेध का घोड़ा छूटा हुआ था और उसके साथ इनके वीर पुत्र ताम्रध्वज सेना सहित घूम रहे थे। उधर उन्हीं दिनों धर्मराज युधिष्ठिर का भी अश्वमेध यज्ञ चल रहा था और उनके घोड़े के रक्षक रूप में अर्जुन और श्रीकृष्ण साथ थे। मणिपुर में दोनों की मुठभेड़ हो गई। ताम्रध्वज ने विजय प्राप्त की

और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन को मूर्छित करके वह दोनों घोड़ों को अपने पिता के पास रत्नपुर ले गया ।]

१८ वीं सदी के महाराष्ट्रों के आक्रमण के समय तक जब हैहय राजवंश का अन्त हुआ, रत्नपुर का कोई मनुष्य आरा को अपने काम में नहीं लाता था । अब यह स्थान एक कस्बा के रूप में वर्तमान है ।

अवध के उन्नाव जिला में उन्नाव से ६ मील पूर्व मौरावां कस्बा है । इसको भी महाराज मयूरध्वज की राजधानी कहा जाता है ।

बङ्गाल में तमलुक को भी महाराज मयूरध्वज की राजधानी बताया जाता है । (देखिए तमलुक)

५५५ रत्नपुरी—(देखिए नौराही)

५५६ रत्नापुर—(देखिए लङ्का)

५५७ राँगामाटी—(बङ्गाल प्रान्त के मुर्शिदाबाद जिले में एक कस्बा)

यह स्थान 'कर्णसुवर्ण' है जो प्राचीन काल में बङ्गाल की राजधानी था । यहाँ के शासक आदिशूर के कहने से कन्नौज के महाराज वीरसिंह ने उनका यज्ञ कराने को कन्नौज से पाँच ब्राह्मण बङ्गाल भेजे थे जिनकी सन्तान आज बङ्गाल के कुलीन ब्राह्मण हैं ।

कर्ण स्वर्ण प्रसिद्ध सम्राट शशांक की राजधानी था जिन्होंने राज्यवर्धन (कन्नौज के राजा और प्रसिद्ध हर्षवर्धन के बड़े भाई) को मारा था और बौद्धों को बहुत सताया था । इन्होंने ही बोधि गया का पवित्र बोधि वृक्ष कटाया था । शशांक, गुप्त वंश के अन्तिम सम्राट थे ।

राँगामाटी की भूमि लाल है और दन्त कथा है कि राँगामाटी के एक दरिद्र ब्राह्मण ने विभीषण को निमन्त्रण दिया था और उन्होंने प्रसन्न होकर वहां पर स्वर्ण बरसाया था । इससे यह अर्थ प्रकट होता है कि लङ्का के व्यापार से इस देश को बड़ा लाभ था ।

पाँच ब्राह्मण जो कन्नौज से बङ्गाल आए थे उनके नाम भट्टनारायण (वेणीसंहार के लेखक), दक्ष, श्री हर्ष (नैषधि चरित्र के रचयिता), छान्दड़ और वेदगर्भ थे ।

रांगामाटी भागीरथी के दाहिने किनारे पर बसा है और बरहमपुर से ६ मील दक्षिण है ।

५५८ राइ भोइ की तलवण्डी—(देखिए नानकाना साहब)

५५९ राजगढ़ गुलरिया—(देखिए सहेट महेट)

५६० राजगिरि या राजगृह—(विहार प्रान्त में एक जिले का सदर स्थान)

इसके प्राचीन नाम गिरिव्रजपुर, गिरिव्रज, कुशाग्रपुर तथा कुशागारपुर भी मिलते हैं। यह स्थान महाभारत के मगधपति जरासन्ध की राजधानी था।

भगवान श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम यहाँ पधारे थे और भीम ने जरासन्ध का बध किया था।

यहाँ गौतम ऋषि का आश्रम था।

श्री मुनि सुव्रतनाथ (बीसवें तीर्थंकर) के यहाँ गर्भ, जन्म दीक्षा व कैवल्य ज्ञान कल्याणक हुए थे।

राजगृह से मील भर पर विपुलाचल पर्वत है जहाँ श्री महावीर स्वामी का समवसरण आया था।

बोध प्राप्त करके भगवान बुद्ध ने दूसरा व तीसरा चौमासा राजगृह में बिताया था। उसके पीछे कई चौमास और बिंबिसार के दिए हुए वेणुवन नामक उपवन में यहाँ बिताए थे।

देवदत्त ने यहीं भगवान बुद्ध से वैमनस्य करके दूसरा मत खड़ा किया था जो उसके मरने पर टूट गया। राजगृह से २½ मील दक्षिणपूर्व गृद्धकूट पर्वत पर से पत्थर ढकेल कर देवदत्त बुद्ध भगवान को मार डालने का यहाँ प्रयत्न किया था। बुद्ध देव पर्वत के नीचे उस समय टहल रहे थे।

भगवान बुद्ध के चिता की विभूति आठ भाग करके राजाओं में बाँट दी गई थी पर पीछे मगधपति अजातशत्रु ने सात भाग एकत्रित करके उनको राजगृह के एक स्तूप में रक्खा था।

राजगृह में ही महात्मा महाकाश्यप की अध्यक्षता में पहली बौद्ध सभा हुई थी। यह सभा बुद्ध की मृत्यु के थोड़े समय बाद अजातशत्रु के द्वारा बनवाये हुये ईसा से ५४१ साल पहले एक भवन में सप्तपर्णी (सप्त पानी) गुफा के सामने हुई थी, जिसमें ५०० परम प्रवीण बौद्ध बैठे थे।

सोन भण्डार नामक गुफा में यहाँ भगवान बुद्ध शयन किया करते थे।

मण्डन मिश्र जो पीछे विश्वरूप आचार्य कहलाये और जिनको शङ्कराचार्य्य ने माहिष्मती (मान्धाता) में शास्त्रार्थ में परास्त किया था, उनका जन्म राजगृह में हुआ था।

प्रा० क०—(महाभारत सभापर्व, २० वां अध्याय)

राजा युधिष्ठिर के सहमत होने पर श्रीकृष्णचन्द्र, भीम और अर्जुन के सहित, स्नातक ब्राह्मणों के वस्त्र पहिन कर इन्द्रप्रस्थ से मगधनाथ के धाम की ओर चले और गङ्गा व सोन के पार उतर कर मगधराज के नगर के समीप पहुँचे। अनन्तर उन्होंने गोरथ नामक पर्वत से उतर कर मगधनाथ की पुरी देखी।

(२१ वां अध्याय) श्रीकृष्ण बोले कि हे अर्जुन ! देखो मगधराज की राजधानी कैसी सुन्दर शोभा पा रही है। ऊँची ऊँची चोटी वाले, ठण्डे वृक्षों से ढँके और एक दूसरे से मिले वैरार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैतक ये पांच पर्वत मानों एक सुन्दर गृह बनकर गिरिव्रज नगरी की रखवाली कर रहे हैं। पूर्वकाल में अङ्ग बङ्ग के राजागण यहाँ के गौतम जी की कुटी में आकर प्रमुदित होते थे। देखो गौतम जी के आश्रम के निकट लोध और पीपल के वन कैसी सुन्दर शोभा पा रहे हैं।

(२३ वां अध्याय) श्रीकृष्णचन्द्र के पूछने पर तेजस्वी मगधनाथ ने भीम से लड़ने को कहा। तब जरासन्ध और भीम शस्त्र लिये अति प्रमुदित चित्त से परस्पर भिड़ गये। भीम और जरासन्ध की लड़ाई होने लगी जो कार्तिक मास की प्रथमा तिथि से त्रयोदशी तक निशिदिन बिना भोजन जारी रही। चतुर्दशी की रात को जरासन्ध ने थक कर कुश्ती त्याग दी।

(२४ वाँ अध्याय) भीम ने जरासन्ध को ऊँचे उठाकर १०० बार घुमाने के पश्चात् अपनी जाँघ से उसकी पीठ नवाकर तोड़ डाली। अनन्तर श्री कृष्णचन्द्र ने राजाओं को कारागार से छुड़ाया और जरासन्ध के पुत्र सहदेव को राजतिलक देकर भीम और अर्जुन के साथ वे इन्द्रप्रस्थ लौट आये।

(जरासन्ध और भीम के युद्ध की कथा श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध के ७२ वें अध्याय में भी है)

(महाभारत, वन पर्व्व ८४ वां अध्याय) पुलस्त्य बोले कि तीर्थ सेवी पुरुष राजगृह तीर्थ को जाय। वहाँ तीर्थों का स्पर्श करने से पुरुष आनन्दित

होता है। वहाँ यक्षिनी को नैवेद्य लगाने के बाद भोजन करने से यक्षिनी के प्रसाद से पुरुष की ब्रह्महत्या छूट जाती है।

मणिनाग तीर्थ (राजगृह के समीप होना चाहिये) में जाने से हजार गोदान का फल होता है। जो पुरुष मणिनाग तीर्थ में उत्पन्न हुई वस्तुओं को खाता है उसे सर्प काटने का विष नहीं चढ़ता। वहाँ एक रात रहने से हज़ार गोदान का फल होता है। वहाँ से महर्षि गौतम के वन में जाना उचित है। वहाँ अहल्या कुण्ड में स्नान करने से सद्गति प्राप्त होती है।

[श्री सुव्रतनाथ मुनि, बीसवें तीर्थङ्कर थे। आपकी माता का नाम श्यामा और पिता का नाम सुमन्त था। कछुआ आपका चिन्ह है। राजगृह में आपके गर्भ, जन्म और दीक्षा तथा कैवल्यज्ञान कल्याणक हुये थे और पार्श्वनाथ में निर्वाण हुआ था।]

व० द० राजगृह की पहाड़ियाँ लगभग १००० फ़ीट ऊँची हैं। उनमें वैभार (महाभारत का वैहार), विपुलाचल (महाभारत का चैतक), रत्नगिरि (महाभारत का ऋषिगिरि), उदयगिरि और सोनगिरि प्रसिद्ध हैं। ये वे पांच पहाड़ियाँ हैं जो राजगृह को चारों ओर से घेरे हैं। समीप चार मील दक्षिण वाणगङ्गा पहाड़ी नदी है जिसके पार की पहार दीवारी जरासन्ध का बाँध कहलाती है। वाणगङ्गा से उत्तर रङ्गभूमि है। लोग कहते हैं कि भीमसेन ने जरासन्ध को इसी जगह पर चीर डाला था।

राजगृह में सरस्वती नामक नदी दक्षिण-पश्चिम से वैभार पर्वत के पूर्वोत्तर ब्रह्मकुण्ड के पूर्व आई है। ब्रह्मकुण्ड के पास सरस्वती को प्राची सरस्वती कुण्ड कहते हैं। सरस्वती कुण्ड से पश्चिम वैभार पर्वत के पूर्वोत्तर पांव के पास मार्कण्डेय क्षेत्र है।

सरस्वती कुंड से एक मील दक्षिण-पश्चिम ११ गज लम्बी और ५॥ गज चौड़ी सोनभण्डार की प्रसिद्ध गुफा है। इस गुफा में भोजन करने के उपरान्त भगवान बुद्ध दिन में शयन करते थे; इसी पहाड़ी के उत्तर भाग में सोनभण्डार गुफा से एक मील दूर सत्तपाणी गुफा थी जिसके सामने प्रथम बौद्ध सभा हुई थी।

राजगृह से १८ मील दूर जेठियन नामक स्थान है जिसका प्राचीन नाम यष्टिवन है। भगवान बुद्ध ने यहीं कई चमत्कार प्रदर्शित किये थे तथा सम्राट बिंबिसार को २९ वर्ष की आयु में यहीं बौद्ध बनाया था।

राजगृह में बहुत कुण्ड और कई झरने हैं। झरने सप्त ऋषि (अत्रि, भरद्वाज, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, वशिष्ठ और यमदग्नि) के नाम से प्रसिद्ध हैं। चीन के यात्री फ़ाहियान और ह्वानचांग ने भी इन झरनों का वर्णन किया है। बहुतों का पानी गर्म है और यात्री लोग कुण्डों में स्नान करते हैं। मलमास में एक महीना यहाँ मेला रहता है, उसके कृष्ण पक्ष में भारी भीड़ होती है। स्त्री और पुरुष सभी भीगे हुए वस्त्र पहिने एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्नान करते फिरते हैं।

सरस्वती कुण्ड के १२ मील पश्चिम तपोवन और गिरिव्रज नामक स्थान है जिनको लोग जरासन्ध का भजनागार और बैठक कहते हैं। तपोवन में चारों भाई सनकादिक के नाम से गरम झरने के चार कुण्ड हैं।

राजगृह की पहाड़ियों पर बहुत से जैन मन्दिर हैं जिनमें कार्तिक मास में बड़ा मेला लगता है।

५६१ राजापुर—(देखिए सोरों)

५६२ राजिम—(मध्य प्रदेश के रायपुर ज़िले में एक स्थान)

यह कर्दम ऋषि का स्थान था।

भविष्योत्तर पुराण की एक कथा है कि महाराज रामचन्द्र के अश्वमेध के समय में राजू में राजुलोचन नामक राजा राज्य करता था। उसने अश्वमेध के श्यामकर्ण घोड़े को पकड़ लिया और उसे ऋषि कर्दम को जो महानदी के किनारे वास करते थे, दे दिया। जब शत्रुघ्न यहाँ सेना सहित पहुँचे तो ऋषि के श्राप से भस्म होगए। श्री रामचन्द्र ने आकर कर्दम ऋषि के दर्शन किए और शत्रुघ्न तथा सेना का उद्धार किया। उन दिनों यहाँ केवल शिव मन्दिर थे पर रामचन्द्रजी (विष्णु) ने भी निवास करने का वचन दिया।

सारे महाकोशल में राजिम सबसे पवित्र स्थान माना जाता है और महानदी के पूर्वोत्तर तट पर बसा है। राजीवलोचन का मन्दिर यहाँ का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है। कहा जाता है कि राजा जगतपाल ने (११४५ ई०) स्वप्न में देखा कि परमेश्वर उनसे कह रहे हैं कि राजीव तेलिन के पास जो पत्थर है उसको लेकर उस पर मन्दिर बनवा दें। तेलिन ने उस पत्थर का दाम सोने के वजन में लिया। यह वही राजीवलोचन मन्दिर है। राजीव तेलिन का छोटा मन्दिर भी पास में है। इनके अतिरिक्त यहाँ बहुत से शैव और वैष्णव मन्दिर हैं।

५६३ राधानगर—(बङ्गाल प्रान्त के कृष्ण नगर के समीप एक स्थान)

यहाँ राजा राममोहनराय का जन्म हुआ था।

[सन् १७७४ ई० में राधा नगर के सुप्रसिद्ध रायवंश में राजा राममोहन राय का जन्म हुआ था। आपके पिता रमाकान्तराय सुप्रतिष्ठित कुलीन ब्राह्मण और वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी थे। राममोहनराय आरम्भ में अर्बी फ़ारसी की शिक्षा के लिए तीन साल पटना में रहे। इसके अनन्तर चार साल संस्कृत की शिक्षा प्राप्त करने को आप काशी में रहे। आपका मन वैष्णव सम्प्रदाय की ओर से फिर, गया। यह बात आपके माता-पिता को असह्य थी। राममोहनराय जी घर से निकल गए और भारत भ्रमण करते हुए बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तिब्बत चले गए। इनके पिता वहाँ से इन्हें लौटाल लाए पर आप अपने स्वतंत्र विचारों का बड़े जोर से प्रचार करते रहे और सन १८२८ ई० में ब्रह्म समाज की स्थापना की। आप इङ्गलैण्ड गए और वहाँ आपकी असाधारण योग्यता से लोग दङ्ग हो गए थे। वहीं आपने १८३३ ई० में अपने नश्वर शरीर का त्याग किया।]

५६४ रामकी ढ़ेरी—(देखिए माणिक याला)

५६५ रामकुण्ड—(रियासत हैदराबाद के ज़िला उस्मानाबाद में एक गाँव)

रामकुण्ड से थोड़ी दूर पर कुँथल गिरि पर्वत की चोटी पर से श्रीकुल-भूषण देश भूषण मुनि (जैन) मोक्ष प्राप्त किए थे।

[कुल भूषण और देश भूषण दोनों सहोदर भ्राता थे और दक्षिण प्रान्त के एक राजा के पुत्र थे। दोनों बाल्यावस्था में विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल में रहे थे। युवा होने पर अपने निवास स्थान को आ रहे थे कि उन्होंने राजमहल के एक झरोखे में एक कन्या को देखा। दोनों उस पर आसक्त होगए और दोनों ने पृथक पृथक उसने अपने विवाह के लिये अपनी माता से कहा। माता सुनकर अवाक हो गई और बतलाया कि यह उन्हीं की कन्या तथा राजकुमारों की लघु भगिनी है। इतना सुनते ही दोनों राजकुमार वैरागी हो गए और कुन्थल गिरि पर्वत से निर्वाण को प्राप्त हुए।]

इस स्थान पर दस जैन मन्दिर हैं और कहा जाता है कि यहाँ भूत प्रेत और पिशाचादिक की बाधा नष्ट हो जाती है।

५६६ रामगढ़—(देखिए चित्रकूट)

५६७ रामगढ़—(देखिए बनारस)

५६८ रामटेक—मध्य प्रान्त के नागपुर जिले में एक स्थान)

महाराज रामचन्द्र के समय में यहाँ एक शूद्र शम्बूक ने तपस्या की थी, जिसको रामचन्द्र जी ने आकर मारा था।

इस स्थान के प्राचीन नाम सिन्दुरा गिरि, शम्बुक आश्रम, रामगिरि, शैवलगिरि और तपोगिरि हैं।

रामायण उत्तर रामचरित्र और महावीर चरित्र में कथा है कि, श्री रामचन्द्र जी के राज्य में एक ब्राह्मण बालक अपने पिता के जीवनकाल में मर गया। उनके पास फरयाद हुई और उन्होंने जाँच कराई तो मालूम हुआ कि एक शूद्र बालक तप कर रहा है, जिसका यह परिणाम हुआ था। श्री राम ने उस शूद्र बालक को मार डाला। जब वह स्वर्ग को जाने लगा तो उसने रामचन्द्र जी से यह बचन ले लिया कि वे सदा उस स्थान पर बास करें। कहा जाता है कि तब से रामटेक में श्री रामचन्द्र जी का निवास है। यह एक पहाड़ी है जिसपर अनेकों मन्दिर बने हैं। जहाँ शूद्र शम्बूक ने तपस्या की थी वहाँ एक चौकोर मन्दिर खड़ा है।

५६९ रामनगर—(संयुक्त प्रान्त के बरेली जिले में एक प्राचीन स्थान)

इसके प्राचीन नाम अहिछत जी, अहिछत्र और अहिछेत्र हैं। इस स्थान पर भगवान बुद्ध ने सात दिन तक नागराज को उपदेश दिया था।

इस क्षेत्र पर श्री पार्श्वनाथ भगवान् (तेईसवें तीर्थङ्कर) ने दीक्षा ली थी और उनके तप के समय कमठ के जीव ने बहुत बड़ा उपसर्ग किया था। श्री पार्श्वनाथ को यहाँ कैवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ था।

यह स्थान अहिछेत्र, उत्तरीपाञ्चाल की राजधानी था और उसके राजा द्रोणाचार्य थे।

प्रा० क० महाभारत से थोड़ा पहले द्रोणाचार्य ने द्रोपदी के पिता राजा द्रुपद को परास्त करके उत्तरीय पाञ्चाल को अपने आधीन कर लिया था और अहिछेत्र को अपना राजनिवास बनाया था। दक्षिणी पाञ्चाल, जिसकी राजधानी कंपिला थी, राजाद्रुपद के पास छूट गया था। पाञ्चाल देश हिमालय पर्वत से लेकर चम्बल नदी तक फैला हुआ था।

चीन के यात्री ह्वानचांग ने इस जगह को अपनी यात्रा में देखा था। उस समय यहाँ केवल ६ देव मन्दिर थे और वे सब शिवालय थे। इससे

ज्ञात होता है कि जिस समय ह्वानच्वांग ने यात्रा की थी उन दिनों यह स्थान बौद्ध मतावलम्बियों से बसा हुआ था। उसके पीछे सनातनधर्मियों का जोर हुआ, क्योंकि इस समय भी कम से कम २० देव मन्दिरों के चिन्ह यहाँ मौजूद हैं। जिन दिनों ह्वानच्वांग ने यहाँ की यात्रा की थी उन दिनों नगर के बाहर 'नागह्रद' नाम का एक तालाब यहाँ था। महाराज अशोक ने वहाँ एक स्तूप भी बनवाया था। भगवान बुद्ध ने उसी स्थान पर नागों के राजा को सात दिन तक सदुपदेश दिया था।

सु० दू०—रामनगर आँवला से ६ मील है। चैत्रबदी ८ से १२ तक जैनियों का यहाँ बड़ा मेला होता है। एक मकान में चरणपादुका है, यही स्थान 'अहिछत्र' जी कहलाता है।

यहाँ एक बड़े और पुराने क़िले के खण्डहर हैं। लोग उसको पाण्डवों का किला कहते हैं। इसका दूसरा नाम आदि कोट भी है। इसमें ३४ बुर्ज हैं। एक मील की दूरी पर सवा सौ बीघे में एक ताल 'गन्धान-सागर' यहाँ है और उससे दो फर्लाङ्ग दूर कर एक और तालाब 'आदि सागर' डेढ़ सौ बीघे में है।

एक खेड़ा, यहाँ एक हजार फीट लम्बा और एक हजार फीट चौड़ाई की दूरी में है और उसके बीच में एक बड़ा स्तूप है जिसे 'छत्र' कहते हैं। कदाचित यही महाराज अशोक का बनवाया हुआ स्तूप है जहाँ भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया था।

५७० रामपुर—(देखिए सोरों)

५७१ रामपुर देवरिया—(संयुक्त प्रान्त के बस्ती जिले में एक गाँव)

इसका प्राचीन नाम रामग्राम था। यहाँ भगवान बुद्ध की चिता का आठवाँ भाग रक्खा गया था।

यहीं से इस चिता के भाग में से नाग लोग भगवान का दाँत लेगए थे जो अब लङ्का के अनिरुद्धपुर में है और जिसकी वहाँ भारी पूजा होती है।

भगवान बुद्ध की चिता की राख को बहुत से राजा ले जाना चाहते थे और उसके लिए युद्ध होने वाला था। इसको रोकने के लिए राख और फूलों के आठ भाग किए गए जो आठ स्थानों के राजा अलग-अलग अपने यहाँ ले गए। ह्वानचांग ने लिखा है कि ऐसे एक भाग पर रामग्राम में एक स्तूप था।

रामपुर देवरिया गाँव एक पुराने खेड़े पर बसा है जो मड़वाताल के तट पर है। गाँव के पूर्वोत्तर में एक टूटा हुआ स्तूप है जो अब भी २० फुट ऊंचा है। इसी स्तूप में चिता का आठ वाँ भाग रक्खा था।

५७२ रामेश्वर—(मद्रास प्रान्त के मदुरा जिले में मनार की खाड़ी में एक टापू)

यह भारतवर्ष के प्रसिद्ध चार धामों में से दक्षिण का धाम है।

श्रीरामचन्द्र जी ने इस टापू पर रामेश्वर शिव लिङ्ग की स्थापना की थी। सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, विभीषण आदि यहाँ आये थे।

रामेश्वर शिवलिङ्ग शिव जी के द्वादश ज्योतिलिङ्गों में से एक है।

नल ने यहाँ समुद्र में पुल बाँधा था।

श्रीकृष्ण जी ने यहाँ के कोटि तीर्थ में स्नान किया था।

रामेश्वर की ऊँची भूमि का प्राचीन नाम गन्धमादन पर्वत था।

अगस्त्य जी गन्धमादन पर्वत पर पधारे थे और उनके शिष्य सुतीक्ष्ण मुनि ने बहुत समय तक वहाँ तप किया था।

अहिर्बुध ऋषि ने इस पर्वत पर सुदर्शनचक्र की उपासना की थी।

शङ्ख मुनि ने श्री विष्णु की प्रसन्नता के लिए गन्धमादन में तप किया था।

गालव मुनि ने यहाँ तप किया था।

सुचरित मुनि ने यहाँ शिव जी की स्थापना की थी।

मुङ्गल मुनि ने पुलग्राम (जहाँ से सेतु बन्ध बनना आरम्भ हुआ था) में यज्ञ किया था।

पौराणिक कथा है कि ब्रह्मा जी ने गन्धमादन पर्वत पर जाकर ८८ हजार वर्ष पर्यन्त कई यज्ञ किए थे। और सूर्य भगवान ने यहाँ चक्र तीर्थ में स्नान किया था।

श्री रामचन्द्र के लङ्का विजय के पश्चात सीता जी की अग्नि परीक्षा इसी स्थान पर गन्धमादन पर्वत के अग्नि तीर्थ में हुई थी।

महिषासुर रामेश्वर की धर्म पुष्करणी में मारा गया था।

राजा पुरुरवा ने यहाँ के साध्यामृत तीर्थ में स्नान किया था।

युधिष्ठिर तथा बलदेव जी ने रामेश्वर की यात्रा की थी।

प्रा० क०—(पाराशर स्मृति, १२ वाँ अध्याय) समुद्र के सेतु के दर्शन करने से ब्रह्म हत्या पाप छूट जाता है। श्रीरामचन्द्र की आज्ञा से नल वानर ने १०० योजन लम्बा और १० योजन चौड़ा सेतु बाँधा था।

(वाल्मीकीय रामायण, लङ्काकाण्ड, १२५ वाँ सर्ग) श्रीरामचन्द्र ने रावण को जीतकर श्री सीता, लक्ष्मण और विभीषणादिक राक्षस तथा सुग्रीवादिक बानरों के सहित पुष्पक विमान पर चढ़ लङ्का से प्रस्थान किया; विमान आकाश मार्ग से चला। श्रीरामचन्द्र जी जानकी जी को स्थानों को दिखाने लगे। वह बोले कि हे सीते ! देखो यह सेना टिकने का स्थान है। यहाँ सेतु बाँधने के पहिले शिवजी मेरे ऊपर प्रसन्न हुए थे। यह समुद्र काट सेतुबन्ध नाम से प्रसिद्ध तीनों लोकों में पूजित हुआ है। यह पवित्र स्थान पापों का नाश करने वाला है।'

(ब्रह्माण्ड पुराण, अध्यात्म रामायण लङ्काकाण्ड, चौथा अध्याय) सेतु आरम्भ के समय श्रीरामचन्द्र जी ने लोकहित के लिये वहाँ रामेश्वर शिव को स्थापित किया।

(शिवपुराण, ज्ञान संहिता, ३८ वाँ अध्याय) शिव जी के १२ ज्योति लिङ्ग हैं जिनमें सेतुबन्ध में रामेश्वर शिवलिङ्ग है।

(५७ वाँ अध्याय) रामचन्द्र जी, लक्ष्मण जी और सुग्रीव आदि १८ पद्म सेनाओं के सहित सीता को छुड़ाने के लिए दक्षिण समुद्र के पास पहुँचे। उन्होंने बानरों से मृत्तिका माँग कर मृत्तिका शिव लिङ्ग बनाया और आवाहन तथा पूजन करके विनय की कि 'हे शङ्कर ! आपकी कृपा से रावण दुर्जेय हुआ है; आप मेरी सहायता कीजिए। शिव जी प्रकट होकर बोले कि 'हे रामचन्द्र ! तुम्हारा मङ्गल होगा।' श्रीरामचन्द्र जी ने शिव जी से विनय की कि, 'हे शङ्कर ! आर्य्य लोगों के हित के लिए आप इस स्थान पर निवास कीजिए।' शिवजी ने रामचन्द्र के बचन से प्रसन्न होकर वहाँ लिङ्गरूप से निवास किया। उसी लिंग को रामेश्वर कहते हैं। रामेश्वर शिव के स्मरण मात्र से सम्पूर्ण पापों का नाश शीघ्र हो जाता है।

(गरुड़ पुराण पूर्वार्द्ध, २१ वाँ अध्याय) सेतुबन्ध रामेश्वर एक उत्तम तीर्थ है।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण कृष्ण जन्म खण्ड, ७६ वाँ अध्याय) आषाढ़ की पूर्णिमा को सेतुबन्ध रामेश्वर के दर्शन और पूजन करने से प्राणी का फिर जन्म नहीं होता है। रात में महादेव जी के दर्शन के लिए वहाँ विभीषण आते हैं।

(स्कन्द पुराण, सेतुबन्ध खण्ड, पहिला अध्याय) श्री रामचन्द्र जी के बाँधे हुए सेतु के समीप सब क्षेत्रों में उत्तम रामेश्वर क्षेत्र है।

(दूसरा अध्याय) श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा से वानर गण सहस्रों पर्वतों के शृङ्ग, वृक्ष, तृण, वेलि आदि लाये। नल ने समुद्र के ऊपर १० योजन चौड़ा और १०० योजन लम्बा सेतु बाँधा। जहाँ रामचन्द्र जी ने कुश शय्या पर शयन किया और सेतु बाँधा वही स्थान प्रसिद्ध तीर्थ होगया। सेतु बन्ध के समीप के तीर्थों में निम्नाङ्कित २४ तीर्थ प्रधान हैं।

१—चक्रतीर्थ
२—वेतालवरद
३—पापविनाशन
४—सीतासर
५—मङ्गलतीर्थ
६—अमृतवापिका
७—ब्रह्म कुण्ड
८—हनुमत्कुण्ड
९—अगस्त्यतीर्थ
१०—रामतीर्थ
११—लक्ष्मण तीर्थ
१२—जटातीर्थ
१३—लक्ष्मी तीर्थ
१४—अग्नि तीर्थ
१५—चक्र तीर्थ
१६—शिव तीर्थ
१७—शङ्ख तीर्थ
१८—यमुना तीर्थ
१९—गङ्ग तीर्थ
२०—गयातीर्थ
२१—कोटि तीर्थ
२२—साध्यामृत तीर्थ
२३—मानस तीर्थ
२४—धनुषकोटि तीर्थ

(तीसरा अध्याय) सेतुमूल के समीप चक्रतीर्थ है। धर्म्म ने दक्षिण के समुद्र तट पर बहुत काल तक तप किया और स्नान के लिए वहाँ एक

पुष्करणी बनाई, जिसका नाम धर्मपुष्करिणी पड़ा। धर्म, शिवजी को प्रसन्न करके उनका वाहन वृष बन गया। उसके पश्चात् ध्यान करते हुए गालव मुनि को एक राक्षस ने जा पकड़ा। उस समय मुनि विष्णु को पुकारने लगे। श्री विष्णु की आज्ञा से सुदर्शनचक्र ने वहाँ जाकर उस राक्षस का सिर काट लिया। उसके उपरान्त वह चक्र धर्म पुष्करिणी में प्रवेश कर गया। तभी से धर्म पुष्करिणी का नाम चक्रतीर्थ हो गया।

(सातवाँ अध्याय) महिषासुर के संग्राम में श्री जगदम्बा ने उस असुर को एक मूका मारा, वह व्याकुल होकर भागा और दक्षिण समुद्र के तट पर जाकर दशयोजन लम्बी चौड़ी धर्म पुष्करिणी के जल में लुप्त हो गया। श्री भगवती के जाने पर वहाँ आकाशवाणी हुई कि दैत्य धर्म पुष्करिणी के जल में छिपा है। जगदम्बा की आज्ञा से उनके वाहन सिंह ने पुष्करिणी के सम्पूर्ण जल को पी लिया; तब भगवती ने महिषासुर का सिर काट लिया और दक्षिण समुद्र के तट पर अपने नाम से नगर बसाया। वही देवीपुर और देवी पट्टन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। (देवी भागवत के अनुसार महिषासुर तुलजा भवानी में मारा गया था—देखिए तुलजापुरी)

श्री रामचन्द्र जी ने शिवजी की आज्ञा से देवी पट्टन के समीप अपने हाथ से नवशिला स्थापन किये। देवी पट्टन से लङ्का तक सौ योजन लम्बा और दस योजन चौड़ा सेतु पाँच दिन में पूरा हुआ। देवी पट्टन से सेतु का आरम्भ हुआ इसलिये देवी पट्टन 'सेतुमूल' कहा गया। सेतुमूल के पश्चिम का छोर दर्भ शयन तीर्थ और पूर्व का छोर देवी पट्टन है। प्रथम नव पाषाण के समीप समुद्र में स्नान करके चक्र तीर्थ में श्राद्ध करना चाहिये।

(८ वां अध्याय) चक्र तीर्थ के दक्षिण भाग में वेतालवरद तीर्थ है।

(९ वां अध्याय) एक ऋषि के आदेशानुसार कपाल स्फोट नामक दैत्य दक्षिण समुद्र के तट पर पवित्र तीर्थ में पहुँचा। पवन के वेग से उस तीर्थ के जल कण उड़कर उस दैत्य के शरीर पर जा गिरे। उन जल कणों के स्पर्श से उसने अपना वेताल रूप छोड़ कर पूर्व रूप धारण कर लिया। पूर्व जन्म में वह विजयदत्त नामक ब्राह्मण था; किन्तु गालव मुनि के शाप से वेताल हुआ था। उसके पश्चात् वह उस तीर्थ में स्नान करके, मनुष्य देह त्याग दिव्य रूप हो स्वर्ग में चला गया। उसी दिन से उस तीर्थ का नाम वेताल-वरद हुआ।

(१० वां अध्याय) वेताल वरद तीर्थ में स्नान कर गन्धमादन पर्वत को, जो सेतु रूप से समुद्र में स्थित है, जाना चाहिये। उसके ऊपर लोक में प्रसिद्ध पाप विनाशन तीर्थ है। सुमति नामक ब्राह्मण करोड़ों वर्ष नरक भोग कर फिर ब्राह्मण के घर उत्पन्न हुआ; परन्तु उसे ब्रह्मराक्षस का आवेश हो गया। तब अगस्त्य मुनि के उपदेश से उसके पिता ने गन्धमादन पर्वत के पाप विनाशन तीर्थ में उसको संकल्प पूर्वक तीन दिन स्नान कराया जिससे ब्राह्मण का पुत्र आरोग्य हो गया और अन्त में मुक्ति पाई। पापों के नाश करने से ही उस तीर्थ का नाम पाप विनाशन पड़ा।

(११ वां अध्याय) गङ्गा आदि तीर्थ सीता सरोवर में निवास करते हैं। इसी तीर्थ में स्नान करने से ब्रह्महत्या ने इन्द्र को छोड़ा। श्री रामचन्द्र जी के सङ्कट निवृत्त करने के लिए सीता ने अग्नि में प्रवेश किया और अग्नि से निकल अपने नाम का यह तीर्थ बनाया। तभी से उसका नाम सीता सरोवर हुआ।

(१२ वां अध्याय) सीता कुण्ड में स्नान कर मङ्गल तीर्थ को जाना चाहिए जिसमें लक्ष्मी जी निवास करती हैं। इन्द्रादि देवता दरिद्रता के नाश के लिए नित्य उस तीर्थ में स्नान करते हैं। सेतुबन्ध के बीच गन्धमादन पर्वत पर मङ्गल तीर्थ है। उसमें सीता और रामचन्द्र सदा सन्निहित रहते हैं।

(१३ वां अध्याय) रामनाथ क्षेत्र में अमृतवापिका है, जिसमें स्नान करने वाले मनुष्य अजर-अमर हो जाते हैं। मङ्गल तीर्थ के पास के तीर्थ में अगस्त्य मुनि के भ्राता की मुक्ति हुई थी उसी से उस तीर्थ का नाम अमृत वापी हुआ क्योंकि मोक्ष को अमृत कहते हैं।

(१४ वाँ अध्याय) अमृतवापी में स्नान कर ब्रह्मकुण्ड को जाना चाहिए। ब्रह्मकुण्ड में स्नान करने वाले मनुष्य को यज्ञ, तप, दान और तीर्थ करने का कुछ प्रयोजन नहीं है। जो मनुष्य ब्रह्मकुण्ड से निकली विभूति को धारण करता है उसके समीप ब्रह्मा, विष्णु और शिव सदा निवास करते हैं। एक समय ब्रह्मा और विष्णु का परस्पर विवाद हुआ। दोनों अपने को बड़ा कहने लगे। उसी समय मध्य में एक लिङ्ग प्रकट हुआ। उसके अनन्तर यह निश्चय हुआ कि दोनों में से जो इस लिंग के आदि अन्त को जान सके वही सबसे बड़ा और लोक का कर्ता गिना जाय। ब्रह्मा हंस का रूप धर कर ऊपर को उड़े और विष्णु वराह रूप धर कर नीचे चले। १०० वर्ष के पीछे विष्णु

जी ने देवताओं से कहा कि हम को लिङ्ग का अन्त नहीं मिला। इतने में ब्रह्मा भी आ पहुँचे। वे अवश्य बोले कि हम इस लिङ्ग के अग्र को देख आये हैं। तब शिवजी ने कहा कि हे ब्रह्मा! तुमने हमारे सन्मुख झूठ कहा इसलिए जगत में तुम्हारी कोई पूजा न करेगा। पीछे ब्रह्मा की प्रार्थना से प्रसन्न होकर शिव जी बोले कि हमारा वचन तो मिथ्या नहीं हो सकता, परन्तु तुम गंधमादन पर्वत पर जाकर यज्ञ करो जिससे हमारे शाप का दोष निवृत्त हो जायगा, प्रतिमा में तुम्हारी पूजा न होगी, किन्तु श्रौत-स्मर्त्ति कर्मों में तुम्हारा पूजन होगा। श्री ब्रह्मा ने गंधमादन पर्वत पर जाकर ८८ हजार वर्ष पर्यंत कई यज्ञ किये। तब शिवजी ने प्रकट होकर यह वरदान दिया कि अब श्रौत स्मर्त्ति कर्मों में तुम्हारा पूजन हुआ करेगा और तुम्हारा यह यज्ञ का स्थान ब्रह्मकुण्ड के नाम से जगत में प्रसिद्ध होगा। जो एक बार भी इस ब्रह्मकुंड में स्नान करेगा उसके लिए मुक्ति का द्वार खुल जायगा। जो इस कुंड की भस्म को धारण करेगा वह आवागमन से रहित हो जायगा।

(१५ वाँ अध्याय) ब्रह्मकुण्ड में स्नान कर हनुमत्कुंड में जाना चाहिए। जब रामचन्द्र रावण को मार कर लौटे और गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे तब हनुमान ने अपने नाम से उत्तम तीर्थ बनाया। साक्षात रुद्र उस तीर्थ का सेवन करते हैं। धर्म सख राजा ने उस तीर्थ में स्नान कर दीर्घायु १०० पुत्र पाए। जो स्त्री उस तीर्थ में स्नान करती है, उसको अवश्य पुत्र उत्पन्न होता है।

(१६ वाँ अध्याय) श्री हनुमत्कुंड के पश्चात् अगस्त्य तीर्थ को जाना चाहिये। उस तीर्थ को साक्षात अगस्त्यजी ने बनाया है। पूर्व काल में सुमेरु और विन्ध्य पर्वत में परस्पर विवाद हुआ। तब विन्ध्याचल इतना बढ़ा कि सब जीवों का श्वास रुक गया। उस समय शङ्कर की आज्ञा से अगस्त्य जी ने उस पर्वत को अपने पैर से ऐसा दबाया कि वह भूमि के समान होगया। फिर अगस्त्य जी वहाँ से चले और दक्षिण दिशा में विचरते हुए गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने नाम से तीर्थ बनाया जिसमें वह अपनी भार्या लोपामुद्रा के साथ आज तक निवास करते हैं। दीर्घतमा मुनि के पुत्र कक्षीवान ने उस तीर्थ के प्रभाव से स्वनय की कन्या से विवाह किया।

(१८ वाँ अध्याय) अगस्त्य तीर्थ के बाद रामकुंड को जाना चाहिये। उस सरोवर के तीर पर अल्प दक्षिणा के भी यज्ञ करने से सम्पूर्ण फल मिलता

है। अगस्त्य मुनि के शिष्य सुतीक्ष्ण मुनि ने उस सरोवर के तीर पर बहुत काल तक तप किया।

[सुतीक्ष्ण जी, महामुनि अगस्त्य के शिष्य थे। वे एक महाज्ञानी ऋषि थे। गुरु दक्षिणा में भगवान रामचन्द्र को गुरु के आश्रम पर लाने का वे सद्वचन दे आये थे और तपस्या करके उसे पूरा किया।]

युधिष्ठिर, उस तीर्थ में स्नान और शिव लिंग का दर्शन करके असत्य भाषण के महादोष से छूट गये।

(१६ वाँ अध्याय) इसके बाद लक्ष्मण तीर्थ को जाकर उसमें स्नान करना चाहिये। उस तीर्थ के तट पर लक्ष्मण जी ने शिवलिंग स्थापित किया है। बलदेव जी लक्ष्मण तीर्थ में स्नान और लक्ष्मणेश्वर का सेवन कर ब्रह्म हत्या से छूट गए।

(२० वाँ अध्याय) पूर्वकाल में शिवजी ने गन्धमादन पर्वत में सबके उपकार के अर्थ एक तीर्थ बनाया। श्री रामचन्द्र जी ने रावण के मारने के पश्चात् उस तीर्थ में जटा धोई थी, इससे उस तीर्थ का नाम जटा तीर्थ पड़ा।

(२१ वां अध्याय) राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णचन्द्र की प्रेरणा से इन्द्रप्रस्थ से जाकर लक्ष्मी तीर्थ में स्नान किया, जिससे उन्होंने बड़ा ऐश्वर्य्य पाया।

(२२ वां अध्याय) पूर्व काल में श्री रामचन्द्र जी रावण को मार सीता और लक्ष्मण के सहित श्री जानकी की शुद्धि के लिए सेतुमार्ग से गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने लक्ष्मीतीर्थ के तट पर स्थित हो अग्नि का आवाहन किया। अग्नि समुद्र से निकल कर कहने लगी कि, हे रामचन्द्रजी! जानकी के पातिव्रत धर्म्म के प्रभाव से आपने रावण को जीता है; आप इनको ग्रहण कीजिए। तब रामचन्द्र ने श्री सीता को ग्रहण किया। श्रीरामचन्द्र के आवाहन करने से जहाँ अग्नि प्रकट हुई वहीं अग्नितीर्थ हुआ। पूर्वकाल में पाटलिपुत्र नामक नगर के रहने वाले पशुनामक वैश्य पुत्र दुष्पण्य उस तीर्थ के जल के स्पर्श से पिशाच योनि से मुक्त हो स्वर्ग को गया।

(२३ वां अध्याय) पूर्व समय में अहिर्बुध नामक ऋषि गन्धमादन पर्वत में सुदर्शनचक्र की उपासना करते थे। उस समय राक्षस जाकर उनको पीड़ा देने लगे; तब सुदर्शनचक्र ने आकर सब राक्षसों को मार डाला और मुनि की

प्रार्थना से उस तीर्थ में निवास किया। उस दिन से उस तीर्थ का नाम चक्र तीर्थ पड़ा। पूर्वकाल में जब सूर्य भगवान ने उस तीर्थ में स्नान किया तब उनके कटे हुए हाथ पहले की भाँति पूर्ण हो गए।

(२४ वां अध्याय) काल भैरव, शिवतीर्थ में स्नान करके ब्रह्महत्या से छूटे। ब्रह्मा ने कहा कि हे महादेव! तू मेरे ललाट से उत्पन्न हुआ, इसलिए मेरा पुत्र है। ब्रह्मा का अहंकार युक्त वचन सुन शिव जी ने काल भैरव को भेजा। भैरव जी ने ब्रह्मा का पाँचवां सिर काट लिया। पीछे शिव जी ब्रह्मा पर प्रसन्न होकर कालभैरव से बोले कि लोक की मर्य्यादा के लिए तुम प्रायश्चित करो। कालभैरव ब्रह्मा का सिर हाथ में लिए हुए पुण्यतीर्थ में स्नान करते हुए काशी में पहुँचे ब्रह्महत्या भयङ्कर स्त्री के रूप में उनके साथ साथ फिरती थी। काशी में पहुँचने पर कालभैरव की तीन भाग ब्रह्महत्या नष्ट होगई किन्तु एक भाग रह गई। तब कालभैरव ने गन्धमादन पर्वत पर पहुँच शिव तीर्थ में स्नान किया जिससे सम्पूर्ण ब्रह्महत्या दूर हो गई।

(२५ वां अध्याय) पूर्व समय में शङ्खमुनि ने श्री विष्णु की प्रसन्नता के लिए गन्धमादन पर्वत पर तप किया और अपने नाम से शङ्खतीर्थ भी बनाया। उस तीर्थ में स्नान करने से कृतघ्न पुरुष भी शुद्ध हो जाता है।

(२६ वां अध्याय) शङ्खतीर्थ में स्नान कर गंगा तीर्थ, यमुनातीर्थ और गया तीर्थ को जाना चाहिए। उन तीर्थों में स्नान कर जानश्रुति नामक राजा ने रैक्कमुनि से दिव्यज्ञान पाया। पूर्वकाल में रैक्कमुनि गन्धमादन पर्वत पर तप करते थे। वह जन्म के पंगु थे, इसलिए दूर के तीर्थों में नहीं जा सकते थे किन्तु गन्धमादन के तीर्थ में गाड़ी पर बैठ कर जाया करते थे। एक समय गंगा, यमुना और गया तीर्थों के स्नान करने की मुनि को इच्छा हुई तब मुनि ने पूर्वाभिमुख बैठ मंत्र बल से तीनों तीर्थों का आवाहन किया। उस समय भूमि को भेद कर गया, गंगा और यमुना की धारा पाताल से निकली। मुनि ने तीनों तीर्थों से प्रार्थना की कि तुम तीनों इस पर्वत में निवास करो। उस दिन से तीनों गन्धमादन में रुक गए। उनमें स्नान करने से प्रारब्ध कर्म का नाश होता है।

(२७ वां अध्याय) कोटि तीर्थ को श्रीरामचन्द्र जी ने अपने धनुष की कोटि, अर्थात् अग्र भाग, से बनाया है। रामचन्द्र जी ने रावण के मारने के उपरान्त ब्रह्महत्या की निवृत्ति के लिए गन्धमादन पर्वत पर रामेश्वर शिव

लिङ्ग स्थापित किया। जब शिवलिङ्ग के स्नान के लिए जल नहीं मिला, तब उन्होंने गंगा का स्मरण कर धनुष की कोटि से भूमि को भेदन किया जिस से गंगा की धारा निकली। तब रामचन्द्रजी ने उस दिव्य जल से शिवलिङ्ग को स्नान कराया। धनुष की कोटि से यह तीर्थ बना इसलिए इसका नाम कोटि तीर्थ पड़ा। गन्धमादन के सब तीर्थों में स्नान कर शेष पाप की निवृत्ति के लिए कोटि तीर्थ में स्नान करना चाहिए। उसमें स्नान करने के पश्चात् गन्धमादन पर्वत में क्षणमात्र भी न रहना चाहिए। इसमें साक्षात् गङ्गा निवास करती हैं। श्रीकृष्ण जी कोटि तीर्थ में स्नान करके अपने मातुल कंस की हत्या के पाप से छूटे थे।

(२८ वां अध्याय) जब तक साध्यामृत तीर्थ में अस्थि पड़ी रहती है तब तक यह जीव शिवलोक में निवास करता है। राजा पुरुरवा उस तीर्थ में स्नान कर तम्बुर के शाप से छूटे और फिर उर्वशी से उनका समागम हुआ। उस तीर्थ में स्नान करने वालों को अमृत अर्थात् मोक्ष साध्य है, इसलिए उसका नाम साध्यामृत हुआ।

(२९ वां अध्याय) पूर्वकाल में भृगुवंश में सुचरित मुनि हुए। वह जन्म से ही अन्धे थे। उन्होंने जन्म भर तप किया। वृद्धावस्था में उनकी इच्छा हुई कि सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करना चाहिए; परन्तु तीर्थों में जाने की उनकी सामर्थ्य न थी; अतएव वे गन्धमादन पर्वत पर शिव जी का तप करने लगे। शिव जी प्रगट हुये। मुनि बोले कि हे नाथ! मुझको इसी स्थान पर सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त हो। तब शिव जी ने एक स्थान में सब तीर्थों का आवाहन किया; उसके उपरान्त उन्होंने कहा कि इस स्थान पर हमने सब तीर्थों का आवाहन किया इसलिये यह तीर्थ सर्व तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध होगा और हमने मन से यहाँ तीर्थों का आकर्षण किया है, इसलिये इसका नाम मानस तीर्थ भी होगा।

(३० वां अध्याय) सर्व तीर्थ के पश्चात् धनुषकोटि तीर्थ में जाना चाहिये। जो पुरुष धनुषकोटि का दर्शन करते हैं वे अट्ठाईस प्रकार के महानर्कों को नहीं देखते। श्री रामचन्द्र रावण को मारने के पश्चात् विभीषण और सुग्रीव आदि वानरों के साथ गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे। उस समय विभीषण ने प्रार्थना की कि महाराज! आपके बाँधे हुये सेतु के मार्ग से भारी राजा लोग आकर मेरी पुरी लङ्का को पीड़ा देंगे। तब रामचन्द्र ने

अपने धनुप की कोटि, अर्थात् अग्र भाग से सेतु को तोड़ दिया; वही धनुष-कोटि तीर्थ हुआ। जो पुरुष धनुप करके की हुई रेखा देखता है वह गर्भ वास का दुःख नहीं भोगता। श्रीरामचन्द्र ने धनुप कोटि से समुद्र में रेखा की है। जो पुरुष माघ मास मकर के सूर्य में धनुप कोटि में स्नान करता है उसका पुण्य वर्णन नहीं हो सकता। अर्द्धोदय योग में वहाँ स्नान करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। चन्द्र और सूर्य के ग्रहणों में वहाँ स्नान करने वालों के पुण्यफल को शेष जी भी नहीं गिन सकते। वहाँ पिण्डदान करने से पितर कल्प भर तृप्त रहते हैं। रामचन्द्र जी ने पितरों की तृप्ति के लिये तीन स्थान बनाए हैं। सेतुमूल, धनुष्कोटि और गन्धमादन पर्वत।

(३७ वां अध्याय) देवी पट्टन से पश्चिम दिशा में थोड़ी दूर पर पुलग्राम नामक पुण्य क्षेत्र है जहाँ रामचन्द्र जी ने सेतु का आरम्भ किया; उसी स्थान में क्षीर कुण्ड है। पूर्व समय में जब मुद्गल मुनि ने पुलग्राम में यज्ञ किया तब विष्णु भगवान ने प्रकट होकर वहाँ क्षीर कुण्ड बना दिया!

(४४ वां अध्याय) रामचन्द्र जी रावण को मार, सब के साथ विमान पर चढ़ गन्ध मादन पर्वत पर पहुँचे। उन्होंने वहाँ अग्नि में सीता का शोधन किया। उस समय वहाँ अगस्त्य मुनि के साथ दण्डकारण्य के सब मुनि आए। रामचन्द्र जी ने मुनियों से पूछा कि पुलस्त्य मुनि के पौत्र रावण के बध के पाप का प्रायश्चित क्या है? मुनि बोले कि हे रामचन्द्र! आप इस गन्धमादन पर्वत पर शिव लिङ्ग स्थापित कीजिए। तब सीता के सहित रामचन्द्र जी ने ज्येष्ठ मास, शुक्ल पक्ष, दशमी तिथि, बुधवार, हस्त नक्षत्र, व्यतीपात योग, गरकरण और वृष के सूर्य में रामेश्वर लिङ्ग को तथा रामेश्वर के आगे नन्दिकेश्वर को स्थापित किया।

(४६ वां अध्याय) हनुमान जी कैलास से शिवलिङ्ग को लाए और रामेश्वर के उत्तर पार्श्व में स्थापित किया।

पृ० ८८—रामेश्वर टापू उत्तर से दक्षिण को ११ मील लम्बा और पूर्व से पश्चिम को ७ मील चौड़ा है। टापू के पूर्व किनारे पर भारतवर्ष के प्रसिद्ध चार धामों में से रामेश्वर नामक बस्ती है। बस्ती के पूर्व समुद्र के किनारे पर लगभग ६०० फ़ीट लम्बा रामेश्वर का पत्थर का मन्दिर है। मन्दिर के चारों ओर २२ फ़ीट ऊंची दीवार है जिसमें तीन ओर एक-एक और पूर्व की ओर दो गोपुर हैं। केवल पश्चिम वाला ७ मंज़िला गोपुर जो लगभग १००

फ़ीट ऊंचा है, तैयार है। बाक़ी गोपुर पूरे नहीं हुए हैं। मन्दिर की परिक्रमा की सड़कें अद्भुत हैं। ऐसा विशाल दृश्य किसी और मन्दिर का नहीं है। ये सड़कें पटी हुई हैं और चार हज़ार फ़ीट लम्बी हैं। इनकी चौड़ाई २० फ़ीट से ३० फ़ीट तक है और ३० फ़ीट की ऊँचाई पर छतों से पटी हुई हैं। रात्रि में सड़कों की छतों में सैकड़ों लालटेनें जलती हैं। मन्दिर के सामने सोने का मुलम्मा किया हुआ बड़ा स्तम्भ है जिसके पास १३ फ़ीट ऊँचा ८ फ़ीट लम्बा और ६ फ़ीट चौड़ा बड़ा नन्दी बैठा है। रामेश्वर जी का मन्दिर १२० फ़ीट ऊँचा है। तीन ड्योढ़ी के भीतर शिव जी का प्रख्यात लिङ्ग है। यहाँ की रीति के अनुसार किसी यात्री को मन्दिर में जाकर निज हाथ से रामेश्वर जी को जल चढ़ाने का अधिकार नहीं है। कोई कोई धनी लोग पण्डों को प्रसन्न करके चढ़ा लेते हैं।

श्री रामेश्वर जी के मन्दिर के जगमोहन से उत्तर काशी विश्वेश्वर का मन्दिर है जिसको हनुमान जी ने स्थापित किया था। लोग पहले काशी विश्वेश्वर का दर्शन करके तब रामेश्वर का दर्शन करते हैं। स्कन्द पुराण में लिखा है कि रामचन्द्र जी की ऐसी ही आज्ञा है।

इन मन्दिरों के पास श्री पार्वती जी का मन्दिर है। तीन ड्योढ़ी के भीतर बहुमूल्य वस्त्र और भूषणों से सुशोभित पार्वती जी की सुन्दर मूर्त्ति है। रात्रि में पचासों, और दिन में भी कई, दीप, मन्दिर में जलते हैं। मन्दिर का जगमोहन बड़ा है और जगमोहन के उत्तर भाग में सुनहले झूलन पर पार्वती जी की स्वर्णमयी सुन्दर छोटी मूर्त्ति है। झूलन के चोप चांदी के हैं और चन्दन का चंवर रखा है। जगमोहन के पूर्व सोने का मुलम्मा किया स्तम्भ है।

स्कन्द पुराण के अनुसार सेतुबन्ध के और उसके समीप के तीर्थों में २४ तीर्थ प्रधान हैं जिनका वर्णन 'प्राचीन कथा' (प्रा० क०) में ऊपर कर दिया गया है। उनमें से १ चक्र तीर्थ, २ वेतालवरद, ३ सीतासर, ४ ब्रह्म-कुण्ड, ५ अगस्त्य तीर्थ, ६ लक्ष्मीकुण्ड, ७ अग्नि तीर्थ, ८ शिव तीर्थ ९ यमुना तीर्थ, १० गङ्गा तीर्थ, ११ कोटि तीर्थ, और १२ धनुष्कोटि तीर्थ अब तक विद्यमान हैं और उनकी प्रधानता मानी जाती है। इनके अतिरिक्त बहुत से नए तीर्थों की यात्रा अब कराई जाने लगी है।

रामेश्वर टापू के लगभग २० मील पश्चिम समुद्र के तीर सेतमूल के पास देवीपट्टन का जो तीर्थ है उससे सेतुबन्ध रामेश्वर का क्षेत्र माना जाता

है। वहाँ सुन्दरी देवी का मन्दिर है। देवीपट्टन के पूर्वोत्तर समुद्र की खाड़ी में नव पाषाण अर्थात् नवग्रह हैं जिनको कहा जाता है कि श्री रामचन्द्र जी ने सेतु बांधते समय स्थापित किया था। उनमें ग्रहों के कुछ आकार नहीं हैं इसीलिए 'नव पाषाण' कहलाते हैं। उनके पास समुद्र के जल में श्री रामचन्द्र जी की चरण पादुका है और किनारे पर चक्रतीर्थ है जिसमें यात्रीगण स्नान करते हैं।

चक्रतीर्थ के दक्षिण भाग में वेतालवरद नामक तीर्थ है।

रामेश्वरपुरी से चार पाँच मील दूर समुद्र के किनारे पर सीताकोटि नामक तीर्थ है, वहाँ के कूप का जल बहुत मीठा है।

रामेश्वरपुरी की परिक्रमा ५ मील की है और उसकी परिक्रमा में समुद्र की रेतो में ब्रह्मकुण्ड मिलता है।

रामेश्वर जी के मन्दिर के पूर्वोत्तर में चार-पाँच सौ गज़ की दूरी पर अगस्त्य तीर्थ नामक बावली है।

रामेश्वर जी के मन्दिर के पूर्व के समुद्र के एक घाट को अग्नि तीर्थ कहते हैं।

रामेश्वर जी के मन्दिर से कुछ हट कर शिवतीर्थ नाम का एक तालाब है।

कोटितीर्थ, यमुना तीर्थ और गङ्गातीर्थ रामेश्वर जी के मन्दिर के समीप कूप हैं और लक्ष्मीतीर्थ बावली है।

रामेश्वर जी से १२ मील दक्षिण धनुष्कोटि तीर्थ है जो धनुष तीर्थ करके प्रसिद्ध है। वहाँ भूमि की नोक पानी के भीतर चली गई है। उसके एक बगाल के समुद्र को महोदधि और दूसरी तरफ़ के समुद्र को रत्नाकर कहते हैं। बीच में बालू का मैदान है।

देवीपट्टन से लगभग २५ मील पश्चिम समुद्र के किनारे पर दर्भ शयन तीर्थ है। श्री रामचन्द्र जी ने लङ्का पर आक्रमण करने के समय समुद्र से मार्ग माँगनेके लिए उसी स्थान पर तीन दिन तक दर्भ अर्थात् कुश के आसन पर शयन किया था।

श्री रामेश्वर मन्दिर के भीतरी कूओं का जल मीठा और बाहर का खारी है। रामेश्वर जी से दो मील की दूरी पर एक रामझरोखा नामक ऊँचा पर्वत का टीला है। कहावत मशहूर है कि—

राम झरोखा बैठ कर,
सब का मुजरा लेय।
जैसी जाकी चाकरी,
वैसी वाको देय ॥

कहते हैं कि वानर भालुओं का यहाँ पर बैठकर रामचन्द्र जी ने निरीक्षण किया था, और उन्हें राम झरोखा पर से ही कार्य्य करने को उत्साहित किया था।

५७३ रावण कोटा—(देखिए लङ्का)

५७४ रावण हृद—(पश्चिमी तिब्बत में एक झील)

कहा जाता है कि रावण प्रति दिन इस झील में स्नान करके कैलास में महादेव जी का पूजन करता था। झील ५० मील लम्बी और २५ मील चौड़ी है जिसके बीच में एक पहाड़ी है। झील के किनारे पर एक बौद्ध सङ्घाराम और रावण की बहुत बड़ी मूर्त्ति है।

५७५ रावल—(संयुक्त प्रान्त के मथुरा ज़िले में एक स्थान)

रावल का प्राचीन नाम ऋष्भिग्राम है। यह श्री राधा जी की जन्मभूमि है। उनकी आयु का प्रथम वर्ष यहाँ व्यतीत हुआ था। इसके बाद वे बरसाना गई थीं। (देखिए मथुरा)

५७६ रीवाँ—(मध्य भारत की एक रियासत)

इसके प्राचीन नाम अधिराज और करूष मिलते हैं।

सहदेव ने अपने दिग्विजय में इसे जीता था।

रीवाँ दन्तवक्र का राज्य था जिसका वध श्रीकृष्ण ने मथुरा में किया था।

पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय ३५ में श्रीकृष्ण द्वारा दन्तवक्र के वध की कथा है।

महाभारत सभापर्व अध्याय ३० के अनुसार सहदेव ने अपनी दिग्विजय यात्रा में इस राज्य को जीता था।

रीवाँ एक अति प्राचीन राज्य है जिसके नरेश बान्धवेश कहलाते हैं। अमरकण्टक जहाँ से पवित्र नर्मदा नदी निकलती है, इसी राज्य में है। यहाँ राज्य की ओर से मन्दिरों में राग भोग का प्रबन्ध है।

५७७ रुआलसर—(पञ्जाब प्रांत के मराडी राज्य में एक तीर्थ)

तिब्बत में बौद्ध धर्म स्थापित करने वाले महात्मा पद्म सम्भव का यह निवास स्थान था।

रुआलसरझील के किनारे पद्म सम्भव का मन्दिर है जहाँ चीन, जापान और तिब्बत के यात्री दर्शनों को आते हैं। हिंदू जनता लोमश ऋषि करके उनका पूजन करती है।

५७८ रुद्रनाथ—(देखिए केदारनाथ)

५७९ रुद्रप्रयाग—(हिमालय पर्वत पर संयुक्त प्रांत में टेहरी गढ़वाल राज्य का एक स्थान)

रुद्रप्रयाग ही में श्री महादेवजी ने महर्षि नारद को सङ्गीत की शिक्षा दी थी।

(स्कंद पुराण केदारखण्ड प्रथम भाग, ६३ से ७७ वाँ अध्याय) पूर्व काल में महामुनि नारद जी ने रुद्रप्रयाग में मन्दाकिनी के तट पर जहाँ शेषादिक नाग तप करके सदाशिव के भूषण बन गए थे, एक चरण से खड़े होकर सौ वर्ष तक महादेव जी का कठिन तप किया। भगवान शिवजी पार्वती के साथ नन्दी पर चढ़े प्रकट हुए और उसी समय उन्होंने छः रागों को उत्पन्न किया। एक-एक राग की पाँच-पाँच रागनियाँ और आठ-आठ पुत्र तथा आठ-आठ पुत्रवधू हुईं। नारद ने सदाशिव के सहस्र नाम से स्तुति की और कहा कि आप नाद रूप हो और नाद आपको परम प्रिय है। इसलिए मैं उसको जानना चाहता हूँ। शिवजी ने प्रसन्न होकर नाद के शास्त्र का संपूर्ण भेद उनको बता दिया। उस प्रदेश में ३ लाख १० सहस्र तीर्थ विद्यमान हैं और नाग पर्वत स्वर्ग के समान है।

(उत्तर भाग, १८ वां अध्याय) अलकनन्दा और मन्दाकिनी के सङ्गम के समीप रुद्रक्षेत्र है।

श्रीनगर से १६ मील अलकनन्दा के बाँए किनारे पर अलकनन्दा और एक छोटी नदी के सङ्गम के पास रुद्रप्रयाग बसा है।

५८० रेढ़ीग्राम—(देखिए सालग्राम)

५८१ रैला—(देखिए हरद्वार)

५८२ रोमिन देई—(देखिए भुइला डीह)

५८३ रोहतास—(बिहार प्रांत में शाहाबाद ज़िले में एक नगर)

यहाँ का क़िला राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व का बनवाया हुआ है। इस स्थान के पुराने नाम रोहित व रोहिताश्व हैं। रोहिताश्व ने इस नगर को बसाया था।

[महाराज रामचन्द्र जी के पूर्वज, अयोध्या नरेश सत्यवादी हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व थे। जब राजा हरिश्चन्द्र ने अपने को डोम के हाथ काशी में बेच दिया था तो बालक रोहिताश्व के शव पर का क़फ़न अपनी वस्त्रहीन रानी से माँगने पर हरिश्चन्द्र के सामने भगवान प्रकट हुए थे।]

गुप्तकाल और मध्यकाल तक रोहतास का दुर्ग भारतवर्ष के सुदृढ़ दुर्गों में से एक रहा है। महाराज मानसिंह ने १५६७ ई० में जब वे बङ्गाल और बिहार के सूबेदार थे इस क़िले की मरम्मत कराई थी।

ल

५८४ लखनऊ—(संयुक्त प्रदेश में एक प्रसिद्ध नगर)

इसका प्राचीन नाम लक्ष्मणपुरी था। महाराज रामचन्द्र जी के भ्राता लक्ष्मणजी ने यह नगर बसाया था।

लखनऊ भारतवर्ष का एक विशाल नगर और अवध की राजधानी है। यहाँ की रमणीयता भारतवर्ष भर में निलक्षण है। लखनऊ इन दिनों संयुक्त प्रांत की राजधानी बना हुआ है।

'मच्छी भवन' की दीवार के भीतर लक्ष्मण टीला नामक ऊँची भूमि है, इसके चारों ओर लक्ष्मण जी का नगर था। औरंगजेब ने उस पवित्र स्थान को नष्ट-भ्रष्ट करके लक्ष्मण टीला पर मस्जिद बनवा दी है।

अवध के नवाब आसफ़ुद्दौला ने फ़ैज़ाबाद से हटाकर लखनऊ में राजधानी स्थापित की और एक बड़ा इमामबाड़ा बनवाया। रेज़ीडेंसी, दिलकुशा और लाल बारादरी यहाँ सआदत अलीखाँ ने बनवाये, और नासिरुद्दीन हैदर ने छतर मंजिल, तथा वाजिदअली शाह ने क़ैसरबाग़ बनवाया। यहाँ पर नवाबों की इमारतें देखने योग्य हैं।

हिंदी भाषा के निम्नांकित अच्छे कवि लखनऊ में हो गए हैं। बेनी-प्रवीन बाजपेयी (सवा सौ वर्ष पूर्व)।

रसरंग (सौ वर्ष पूर्व)

ललितकिशोरी शाह कुन्दनलाल (पचहत्तर वर्ष पूर्व)। ललित किशोरी जी जाति के वैश्य, प्रसिद्ध शाह बिहारीलाल के पौत्र थे। १६११ वि० में यह

श्री वृन्दावन चले गए और वहाँ गोस्वामी राधागोविन्द के शिष्य हो गए। १६१७ वि० इन्होंने वृन्दावन में साह जी का प्रसिद्ध मन्दिर बनवाना आरंभ किया जिसमें मूर्ति स्थापना सं० १६२५ वि० में हुई।

५८५ लखनौती—(बंगाल प्रांत के मालदा ज़िले में एक स्थान)

इसका प्राचीन नाम लक्ष्मणवती था। गौड़ भी इसे कहते थे। सेन राजाओं के समय में यह बंगाल की राजधानी थी। राजा लक्ष्मणसेन के नाम पर इसका यह नाम पड़ा था।

लखनौती में जयदेव जिन्होंने 'गीत गोविन्द' लिखा है, उमापतिधर जिन्होंने व्याकरण पर भाष्य लिखा है, गोवर्धनाचार्य जिन्होंने 'आर्य सप्तपदी' लिखी है, हलायुध जिन्होंने 'शब्दकोष' लिखा है, धोयी जिन्होंने 'पवनदूत' लिखा है, श्रीधरदास जिन्होंने 'कर्णामृत' लिखा है, तथा अनेक अन्य विद्वान् रहे हैं।

लक्ष्मणसेन ने ११०८ ई० से लक्ष्मणवती में लक्ष्मण सम्वत् का आरंभ किया था।

लखनौती गंगा के बाँए किनारे पर स्थित है। यह गौड़ देश की राजधानी होने के कारण ही गौड़ भी कहा जाता था।

५८६ लङ्का—(भारतवर्ष के दक्षिण में प्रसिद्ध टापू)

महाराज रामचन्द्र जी ने लङ्का पर चढ़ाई करके वहाँ के राजा रावण और उसके भाई कुम्भकर्ण को मारा था, और लक्ष्मण ने मेघनाद को (जिसे इन्द्रजीत भी कहते हैं) मारा था। रावण, महारानी सीता जी को पञ्चवटी (नासिक) से हर ले गया था।

हनुमान जी जब सीताजी की खबर लेने गए थे तो लङ्का की अशोक वाटिका में उन्होंने सीता जी को पाया था।

हनुमान जी ने लङ्का की राजधानी में आग लगा दी थी और सीता जी का समाचार रामचन्द्र जी को पहुँचाया था।

लक्ष्मण जी को मेघनाद से युद्ध में भारी चोट आई थी और वे मृत्युप्राय हो गए थे। हनुमान जी धौलागिरि पर्वत को उठा कर ले गए थे जिस पर संजीवनी बूटी थी और उससे लक्ष्मणजी की प्राण रक्षा हुई थी।

रावण और उसकी सेना का संहार करके रामचन्द्र जी ने सीता जी को पाया था और भक्त विभीषण को लङ्का का राज्य प्रदान किया था।

गया के बोधि वृक्ष की एक शाखा को लेकर महाराज अशोक के पुत्र, महेन्द्र और पुत्री सङ्घमित्रा लङ्का आए थे और वहाँ बौद्ध मत फैलाया था।

लङ्का के अनिरुद्धपुर में भगवान् बुद्ध का एक दाँत रक्खा है।

लङ्का का प्राचीन नाम सिंहल द्वीप है। बौद्ध लोग इसे ताम्र पर्णी कहते थे।

प्रा० क०— *वाल्मीकीय और तुलसीकृत रामायण,* रावण और लङ्का की कथा से परिपूर्ण है और सब कोई उसे जानते हैं इससे यहाँ उसका उल्लेख करना निरर्थक है।

ईस्वी सन् से ३०० वर्ष पहिले महाराज अशोक के पुत्र महेन्द्र और पुत्री सङ्घमित्रा, सिंहलद्वीप (लङ्का) में गया के बोधि वृक्ष की एक शाखा को लेकर आए थे। सिंहल नरेश ने इनका बड़ा आदर किया और इन्होंने अपने *प्रचार के प्रभाव से सारे द्वीप को बौद्ध मतावलम्बी बना लिया। आज भी* यहाँ भगवान् बुद्ध का ही मत प्रचलित है। वैसे थोड़े बहुत सभी धर्मों के *लोग बस गए हैं। रामग्राम (रामपुर देवरिया) से भगवान् बुद्ध का दाँत* लङ्का लाया गया था और वहां अब भी है।

व० द०—इस समय लङ्का की राजधानी कोलम्बो है। यहाँ से ६५ मील पर नूरलिया शहर है। यह शहर लङ्का का कश्मीर कहलाता है। यहाँ से दो मील की दूरी पर, चार-पाँच मील के घेरे में पहाड़ों से घिरा हुआ एक मैदान है। यही रावण की अशोकवाटिका है। अब यहाँ पर एक अति सुन्दर बगीचा है। कहते हैं कि सारे एशिया में इसके मुकाबले का दूसरा बाग़ नहीं है। पहाड़ की तलेटी में यहाँ पत्थर का बना हुआ एक मन्दिर है जिसमें सीता जी की मूर्ति विद्यमान है। पास ही की एक चट्टान से एक नदी 'गंगा' निकलती है, यहाँ पर एक तालाब है जिसे सीता कुण्ड कहते है।

अशोकवाटिका से हटकर पाँच मील का एक मैदान है। इसकी भूमि जल कर *खाक हो चुकी है। जहाँ सीता जी के मन्दिर के पास मिट्टी साधारण* प्रकार की है वहां इस मैदान की मिट्टी बिलकुल काली और भस्मी जैसी है। यहाँ पर जो घास पैदा होती है उसका निचला भाग हरा रहता है पर ऊपर का भाग जल जाता है। पशु इस घास को *नहीं खाते। भगवान् बुद्ध को माननेवाले* हिन्दू बताते हैं कि इस जगह लङ्का की राजधानी थी जिसे हनुमान जी ने जला दिया था। आजकल इस मैदान का नाम "स्नैक पोल" है। इससे कुछ फ़ासले

पर हुगलाथीक नामक पहाड़ है जिसका घेरा ४ मील है। इस पर जड़ी बूटियाँ बहुत मिलती हैं। यूरोपियन लोग यहाँ के महन्त को साथ लिए बिना इस पहाड़ पर नहीं चढ़ते। लङ्का के रहने वालों का कहना है कि हनुमान जी इसी पहाड़ को उठा कर लाए थे, और लक्ष्मण जी के मूर्छित होने पर यहीं से सजीवनी बूटी मिली थी।

अशोकवाटिका से ४० मील के फ़ासले पर एक पुराना शहर रत्नपुर है जिसे अंग्रेज छोटा इङ्गलैण्ड भी कहते हैं। यह शहर अशोकवाटिका से निकलने वाली गंगा के दोनों किनारों पर बसा है। लोग बताते हैं कि अपनी पराजय निकट आने पर रावण ने अपने कुल रत्नादि यहीं दबा दिए थे। अब भी यहाँ नीलम, पुखराज, तराशे हुए जवाहरात, हीरे, सोना, चाँदी काफी निकलते हैं। कारीगर लोग सौ-पचास फुट की मिट्टी खोद कर खाकी रंग की मिट्टी निकालते हैं और इसे छान कर उसमें से कीमती पत्थर निकाल ले जाते हैं।

लङ्का का जो तट बङ्गाल की खाड़ी से मिलता है उस पर काफ़ी दूर तक एक पहाड़ चला गया है। यहाँ सब्जी बहुत है तथा बाज जगहों पर इतने सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखने में आते हैं कि इन्हें देखकर चित्त मोहित हो जाता है। बहुत से योगी और साधु तथा महात्मा इस पहाड़ पर तपस्या करते हुए मिलते हैं। डेढ़ मील की दूरी पर समुद्र बहुत गहरा है। किनारे पर हनुमान जी का एक मन्दिर है, इसके पुजारी बताते हैं कि रावण के सोने की लङ्का इसी स्थान पर समुद्र में डूब गई थी। इसके एक तरफ़ लम्बा पहाड़ और दूसरी ओर समुद्र में जगह-जगह चट्टानों को देखकर यही प्रतीत होता है कि रावण का महल या क़िला इस जगह रहा होगा और रावण ने सुरक्षित रहने के विचार से इसे पहाड़ों के बीच में बनाया होगा। लंका के रहने वाले अब तक इसे 'रावण कोटा' या रावण का क़िला कहते हैं।

लङ्का में अनिरुद्धपुर के प्रसिद्ध विशाल बौद्ध मन्दिर में भगवान् बुद्ध का दाँत रखा है। पहिले यह दाँत रामपुर देवरिया (संयुक्त प्रदेश) में था। लोग असल दाँत को नहीं देख सकते। क्योंकि एक छोटे हाथी के दाँत के भीतर यह रक्खा है। बौद्ध-संसार से लोग यहाँ दर्शनों को आते हैं और मन्दिर की भारी प्रतिष्ठा करते हैं।

लङ्का में सुमन कूट, समन्तकूट, या भी यह नाम की पहाड़ी है जहाँ पर चरण चिन्हों की पूजा हिन्दू, बौद्ध और मुसलमान सभी करते हैं; हर मज़हब के मोर्ने

सन चरण चिन्ह को अपने अवतार या पैग़म्बर का चरण चिन्ह समझते हैं। यह पहाड़ी विदेशी भाषा में एडम्सपीक (Adam's Peak) कहलाती है।

कोलम्बो से ४० मील पर एक स्थान निकुम्भिला है, यहाँ इन्द्रजीत ने यज्ञ रचा था।

५८७ ललित कूट—(देखिए सम्मेद शिखर)

५८८ लवन अथवा लाउन—(देखिए नासिक)

५८९ लालपुर—(देखिए मँदावर)

५९० लाहरपुर—(संयुक्त प्रान्त के सीतापुर ज़िले में एक कस्बा)

यह अकबर के सुप्रसिद्ध मंत्री राजा टोडरमल की जन्मभूमि है।

राजा टोडरमल की चलाई हुई मालगुज़ारी की प्रणाली आज तक भारतवर्ष में प्रचलित है।

राजा टोडरमल से पहिले, प्रजा से मालगुज़ारी पाने का कोई पक्का उसूल नहीं था और न भूमि की नाप परताल थी। राजा टोडरमल ने पहिले पहिल नाप कराई, परगना आदि मुक़र्रर किए और राज-कर का नियमित रूप में सिलसिला डाला। उसी की नक़ल अंग्रेज़ों ने की और उसी प्रणाली पर आज तक चला जा रहा है।

५९१ लाहुर—(उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त के पेशावर ज़िले में एक स्थान)

इसका प्राचीन नाम शालातुर है। सुविख्यात पाणिनि का यहाँ जन्म हुआ था।

य्वानचाँग ने लिखा है कि पाणिनि का जन्मस्थान ओहिन्द से ३½ मील पर है और शालातुर करके प्रसिद्ध है। पाणिनि संस्कृत के, बल्कि संसार के सबसे बड़े व्याकरणाचार्य (Grammarian) हुये हैं जिनका रचा हुआ ग्रंथ संस्कृत व्याकरण में प्रमाण है और जगत्प्रसिद्ध है।

पाणिनि ने अपने सूत्रों में व्यासकृत महाभारत के वासुदेव और अर्जुनादिक व्यक्तियों की चर्चा की है अतः वे व्यास जी के पीछे हुये हैं, और महर्षि पातञ्जलि ने पाणिनीय व्याकरण पर महा भाष्य लिखा है अतः वे पाणिनि से पीछे हुए हैं।

लाहुर ओहिन्द से चार मील पर और अटक से १६ मील पूर्वोत्तर है। 'शालातुर' का 'लाहुर' हो जाना कोई अचम्भे की बात नहीं। 'शा' बोलचाल में गिरा दिया गया जैसे 'सिन्धु' नदी से 'इन्दु' नदी (इन्डस)। इसी प्रकार 'शालातुर' से 'लातुर' और फिर 'लाहुर' हो गया।

५९२ लाहौर—(पाकिस्तानी पंजाब की राजधानी)

कहा जाता है कि महाराज रामचन्द्र के पुत्र लव ने लाहौर बसाया था।

यहाँ सिक्खों के चौथे गुरु रामदासजी का जन्म हुआ था।

सिक्ख धर्म के आदि ग्रन्थकर्त्ता और पाँचवें गुरु अर्जुनदेव जी ने यहाँ शरीर छोड़ा था और उनकी समाध यहाँ है।

पञ्जाब केशरी महाराज रणजीतसिंह की समाध यहीं है।

महाकवि चन्द बरदाई का जन्म लाहौर में हुआ था।

श्री महाराज रणजीतसिंह का गुम्बजदार समाध मन्दिर संगमर्मर का बना है। इसकी सुनहली छत में उत्तम रीति से शीशे जड़े हैं और बारहदरी के बाहर चारों ओर दर्पण जड़ कर चाँदी और सोने का कुन्दन हुआ है। बारहदरी के संगमर्मर के फ़र्श के बीच में संगमर्मर का चबूतरा है जिस पर संगमर्मर काट कर एक बड़ा कमल का फूल और उसके चारों तरफ़ ग्यारह छोटे कमल के फूल बनाए गए हैं। मध्य के फूल के नीचे महाराज के मृत शरीर की भस्म रक्खी गई थी। दूसरे ११ कमल उनकी चार स्त्रियों और सात सहेलियों के स्मरणार्थ बने हैं जो उनके साथ सन् १८३६ ई० में सती हुई थीं। प्रतिदिन महाराज की समाध के समीप आदि सिक्ख ग्रंथ का पाठ होता था।

महाराज रणजीतसिंह का जन्म गुजराँवाला में हुआ था। जिस मकान में जन्म हुआ था वह बाजार के समीप है। भारतवर्ष के पुनः स्वतन्त्र होने तक यह मातृभूमि के अन्तिम सिद्धहस्त शूरवीर थे। महाराज के प्रसिद्ध सेनापति हरीसिंह की समाध गुजराँवाला में है।

लाहौर में महाराज रणजीतसिंह की छतरी के पास ही गुरुअर्जुन की सादी छतरी है।

गुरु रामदास जी के जन्म स्थान पर गुरुद्वारा 'चुनी मण्डी' बना है।

जैसी कहावत है कि लहौर को महाराजा रामचन्द्र के पुत्र लव ने बसाया था, वैसे ही कहा जाता है कि कसूर (लाहौर जिले में) को लव के भाई कुश ने बसाया था।

सम्राट जहाँगीर और नूरजहाँ के मक़बरे शहर से बाहर लाहौर में हैं। उनकी हीन दशा पर दुख होता है। जहाँगीर का शालामार बाग और अनेक उत्तम इमारतें इस नगर में हैं।

महमूद ग़ज़नवी ने इस नगर का नाम महमूदपुर रक्खा था पर चला नहीं।

लाहौर पिछले दिनों बहुत बढ़ता जा रहा था। देहात को सुरक्षित न पाकर, भाग-भाग कर लोग (हिन्दू जनता) लाहौर में बस रहे थे। इस कारण प्रान्त की राजधानी होने के अतिरिक्त उसके उन्नति के और भी साधन बन गए थे, परन्तु पंजाब के टुकड़े होते ही सारे ग़ैर मुसलिम निकाल दिये गये या मारडाले गये।

[सिक्ख मत के चतुर्थ गुरु श्री रामदास जी का पहिला नाम भाई जेठा जी था। आपका जन्म कार्त्तिक वदी २, वि० सं०१५६१ (१५३४ ई०) को लाहौर शहर की चूनी मण्डी में सोढ़ी हरिदास जी खत्री के घर माता दया कुंवर के उदर से हुआ था। श्री गुरु अमरदास जी, तृतीय सिक्ख गुरु, की सुपुत्री बीबी मानी जी के साथ आपका विवाह हुआ, जिससे तीन पुत्र पृथ्वीचन्द, महादेव और अर्जुनदेवजी (पञ्चमगुरु) ने जन्म लिया। गुरु रामदास ही के समय से योग्य पुत्र को गुरुआई की गद्दी पाने की प्रथा सिक्ख धर्म में प्रचलित हुई।

विवाह के पश्चात् भाई जेठा जी गोइँदवाल में गुरु अमरदासजी के पास रहने लगे। सं० १६२७ वि० में गुरु अमरदासजी की आज्ञा से जेठा जी ने अमृतसर के सरोवर को बनवाना आरम्भ किया और १६११ वि० में प्रसन्न होकर गुरु अमरदासजी ने भाई जेठा जी का नाम श्री रामदास रक्खा और गुरुआई की गद्दी बख्श दी। कुछ समय गोइँदवाल में रहकर गुरु रामदास जी सरोवर का काम पूरा करने अमृतसर चले गए और एक बाजार बसाया तथा सिक्खों को भी वहाँ मकान बनाकर रहने की आज्ञा दी। यह बाजार अब 'गुरुबाज़ार' के नाम से अमृतसर में प्रसिद्ध है।

अपने पिता के स्वर्गवास का समाचार पाकर गुरु जी लाहौर गए और अपने घर को गुरुद्वारा बना दिया जो अब गुरुद्वारा 'जन्मस्थान' कहलाता है। वहाँ से अमृतसर आकर फिर सरोवर का काम संभाला। भादों सुदी परिवा, वि० सं० १६३८ को गुरु रामदासजी ने अपने छोटे सुपुत्र अर्जुनदेव जी को गुरुआई दी और गोइँदवाल जाकर भादों सुदी तीज, वि० सं० १६३८ (१५८१ ई०) को परलोक गमन किया।]

भट्टी काव्य के रचयिता भर्तृहरि तथा कल्पसूत्र के निर्माता भद्रबाहु वलभी में बहुत काल तक रहे थे।

पाँचवी शताब्दी से वलभी सुराष्ट्र (गुजरात) के मैत्रक राजाओं की राजधानी हुई और तीन शताब्दियों तक (४८०-७८०) तक बनी रही।

वलभी के मैत्रक राजा शैव थे पर बौद्ध धर्म पर भी श्रद्धा रखते थे। धर्म, कलाकौशल और विद्या में इन शासकों की बड़ी आस्था थी और इन की उन्नति के लिए उन्होंने अपने समृद्ध नगर वलभी में सभी प्रकार के प्रयत्न किए। ह्वानचांग के वर्णन से विदित होता है कि सातवीं शताब्दी में वलभी में कई सौ करोड़पति व्यक्ति थे और यह नगरी विदेशों से बहुमूल्य वस्तुओं के आयात निर्यात की केन्द्र थी। उस समय यहाँ लगभग १०० सङ्घारम थे जिनमें ६००० साधु रहते थे। कई सौ देव मन्दिर भी थे।

वलभी का विश्वविद्यालय तक्षशिला और नालन्दा के विश्वविद्यालयों की तरह बहुत प्रसिद्ध तथा उन्नत था। यहाँ व्याकरण, न्याय और तर्क तथा अर्थशास्त्र की उच्च शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध था। वणिक लोग भारत के सभी भागों से आकर अपने व्यवसायों की शिक्षा वलभी में प्राप्त करते थे। कथा सरित्सागर (३२, ४२) से ज्ञात होता है कि अन्तर्वेदी से वसुदत्त का पुत्र विष्णुदत्त उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वलभी आया था। यह स्थान भाउ नगर से १८ मील पश्चिमोत्तर में है।

६०० वशिष्ठ आश्रम (कुल)—(देखिए अयोध्या)

६०१ वसुन्धरा—(देखिए बद्रीनाथ)

६०२ विजय नगर—(देखिए नरवार)

६०३ विजय मन्दरगढ़—(देखिए शोणितपुर)

६०४ विद्यानगर—(देखिए नदिया)

६०५ विनायक द्वार—(देखिए त्रियुगी नारायण)

६०६ विन्ध्यागिरि—(देखिए श्रवण बेलगुल)

६०७ विन्ध्याचल—(संयुक्त प्रान्त के मिरजापुर जिले में एक बस्ती)

भगवती, जिनका नाम पुराणों में कौशिकी और कात्यायनी लिखा है, उनका यह परमधाम है। इसको पम्पापुर कहते थे।

प्रा० क०—(मत्स्य-पुराण, १५४-१५६ अध्याय) शिव जी ने पार्वती जी को काली स्वरूप वाली कहा, इससे वह क्रोधयुक्त हो हिमालय पर्वत पर

अपने पिता के उद्यान में जाकर कठोर तप करने लगीं। ब्रह्मा ने प्रकट होकर पार्वती से वर माँगने को कहा। गिरिजा बोलीं कि मेरा शरीर काञ्चन वर्ण हो जाय। तब ब्रह्मा ने कहा कि ऐसा ही होगा। इसके अनन्तर पार्वती तत्काल ही काञ्चन वर्ण हो गईं और नीली रचना रात्रि का स्वरूप होकर अलग हो गई। तब ब्रह्माजी उस रात्रि से बोले कि पार्वती के कोप से जो सिंह निकला है वही तेरा वाहन होगा और तेरी ध्वजा में भी वही रहेगा, तू विन्ध्याचल में चली जा वहाँ जाकर तू देवताओं के कार्य को करेगी। तब कौशिकी देवी विन्ध्याचल पर्वत में चली गईं और पार्वती अपना मनोरथ सिद्ध करके शिव जी के पास आईं।

(यही कथा वामन पुराण ५४ से ५६ अध्याय और पद्मपुराण स्वर्ग खण्ड १४ वें अध्याय में है)

(मार्कण्डेय पुराण, ८५ से ६१ वें अध्याय तक) हिमालय पर चण्ड और मुण्ड के आक्रमण करने पर उनको मार कर भगवती ने चामुण्डा नाम पाया। इसके उपरान्त उन्होंने शुम्भ और निशुम्भ को मारा। देवताओं से कहा कि २८ चतुर्युगी में वैवस्वत मन्वन्तर प्रकट होने पर जब दूसरे शुम्भ और निशुम्भ होंगे, उस समय मैं नन्दगोप के घर यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होकर उनका नाश करूँगी और विन्ध्याचल पर्वत पर निवास करूँगी।

(शिवपुराण, २४ वां अध्याय) गिरिजा ने विन्ध्यवासिनी होकर दुर्ग दैत्य को मार डाला तब से उनका नाम 'दुर्गा' प्रकट हुआ।

(महाभारत, विराट पर्व, छठा अध्याय) राजा युधिष्ठिर ने दुर्गा देवी की स्तुति करते समय कहा कि हे देवि! विन्ध्यनामक पर्वत पर तुम्हारा सनातन स्थान है।

व० द०—*विन्ध्याचल की बस्ती गङ्गा के दाहिने किनारे स्थित है।* बस्ती के भीतर भगवती का मन्दिर है जिसमें सिंह पर खड़ी २॥ हाथ ऊँची भगवती की श्यामल मूर्ति है। मन्दिर से लगे हुए चारों ओर के दालानों में पण्डित लोग पाठ करते रहते हैं। आस पास अनेक देव मन्दिर हैं और पेड़े बहुत रहते हैं।

६०८ विराट—(राजपूताने के अलवर राज्य में एक स्थान) महाभारत के मत्स्य देश के राजा विराट की यह राजधानी थी। अज्ञातवास में पाण्डव यहाँ छिप कर रहे थे।

यहाँ की राजकुमारी उत्तरा का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से हुआ था।

राजा विराट के साले, कीचक, का द्रौपदी पर कुदृष्टि डालने पर भीम ने यहाँ वध किया था।

ह्वानचांग ने जब यहाँ की यात्रा ६३४ ई० में की थी तब यह शहर ढाई मील के घेरे में था। अब वह रकबा ऊजड़ पड़ा है और उसी के खंडहर के चौथाई रकबे में वर्तमान नगर बसा है।

यहाँ के लोग बड़े बहादुर होते थे। मनु ने कहा है कि सेना का अग्र भाग कुरुक्षेत्र (दिल्ली के समीप) मत्स्य (विराट अलवर व जयपुर राज्य का भाग) पाञ्चाल (रुहेल खण्ड) और शूरसेन (मथुरा के आस पासका देश) में प्रसव वीरों का होना चाहिए।

पुराना विराट नगर बिल्कुल नष्ट हो गया था और अब ४०० वर्ष हुए फिर से बसा है। नीची पहाड़ियों की घाटी में यह नगर बसा है। ताँबे की खानि होने के कारण भूमि की यही रंगत है। निकटवर्ती पहाड़ी पर एक गुफा है जिसे भीम गुफा कहते हैं। यही भीमसेन की रहने की जगह कही जाती है। इसी प्रकार की अन्य गुफाओं में और पाण्डव रहते थे। पुराने सिक्के यहाँ वर्षा ऋतु के पीछे बहुत निकलते हैं।

रीवाँ राज्य में एक स्थान सुहागपुर है। इसको उधर के लोग विराट कहते हैं, पर यह गलत है। सुहागपुर में हिन्दू और जैन मन्दिर तथा बहुत वीरान खँडहर पड़े हैं।

६०९ विश्वामित्र आश्रम—(कुल) (देखिए बक्सर)
६१० विष्णुपुरी—(देखिए मान्धाता)
६११ विष्णु प्रयाग—(देखिए जोशीमठ)
६१२ वेङ्कटाचल—(देखिए बालाजी)
६१३ वेदगर्भपुरी—(देखिए बक्सर)
६१४ वैद्यनाथ—(उड़ीसा के सन्थाल परगना जिले में एक नगर)

वैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्ग शिवजी के बारह ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है।

कहा जाता है कि रावण इस लिङ्ग को कैलाश या इन्द्र की राजधानी से लाया था और यहीं इसने सिर काट-काट कर चढ़ाए थे।

श्री रामचन्द्र ने यहाँ के दर्शन किए थे। इस स्थान को दक्षिण गोकर्ण तीर्थ भी कहते हैं।

यह ५२ पीठों में से एक है। यहाँ सती का हृदय गिरा था।

प्रा० क०—(शिव पुराण, ज्ञान संहिता, ३८ वां अध्याय) शिव के द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं :—

(१) सौराष्ट्र देश में सोमनाथ	(देखिए सोमनाथ पट्टन)
(२) श्रीशैल पर मल्लिकार्जुन	(देखिए मल्लिकार्जुन)
(३) उज्जैन में महाकालेश्वर	(देखिए उज्जैन)
(४) ओंकार में अमरेश्वर	(देखिए मान्धाता)
(५) हिमालय में केदार	(देखिए केदारनाथ)
(६) डाकिनी में भीम शंकर	(भीमा नदी के किनारे पूना से ४३ मील उत्तर)
(७) वाराणसी में विश्वेस	(देखिए बनारस)
(८) गोदावरी के तट में त्रयम्बक	(देखिए त्रयम्बक)
(९) चिताभूमि में वैद्यनाथ	(देखिए वैद्यनाथ)
(१०) दारूका वन में नागेश	(देखिए नागेश)
(११) सेतुबन्ध में रामेश्वर	(देखिए रामेश्वर)
(१२) शिवालय में घुश्मेश्वर	(देखिए घुश्मेश्वर)

इन लिङ्गों के दर्शन करने से शिव लोक प्राप्त होता है।

(५५ वां अध्याय) एक समय लंका का राजा रावण कैलाश पर्वत पर जाकर शिव जी की आराधना करने लगा। इसके बाद शिव जी के प्रसन्न होने पर वह हिमालय पर्वत के दक्षिण वृक्ष खण्ड नामक देश में पृथिवी में गड्ढा करके उसमें अग्नि स्थापन कर और उसके निकट शिवजी को स्थापित करके हवन करने लगा। जब शिवजी हवन करने से प्रसन्न न हुए तब उसने एक-एक करके अपने नौ शिरों को हवन कर दिया। तब शिव जी ने प्रसन्न होकर रावण से वर माँगने को कहा। रावण बोला कि हे भगवन्! मेरा अतुल पराक्रम होवे और मेरे सिर पूर्ववत हो जाँय। शिव जी ने 'एवमस्तु,' कहा और तत्काल रावण के सम्पूर्ण सिर पूर्ववत हो गए। पश्चात् रावण जब अपने घर को जा रहा था तब महर्षि नारद ने देवताओं को दुखी देखकर, मार्ग में रावण से पूछा कि तुम किस कार्य के लिए वहाँ गए थे। रावण ने कहा कि मेरे तप से प्रसन्न होकर शिवजी ने मुझको अतुल बलवान होने का

वरदान दिया है और मेरी प्रार्थना से हिमवान के दक्षिण वृक्ष खण्ड में यह वैद्यनाथ नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। मैं उनको नमस्कार कर भुवन के जय करने के लिए जाता हूँ।

ब० द०—वैद्यनाथ कस्बे में एक बड़ा आँगन है जो एक बड़े पक्के घेरे के भीतर पत्थर से पटा हुआ है। लोग कहते हैं कि इसको पाटने में मिर्जापुर के एक धनी महाजन का एक लाख रुपया खर्च पड़ा था। आँगन के बीच में वैद्यनाथ शिव का शिखरदार पूर्व मुख का बड़ा मन्दिर और बगल में छोटे बड़े २१ मन्दिर हैं। मन्दिरों में सन्ध्या, गौरी, गायत्री, सूर्य, लक्ष्मीनारायण और भैरवादिक के मन्दिर हैं। बाकी बहुत से मन्दिरों में शिव लिंग स्थापित हैं। मन्दिर से उत्तर, कस्बे से बाहर शिवगंगा नामक एक बड़ा सरोवर है जिसे कहते हैं कि रावण ने बनाया था। वैद्यनाथ में कोढ़ियों का बड़ा जमाव रहता है; वे लोग रोग से मुक्ति पाने की आशा से वहाँ पड़े रहते हैं।

वैद्यनाथ कस्बे को लोग देवगढ़ या देवघर भी कहते हैं। महाराज रामचन्द्र जी को भी कहा जाता है कि यहाँ के दर्शन किए थे।

हैदराबाद राज्य में, अहमदनगर से १०० मील की दूरी पर परली ग्राम के पास एक छोटी पहाड़ी पर भी वैद्यनाथ शिव का एक शिखरदार विशाल मन्दिर और एक धर्मशाला है। शिवलिंग आधा हाथ ऊँचा है। मन्दिर में रात दिन दीप जलता है। पहाड़ी के दोनों ओर पत्थर की सीढ़ियाँ नीचे से ऊपर तक गई हैं। एक ओर परलीग्राम और दूसरी ओर एक छोटी नदी तथा एक पक्का कुण्ड है। दक्षिणी लोग परली वैद्यनाथ ही को शिव के १२ ज्योतिर्लिङ्गों का, वैद्यनाथ लिंग कहते हैं किन्तु शिव पुराण से यह बात सिद्ध नहीं होती।

वैद्यनाथ स्थान को बैजनाथ भी कहते हैं और इसे दक्षिण गोकर्ण तीर्थ भी कहा जाता है। उत्तर गोकर्ण तीर्थ गोलागोकर्णनाथ है।

बैजनाथ नाम के विषय में कहावत है कि एक समय यह स्थान जंगल से ढक गया था और किसी को लिंग का पता न था, उस समय बैजू नामक ग्वाला को स्वप्न में उसका ज्ञान हुआ था और उसने फिर से लिंग को निकाला और शिवजी से वर माँगा कि उनका नाम उसके नाम से पहले आवे। सन्थाल परगने का पुराना नाम 'दक्षिण वृक्ष खण्ड' ही बताता है कि यह देश घने जंगल से भरा था।

६१५ वैशाली—(देखिए बसाद)

६१६ व्यास आश्रम—(देखिए भविष्य बद्री)

६१७ व्यास खण्ड—(देखिए भविष्य बद्री)

६१८ शङ्कर तीर्थ—(नैपाल में एक तीर्थ स्थान)

शिव जी ने यहाँ दुर्गा के पाने के लिए तपस्या की थी।

शङ्कर तीर्थ पाटन नगर के बिलकुल नीचे बागमती व मणिमती के संगम पर स्थित है।

६१९ शंखोद्धार तीर्थ—(देखिए बेट द्वारिका)

६२० शरदी—(कश्मीर राज्य में एक नगर)

शाँडिल्य ऋषि ने, जिन्होंने शाँडिल्य सूत्र की रचना की है, यहीं तप किया था।

यह पीठों में से एक है, जहाँ सती का सिर गिरा था।

शंकराचार्य ने यहाँ शास्त्रार्थ में विजय पाकर पीठ के मन्दिर में प्रवेश किया था।

शाँडिल्य आश्रम—शरदी के अतिरिक्त संयुक्त प्रान्त के फैजाबाद जिले में चितैमँदारपुर स्थान पर भी शाँडिल्य ऋषि का आश्रम था।

६२१ शखन (देखिए दोहथी)

६२२ शत्रुंजय—(काठियावाड़ में पाली ताणा राज्य में एक पहाड़ी)

जैनियों का यह सबसे पवित्र स्थान है।

पालीताना ग्राम से शत्रुंजय पर्वत डेढ़ मील पर है। सूरत से उसकी दूरी ७० और भावनगर से २४ मील है। इसके ऊपर दो चपटे शिखर हैं। एक विशाल दीवार दोनों शिखर और घाटी को घेरे हुए है। इसमें १६ फाटक हैं। घेरे के भीतर हजारों मन्दिर, करोड़ों रुपयों की लागत के हैं। ऐसा जैन मन्दिरों का समूह और कहीं नहीं है। माघ सुदी पञ्चमी को यहाँ मेला लगता है। श्री शत्रुंजय में सन्नाटा रहता है। कहा जाता है कि कभी-कभी प्रातःकाल में बहुत थोड़े समय के लिए घण्टा व घड़ियाल की आवाजें सुनाई पड़ती हैं। पर्वत पर कबूतर, मयूर इत्यादि जीव-जन्तु निर्भय होकर विचरते हैं। पत्तन के राजा कुमारपाल के समय में वाग्भट्टदेव ने यहाँ के मन्दिरों की मरम्मत एक करोड़ साठ लाख रुपये की लागत से कराई थी।

इस पवित्र पहाड़ी पर रसोई बनाना और सोना जैन लोगों के मत में निषिद्ध है। एक स्थान में इकट्ठा इतने मन्दिरों का जमाव हिन्दू और बौद्ध किन्हीं लोगों के तीर्थों में नहीं है।

६२३ शाँकूल कूट—(देखिए सम्मेद शिखर)

६२४ शाँडिल्य आश्रम (कुल)—(देखिए शरदी)

६२५ शाँत तीर्थ—(देखिए गंगेश्वरी घाट)

६२६ शाकम्भरी दुर्गा—(देखिए त्रियुगी नारायण)

६२७ शाकल—(देखिए स्यालकोट)

६२८ शान्तिप्रद कूट—(देखिए सम्मेद शिखर)

६२९ शालग्राम—(देखिए सालग्राम)

६३० शाहढ़ेरी—(पाकिस्तानी पंजाब के रावलपिण्डी जिले में बड़े खण्डहर)

यह स्थान प्राचीन तक्षशिला है। एक पूर्वजन्म में भगवान बुद्ध ने अपना शिर यहाँ दान में दिया था।

अपने पिता के राज काल में अशोक उनके प्रतिनिधि होकर यहाँ रहे थे। पहिली शताब्दी ईस्वी तक यहाँ का विश्व विद्यालय भारतवर्ष में प्रसिद्ध था। पाणिनि, जीवक और चाणक्य ने यहाँ विद्याध्ययन किया था।

सिकन्दर आज़म यहां ठहरे थे। यहाँ का देशद्रोही राजा सिकन्दर से मिलकर महाराज पुरु, अर्थात् अपने ही देश के विरुद्ध लड़ा था।

भरत के पुत्र तक्ष ने तक्ष शिला को बसाया था, और यह गान्धार देश की राजधानी थी।

ह्वानचांग, फाहियान और अन्य चीनी यात्री तक्षशिला आए थे और अपने समय का यह बहुत ही विशाल नगर था। सब बौद्ध यात्री लिखते हैं कि एक पूर्वजन्म में भगवान बुद्ध ने अपना शिर यहाँ दान में दे दिया था। *महाराज अशोक ने उस स्थान पर एक भारी स्तूप बनवाया था।*

तक्षशिला के राजा ने सिकन्दर का स्वागत किया था और महाराज पुरु के खिलाफ उसकी सहायता की थी। पुरु ने हारकर भी अपने व्यवहार से सिकन्दर पर विजय पाई, और उन्होंने जाते समय पुरु ही को भारतवर्ष में अपना प्रतिनिधि छोड़ा। तक्षशिला का देशद्रोही राजा मुँह ताकता रह गया।

तक्षशिला की तबाहियाँ ३ मील लम्बी और दो मील चौड़ी हैं। इस हद के बहुत दूर बाहर तक भी संघाराम आदि के चिन्ह भरे पड़े हैं। इन तबाहियों के 'बबरखाना' स्थान में जो सबसे बड़े स्तूप के चिन्ह हैं, वह महाराज अशोक के बनवाये हुये विशाल स्तूप के हैं, जहाँ भगवान बुद्ध ने किसी पूर्व-काल में अपना सिर दान दिया था।

शाहढेरी से कुछ दूर पर सोरय्या है जहाँ रेवत निवास करते थे जिन्होंने वैशाली की बौद्ध महासभा की सभापतित्व की थी।

६३१ शिंगणवाड़ी—(देखिए जाम्ब गाँव)

६३२ शिकाकोल—(मद्रास प्रान्त के उत्तरी सरकार ज़िला में एक स्थान)

इस स्थान पर सती का मध्य भाग गिरा था। ५२पीठों में से यह एक है। इसका प्राचीन नाम 'श्री कङ्काली' है।

६३३ शिवपुर—(देखिए भुइलाडीह)

६३४ शिवप्रयाग—(संयुक्तप्रान्त में हिमालयपर्वत पर टेहरी राज्य एक स्थान)

अर्जुन ने यहाँ योग साधन किया था।

महर्षि खाण्डव ने यहाँ सदाशिव का तप किया था।

पौराणिक कथा है कि यहाँ पूर्वकाल में ढुंढी ने ५५५०० वर्ष तक पत्ते में भोजन करके तपस्या की थी। एक समय में इन्द्र यहाँ दैत्यों के भय से छिप कर रहते थे।

इसी स्थान पर भील रूपधारी सदाशिव और अर्जुन का युद्ध हुआ था जिसमें अर्जुन ने पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया था।

इस स्थान के अन्य नाम रुद्रप्रयाग, ढुंढप्रयाग और इन्द्रकील पर्वत है।

प्रा० क०—(महाभारत, वन पर्व, ३७ वां अध्याय) अर्जुन तपस्वियों से सेवित अनेक पर्वतों को देखते हुए हिमांचल पर्वत के इन्द्रकील नामक स्थान पर पहुँचे। उस स्थान पर तपस्वी के रूप में इन्द्र ने अर्जुन को दर्शन दिया और कहा कि हे तात ! जब तुम शूलधारी भूतों के स्वामी शिव को दर्शन करोगे तब हम तुमको सब शस्त्र देवेंगे। अर्जुन वहाँ बैठकर योग करने लगे और शिवजी से पाशुपत अस्त्र प्राप्त किए।'

(स्कन्दपुराण, केदार खण्ड, उत्तर भाग पाँचवां अध्याय) खाण्डव और गङ्गा अर्थात् अलकनन्दा के सङ्गम के समीप शिवप्रयाग है। उसी स्थान पर

महर्षि खाण्डव ने सदा शिव का तप किया था और यहीं पर महादेव जी ने इन्द्र पुत्र अर्जुन को दर्शन दिया था।

पाण्डव गण दुर्योधन से जुआ में हार कर १३ वर्ष के लिए वन में गए। अर्जुन अकेले चल कर हिमालय के एक देश में जाकर शिव का तप करने लगे। शिव जी ने अर्जुन को पाशुपत अस्त्र प्रदान किया तब वह वहाँ से चले आये।

(छटा अध्याय) पूर्वकाल में ढुंढी ने ५५०० वर्ष तक पत्ते खाकर तप किया था, तभी से वह स्थान ढुंढ प्रयाग करके प्रसिद्ध हो गया।

(चौदहवां अध्याय) पूर्वकाल में यहाँ दुष्ट दैत्यों के द्वारा इन्द्र कीले गए थे) अर्थात् दैत्यों के भय से यहाँ छिपकर रहे)। इसलिए उस पर्वत का नाम इन्द्रकील हो गया।

व० द०—शिवप्रयाग में खाण्ड्व नदी और अलकनन्दा का सङ्गम है। अलकनन्दा के बाएँ किनारे पर गुम्बजदार छोटे मन्दिर में अनगढ़ भीलेश्वर शिवलिङ्ग है। उनका ताँबे का अर्घा और चाँदी का छत्र बना है। इसी स्थान पर भीलरूपी महा शिव और अर्जुन का परस्पर युद्ध हुआ था। ढुण्ढम नामक एक छोटी नदी अलकनन्दा के दाहिनी से आकर उसमें मिली है। पुराणों में उस सङ्गम का नाम ढुंढप्रयाग और उसके पास के पर्वत का नाम इन्द्रकील पर्वत लिखा है। शिवप्रयाग को रुद्रप्रयाग भी कहते हैं।

६३५ शुकतार—(देखिए डेहरा)

६३६ शुक्ल तीर्थ—(बम्बई प्रान्त के भड़ौच जिले में एक स्थान)

राजाबलि ने गुरु शुक्राचार्य के साथ, अपना खोया हुआ राज प्राप्त करने के लिए यहाँ यज्ञ किया था।

कातंत्र व्याकरण के रचयिता आचार्य शर्ववर्मा यहीं के निवासी थे।

भृगु जी का भड़ौच में आश्रम था, और भृगुकच्छ का दूसरा नाम भृगुपुर है।

मा० क०—(कूर्म पुराण, उत्तरार्द्ध, ३६ वां अध्याय) नर्मदा नदी के शुक्र तीर्थ के तुल्य दूसरा तीर्थ नहीं है। उसके दर्शन, स्पर्श और स्नान करने में महान पुण्य फल का लाभ होता है। उस तीर्थ का परिमाण एक योजन है। उस तीर्थ के वृक्षों के शिखरों के दर्शन मात्र से ब्रह्महत्या पाप छूट जाता

है। प्रतिवर्ष वैशाख बदी १४ को पार्वती के सहित महादेवजी शिवलोक में आकर यहाँ निवास करते थे।

मत्स्य पुराण, १४ वें अध्याय में राजा बलि के शुक्र तीर्थ में अपना खोया हुआ राज्य पाने को यज्ञ करने का उल्लेख है।

चाँणक्य ने शुक्र तीर्थ में निवास किया था।

ब०द०—इस स्थान पर ओंकारेश्वर और शुक्र नामक पवित्र कुण्ड तथा अनेक देव मन्दिर हैं। ओंकारेश्वर के निकट एक मन्दिर में शुक्र नारायण की मूर्त्ति है; वहाँ कार्त्तिक में एक मेला होता है। चन्द्रगुप्त ने आठ भाइयों के मारने के पातक से छूटने के लिए शुक्र तीर्थ में जाकर स्नान किया था। ग्यारहवीं सदी में अनहिलवाड़ा के राजा ने पश्चाताप करके शुक्र तीर्थ में निवास कर अपना जीवन व्यतीत किया था।

शुक्र तीर्थ से एक मील पूर्व मंगलेश्वर के सामने नर्मदा नदी के टापू में कबीर वट नाम से प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा बट है। लोग कहते हैं कि कबीर जी की दतवन से यह वृक्ष हुआ था। वृक्ष की प्रधान जड़ के पास एक मन्दिर है।

कहा जाता है कि भड़ौंचनगर भृगुऋषि का बसाया हुआ है और पूर्व काल में भृगुपुर के नाम से प्रसिद्ध था। नर्मदा के किनारे पर भृगुऋषि का एक प्राचीन मन्दिर है।

६३७ शुघ—(पञ्जाब प्रान्त के अम्बाला जिले में एक कस्बा)

इसका प्राचीन नाम सुघ है और यह कुरुक्षेत्र की प्रसिद्ध राजधानी थी।

भगवान बुद्ध ने यहाँ आकर सदुपदेश दिया था।

यहाँ एक स्तूप में भगवान बुद्ध के नख और केश रखे थे। सारिपुत्र व मुग्दलायन के नख व केश भी दूसरे दो स्तूपों में थे।

ह्वानच्वांग के समय में भी सुघ नगर का घेरा ३½ मील था पर शहर का बहुत सा भाग उजड़ा पड़ा था। नगर के बाहर यमुना नदी के समीप महाराज अशोक का बनवाया हुआ स्तूप था, जहाँ भगवान बुद्ध ने सदुपदेश दिया था। दूसरे स्तूप में भगवान बुद्ध के नख और केश थे। और भी कई दर्जन स्तूप यहाँ थे जिनमें से एक में सारिपुत्र और एक में मौग्दलायन के नख और केश थे।

शुघ बुढ़-यमुनानदी (यमुना की पुरानी धारा) पर बसा है और अब एक छोटा सा ग्राम है। इसके समीप दूसरा ग्राम मांदलपुर है। कहते हैं कि इसे मान्धाता ने बसाया था और १२ कोस में फैला हुआ था। शुघ थानेसर से ३८ मील पर है, और शुघ तथा मांदलपुर दोनों ही पवित्र कुरुक्षेत्र की परिक्रमा के भीतर हैं।

६३८ शृङ्गगिरि—(देखिए शृङ्गेरी)

६३९ शृङ्गीऋषि—(देखिए सिंगरौर)

६४० शृङ्गेरी—(मैसूर राज्य के कदूर ज़िला में एक गाँव)

यहाँ श्री शङ्कराचार्य जी ने कुछ दिन निवास किया था और शृङ्गेरी मठ की स्थापना की थी।

शारदा देवी का मन्दिर भी श्री शंकराचार्य ने यहाँ स्थापित किया था।

शृङ्गेरी से ६ मील पश्चिम शृङ्गगिरि जिसको ऋषि शृंग भी कहते हैं, एक पहाड़ी है। प्रसिद्ध है कि यहाँ शृङ्गी ऋषि का जन्म हुआ था।

(दूसरा शिव पुराण, सातवां खण्ड पहिला अध्याय) अधर्मियों का मत प्रबल होने के समय शिवजी एक ब्राह्मण के घर जन्म लेकर शंकर नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने अधर्म का विनाश करके सन्यास धर्म और अद्वैत मत को प्रकट किया।

[*महाराज दशरथ के पुत्र न होने के कारण शृंगी ऋषि ने ही पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था जिसके फल स्वरूप राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ था। महाराज दशरथ ने अपनी पुत्री शांता का विवाह शृंगी ऋषि से कर दिया था।*]

शृंगेरी मठ में श्री शंकराचार्य की नियत की हुई गद्दी पर इस समय तक लगातार गद्दी के उत्तराधिकारी लोग होते आए हैं और वे शंकराचार्य ही कहलाते हैं। वर्ष में नवरात्रि आदि पर्वों पर कई बार मठ में बड़ा उत्सव होता है। शृंगेरी गाँव के पास टीले पर शारदा देवी का प्रसिद्ध मंदिर है और गाँव के आस पास चंदन के बहुत वृक्ष हैं। छोटी इलायची, काली मिर्च और सुपारी यहाँ बहुत उत्पन्न होती है।

६४१ शोणितपुर—(संयुक्त प्रान्त में हिमालय पर्वत पर टेहरी राज्य में एक स्थान)

यहाँ बाणासुर ने शिव जी का कठिन तप किया था।

शोणितपुर को उमा वन भी कहते थे।

प्रा० क० (वामन पुराण, ६२ वां अध्याय) राजा बलि के रसातल जाने के उपरान्त उनका पुत्र बाणासुर पृथिवी में शोणिताख्यपुर रचकर दानवों के साथ रहने लगा।

(स्कन्द पुराण, केदारखण्ड, उत्तरार्द्ध, चौंतीसवां अध्याय) गुप्त काशी के पश्चिम दिशा में बाणासुर दैत्य ने अजय वरदान पाने के लिए शिव जी का कठिन तप किया। वहाँ बाणेश्वर महादेव स्थित हो गए। बाणासुर ने उनके प्रसाद से सम्पूर्ण जगत को जीत लिया।

(श्री मद्भागवत, दशम स्कन्ध, ६२ वां अध्याय) बाणासुर की उषा नामक एक कन्या थी। स्वप्न में अनिरुद्ध के साथ उसका समागम हुआ। जागने पर वह 'हे कान्त! तुम कहाँ गए?' इस प्रकार पुकारती-पुकारती सखियों के बीच में गिर पड़ी। तब बाणासुर के मंत्री कुभाण्डक की पुत्री चित्ररेखा देवता और मनुष्य सब के चित्र लिख लिख कर उसको दिखाने लगी। अन्त में अनिरुद्ध का चित्र देखकर उषा ने कहा कि मेरा चित चोर यही है। तब योगबल से चित्ररेखा आकाश मार्ग से होकर द्वारिकापुरी में जा पहुँची। उस समय अनिरुद्ध पलंग पर सो रहे थे। उन्हें वह योगबल से उठाकर शोणितपुर में ले आई। उषा और अनिरुद्ध गुप्त रीति से घर में रहने लगे। कुछ दिनों के पश्चात् बाणासुर ने पहरेदारों के मुख से यह वृत्तान्त सुन कन्या के घर में जाकर अनिरुद्ध को देखा और कुछ युद्ध होने के बाद अनिरुद्ध को नाग फाँस में बाँध लिया।

(६३ वां अध्याय) वर्षा ऋतु के चार महीने बीत जाने पर नारद जी ने द्वारिका में जाकर श्रीकृष्णचन्द्र से अनिरुद्ध के कारागार का समाचार जा सुनाया। तब श्रीकृष्णचन्द्र ने बड़ी भारी सेना के साथ जाकर बाणासुर के नगर को घेर लिया और उसकी सब सेना का विनाश करके बाणासुर की चार भुजाओं को छोड़ शेष भुजाओं को काट डाला। उसके पश्चात् बाणासुर ने श्रीकृष्णचन्द्र को प्रणाम करके उषा के सहित अनिरुद्ध को रथ में बैठाकर बिदा कर दिया। श्री कृष्णचन्द्र अपनी सेना के साथ द्वारिका में लौट आए।

[रुक्मिणी के भाई रुक्म की पुत्री, सुन्दरी, के स्वयम्बर में रुक्मिणी और श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न भी पधारे थे। इनको कामदेव का औतार कहा जाता है। सुन्दरी से इनका विवाह हो गया और उनसे अनिरुद्ध का जन्म हुआ।

प्रद्युम्न, शम्बासुर के यहाँ से उसकी स्त्री मायावती को भी पहिले ले आए थे पर उसके सन्तान नहीं हुई थी।

अनिरुद्ध का भी रुक्म के पुत्र की कन्या से विवाह हुआ था। बाणासुर की कन्या उषा इन पर मोहित हो गई थी और यह उसके यहाँ रहते रहे। पर जब यह समाचार बाणासुर को मिला तो उसने इनको बन्दी बना लिया। श्रीकृष्ण ने सेना लेकर बाणासुर पर चढ़ाई की और अनिरुद्ध को छुड़ाकर ले आए। उषा भी उनके साथ आई और अनिरुद्ध को ब्याह दी गई। बाणासुर राजा बलि के जेष्ठ पुत्र थे।

वैष्णव शास्त्रों में वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण, भगवान के चतुर्व्यूह माने गए हैं और वैष्णव गायत्री में इन्हीं की उपासना है।]

य० द०—शोणितपुर में बाणासुर की गढ़ की निशानी, और बाणासुर, अनिरुद्ध तथा पंचमुखी महादेव की मूर्त्तियाँ हैं। केदारनाथ के पण्डा लोग शोणित पुर ही में रहते हैं।

राजपूताना के भरतपुर राज्य में एक कस्बा बियाना है। उसको कहा जाता है कि बाणासुर ने बसाया था। यहाँ से ६ मील पश्चिम विजय मन्दरगढ़ का पुराना किला है जिसका प्राचीन नाम शान्तीपुर था। इसको बाणासुर की राजधानी कुछ लोग कहते हैं। बियाना और विजय मन्दरगढ़ दोनों पहाड़ी पर बसे हैं, और लोधी बादशाहों के समय में बियाना, सूबे का सदर स्थान था। आगरा, जो बियाना से पश्चिम-दक्षिण ६५ मील पर है, उन दिनों केवल एक परगना था। विजय मन्दरगढ़ के किले में मुसलमान और जाटों ने भी कुछ इमारत बढ़ाई है। 'उषा चरित्र' में अनिरुद्ध और उषा की लीला 'शान्तीपुर' में हुई बताई गई है।

बियाना में एक बहुत पुराना मन्दिर उषा मन्दिर के नाम से पुकारा जाता है। कहते हैं कि इसे उषा ने बनवाया था। मुसलमानों ने उसे तोड़ कर मस्जिद कर दिया है। एक और पुराने मन्दिर को तोड़ कर भी मस्जिद बना दिया गया है। बियाना का पुराना नाम बाणासुर था और यह बाण गङ्गा के किनारे पर बसा है। आरकियालाजिकल मुहकमे के मिस्टर एस० सी० एल० कार्लायल का मत है कि विजय मन्दरगढ़ और बियाना का देश ही बाणासुर का राज्य रहा होगा। परन्तु उन्होंने शोणितपुर को नहीं देखा था। सम्भव है कि शोणितपुर व शान्तीपुर दोनों से बाणासुर का सम्बन्ध रहा हो: एक स्थान पर, यानी शोणितपुर में, उसने तप किया और दूसरे पर यानी

वियाना (शान्तीपुर) में राज किया हो। अनिरुद्ध का वियाना पहुँचना और उषा का उन्हें देखना शोणितपुर पहुँचने के मुकाबिले अवश्य अधिक सरल था, और अनिरुद्ध व उषा की घटना का यहीं होना सम्भव प्रतीत होता है। तपस्या के स्थान से लौटने पर बाणासुर को इसका पता चलना प्रतीत होता है।

बिहार प्रान्त में आरा से ६ मील पश्चिम एक स्थान मसार है जिसका प्राचीन नाम महासार था। बताया जाता है कि इसका भी पुराना नाम शान्तीपुर था। एक खेड़े के ऊपर यहाँ बाणासुर की मूर्ति पहले खड़ी थी। वहाँ के लोग इसी को बाणासुर का स्थान कहते हैं।

दीनाजपुर (बङ्गाल) से १८ मील दक्षिण पश्चिम एक स्थान देवीकोट, है, इसे भी शोणितपुर कहा जाता है और वहाँ के लोग इसी को बाणासुर की राजधानी बताते हैं।

आसाम में एक स्थान तेजपुर है इसको भी बाणासुर की राजधानी होने का दावा है। कहा जाता है कि हरि और हर का संग्राम यहीं हुआ था।

बाणासुर का स्थान निश्चय करने में उसकी वंशावली से कुछ सहायता मिल सकी है। वह इस प्रकार है :—
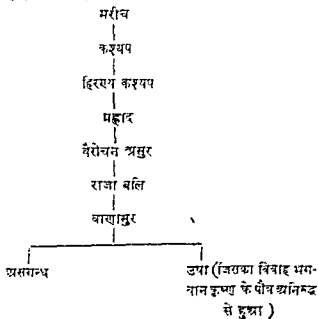
प्रह्लाद की राजधानी मुलतान थी जिससे मसार के मुकाबिले वियाना ही समीप पड़ेगा। राजा बलि ने भड़ौंच में तप किया था। वह भी वियाना ही से समीप पड़ता है। अन्य दो स्थान,देवीकोट व तेजपुर, तो मुल्तान व भड़ौच से बहुत ही दूर पर हैं। मुल्तान, बियाना व भड़ौच भारतवर्ष के पश्चिम में हैं, तो तेजपुर व देवीकोट देश के पूर्वी भाग में हैं।

बियाना (प्राचीन शान्तीपुर) व शोणितपुर का ही सम्बन्ध वाणासुर से माना जा सकता है। इनमें से शोणितपुर वाणासुर के तप का स्थान है, और बियाना में राज्य और राजभवन था जहाँ उषा का निवास था। वाणासुर के शोणितपुर से शान्तीपुर आने पर अनिरुद्ध का हाल मिला होगा जब उसने उन्हें बन्दी किया, नहीं तो बिना उसकी जानकारी के वह कई मास उषा के साथ राजभवन में कैसे व्यतीत कर सकते थे ?

संयुक्त प्रान्त के बलिया का सम्बन्ध अवश्य राजा बलि से बताया जाता है पर इसका कोई प्रमाण नहीं है। यह जरूर है कि वामनावतार, जिन्होंने राजा बलि को छला था, बक्सर में हुआ था जो बलिया के पास ही है। मसार बलिया से समीप पड़ेगा। देव कोट व तेजपुर वहाँ से भी बहुत दूर हैं। परन्तु अनिरुद्ध के द्वारिका से वियाना ही पहुँचने की सम्भावना हो सकी है।

६४२ श्यामपुर—(देखिये सोरों)

६४३ श्रवणबेलगुल—(मैसूर राज्य के हासन जिले में एक ग्राम)

श्रवण बेलगुल ग्राम, विन्ध्यागिरि और चन्द्रगिरि के मध्य में बसा है। ये दोनों पर्वत जैन ऋषियों के परम धाम हैं और विन्ध्यागिरि पर श्री भद्र बाहु-स्वामी ने अध्यात्म विचार में मग्न होकर मोक्ष प्राप्त की थी।

दोनों पर्वतों के शिखर तक सीढ़ियां बनी हैं और विन्ध्यागिरि पर ७ तथा चन्द्रगिरि पर १४ जैन मन्दिर हैं। विन्ध्यागिरि के एक मन्दिर में श्रीबाहु बली स्वामी की अति मनोहर मूर्ति है।

६४४ श्रीकूर्म—(देखिए कुमायं गढ़वाल)

६४५ श्रीनगर—(संयुक्त में टेहरी गढ़वाल राज्य की पुरानी राजधानी)

श्री नगर के समीप पौरी में अष्टावक्र मुनि ने तपस्या की थी।

शिल्द मुनि यहाँ पधारे थे।

कोलासुर यहाँ मारा गया था।

राज राजेश्वरी देवी का प्रसिद्ध मन्दिर यहाँ है। इसके समीप नागों ने तप किया था।

पौराणिक कथा है कि श्रीनगर के पास अग्नि ने शिव की आराधना कर के उनको प्रसन्न किया था।

प्रा० क०—(स्कन्द पुराण, दूसरा अध्याय) सतयुग में सत्य संध नामक राजा ने भगवती से वर प्राप्त कर कोलासुर नामक राक्षस का विनाश किया जिस स्थान पर कोलासुर मारा गया उसका नाम श्रीक्षेत्र पड़ा। भगवती बोलीं कि हे राजन! श्रीक्षेत्र से आधे कोस की दूरी पर गङ्गा के उत्तर तीर में, मैं राज राजेश्वरी के नाम से प्रसिद्ध हूँ। पूर्व समय में राज-राज (कुबेर) ने मेरी आराधना की थी। तबसे मैं वहीं निवास करती हूँ। जब कुबेर मेरी आराधना करके सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी हो गया तब उसने तीन करोड़ स्वर्ण की वेदी बनाकर उस पर मुझे स्थापित किया। तभीसे मेरा नाम राजेश्वरी करके प्रख्यात हुआ। ऐसा कह, देवी अन्तर्धान हो गईं।

(१२ वां अध्याय) इसी तीर्थ में काशी के रहने वाले ब्रह्मदेव-ब्राह्मण ने ५५०० वर्ष पर्यन्त शिव जी का तप किया। शिव प्रसन्न हुए और मरकत-मणि का शिव लिङ्ग देख पड़ा। उस समय शिल्द नामक मुनि वहाँ आ गए और उन्होंने लिङ्ग का अभिषेक करवाया। शिवजी मुनि के नाम पर शिल्देश्वर नाम से प्रसिद्ध हुए। शिल्ह मुनि शिवलोक में गए। उसके पीछे किसी समय श्री रामचन्द्रजी नित्य एक सौ कमलों से शिव की पूजा करते थे। तभी से यह लिङ्ग कमलेश्वर नाम से प्रख्यात हो गया। वह्नि पर्वत के नीचे के भाग में ४ बाण पर कमलेश्वर महादेव है।

कमलेश्वर महादेव से ऊपर एक बाण पर विष्णु तीर्थ है और विष्णु तीर्थ से १ कोस की दूरी पर गंगा के दक्षिण तट में नागेश्वर महादेव हैं, जहाँ पूर्वकाल में नागों ने शिव का तप किया था।

(१३ वा अध्याय) कमलेश्वर पीठ से ऊपर दक्षिण दिशा में वह्नि पर्वत है, जहाँ अग्नि ने शिव जी का तप करके सम्पूर्ण इच्छित फल पाया था। तभी से अग्निदेव सम्पूर्ण देवताओं के मुख हो गए। वह्नि पर्वत के मध्य में अष्टावक्र मुनि का पवित्र तप स्थल है।

[महर्षि अष्टावक्र के सम्बन्ध में पुराणों में ऐसी कथा आती है कि जब वे गर्भ में ही थे तभी इन्हें समस्त वेदों का बोध था। इनके पिता कुछ

अशुद्ध पाठ कर रहे थे, इन्होंने गर्भ में से ही कहा 'अशुद्ध पाठ क्यों करते हो ?' पिता को यह बात बुरी लगी और शाप दिया कि अभी से इतना टेढ़ा है तो आठ जगह से टेढ़ा हो जा। यह आठ स्थान से टेढ़े पैदा हुए और इसी से उनका नाम अष्टावक्र पड़ा। यह वेदों के अद्वितीय ज्ञाता थे।]

व० द०—श्रीनगर में बारह खम्भों की गुम्बजदार बारहदरी के भीतर ६ पहलवाला गुम्बजदार कमलेश्वर का मन्दिर है। प्रत्येक पहल में एक जालीदार किवाड़ लगा है जिसके भीतर कमलेश्वर महादेव का खण्डित लिङ्ग है। मन्दिर के आगे पीतल से जड़ा हुआ बड़ा नन्दी, चारों ओर मकान और एक कोने पर ऊँचा घण्टाघर है। कार्तिक शुक्ल चौदस को यहाँ मेला लगता है। कमलेश्वर के अलावा श्रीनगर में नागेश्वर, अष्टावक्र महादेव और राज राजेश्वरी के मन्दिर हैं।

अलकनन्दा के किनारे ऊँची भूमि पर अब नया श्रीनगर बसा है।

अष्टवक्र आश्रम—हरद्वार से ४ मील पर राहुग्राम है जिसे अब रेला कहते हैं और जिसके समीप एक छोटी नदी, अष्टावक्र नदी नाम की बहती है, वह अष्टावक्र ऋषि का स्थान था। उनका दूसरा आश्रम श्रीनगर के समीप पौरी में अष्टावक्र पर्वत पर था।

६४६ श्रीपद—(देखिये लङ्का)

६४७ श्रीरङ्गम—(मद्रास प्रान्त के त्रिचनापल्ली जिले में कावेरी नदी के श्री रङ्गमटापू पर एक नगर)

श्री रामचन्द्र जी यहाँ पधारे थे।

बलदेव जी इस स्थान पर आए थे।

श्री रामानुज स्वामी ने यहाँ निवास करके अपने मत का प्रचार किया था और यहीं शरीर छोड़ा था।

विभीषण यहाँ वन्दी करके रखे गए थे।

प्रा० क० (श्री मद्भागवत, दशम स्कन्ध, ७९ वाँ अध्याय) श्री बलदेव जी कावेरी नदी में स्नान कर श्रीरङ्ग नाम के विख्यात स्थान में गए, जहाँ श्रीहरि नित्य निवास करते हैं

(मत्स्य पुराण, ८८ वाँ अध्याय) श्रीरङ्ग नामक तीर्थ में श्राद्ध करने से मनुष्यों को अनन्त फल लाभ होता है।

(पद्म पुराण पाताल खण्ड उत्तरार्द्ध, प्रथम अध्याय) द्रविड़ देश के मनुष्यों ने विभीषण को जंजीर से बाँध लिया। श्री रामचन्द्र अयोध्या में दूतों के मुख से यह समाचार सुनकर मुनिगण और वानरों को संग ले विभीषण को ढूँढ़ते हुए श्रीरंग नामक नगर में पहुँचे। वहाँ के उपस्थित राजाओं ने उनकी पूजा की। रामचन्द्र ने बहुत खोजने के पश्चात् बहुत जञ्जीरों से बँधा हुआ भूगर्भ में विभीषण को पाया। उनके पूछने पर वहाँ के ब्राह्मणों ने कहा कि एक वृद्ध धार्मिक ब्राह्मण ध्यान में मग्न बैठा था। विभीषण ने उसको अपने चरण से ऐसा मारा कि वह मर गया। तब हम लोगों ने इस ब्रह्मघाती को बहुत मारा, परन्तु यह नहीं मरा। इसको मार डालना उचित है। रामचन्द्र बोले मैंने इसको कल्प पर्य्यन्त राज्य करने को कहा है, आप लोग इसके बदले में मुझे दण्ड दीजिए। तब वहाँ के ब्राह्मणों ने विभीषण से प्रायश्चित करवाकर, उसे शुद्ध कर दिया। श्री रामचन्द्र जी अयोध्या लौट आए।

[श्री रामानुजाचार्य्य का जन्म सं० १०१७ ई० में भूतपुरी में हुआ था। आपके पिता का नाम केशव भट्ट था और दक्षिण के तेरुँकदूर नामक क्षेत्र में इनका निवास था। रामानुजाचार्य्य ने काञ्ची के यादवप्रकाश नामक गुरु से वेदाध्ययन किया। इसके बाद पेरियनाम्बि से वैष्णव दीक्षा ली। जब गृहस्थी में रहकर अपने उद्देश्य की पूर्त्ति इन्होंने होते न देखी तो श्रीरङ्गम जाकर यतिराज सन्यासी से सन्यास की दीक्षा ले ली।

दया में यह भगवान बुद्ध के समान और प्रेम में ईसा के समान थे। महात्मा नाम्बि से इन्हें अष्टाक्षर मन्त्र (ओंनमोनारायणाय) की दीक्षा जब मिली थी तब गुरु ने मन्त्र को गुप्त रखने को कहा था। इन्होंने मन्दिर के शिखर पर खड़े होकर सबको यह मन्त्र सुना दिया। जब गुरू अप्रसन्न हुये और कहा कि तुम्हें नरक भोगना होगा तब इन्होंने कहा कि, यदि इस महा मन्त्र का उच्चारण करके हजारों आदमी नरक की यन्त्रणा से बच जायँगे तो मुझे नरक भोगने में आनन्द ही मिलेगा। इस पर गुरू ने बड़े वेग से इन्हें गले लगा लिया।

श्री रामानुज ने विशिष्टाद्वैत (भक्तिमार्ग) का प्रचार करने को सारे भारत की यात्रा की और गीता और ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखे। सन ११३७ ई० में १२० वर्ष की अवस्था में श्री रङ्गम में यह परम धाम को पधारे।

रामानुज स्वामी के पीछे उनकी गद्दी पर देवाचार्य,देवाचार्य के पश्चात् श्री हरियानन्द,उनके पश्चात् राघवानन्द,और उनके पीछे स्वामी रामानन्द जी बैठे रामानन्द जी के शिष्य कबीरदास थे जिन्होंने कबीर पन्थी मत का प्रचार किया।]

व० द०—श्री रङ्गम टापू लगभग १७ मील लम्बा और सवा मील चौड़ा है। श्री रङ्गम नगर में म्युनिसिपैल्टी है और रङ्ग जी के मन्दिर के घेरे के भीतर तो प्रायः सम्पूर्ण नगर बसा है। घेरे के एक भाग में श्री रामानुज स्वामी का मन्दिर है।

श्री रङ्गजी का मन्दिर उत्तर से दक्षिण तक लगभग २९०० फ़ीट लम्बा और पूर्व से पश्चिम तक २५०० फ़ीट चौड़ा है अर्थात् २६६ बीघे भूमि पर फैला हुआ है। उसका विस्तार दिल्ली के क़िले से क़रीब ड्योढ़ा है। इतना बड़ा देव मन्दिर किसी स्थान में नहीं है। सात दीवारों के भीतर श्री रङ्ग जी का निज मन्दिर है। श्री रङ्गजी की कृष्ण पाषाणमय ६ फ़ीट से अधिक लम्बी चतुर्भुज मूर्ति शेष पर शयन करती है। उनका किरीट,मुकुट,चरण, हाथ सब सुनहले हैं। वे बहुमूल्य भूषण पहिने हुए हैं और उनके निकट श्री लक्ष्मी जी तथा विभीषण बैठे हैं। मन्दिर के खजाने में सोना, चाँदी, पन्ना, हीरा, और लाल इत्यादि रत्नों से बने हुए लाखों रुपयों के देव भूषण और पात्र हैं।

ग्यारहवीं सदी में श्री रङ्गम के यमुनाचार्य के पुत्र वररङ्ग स्वामी ने श्री रंग पुरी में, श्री रामानुज स्वामी को लाकर श्री रंगनाथ का कार्य समर्पण कर दिया। तब से श्री रामानुज स्वामी वहीं रहकर भारतवर्ष में अपने मत का प्रचार और उपदेश करने लगे थे। श्री रंग जी का वर्तमान मन्दिर १७ वीं और १८ वीं सदी का बना हुआ है। सम्पूर्ण मन्दिर एक ही समय में नहीं बना था वह क्रम-क्रम से समय-समय पर बनाया गया है।

श्री रंगम के मन्दिर से एक मील पूर्व श्री रंगम के टापू के भीतर जाम्बुकेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिर शिल्पकारी और मनोरमता में श्री रंग जी के बड़े मन्दिर का मुक़ाबिला कर रहा है। मन्दिर का विस्तार एक सौ बीघे से अधिक होगा। जाम्बुकेश्वर के मन्दिर के खर्च के लिए सन् १७५० ई० में ६४ गाँव थे किन्तु सन् १८२० ई० में केवल १५ गांव रह गए थे। सन् १८५१ ई० से इन गाँवों के बदले में मन्दिर खर्च के लिए लगभग दस हज़ार रुपए वार्षिक मिलता है।

द्रविड़ देश में पाँच तत्त्वों के आधार पर पाँच परम प्रसिद्ध लिंग हैं:—

(१) जम्बुकेश्वर—जललिंग (श्री रंगम)

(२) एकाम्रेश्वर—पृथ्वी लिंग (मद्रास प्रान्त के चंगल पट जिले में काँची में)

(३) अग्नि लिंग	(मद्रास प्रान्त के दक्षिणी अर्काट ज़िले में तिरु वन्नामलई करबे के पास पहाड़ी पर)
(४) काल हस्तीश्वर—वायु लिंग	(मद्रास प्रांत के उत्तरी अर्काट ज़िले में कालहस्ती में)
(५) नटेश—आकाश लिंग	(मद्रास प्रांत के दक्षिणी अर्काट ज़िले में चिदम्बर में)

स

६४८ सकरी नदी—(देखिये कौआ कोल)

६४९ सकर ताल—(संयुक्त प्रांत के मुज़फ्फर नगर ज़िला में एक स्थान) शुकदेव जी ने यहाँ सात दिन में राजा परीक्षित को श्री मद्भागवत की पूरी कथा सुनाई थी।

पाण्डव लोग अर्जुन के पौत्र परीक्षित (अभिमन्यु के औरस पुत्र) को गद्दी पर बिठाकर आप वनवास और महायात्रा को चले गए। राजा परीक्षित को तक्षक नाग ने डस लिया। उनके अन्तकाल में सात दिन में श्री शुकदेव जी ने उन्हें श्री मद्भागवत की सारी कथा सुनाई थी। उसके उपरान्त राजा परीक्षित का शरीर छूट गया। पीछे, उनके पुत्र जन्मेजय ने नागों को निर्मूल कर डालने के लिए 'सर्प यज्ञ' रचा था।

[शुकदेव जी, महर्षि व्यास के पुत्र थे और घृताची अप्सरा द्वारा उत्पन्न हुए थे। वे ब्रह्मचारी होकर तपस्या करने लगे और मोक्ष सम्बन्धी प्रश्नों पर शङ्का मिटाने, मिथिला नरेश के यहाँ तक गए थे। शुकदेव जी अधिकारी पुरुषों को दर्शन देकर अब भी उपदेश करते हैं।]

सकरताल, मुज़फ्फर नगर और बिजनौर की सीमा पर गङ्गा जी के तट पर एक स्थल है। यहाँ एक विशाल वृक्ष के नीचे एक चबूतरा और छोटा मन्दिर है। इसी स्थल पर शुकदेव जी का आसन था जहाँ बैठकर उन्होंने सप्ताह सुनाया था। अब सकरताल को एक बहुत अच्छी सड़क बन गई है और लोगों ने बहुत सी अच्छी इमारतें बनवा ली हैं।

६५० सङ्कल्प कूट—(देखिये उम्मेद शिखर)

६५१ सङ्किसा—(संयुक्त प्रान्त के फ़र्रुख़ाबाद ज़िले में एक स्थान) राजा जनक के भाई राजा कुशध्वज की यह राजधानी थी।

अपनी माता को तीन मास तक त्रयस्त्रिन्स स्वर्ग में धर्मोपदेश देकर बुद्ध भगवान, यहाँ स्वर्ग से उतरे थे।

बौद्ध धर्म के अति पवित्र स्थानों में से यह एक है।

इस स्थान का प्राचीन नाम सँगकास्य है।

पूर्व चार बुद्धों ने भी यहाँ निवास किया था।

भगवान बुद्ध की माता मायादेवी, बुद्धदेव के जन्म के एक सप्ताह पश्चात् परलोकवास कर गई थीं। बौद्ध ग्रंथ कहते हैं कि भगवान बुद्ध उनको धर्मोपदेश सुनाने तुसीता स्वर्ग को गए थे जहाँ इन्द्र समेत ३३ देवता और भी रहते थे। तीन मास उपदेश सुनाकर भगवान बुद्ध, इन्द्र और ब्रह्मा सहित सङ्किसा में उतरे थे। पृथिवी तक तीन ज़ीने लगे थे। बीचवाला ज़ीना जवाहिरात का था जिससे भगवान बुद्ध उतरे थे। उनके बांए सोने के ज़ीने से इन्द्र, और दाहिने चाँदी के ज़ीने से ब्रह्मा उतरे थे। फाहियान लिखते हैं कि उतरने के बाद यह तीनों ज़ीने पृथिवी में लोप हो गए; केवल सात सीढ़ियाँ दिखाई देती रहीं थी। इन ज़ीनों के स्थान पर महाराज अशोक ने एक मन्दिर बनवा दिया था और बीच के ज़ीने के स्थान पर भगवान बुद्ध की २० गज ऊँची मूर्ति रख दी थी।

ह्वानचाँग की यात्रा के समय यहाँ बहुत से स्तूप थे; उनमें से एक उस स्थान पर था जहाँ पूर्व चार बुद्ध भी रहे थे।

इस समय सङ्किसा एक ४१ फ़ीट ऊँचे टीले पर बसा है जिसे क़िला कहते हैं। इससे १६०० फ़ीट दक्षिण ईंटों के टीले पर 'बिसारी देवी' का मन्दिर है। यही वह स्थान है जहाँ तीन ज़ीनों के स्थान पर मन्दिर बना था।

६५२ सखायम पट्टन—(मैसूर राज्य के कदूर ज़िले में एक बस्ती)

दक्षिण में प्रसिद्ध है कि सुप्रसिद्ध राजा रुक्मांगद की यह राजधानी थी।

यहाँ चार स्तम्भों के ऊपर रङ्गनाथ का मन्दिर है, जहाँ प्रतिवर्ष रथ-यात्रा के समय बहुत से लोग जाते हैं। राजा रुक्मांगद अयोध्या के राजा थे और सूर्यवंशी थे। (देखिए अयोध्या)

६५३ सङ्गमेश्वर—(बम्बई प्रान्त के रत्नागिरि ज़िले में एक स्थान)

सङ्गमेश्वर में परशुराम जी के बनवाए मन्दिर थे और वे यहाँ रहते थे। इसका प्राचीन नाम परशुरामक्षेत्र था।

परशुराम क्षेत्र का वर्णन स्कन्द पुराण में आया है। संगमेश्वर महादेव का मंदिर कृष्णा और वीणा नदी के संगम पर होने से संगमेश्वर कहलाया।

६५४ सङ्गमेश्वर—(बम्बई प्रांत के कृष्णा और मालप्रभा नदियों के संगम पर एक नगर)

लिंगायत या जंगम सम्प्रदाय के चलाने वाले बसव जी ने यहाँ शरीर छोड़ा था।

६५५ सज्जनगढ़—(देखिए जाम्ब गाँव)

६५६ सञ्जय—(बम्बई प्रांत के थाना जिले में एक स्थान)

इसका प्राचीन नाम सञ्जयन्ति नगरी है।

महादेव ने इस स्थान को विजय किया था।

भारतवर्ष में पारसियों के पुरोहित शहरयार ७१६ ई० में पहिले यहीं आकर बसे थे।

६५७ सतारा—(बम्बई प्रांत में एक ज़िले का सदर स्थान)

इस स्थान पर छत्रपति शिवाजी की प्रसिद्ध तलवार 'जयभवानी' है।

यह विख्यात तलवार सतारा के पुराने राजघराने में है।

६५८ सधारा—(देखिए साँची)

६५९ सप्तमोक्षदापुरी—(मोक्ष देने वाली सात पुरी निम्नलिखित हैं)

अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी (बनारस), काञ्ची (कांजी वरम), अवन्ती (उज्जैन), द्वारावती (द्वारिका)

६६० सम्भल—(संयुक्त प्रांत के मुरादाबाद ज़िले में एक कस्बा)

कहा जाता है कि इस स्थान पर "कल्कि अवतार' होगा।

प्रा० क०—(महाभारत, वन पर्व, १६० वाँ अध्याय) सम्भल ग्राम के विष्णु यश नामक ब्राह्मण के घर में विष्णु का कल्कि अवतार होगा।

(यह कथा देवी भागवत, मत्स्य पुराण, विष्णु पुराण और श्रीमद्भागवत में भी है। कल्कि पुराण में विस्तार पूर्वक कल्कि अवतार की कथा है।)

(गरुड़ पुराण पूर्वार्द्ध ८१, वाँ अध्याय) सम्भल ग्राम एक उत्तम स्थान है।)

व० द०—सम्भल कस्बा मुरादाबाद से २३ मील दक्षिण-पश्चिम और सोत नदी से चार मील पश्चिम आबाद है। पूर्व काल में यह पाञ्चाल राज्य में था और मुसलमानी समय में बहुत प्रसिद्ध नगर था।

(यथार्थ में सम्बल जहाँ कल्कि अवतार होगा वह चीन के गोबी रेगिस्तान में ऋषियों का एक गुप्त नगर है।)

६६१ सम्मेद शिखर—(बिहार प्रान्त के हजारी बाग जिले में एक तीर्थ स्थान)

यह स्थान जैन धर्म में तीर्थों का राजा माना जाता है। यहां से निम्नांकित बीस तीर्थङ्करों ने मोक्ष प्राप्त की थी।

प्रत्येक के मोक्ष का स्थान जो सम्मेद शिखर के अन्तर्गत है कोष्ठक के भीतर लिखा है।

सम्मेद शिखर में, व अन्य जैन तीर्थों में भी, प्रत्येक तीर्थंकर के चरण चिन्ह का ही पूजन होता है, इसमें हर एक तीर्थंकर के अलग-अलग चिन्ह हैं जिससे उनकी पहिचान हो सके। वह चिन्ह भी प्रत्येक तीर्थंकर के नाम के आगे यहां लिख दिया गया है।

श्री अजितनाथ	स्वामी	(सिद्धवर कूट)	दूसरे तीर्थङ्कर	चिन्ह	हाथी
,, सम्भवनाथ	स्वामी	(धवलकूट)	तीसरे	,, ,,	घोड़ा
,, अभिनन्दन	,,	(आनन्दकूट)	चौथे	,, ,,	बन्दर
,, सुमतिनाथ	,,	(अविचलकूट)	पाँचवें	,, ,,	चक्र
,, पद्मनाथ	,,	(मोहन कूट)	छठवें	,, ,,	सफेद कमल
,, सुपार्श्वनाथ	,,	(प्रभास कूट)	सातवें	,, ,,	स्वस्तिका
,, चन्द्रप्रभु	,,	(ललित कूट)	आठवें	,, ,,	चन्द्र
,, पुष्पदन्त	,,	(सुप्रभ कूट)	नवें	,, ,,	मगर
,, शीतलनाथ	,,	(विद्युतवर कूट)	दसवें	,, ,,	कल्पवृक्ष
,, श्रेयांसनाथ	,,	(संकल्प कूट)	ग्यारहवें	,, ,,	गैंडा
,, विमलनाथ	,,	(साल कूट)	तेरहवें	,, ,,	शूकर
,, अनंतनाथ	,,	(स्वयभू कूट)	चौदहवें	,, ,,	सेही
,, धर्मनाथ	,,	(सुदत्तवर कूट)	पन्द्रहवें	,, ,,	वज्र
,, शान्तिनाथ	,,	(शांतिप्रद कूट)	सोलहवें	,, ,,	मृग
,, कुन्थनाथ	,,	(ज्ञानधर कूट)	सत्रहवें	,, ,,	बकरा
,, अरहनाथ	,,	(नाटक कूट)	अठारहवें	,, ,,	मछली
,, मल्लिनाथ	,,	(शांकल कूट)	उन्नीसवें	,, ,,	कुंभ(घड़ा)
,, सुव्रतनाथ	,,	(निर्जरा कूट)	बीसवें	,, ,,	कछुआ

श्री नमिनाथ स्वामी „ (मित्रधर कूट) इक्कीसवें तीर्थंकर चिह्न नीला कमल
श्री पार्श्वनाथ स्वामी (स्वर्णभद्र कूट) तेईसवें तीर्थंकर चिह्न सर्प

व० द०—श्री सम्मेद शिखर पर्वत की श्रेणी हैं जिनकी ६ मील चढ़ाई ६ मील टोकों की वन्दना और ६ मील उतराई, इस प्रकार १८ मील टोकों की वन्दना है, और २८ मील पर्वत की परिक्रमा है। कुल मिलाकर चौबीस तीर्थंकर हुए हैं, जिनमें से ४ तीर्थंकर अर्थात् (प्रथम) श्री आदिनाथ भगवान कैलास गिरि से; (बाईसवें) श्री वासु पूज्य स्वामी मंदारगिरि से; (तेईसवें) श्री नेमनाथ स्वामी गिरनार पर्वत से, और (चौबीसवें) श्री महावीर स्वामी पावापुरी से, मोक्ष को पधारे हैं परन्तु इनकी टोकें भी यहाँ बनी है। इन चार तीर्थंकरों के चिह्न क्रम से बैल, भैंसा, शङ्ख और सिंह हैं। श्री पार्श्वनाथ का मंदिर और टोंक यहाँ सबसे बड़ी है और इतनी ऊँची है कि इससे दूर-दूर के स्थान दिखाई देते हैं, इस कारण से यह समस्त तीर्थ बहुधा पार्श्व नाथ ही कहलाता है।

जैनियों की यहाँ कई विशाल धर्मशालाएँ हैं। लाखों नर नारी प्रति वर्ष इस तीर्थराज की वंदना करते हैं और प्रत्येक जैनी इसकी वंदना करना अपना धर्म समझता है। कहा जाता है कि अब भी यहाँ देवकृत कई अतिशय हुआ करते हैं।

६६२ सरदहा—(देखिए कोटवा)

६६३ सरदि—(कश्मीर राज्य में, उत्तर में एक कस्बा)

इसका प्राचीन नाम शारदातीर्थ है।

यहाँ ५२ पीठों में से एक है। सती का सिर यहाँ गिरा था।

६६४ सरहिन्द—(पजाब प्रांत के लुधियाना ज़िले में एक कस्बा)

यहाँ मुसलमानों ने गुरु गोविंदसिंह के दो बच्चों को जिंदा, दीवार में चुनवा दिया था।

सरहिंद मुसलमानी ज़माने में हिंदुस्तान के सबसे बड़े शहरों में से था। यहाँ से ८ मील दक्षिण-पूर्व एक प्राचीन स्थान बोरास, और १४ मील दक्षिण पूर्व दूसरा प्राचीन स्थान नोलास है जिनको कहा जाता है कि राजा बलि और राजा नल ने बसाया था। इन्हीं स्थानों की आबादी से सरहिंद बसाया गया था। जिन दिनों काबुल में ब्राह्मण राजा राज्य करते थे उन दिनों सरहिंद उनकी बादशाहत का सबसे पूर्वीय भाग था। औरंगजेब के १७०७ ई०

में मरने के बाद इस स्थान का पतन आरम्भ हुआ। उसके दो ही साल बाद सिक्ख सरदार बंदा ने सरहिंद को लूटा और वहाँ के गवर्नर वजीर खाँ, जिसने गुरु गोविंदसिंह के दो बच्चों को दीवार में ज़िन्दा चुनवा दिया था और परिवार को नष्ट कर डाला था, तलवार के घाट उतार दिया। सन् १७१३ ई० में सिक्खों ने फिर सरहिंद को लूटा और वजीर खाँ के जानशीन दूसरे गवर्नर का भी सिर काट लिया। सन् १७५८ ई० में तीसरी बार सिक्खों ने सरहिंद को लूटा, और सन् १७७३ ई० में चौथी बार लूटकर उसकी ईंट से ईंट बजा दी। शहर वीरान हो गया। जो थोड़े बहुत मुसलमान बचे थे वे भाग कर दूसरी जगह जा बसे। सिक्खों ने अपने गुरु के परिवार पर अत्याचार होने का बदला उस नगर से ऐसा लिया कि सबके लिए सबक हो गया। उजड़े नगर से होकर निकलने वाले सिक्ख अब भी वहाँ की दो ईंटें दूर नदी में फेंक देने के लिए उठा लाते थे। जिससे इस नगर का नामोनिशान न रहे।

इस तरफ पटियाला के लोगों ने इस जगह को फिर से बसा लिया है।

६६५ सराय अगहट—(देखिये नासिक)

६६६ सरिदन्तर—(देखिये उड्डपीपुर)

६६७ सहसराम—(देखिए मांधाता)

६६८ सहेट महेट—(संयुक्त प्रांत के बहराइच जिले में एक वीरान जगह)

यह प्राचीन सुविख्यात श्रावस्ती नगरी है। बाद को चन्द्रिकापुरी भी इसे कहते थे।

सूर्यवंशी राजा श्रावस्त ने, जो पीढ़ी में सूर्य से दसवें थे, इस नगरी को बसाया था।

श्रीरामचन्द्र जी ने इसे, अपने पुत्र लव के राज्य में दिया था।

बोधत्व प्राप्त करके भगवान बुद्ध ने ४५ में से २५ साल यहाँ निवास किया था।

बौद्ध ग्रन्थों का सुप्रसिद्ध जीत वन विहार, जो आठ सबसे श्रेष्ठ बौद्ध स्थानों में से एक था, यहीं था।

राजा विरुद्धक ने ५०० शाक्य कुमारियों का यहाँ वध किया था।

विभाषा शास्त्र के रचयिता बौद्ध-आचार्य मनोरथ को ब्राह्मणों ने शास्त्रार्थ में यहाँ पराजित किया था। इस पर मनोरथ ने प्राण दे दिए थे।

मनोरथ के शिष्य महात्मा वसुबन्धु ने बाद को ब्राह्मणों पर यहाँ विजय पाई थी।

भगवान बुद्ध ने अङ्गुलिमाल पन्थी डाकुओं को यहाँ सुमार्ग पर लगाया और बौद्ध बनाया था।

भगवान बुद्ध के चचेरे भाई देवदत्त यहाँ पृथिवी में समा गए थे।

देवदत्त के शिष्य कुकाली को भी, भगवान बुद्ध को दोषारोपन करने पर यहाँ पृथिवी निगल गई थी।

५०० डाकुओं को, जिन्हें महाराज प्रसेनजित ने अंधा करवा दिया था, भगवान बुद्ध ने यहाँ फिर से नयन दिये थे।

देवी विशाखा वाला भगवान बुद्ध का सुप्रसिद्ध पूर्वाराम यहीं था।

सारिपुत्र के नालन्दा में शरीर छोड़ने पर उनकी चिता की भस्म श्रावस्ती में लाकर रखी गई थी।

आठ पुश्त तक यह स्थान बौद्ध मत का केन्द्र था।

दूसरी शताब्दी बी० सी० में बौद्ध मत के १६ वें गुरु महात्मा राहुलता ने श्रावस्ती में शरीर छोड़ा था।

श्री सम्भवनाथ स्वामी (तृतीय तीर्थङ्कर) के यहाँ गर्भ और जन्म कल्याणक हुए थे और यहीं उन्होंने दीक्षा ली थी तथा कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया था।

प्रा० क०—बाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्ड में वर्णन है कि श्रीरामचन्द्र जी ने अपने पुत्र कुश को दक्षिण कोशल देशों का राज्य दिया और लव को उत्तरीय देश प्रदान किए। कुश के लिए कुशावती और लव के लिए श्रावस्ती नगरी बसाई गई।

फ़ाहियान जब ४०० ई० में यहाँ आए थे उस समय भी उन्होंने लिखा है कि यहाँ की जन संख्या केवल २०० घर थी।

लङ्का के ग्रंथों में लिखा है कि २१५ ई० से ३१५ ई० तक सावत्थीपुर (श्रावस्ती) में राजा खिराधार और उनके भतीजों ने राज्य किया था। इसके पश्चात ही यहाँ का पतन आरम्भ हुआ प्रतीत होता है और ६३६ ई० में जब हाँगचाँग यहाँ आये थे यह स्थान बिलकुल उजड़ चुका था।

ज्ञात होता है कि हाँगचाँग के बाद फिर यहाँ कुछ जान आई, क्योंकि मध्यकाल की भी मूर्तियाँ और मुहरें यहाँ मिली हैं। उन दिनों इसका नाम

चन्द्रिकापुरी था। पर बौद्ध मत के पतन के साथ साथ यह स्थान बिल्कुल नष्ट हो गया।

श्रावस्ती के महाराज प्रसेनजित भगवान बुद्ध के उपासक थे, पर उनके पुत्र विरूढक को शाक्यों से बैर था। विरुढक ने अपने भाई जेत का वधकर डाला और राज्य पाकर शाक्यों पर चढ़ाई करना चाहा और सेना लेकर चला। भगवान बुद्ध से श्रावस्ती के पूर्वाराम के पास, जाते समय मिला तब अपना विचार त्याग दिया और लौट पड़ा। पर पीछे फिर कुछ दिनों में चढ़ाई की और ५०० शाक्य कुमारियाँ पकड़ कर उसके रनिवास के लिए लाई गई। कुमारियों ने रनवास में जाने से इन्कार कर दिया। इस पर विरुढक ने उन सब का वध करवा दिया। उस समय भगवान बुद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि सात दिन में विरुढक अग्नि से भस्म हो जाने वाला है। जब सातवाँ दिन आया तब विरुढक अपनी रानियों सहित एक बड़े तालाब के बीच में नाव पर चला गया; परन्तु पानी से अग्नि निकली और उसकी नाव भस्म होगई। इतने में जमीन फटी और उसी में वह समा गया।

श्रावस्ती के धनी मानी व्यापारी सुदत्त (अनाथ पिण्डका) ने जब भगवान बुद्ध को श्रावस्ती बुलाने को निमन्त्रण देनी की सोची थी तब एक विहार बनाने के लिये भूमि लेनी चाही थी। जिस भूमि को सुदत्त ने पसन्द किया वह राजकुमार जेत की थी। राजकुमार उसे देना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने कह दिया कि ज़िमीन का मूल्य यह है कि उसे अशर्फ़ियों से पाट दिया जावे; सुदत्त ने मंजूर कर लिया। बाग़ में चन्दन और आम के पेड़ों को छोड़ कर सारे पेड़ काट दिए गए, जमीन पर अशर्फ़ियाँ बिछा दी गईं और सुदत्त ने आज्ञा दी कि जितने जमीन पर चन्दन और आम लगे हैं उसका भी हिसाब लगाया जाये ताकि वह रुपया भी दे दिया जाय। कुमारजेत अचम्भे में आगये, उन्होंने और रुपया लेने से इन्कार कर दिया और जितना पाया था उसे भी विहार के चारों फाटकों पर सतमंजिले द्वार बनवाने में लगा दिया। इस विहार का निर्माण सारिपुत्र की निगरानी में हुआ था।

यह राजकुमार जेत का बाग़ था इससे इसका नाम जेत वन विहार पड़ा और बौद्धधर्म के आठ सर्वश्रेष्ठ स्थानों में से एक था। इसकी गन्धकुटी में भगवान बुद्ध की चन्दन की एक मूर्ति थी और कोशम्ब कुटी में भगवान रहते थे।

फ़ाहियान लिखते हैं कि जेतवन श्रावस्ती से आध मील दक्षिण में था। इसका घेरा दो हज़ार गज़ था और संघाराम की इमारत ४४ गज़ लम्बी और ४४ गज़ चौड़ी थी। गन्धकुटी और कोसम्ब कुटी का मुँह पूर्व की ओर था। पहिले भगवान का निवास स्थान गन्ध कुटी में था। जब वे देवलोक अपनी माता को उपदेश देने गए थे तब वहाँ चन्दन की मूर्ति रखदी गई थी उसके पीछे भगवान बुद्ध कोसम्ब कुटी में रहने लगे।

ह्वानचाँग के समय में सुदत्त के रहने के स्थान पर एक स्मार्क स्तूप बना था और इसके पास दूसरा स्तूप अङ्गुलिमाल का था जिनको भगवान बुद्ध ने सत्मार्ग दिखाया था। यह लोग मनुष्यों को मार कर उनकी अँगुली की माला बनाकर पहिनते थे। भगवान बुद्ध पर उनके सरदार का आक्रमण हुआ पर उनके पास आकर वह ठिठक गया, उसकी क्रूरता प्रेम में बदल गई और वह भगवान के पैरों पर गिर पड़ा। भगवान बुद्ध ने उसे उपदेश दिया और अन्त में उसे अर्हत पद भी प्राप्त हुआ।

जेतवन के पूर्वोत्तर में एक स्तूप था जहाँ भगवान बुद्ध ने एक बीमार भिक्षु के हाथ पाँव धोए थे और वहीं उसके शरीर छूटने पर अर्हत पद उसे मिला था।

जेतवन से एक सौ पग पूर्व एक गहरा गढ़ा था। इस स्थान पर ज़मीन फटी थी और देवदत्त उसमें समा गए थे। यह भगवान बुद्ध के चचेरे भाई थे पर उनसे सदा द्वेष रखते थे और बौद्ध सङ्घ में भरती होकर भी अपना एक नया सङ्घ बनाना चाहते थे। कुमारावस्था में भी इनका यही हाल था। शस्त्र विद्या में भी कुमार सिद्धार्थ से हारकर यह उनके वैरीही गए थे।

इनके तीर से मार कर गिरे हुए हंस को कुमार सिद्धार्थ (बुद्ध) ने उठा और बचा लिया था। देवदत्त ने हंस वापिस माँगा। मामला राजदरबार तक पहुँचा। निश्चय हुआ कि मारने वाले से बचाने वाले का हक़ ज़्यादा है। देवदत्त और चिढ़ गए।

जहाँ देवदत्त ज़मीन में समाए थे, उससे मिला हुआ दक्षिण में एक बड़ा गढ़ा था वहाँ देवदत्त के शिष्य कुकाली को ज़मीन निगल गई थी। उसने बुद्ध देव के प्रति दुर्वचन कहे थे।

कुकाली वाले गढ़े से १०० गज़ दक्षिण एक और बड़ा गढ़ा था जहाँ ब्राह्मण पुत्री चंचा, भगवान बुद्ध के चरित्र पर दोष लगाने के कारण ज़मीन में समा गई थी।

जेतवन के उत्तर पश्चिम एक कुआं और एक स्तूप था जहाँ मुद्गल पुत्र, महात्मा सारि पुत्र की कमर खोलने में असमर्थ रहे थे। इसी से मिला हुआ महाराज अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप था जहाँ बुद्ध भगवान और उनके परम शिष्य सारिपुत्र व्यायाम किया करते थे।

जेतवन से ३/४ मील उत्तर-पश्चिम में एक बड़ा बाग़ था जो पाँच सौ अन्धों के अपनी लकड़ी गाड़ देने से बन गया था। श्रावस्ती के महाराज प्रसेनजित ने ५०० डाकुओं को अन्धा करवा दिया था। भगवान बुद्ध को उनकी दशा पर दया आई और उनकी आँखें अच्छी कर दीं। उन सबों ने अपनी-अपनी लकड़ी, जिसे टेक कर चलते थे, गाड़ दीं। उनमें से कलियाँ फूट आँईं और एक सुन्दर बाग़ लग गया। जेतवन के भिक्षु इस बाग़ में जाकर ध्यान लगाया करते थे।

बौद्ध धर्म के इतिहास में भगवान बुद्ध की माता और पत्नी को छोड़ कर, सबसे प्रतिष्ठित देवी, विशाखा हुई हैं। यह भगवान बुद्ध की परम भक्त और स्त्रियों के सङ्घ की नेत्री थीं। इन्होंने भगवान बुद्ध के लिए श्रावस्ती में पूर्वाराम विहार बनवाया था। देवी विशाखा साकेत (अयोध्या) के एक धनी व्यापारी की पुत्री थीं और श्रावस्ती के परमधनी व्यापरी पूर्णवर्द्धन को व्याही गई थीं। देवी विशाखा का सारा जीवन धर्म कर्म में बीता और जब उन्होंने सत्कर्म में लगाने को अपने व्याह का जोड़ा बेचना चाहा तो, कहा गया है कि, सारी श्रावस्ती में उसका मूल्य देनेवाला कोई नहीं मिला।

एक समय भगवान बुद्ध अपने शिष्य आनन्द के साथ घूम कर जेतवन को लौट रहे थे। एक माली ने उन्हें देखकर, मार्ग में श्रद्धा पूर्वक एक आम अर्पण किया, उन दिनों आम की फ़सल नहीं थी। आनन्द ने भगवान के लिए वहीं आसन लगा दिया और आम काट कर प्रार्थना की कि उसे खा लें। भगवान ने वैसा ही किया और आनन्द को गुठली गाड़ देने की आज्ञा दी। गुठली को गाड़ते ही वहाँ एक अति सुन्दर और बहुत भारी आम का वृक्ष निकल आया। भगवान बुद्ध ने एक बार एक चमत्कार दिखाने का वचन दिया था और इससे उन्होंने यह चमत्कार दिखा दिया।

भगवान बुद्ध के लगभग ५०० साल पश्चात् सुविख्यात बौद्धाचार्य मनोरथ और सनातन धर्म के आचार्यों में श्रावस्ती में शास्त्रार्थ हुआ जिसमें मनोरथ असफल रहे। महाराज विक्रमादित्य (उज्जैन के महाराज जिनके नाम से सम्वत चलता है वह नहीं, श्रावस्ती में भी एक महाराज विक्रमादित्य

हुए हैं) ने १०० बौद्ध आचार्यों और १०० सनातन धर्म के आचार्यों को शास्त्रार्थ के लिए एकत्रित किया था और कह दिया था कि जिस धर्म के आचार्य जीतेंगे उसी धर्म को वह ग्रहण कर लेंगे। बौद्धों के हारने पर महाराज विक्रमादित्य ने सनातन धर्म को अपनाया। आचार्य मनोरथ ने अपनी जिह्वा को दातों से काट डाला और प्राण दे दिए।

आचार्य मनोरथ विभाषा शास्त्र के रचयिता थे। उनके शिष्य महात्मा वसुबन्धु ने दूसरे राजा, विक्रमादित्य के पुत्र परादित्य, के काल में सनातन धर्म के आचार्यों को शास्त्रार्थ में हरा दिया।

[जैन धर्म के तृतीय तीर्थङ्कर श्री **सम्भवनाथ स्वामी** का श्रावस्ती में जन्म हुआ था और यहीं उन्होंने दीक्षा ली थी तथा कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया था। इनकी माता सुनैना देवी और पिता जितार थे। श्री सम्भवनाथ जी का चिन्ह घोड़ा है और पार्श्वनाथ में इन्होंने निर्वाण की प्राप्ति की थी।]

जेतवन में रात दिन दीपक जलते थे और ध्वजा पताकाएँ चारों ओर फहराती रहती थीं। एक दिन एक चूहे ने जलती हुई बत्ती खींच ली उससे पताकाओं में आग लग गई और फिर सारे विहार में फैल गई। सब जल कर स्वाहा हो गया। राजकुमार जेत के बनवाए हुए सात-सात खण्ड के द्वार भी गिर कर ढेर हो गए और जेतवन उजाड़ हो गया।

एक समय में भारतवर्ष के प्रधान नगरों में होने के कारण बिगड़ कर भी श्रावस्ती कुछ काल तक अपनी प्रतिष्ठा बनाए रहा। जब सैयद सालार मसूद कुछ मुसल्मानी सेना लेकर बहराइच तक पहुँच गए थे तो श्रावस्ती ही के राजा सुहिलदेव ने उनको यहाँ मारा था। अब उन्हीं सैयद सालार मसूद गाज़ी की दर्गाह पर हज़ारों हिन्दू जाकर हरसाल चढ़ावा चढ़ाने लगे हैं !!

व० द०—सहेट महेट बलरामपुर राज्य में बलरामपुर से १० मील पश्चिम खण्डहरों का ढेर है। यह खण्डहर दो भाग में है। एक भाग में जिसे 'महेट' कहते हैं राजाओं के प्राचीन राज भवनों के खण्डहर हैं और दूसरे भाग में जिसे 'सहेट' कहते हैं भगवान बुद्ध की स्मृति के चिन्ह हैं।

जेतवन विहार सहेट का उत्तरी भाग है; इसमें बहुत सी इमारतों के चिन्ह निकले हैं जिनमें सङ्घाराम, गन्धकुटी और कोसाम्बकुटी के भी खण्डहर हैं।

सङ्घाराम के खण्डहर बिल्कुल उत्तर में हैं, वे ऊँचे और फैले हुए हैं। इसके सीधे दक्षिण में करीब १० गज़ पर गन्धकुटी और उसके सीधे दक्षिण में २० गज पर कोसम्ब कुटी है। कोसम्ब कुटी के कुछ दूर पर दक्षिण में एक स्तूप के चिन्ह हैं। खोदने पर इसके नीचे की दीवारें सब तरफ़ से बन्द मिली हैं। यहाँ एक पीपल का वृक्ष है जिसे कहा जाता है कि बुद्ध गया से लाकर लगाया गया था। इस वृक्ष के पश्चिम में और दक्षिण में कई इमारतों के चिन्ह जगह जगह पर खोदे गए हैं।

जेतवन के खण्डहर को गाँव वाले 'जोगिनी बरिया' कहते थे और इन खण्डहरों में डर के मारे सूर्य डूबने के बाद नहीं जाते थे। वहाँ के लोग बताते हैं कि इन खण्डहरों में साँप बिच्छू नहीं मिलते। अब यह स्थान इतना वीरान नहीं रह गया है। जङ्गल झाड़ी काट दी गई है और बराबर लोगों के आने जाने के कारण बीहड़पन भी नहीं है। नहीं तो सन् १८६२ ई० में पहिले पहिल जब आर्कियालाजेकल मुहकमे ने इस स्थान को साफ़ किया था तब हाथी पर चढ़ कर भी निकलना और खण्डहरों के टीलों का दिखाई पड़ना कठिन था

जेतवन सङ्घाराम के पश्चिमोत्तर में जो कुआँ और स्तूप थे जहाँ मुद्गल पुत्र, सारि पुत्र की कमर नहीं खोल सके थे, वह स्थान अब मौजा हुसेन जोत में (जेतवन के पश्चिमोत्तर कोने से २५० गज़ के भीतर) है। ८०' साल हुए वहाँ पर 'पीर बराना' का मक़बरा बना था। अब वह भी नहीं है। इसी के पास महाराज अशोक का स्तूप था, जहाँ भगवान बुद्ध और सारिपुत्र व्यायाम किया करते थे। अब इस स्तूप के चिन्ह नहीं हैं। जान पड़ता है कि इसकी ईंटें पीरबराना के मक़बरे में लग गईं। पर ग्राम के दक्षिण में दूर पर एक ऊँचा खेड़ा है जिस पर वृक्ष लगे हैं वह इन्हीं पुरानी जगहों का चिन्ह है।

जहाँ ५०० अन्धों ने अच्छे होने पर अपनी लकड़ी गाड़ दी थी, जो पीछे हरे वृक्ष हो गईं, वह स्थान अब मौजा राजगढ़ गुलरिया है जो एक बहुत बड़े बाग़ के बीच में बसा है। अब यह बाग़ बहुत कुछ कट गया है।

देवी विशाखा का पूर्वाराम, जेतवन से मील भर दक्षिण-पूर्व में था। 'ओरा झाड' का टीला जो सहेट से मील भर पर अकोना-बलरामपुर की सड़क पर है, उसी का खण्डहर है। उसके पास जो ८ फ़ीट ऊँचा एक और टीला है वह पूर्वाराम का स्तूप था। उसका घेरा अब भी ४० गज़ है

इसी के पास वह स्थान था जहाँ राजा विरूद्धक जब शाक्यों पर चढ़ाई करने जारहे थे तो सेना सहित ठहर कर भगवान बुद्ध से मिले थे और भगवान बुद्ध पर श्रद्धा-भक्ति होने के कारण शाक्यों पर चढ़ाई करने से रुक गए थे। (कुछ समय पश्चात विरुद्धक ने फिर चढ़ाई कर डाली थी।)

जिस स्थान पर ५०० शाक्य कुमारियों का विरुद्धक ने उसके सवास में जाने से इन्कार करने पर वध किया था, वह स्थान भी 'ओराझाड़' के समीप है, पर उसके स्तूप के चिन्ह अब नहीं मिलते। इसी स्तूप के पास वह ताल था जहाँ विरुद्धक नाव पर भस्म होकर मरा था। यह ताल 'ओरा झाड़' के दक्षिण में पड़ता है।

जहाँ भगवान बुद्ध ने माली के दिए हुए आम को खाकर गुठली गड़वाई थी, जिससे तुरन्त एक सुन्दर वृक्ष निकल आया था, वह स्थान मौजा 'चकर भंडार' में है, जो जेतवन के पूर्व में थोड़ी दूर पर है। ८५ साल हुए जनरल सर अलेक्ज़ान्डर कनिङ्घम ने कहा है कि, "इस गाँव में एम बड़ा सुन्दर आम का वृक्ष है। सम्भव है कि वह उसी वृक्ष की नसल में से हो।"

सुदत्त और अङ्गुलिमाल के स्तूपों के चिन्ह 'महेट' में बुदराप्ती के सामने के भाग में हैं। छोटा वाला टीला जो २५ फीट ऊँचा है सुदत्त के स्तूप के स्थान पर है और ३५ फीट ऊँचा वाला टीला अङ्गुलिमाल के स्तूप के स्थान पर है।

'महेट, में सबसे ऊँचे पर एक टूटा मन्दिर खड़ा है जिसे 'सोवनाथ' कहते हैं। इसे जैनी लोग बहुत पवित्र समझते हैं और यह सम्भव नाथ स्वामी की स्मृति का स्थान है।

सङ्घाराम से ७० गज दक्षिण पूर्व में एक ताल ४० गज लम्बा और २० गज चौड़ा है जिसे 'भुलनवा' कहते हैं। यही ब्राह्मण की लड़की चंचा भूमि में समा गई थी। अब इस ताल में एक भिक्षु के खेत हैं। इससे १५० गज उत्तर में 'परसहवाताल' है, जहाँ कुकाली को जमीन निगल गई थी। इसमें भी उन्हीं भिक्षु के खेत हैं। 'परसहवाताल' से पूर्वोत्तर में मौजा चकर भण्डार के दक्षिण में 'हगियाताल' है जहाँ देवदत्त जमीन में समा गए थे।

यह पता नहीं चलता कि श्रावस्ती का नाम सहेट-महेट कैसे पड़ा। पाली में सावत्थी (श्रावस्ती) को सेवेत भी कहते थे। उससे विगड़ कर 'सहेट' हो सकता है। उसके पीछे बोलचाल में 'महेट' लग गया जैसे 'उल्टा पुल्टा'। सम्भव है कि इसी तरह 'सहेट-महेट' नाम पड़ा हो

बलरामपुर से सहेट महेट आने को पक्का रास्ता बना है। यह स्थान बहराइच बलरामपुर सड़क पर है। ब्रह्मा देश की दो देवियां, मामा दी और मामा जी ने लेखक (रामगोपाल मिश्र) के पास सहेट महेट में बौद्ध धर्मशाला बनवाने के लिए रुपए भेजे थे। उससे यहाँ धर्मशाला बन गई है और यात्री लोग आराम पाते हैं। लेखक ने बौद्धों को बलरामपुर में भी धर्मशाला के लिए बलरामपुर के धर्मात्मा और प्रजा पालक महाराज सर भगवती प्रसाद सिंह जी से जमीन दिलवाई थी जिस पर सुन्दर बौद्ध धर्मशाला वहाँ भी बन गई है। लेखक के पिता, महाराजा बहादुर सर भगवतीप्रसाद सिंह जी के प्रधान मंत्री थे और लेखक स्वयम् भी महाराजा के बचपन के साथी थे, इससे इनके कहने पर महाराजा ने बिला मुआविजे केभूमि प्रदान कर दी थी।

अब सहेट महेट में एक बौद्ध भिक्षु भी बस गए हैं और एक बड़ा मकान बना लिया है। इसी के पास एक चीनी भिक्षु ने भी स्थान बनाया है और अब एक जैन महाशय जैनी धर्मशाला बनाने का प्रबन्ध कर रहे हैं। एक विद्यालय स्थापित करने का भी प्रयत्न हो रहा है

६६६ साँची—(भोपाल राज्य में एक कस्बा)

भोपाल राज्य का प्राचीन नाम दक्षिण गिरि था, जिसकी साँची राजधानी थी।

साँची के समीप सधारा के एक स्तूप से भगवान बुद्ध के सुप्रसिद्ध शिष्य सारिपुत्र और महा मोगाल्लान की हड्डियाँ निकली हैं।

सारिपुत्र का देहान्त भगवान बुद्ध की वर्तमानता में हो गया था और मोगल्लान का, बुद्ध के महापरे निर्वाण के पीछे हुआ था। इन दोनों महापुरुषों की हड्डियों को अंग्रेज साँची से निकालकर लन्दन ले गये थे पर यह विभूति फिर यहाँ लौट कर आगई है।

साँची से ५ मील दूर भिलसा है और भिलसा कस्बे से ६-७ मील पर बेतवा नदी के किनारे भद्दिलपुर है जहाँ श्री शीतलनाथ (दसवें तीर्थंकर) के गर्भ, जन्म और दीक्षा तथा कैवल्य ज्ञान कल्याणक हुए थे। यहाँ के लोग उस स्थान को भी भिलसा कहते हैं, पर जैनी लोग उसको उसके पुराने नाम भद्दिलपुर से पुकारते हैं। उसका और भी प्राचीन नाम भद्रिकापुरी था।

कुछ लोगों का विचार है कि भद्दिया जो बिहार प्रान्त के हजारी बाग जिले में है, वह प्राचीन भद्दिलपुर व भद्रिकापुरी है, और वह कि यहाँ शीतल नाथ स्वामी के चार कल्याणक (गर्भ जन्म, दीक्षा व कैवल्यज्ञान) हुए थे,

पर यह बात प्रमाणित नहीं है और न वहाँ की यात्रा होती है। कुछ जैन मूर्त्तियाँ वहाँ पाई जाती हैं और ज्ञात होता है कि इसी कारण व नाम मिलने जुलने के कारण तथा हजारीबाग में बहुत से जैन तीर्थ स्थान होने के कारण उस स्थान को भद्दिलपुर व भद्रिकापुरी समझा गया।

कुछ अन्य जैनियों का विचार है कि भद्दिलपुर उज्जैन से आठ मील पर है।

[श्री सीतलनाथ स्वामी के पिता का नाम दृढरथ और माता का नाम नन्दा था। आपका चिन्ह कल्पवृक्ष है और पार्श्वनाथ में आपने निर्वाण प्राप्त किया था। आप के गर्भ, जन्म, दीक्षा और कैवल्य ज्ञान कल्याणक भद्दिलपुर में हुए थे।]

हिन्दुस्तान में सबसे उत्तम बौद्ध स्तूपों के कुण्ड भिलसा के आस पास और साँची में हैं। भिलसा के बौद्ध स्तूपों की संख्या का अनुमान ६५ है, और ये १७ मील लम्बाई और १० मील चौड़ाई में फैले हुए हैं।

६७० साईं खेड़ा—(देखिए नासिक)

६७१ सारनाथ—(संयुक्त प्रान्त में बनारस जिले में एक स्थान)

सारनाथ से एक मील पर सिंहपुरी में श्री श्रेयांसनाथ जी (ग्यारहवें तीर्थङ्कर) के गर्भ, जन्म और दीक्षा तथा कैवल्य ज्ञान कल्याणक हुए थे।

सारनाथ में प्रथम भगवान बुद्ध ने धर्म चक्र चलाया था अर्थात् बुद्ध होकर पहिला उपदेश दिया था।

कहते हैं कि एक पूर्व जन्म में भगवान बुद्ध ने मृग रूप में यहाँ रमण किया था।

भगवान बुद्ध के पीछे सारनाथ, बुद्ध काशी के नाम से प्रसिद्ध था। इसका पुराना नाम सारङ्गनाथ भी था।

[श्री श्रेयांसनाथ के पिता विमल और माता विमला थीं। आप का चिन्ह गेंडा है। पार्श्वनाथ पर्वत पर आपने निर्वाण प्राप्त किया था।]

ह्वानचांग के समय में एक २०० फीट ऊँचे मन्दिर में यहाँ भगवान बुद्ध की एक ताँबे की मूर्त्ति धर्म चक्र चलाती हुई उपस्थित थी और ३० बौद्ध धर्मशाले थे, जिनमें प्रत्येक में सौ-सौ भिक्षु रहते थे। जिस स्थान पर भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया था वहाँ सम्राट अशोक का बनवाया हुआ बड़ा स्तूप खड़ा था।

सारनाथ बनारस से ७ मील उत्तर में है। सम्राट अशोक वाला स्तूप 'धामक' नाम से अभी विद्यमान है। यहीं बुद्ध भगवान ने पश्चिम की ओर मुँह करके धर्म का उपदेश आरम्भ किया था। सम्भव है कि धर्म चक्र से बिगड़ कर नाम 'धामक' हो गया हो। अब इस स्तूप की मरम्मत हो गई है और महाबोधी सोसाइटी ने एक अति उत्तम विहार 'महागन्ध कुटी विहार' के नाम से सारनाथ में बनवाया है जिसके भीतर दीवारों पर भगवान बुद्ध के जीवन के चरित चित्रों में बने हैं। चित्रकार को जापान के मिकैडो (सम्राट) ने अपनी ओर से भेजा था।

श्री घनश्यामदास बिड़ला ने हाल में एक अति सुन्दर धर्मशाला यहाँ बनवा दी है। जैनियों का एक मन्दिर भी यहाँ बना हुआ है। सारनाथ अब रमणीय स्थान बन गया है।

पूर्व जन्म में सारङ्ग (मृग) के रूप में भगवान बुद्ध के यहाँ रहने के कारण सारङ्गनाथ उसका नाम पड़ा था जो अब सारनाथ हो गया है।

सिंहपुरी जो श्री श्रेयांसनाथ स्वामी का स्थान है, वह 'धामक' स्तूप से एक मील पर है।

६७२ सालकूट—(देखिए सम्मेद शिखर)

६७३ सालग्राम—(नैपाल में हिमालय की सप्तगण्डकी पर्वत श्रेणी में एक स्थान)

यहाँ भरत और ऋषि पुलह ने तपस्या की थी।

मार्कण्डेय ऋषि का यहाँ जन्म हुआ था।

सालग्राम वा शालग्राम के समीप से गण्डक नदी निकलती है और इसी कारण उसे शालग्रामी भी कहते हैं। शालग्राम तिब्बत की दक्षिण सीमा पर है। जड़ भरत का आश्रम यहाँ काकवेणी नदी पर और ऋषि पुलह का रेड़ी ग्राम में था।

मार्कण्डेय तीर्थ—पद्मपुराण के अनुसार मार्कण्डेय ऋषि ने सरयू और गङ्गा के संगम पर तपस्या की थी, और महाभारत के अनुसार गोमती और गङ्गा के सङ्गम पर उन्होंने तपस्या की थी, तथा आदि ब्रह्म पुराण के अनुसार जगन्नाथपुरी में तप किया था।

सर्व साधारण में यह माना जाता है कि उन्होंने मद्रास के तञ्जोर ज़िले में तिरूकदायुर में तपस्या करके शिवजी से अमर (यम के पाश से मुक्त)

होने का वरदान पाया था, परन्तु जहाँ तक सही प्रतीत होता है यह स्थान जहां उन्होंने यम को पाश से मुक्ति पाई थी मध्यप्रान्त का मार्कण्ड है।

६७४ सालस्यटी—(बम्बई प्रान्त में बम्बई के समीप एक टापू)

सालस्यटी का प्राचीन नाम शष्ठी है।

चौथी शताब्दी ईस्वी के आरम्भ में यहां भगवान बुद्ध का एक दाँत रखा था।

६७५ सालार—(देखिए असरूर)

६७६ सिंगरौर—(संयुक्त प्रान्त के इलाहाबाद ज़िले में एक स्थान)

इस स्थान का पुराना नाम शृङ्गीवीरपुर वा शृङ्गवेर था। यह शृङ्गी ऋषि का स्थान है।

भीलराज गुह,जिन्होंने वन जाते समय श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जी का गङ्गा जी के तट पर स्वागत किया था, उनकी सिंगरौर ही राजधानी थी।

यहाँ श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और जानकी ने भूमि पर रात्रि विताई थी और पीछे गंगा जी को पार किया था।

भरत भी श्रीरामचन्द्र जी को लौटालने के लिए चित्रकूट जाते समय यहाँ ठहरे थे और गुह ने उनको राम का विरोधी समझ उनसे लड़ने का विचार किया था।

सिंगरौर गंगा जी के उत्तरीय किनारे पर इलाहाबाद से २३ मील पश्चिमोत्तर में है। शृङ्गी ऋषि का मन्दिर एक अकेले टीले पर गंगा के तट पर बना है। इस स्थान को रामचौरा भी कहते हैं।

विहार प्रान्त के मुङ्गेर ज़िला में, मुंगेर से २० मील दक्षिण पश्चिम एक स्थान शृंगी ऋषि है, जहाँ पहाड़ी पर शृंगी ऋषि का मन्दिर है और उसके आस पास और भी टूटे-फूटे मन्दिर हैं। इस स्थान तक कठिनाई से पहुँचना होता है। शृंगी ऋषि का यहाँ भी निवास था।

सिंगरौर में दो सौ वर्ष पूर्व तपोनिधि एक अच्छे कवि थे जिन्होंने 'सुधानिधि' ग्रन्थ लिखा है।

६७७ सिंहथल—(बीकानेर राज्य में एक स्थान)

यहाँ श्रीराम स्नेही सम्प्रदाय के आद्याचार्य श्री हरि रामदास का जन्म हुआ था।

[बीकानेर से ६ कोस पूर्व सिंहथल नामक ग्राम है। यहाँ श्री रामानन्दीय श्री वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत रामसनेही नाम की शाखा अथवा गद्दी

प्रसिद्ध सीताजी के पिता ही हुए हैं। यह शिवजी के बड़े भक्त थे। शिवजी ने अपना माहेश्वर धनुष इन्हें धरोहर के रूप में दिया था। वह इनके यहाँ धरा था और उसकी पूजा होती थी। एक बार सीता जी ने एक हाथ से उस प्रलयंकारी विशाल धनुष को उठा लिया। उसी समय महाराज ने प्रतिज्ञा कर ली कि जो उस विशाल धनुष को उठा सकेगा उसी से सीताजी का विवाह होगा।

जनकपुर मिथिला देश की राजधानी थी। प्राचीन मिथिला राज्य आज कल के चम्पारन और दरभङ्गा ज़िलों की जगह पर था। जनकपुर में जिसे मिथिलापुरी भी कहते हैं श्री मल्लिनाथ (१६ वें तीर्थंकर) और श्री नमिनाथ (२१ वें तीर्थंकर) ने जन्म धारण किया था और दीक्षा ली थी। यहीं इनके गर्भ व कैवल्य ज्ञान कल्याणक भी हुए थे।

[श्री **मल्लिनाथ** की माता का नाम अदिभूति और पिता का नाम प्रजापति था। इनका चिन्ह कुंभ (घड़ा) है। श्री **नमिनाथ** की माता का नाम विपुला और पिता का नाम विश्वरथ था। इनका चिन्ह नीला कमल है। इन दोनों तीर्थंकरों के गर्भ - जन्म - दीक्षा और कैवल्य ज्ञान कल्याणक मिथिलापुरी में हुए थे। और निर्वाण पार्श्वनाथ में हुआ था।]

मैथिल-कोकिल विद्यापति कवि शिवसिंह राजा के दर्बार में मिथिला में थे।

मिथिला विद्यालय की ख्याति १४ वीं शताब्दी के बाद से हुई थी।

महर्षि याज्ञवल्क मिथिलापुरी में निवास करते थे।

शुकदेव जी मिथिलापुरी में पधारे थे।

[महर्षि याज्ञवल्क अपने समय के परम प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानी थे। एक समय महाराज जनक ने श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी की परीक्षा के निमित्त एक सभा की और एक सहस्र सवत्सा सुवर्ण की गाएँ बना कर खड़ी कर दीं। सबसे कह दिया कि जो ब्रह्मज्ञानी हों वे इन्हें सजीव बनाकर ले जाँय। सबकी इच्छा हुई, किंतु आत्मश्लाघा के भय से कोई उठा नहीं। तब याज्ञवल्क्य जी ने अपने एक शिष्य से कहा—"बेटा ! इन गौओं को अपने यहाँ हाँक ले चलो"। इतना सुनते ही सब ऋषि याज्ञवल्क्य जी से शास्त्रार्थ करने लगे। महर्षि याज्ञ-वल्क्य जी ने सब के प्रश्नों का यथाविधि उत्तर दिया। ब्रह्मवादिनी गार्गी से भी उनका शास्त्रार्थ हुआ और अन्त में सबने संतुष्ट होकर उन्हें ही सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी माना।]

च० द०—सीतामढ़ी कस्बे से एक मील पश्चिम में पुनउड़ा बस्ती के निकट पक्का सरोवर है। लोग कहते हैं कि इसी स्थान पर अयोनिजा सीता जी उत्पन्न हुई थीं।

सीतामढ़ी के दक्षिण-पूर्व कोने पर १६ मील दूर जनकपुर रोड रेल्वे स्टेशन है। इस स्टेशन से २४ मील पूर्वोत्तर नैपाल राज्य में जनकपुर नाम की एक बहुत बड़ी बस्ती है। यह स्थान मिथिला नरेश महाराज जनक की राजधानी था। एक विशाल मन्दिर में महाराज रामचन्द्र जी और उनके भाइयों की मूर्तियाँ हैं।

जनकपुर से १४ मील दूर जङ्गल में धनुषा बस्ती के निकट एक सरोवर के पास पत्थर का एक बड़ा धनुष पड़ा है। यह सीता स्वयंवर के धनुषयज्ञ का स्थान समझा जाता है। जनकपुर से लगभग ६ मील दक्षिण-पूर्व विश्वामित्र का मन्दिर है।

६८६ सीही—(दिल्ली के समीप एक गाँव)

यहाँ महात्मा सूरदास जी ने जन्म लिया था।

[श्री सूरदास जी का जन्म एक सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ लगभग सं० १५४० वि० में हुआ था। आठ साल की अवस्था में यह अपने माता पिता को छोड़ मथुरा-जी में रहने लगे और अन्त तक ब्रज मण्डल ही में रहे। आप श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। हिन्दी साहित्य में आप सर्व श्रेष्ठ कवि हुए हैं और कवियों में सूर्य्य कहलाते हैं। जीवन पर्यंत सूरदास जी कृष्णानन्द में मग्न रहे। आपका निवास स्थान विशेषतया गऊ घाट पर था। सम्वत् १६२० वि० के लगभग पारासोली ग्राम में इन भक्त शिरोमणि ने शरीर छोड़ा।]

६८७ सुदामापुरी—(देखिए पोरबन्दर)

६८८ सुप्रभकूट—(देखिए सम्मेद शिखर)

६८९ सुमनकूट—(देखिए लङ्का)

६९० सुरोवनम—(देखिए आनागन्दी)

६९१ सुल्तानपुर—(कपूरथला राज्य में एक स्थान)

यहाँ बौद्धों का तामसवन नामक विहार था। इस स्थान का दूसरा प्राचीन नाम रघुनाथपुर है।

चतुर्थ बुद्ध सभा ७८ ई० में सम्राट कनिष्क के द्वारा यहीं आयोजित की गई थी, जिसका सभापतित्व वसुमित्र ने किया था।

यहाँ कालीवेई नदी के तलेटी में दो दिन तक गुरु नानक साहब बैठे रहे थे।

गुरु नानक स्नान करने को कालीवेई नदी में गये और उसी में दो दिन तक रह गये। चारों ओर खोज होती रही, तीसरे दिन आप नदी में से निकले। उस स्थान पर 'सन्त घाट' गुरुद्वारा है जिसमें कपूरथला राज्य की ओर से राग भोग का प्रबन्ध और जागीर है।

ह्वाँग चाँग लिखते हैं कि चतुर्थ बुद्ध सभा कश्मीर में राजधानी के समीप कराडलवन संघाराम में हुई थी, पर फ़ाहियान जो ह्वाँग चाँग से पहले आये थे उसका यहाँ तामस वन में होना बताते हैं।

६९२ सुल्तानपुर—(संयुक्त प्रांत में एक ज़िला का सदर स्थान)

इसके प्राचीन नाम कुशस्थली व कुशावती हैं। इसकी नींव श्रीरामचन्द्र जी के पुत्र कुश ने डाली थी और अयोध्या से हटाकर इसे कुछ काल तक अपनी राजधानी बनाया था।

सुलतानपुर गोमती नदी पर बसा है और अयोध्या से ४० मील है।

६९३ सुरतवरकूट—(देखिए सम्मेद शिखर)

६९४ सुहागपुर—(देखिए विराट)

६९५ सूरत—(बम्बई प्रांत में एक ज़िला का सदर स्थान)

सूरत का प्राचीन नाम सूर्यपुर है। कुछ लोगों का मत है कि सूरत ही सौराष्ट्र था।

श्री शङ्कराचार्य ने वेदान्त पर अपना सुप्रसिद्ध भाष्य यहीं लिखा था।

छत्रपति महाराज शिवाजी ने अंग्रेजों की फैक्ट्री को यहाँ लूटा था।

६९६ सेंदप्पा—(मध्य भारत की रियासत बिजावर में एक गाँव)

द्रोणगिरि पर्वत इसी स्थान पर है।

यहाँ से श्री गुरुदत्तादि जैन मुनिवर मोक्ष को पधारे थे।

सेंदप्पा और द्रोणगिरि में अनेक जैन मन्दिर हैं। अकेले द्रोणगिरि पर २४ मन्दिर हैं।

६९७ सेमर खेड़ी—(मध्य भारत के ग्वालियर राज्य में एक नगर)

तारनपंथी सम्प्रदाय के स्थापन कर्ता तारन स्वामी थे, इन्होंने कई नीच जातियों को भी अपने पंथ में मिलाया। उन्होंने मूर्ति पूजन निषेध का उपदेश दिया था। तारन पंथी शास्त्र का पूजन करते हैं।

च० द०—सीतामढ़ी कस्बे से एक मील पश्चिम में पुनउड़ा बस्ती के निकट पक्का सरोवर है। लोग कहते हैं कि इसी स्थान पर अयोनिजा सीता जी उत्पन्न हुई थीं।

सीतामढ़ी के दक्षिण-पूर्व कोने पर १६ मील दूर जनकपुर रोड रेल्वे स्टेशन है। इस स्टेशन से २४ मील पूर्वोत्तर नैपाल राज्य में जनकपुर नाम की एक बहुत बड़ी बस्ती है। यह स्थान मिथिला नरेश महाराज जनक की राजधानी था। एक विशाल मन्दिर में महाराज रामचन्द्र जी और उनके भाइयों की मूर्तियाँ हैं।

जनकपुर से १४ मील दूर जङ्गल में धनुषा बस्ती के निकट एक सरोवर के पास पत्थर का एक बड़ा धनुष पड़ा है। यह सीता स्वयंवर के धनुषयज्ञ का स्थान समझा जाता है। जनकपुर से लगभग ६ मील दक्षिण-पूर्व विश्वामित्र का मन्दिर है।

६८६ सीही—(दिल्ली के समीप एक गाँव)
यहाँ महात्मा सूरदास जी ने जन्म लिया था।

[श्री सूरदास जी का जन्म एक सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ लगभग सं० १५४० वि० में हुआ था। आठ साल की अवस्था में यह अपने माता पिता को छोड़ मथुरा जी में रहने लगे और अन्त तक ब्रज मण्डल ही में रहे। आप श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। हिन्दी साहित्य में आप सर्व श्रेष्ठ कवि हुए हैं और कवियों में सूर्य कहलाते हैं। जीवन पर्यंत सूरदास जी कृष्णानन्द में मग्न रहे। आपका निवास स्थान विशेषतया गऊ घाट पर था। सम्वत् १६२० वि० के लगभग पारासोली ग्राम में इन भक्त शिरोमणि ने शरीर छोड़ा।]

६८७ सुदामापुरी—(देखिए पोरबन्दर)
६८८ सुप्रभकूट—(देखिए सम्मेद शिखर)
६८९ सुमनकूट—(देखिए लङ्का)
६९० सुरोवनम—(देखिए आनागन्दी)
६९१ सुल्तानपुर—(कपूरथला राज्य में एक स्थान)
यहाँ बौद्धों का तामसवन नामक विहार था। इस स्थान का दूसरा प्राचीन नाम रघुनाथपुर है।

चतुर्थ बुद्ध सभा ७८ ई० में सम्राट कनिष्ट के द्वारा यहीं आयोजित की गई थी, जिसका सभापतित्व वसुमित्र ने किया था।

यहाँ कालीवेई नदी के तलेटी में दो दिन तक गुरु नानक साहब बैठे रहे थे।

गुरु नानक स्नान करने को कालीवेई नदी में गये और उसी में दो दिन तक रह गये। चारों ओर खोज होती रही, तीसरे दिन आप नदी में से निकले। उस स्थान पर 'सन्त घाट' गुरुद्वारा है जिसमें कपूरथला राज्य की ओर से राग भोग का प्रबन्ध और जागीर है।

ह्वाँग चाँग लिखते हैं कि चतुर्थ बुद्ध सभा कश्मीर में राजधानी के समीप कराडलवन संघाराम में हुई थी, पर फ़ाहियान जो ह्वाँग चाँग से पहले आये थे उसका यहाँ तामस वन में होना बताते हैं।

६९२ सुल्तानपुर—(संयुक्त प्रांत में एक ज़िला का सदर स्थान)

इसके प्राचीन नाम कुशस्थली व कुशावती हैं। इसकी नींव श्रीरामचन्द्र जी के पुत्र कुश ने डाली थी और अयोध्या से हटाकर इसे कुछ काल तक अपनी राजधानी बनाया था।

सुलतानपुर गोमती नदी पर बसा है और अयोध्या से ४० मील है।

६९३ सुस्तवरकूट—(देखिए सम्मेद शिखर)

६९४ सुहागपुर—(देखिए विराट)

६९५ सूरत—(बम्बई प्रांत में एक ज़िला का सदर स्थान)

सूरत का प्राचीन नाम सूर्यपुर है। कुछ लोगों का मत है कि सूरत ही सौराष्ट्र था।

श्री शङ्कराचार्य ने वेदान्त पर अपना सुप्रसिद्ध भाष्य यहीं लिखा था।

छत्रपति महाराज शिवाजी ने अंग्रेजों की फैक्ट्री को यहाँ लूटा था।

६९६ सेंदप्पा—(मध्य भारत की रियासत बिजावर में एक गाँव)

द्रोणगिरि पर्वत इसी स्थान पर है।

यहाँ से श्री गुरुदत्तादि जैन मुनिवर मोक्ष को पधारे थे।

सेंदप्पा और द्रोणगिरि में अनेक जैन मन्दिर हैं। अकेले द्रोणगिरि पर २४ मन्दिर हैं।

६९७ सेमर खेड़ी—(मध्य भारत के ग्वालियर राज्य में एक नगर)

तारनपंथी सम्प्रदाय के स्थापन कर्ता तारन स्वामी थे, इन्होंने कई नीच जातियों को भी अपने पंथ में मिलाया। उन्होंने मूर्ति पूजन निषेध का उपदेश दिया था। तारन पंथी शास्त्र का पूजन करते हैं।

यहाँ का सोमनाथ लिंग, शिवजी के १२ ज्योतिलिंङ्गों में से है।

कथा है कि चन्द्रमा यहाँ तप करके क्षयी रोग से मुक्त हुए थे और इससे यहाँ का नाम सोम तीर्थ हुआ था।

जगद्गुरु रेणुकाचार्य्य ने यहाँ शरीर छोड़ा था।

प्रा० कृ० (महाभारत, वन पर्व, २२ वां अध्याय) प्रभास तीर्थ में भगवान् अग्नि आप ही निवास करते हैं। जो मनुष्य वहाँ स्नान करके तीन दिन वास करता है वह अग्निष्टोम यज्ञ का फल पाता है।

(शान्ति पर्व ३४२ वां अध्याय तथा शाल्य पर्व ३५ वां अध्याय) चन्द्रमा प्रभास क्षेत्र में जाकर राजयक्ष्मा रोग से छूट कर फिर तेज को प्राप्त हुए। क्योंकि इस क्षेत्र में चन्द्रमा की प्रभा बढ़ी इसलिए लोग इसको प्रभास कहते हैं।

(मुशल पर्व, १४ वाँ अध्याय) युधिष्ठिर के राज्य मिलने पर ३६ वें वर्ष में कृष्ण वंशियों में बहुत ही दुर्नीति उपस्थित हुई। वे लोग एरका में लगे हुए मूशलकण के द्वारा परस्पर की मार से विनष्ट होगए।

एक समय ऋषियों को द्वारिका में आया हुआ देखकर कुछ यदुवंशियों ने श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब को गर्भवती स्त्री के वेष में बनाया और ऋषियों से पूछा कि यह स्त्री क्या प्रसव करेगी ? महर्षि वृन्द ने रुष्ट होकर कहा कि जो यह प्रसव करेगी उसी से यदुवंशियों का नाश होगा। दूसरे दिन साम्ब ने एक मूसल प्रसव किया। ऋषि के श्राप से बचने के लिए उस मूसल का महीन चूर्ण करके समुद्र में फेंक दिया गया। कुछ काल पर्यन्त यादवों को द्वारिकापुरी में कुछ अपशकुन दीख पड़ने लगे और वे उस नगर को छोड़ प्रभास में जाबसे। कुछ दिन के पीछे उन लोगों में आपस में कलह उत्पन्न होगई। इसी बीच में मूशल के चूर्ण ने जो द्वारिकापुरी में समुद्र में बहा दिया गया था, प्रभास में पहुँचकर मूशल तृण का एक जंगल उत्पन्न कर दिया। जहाँ यह कलह उत्पन्न हुई वहाँ यह जंगल उपस्थित था। उसी से लड़ लड़ कर यदुवंशियों ने एक दूसरों को नाश कर डाला। माधव ने अर्जुन को बुलाने के लिए एक दूत हस्तिनापुर भेजा। श्रीकृष्ण वनवासी होकर अपना शेष समय बिताने को चल दिए। उन्होंने वन में जाकर देखा कि बलराम योग युक्त बैठे हैं और उनके मुख से एक श्वेतवर्ण महानाग बाहर होता है देखते-देखते वह समुद्र में प्रवेश कर गया। श्रीकृष्ण घूमते-घूमते महायोग अवलम्बन करके सोगए। उस

समय जरा नामक व्याध ने उन्हें मृग जानकर बाण से विद्ध किया। जब उसने निकट जाकर पीताम्बरधारी चतुर्भुज रूप को देखा तब अपने को अपराधी समझकर उनके चरणों को जा पकड़ा। माधव उसे आश्वासित कर अपने धाम को चले गए। अर्जुन को बुलाने जो दूत गया वह उन्हें लेकर द्वारिकापुरी पहुंचा। अर्जुन के द्वारिकापुरी पहुँचने के दूसरे दिन श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव परमगति को प्राप्त हुए। देवकी, भद्रा, मदिरा और रोहिनी उन के साथ सती हो गईं। यदुवंश में पुरुषों के न रहने से स्त्रियों ने तर्पण का काम किया। अर्जुन द्वारिका से प्रभास में गए और वहाँ प्रधानता के अनुसार सब मृतकों का अन्त्येष्टि कार्य किया और बलराम तथा कृष्ण के शरीर को विधि पूर्वक दाह किया। सातवें दिन प्रेत कार्य समाप्त करके अर्जुन ने हस्तिनापुर को प्रस्थान किया। द्वारिका से सब स्त्रियों और बालकों को लेकर कूच कर दिया। एक दिन सब लोगों ने पचनद के समीप निवास किया। वहाँ अमीरों ने आकर बहुत सी स्त्रियों का हरण कर लिया। अर्जुन के बाण निष्फल हुए। अर्जुन ने यादवों की बची हुई स्त्रियों को स्थान-स्थान पर कुरुक्षेत्र में बास करवाया, कुछ को सरस्वती नदी के तीर पर बसा दिया और कुछ को इन्द्र प्रस्थ ले आए। पाँच लाख यदुवंशी वीर परस्पर लड़ कर प्रभास में मारे गए थे।

विष्णु पुराण के पाँचवें अंश ३७ वें अध्याय में लिखा है कि अष्टावक्र मुनि ने इन स्त्रियों को शाप दिया था कि तुम चोरों के हाथ में पड़ोगी।

भविष्य पुराण और मत्स्य पुराण के ६६ वें अध्याय में लिखा है कि साम्ब का मनोहर रूप देख कृष्ण की १६ हजार स्त्रियाँ कामातुर हो गईं। तब कृष्ण ने शाप दिया था कि तुमको पतिलोक और स्वर्ग नहीं मिलेगा, तुम लोग चोरों के बस पड़ोगी। और साम्ब को शाप दिया था कि तू कुष्ठी होगा। (१६ हजार स्त्रियों की कथा के लिए गोहाटी, और साम्ब के कुष्ठ रोग से मुक्त होने की कथा के लिए मथुरा व कनारक देखिए)

प्रभास के लड़ाई की कथा विष्णु पुराण, श्री मद्भागवत और लिङ्ग पुराण में भी लिखा है।

(लिङ्ग पुराण,—६५ वां अध्याय) दक्ष प्रजापति ने अपनी २७ पुत्रियों का विवाह चन्द्रमा से कर दिया परन्तु चन्द्रमा रोहिणी नामक पत्नी से अधिक स्नेह करने लगे। दक्ष की अन्य कन्याओं ने इसकी शिकायत की और दक्ष ने चन्द्रमा से कहा। जब उन्होंने फिर भी नमाना तब दक्ष ने शाप दिया कि

तू क्षयी रोग से पीड़ित हो जा। उसी समय चन्द्रमा क्षय रोग से युक्त हो गए। जब इससे जगत में हा-हाकार मचा और देवता लोग ब्रह्मा जी के पास गए तब उन्होंने कहा कि चन्द्रमा प्रभास क्षेत्र में शिव जी की आराधना करें। चन्द्रमा ने ६ मास तक मृत्युञ्जय के मंत्र से शिव जी का पूजन किया। शिव जी ने प्रसन्न होकर उनसे वर माँगने को कहा। चन्द्रमा ने अपना रोग दूर करने की प्रार्थना की और अच्छे हो गये। देवताओं और ऋषियों ने शिव जी से उसी स्थान पर स्थिर होने की प्रार्थना की और शिव जी वहाँ स्थित होकर सोमेश्वर अर्थात् सोमनाथ नाम से जगत में प्रसिद्ध हुए।

देवताओं और ऋषियों का खोदा हुआ गढ़ा 'चन्द्रकुण्ड' नाम से विख्यात हुआ।

(वामन पुराण, ३४ वां अध्याय) सोमतीर्थ में, जहाँ चन्द्रमा व्याधि से मुक्त हुए थे, स्नान करके सोमेश्वर अर्थात् सोमनाथ के दर्शन करने से राजसूय यज्ञ का फल मिलता है। वहाँ से भूतेश्वर और भालेश्वर की पूजा करने से मनुष्य फिर जन्म नहीं लेता।

(८४ वां अध्याय) प्रह्लाद ने प्रभास तीर्थ में जाकर सरस्वती और समुद्र के संगम में स्नान करके शिव का दर्शन किया।

(गरुड़ पुराण—पूर्वार्द्ध, ८१ वां अध्याय) प्रभास क्षेत्र एक उत्तम स्थान है, जिसमें सोमनाथ महादेव निवास करते हैं।

(कूर्म पुराण—उपरिभाग, ३४ वां अध्याय) तीर्थों में उत्तम प्रभास तीर्थ है। जिसको सिद्धाश्रम भी कहते हैं।

(शिव पुराण—ज्ञान संहिता, ३८ वां अध्याय) शिव जी के १२ ज्योतिर्लिङ्ग हैं, उनमें सौराष्ट्र देश में सोमनाथ है।

व० द०—सोमनाथ पट्टन को देवपट्टन, प्रभास पट्टन और पट्टन सोमनाथ भी कहते हैं। इसके दक्षिण के समुद्र का नाम अग्निकुण्ड है। कसबे के पूर्व के ३ नदियों के संगम को प्राची त्रिवेणी कहते हैं। वहाँ पूर्वोत्तर से हिरण्या नदी, पूर्व से सरस्वती नदी और दक्षिण-पूर्व में कपिला नदी आई हैं। कहा जाता है कि इसी संगम के पास श्री कृष्ण की दाह क्रिया की गई थी। हिरण्य नदी के दाहिने किनारे पर एक पतला वट वृक्ष है। उस जगह पर एक बड़ा वट वृक्ष था, जिसको मुसलमानों ने कई बार काट दिया था। उसी से यह वट फिर निकला है। वहाँ के लोग कहते हैं कि बलराम जी इसी स्थान से परमधाम को गए हैं। उस स्थान से आगे जाने पर हिरण्य नदी

के तीर पर यादव स्थल नामक स्थान मिलता है । वहाँ नदी के तीर पर लम्बे पत्ते वाली एक प्रकार की घास, जिसके पत्ते पत्तलों से अधिक चौड़े होते हैं, जमी हुई है । लोग कहते हैं कि इसी का नाम महाभारत तथा पुराणों में एरका लिखा है, जिसके पत्ते यदुवंशियों के नाश के समय अमोघ शस्त्र हो गए थे ।

सोमनाथ पट्टन कस्बे के मध्य भाग में सोमनाथ का नया मन्दिर है जिस को इन्दौर की महारानी अहल्या बाई ने बनवाया था । कस्बे के पश्चिम समुद्र के तीर पर सोमनाथ का पुराना मन्दिर है जिसको सन् १०२४ ई० में महमूद गजनवी ने लूटा था। वह मन्दिर अब भी मुसलमानों के अधिकार में हीन दशा में विद्यमान था पर अब उसका उद्धार होने जा रहा है । इस उजड़ी हालत में भी मन्दिर की बनावट देखने योग्य है । यह हाते से घिरा हुआ था, पर अब केवल मन्दिर, जो काले पत्थर का है, खड़ा है । इसमें बड़े आकार का सोमनाथ शिव लिङ्ग था ।

सोमनाथ पट्टन से लगभग एक मील पश्चिमोत्तर समुद्र के तीर पर बाण तीर्थ है । वहाँ के लोग कहते हैं कि जरा नामक व्याध ने इसी स्थान से श्रीकृष्ण को बाण मारा था । बाण तीर्थ से १॥ मील उत्तर भाल तीर्थ है । वहाँ भाल कुण्ड नामक एक पक्का तालाब है । उसके पास पद्मकुण्ड नामक छोटा सरोवर और एक पीपल के वृक्ष के पास भालेश्वर शिवलिंग है । वहाँ के पण्डे बताते हैं कि इसी स्थान पर कृष्ण जी को जरा का बाण लगा था । उन्होंने पद्मकुण्ड के जल में अपने रूधिर को धोया था और इसी स्थान से वे परमधाम को गए । क्योंकि इस स्थान पर कृष्ण भगवान को भाल अर्थात बाण का अग्रभाग लगा था इससे यह स्थान भाल तीर्थ कहलाया ।

१७ वीं सदी के अन्त तक सोमनाथ के मन्दिर में पूजा होती थी परन्तु पीछे औरंगजेब ने मन्दिर को बिल्कुल बर्बाद कर दिया । जब मुगलों का राज्य निर्बल हुआ, तब पोर बन्दर के राणा ने इस मन्दिर पर अपना अधिकार कर लिया परन्तु बाद को जूनागढ़ के नवाब ने उसको जीत लिया और तब से वह उनके राज्य में रहा । अब यह राज्य स्वतन्त्र भारत में सम्मिलित हो गया है और श्री सोमनाथ का मन्दिर फिर से बनने जा रहा है ।

७०३ सोरय्या—(देखिए शाहदेरी)

७०४ सोराब—(मैसूर राज्य में एक स्थान)

इस स्थान का प्राचीन नाम सुरभि या सुरभिपट्टन था ।

सोराब में यमदग्नि ऋषि ने निवास किया था ।

७५ सोरों—(संयुक्त प्रान्त के एटा जिले में एक स्थान)

सोरों का प्राचीन नाम ऊखल क्षेत्र है। यह नौ ऊखलों में से एक है जहाँ से प्रलय में जल निकलकर कुल पृथिवी को डुबा देगा।

सोरों में गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म हुआ था और बाल्यकाल व युवावस्था बीती थी। यहीं उनकी धर्मपत्नी रत्नावली ने शरीर छोड़ा था।

प्रा० क०—सोरों एक प्राचीन और पवित्र क्षेत्र है; कुछ लोगों का विचार है कि यहाँ वराह अवतार हुआ था, पर यह बात पुराणों से प्रमाणित नहीं होती। (देखिए वाराह क्षेत्र)

[गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म सम्वत् १५८३ वि० अथवा सम्वत् १५८६ वि० में सोरों के 'योग मार्ग' मुहल्ले में हुआ था। 'शिवसिंह सरोज' में सम्वत् १५८३ मानी गई है और रानी कंवल कुंवर देव जी ने भी यही सम्वत् लिखी है। किन्तु ग्रियर्सन साहब आदि तुलसी चरितान्वेषी विद्वान सम्वत् १५८६ मानते हैं। ठीक पता नहीं चलता। गोस्वामी जी के पूर्वज सोरों से डेढ़ दो मील पूर्व रामपुर के निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे, पर इनके पिता आत्माराम शुक्ल व माता हुलसी रामपुर छोड़कर सोरों में आबसे थे और वहीं गोस्वामी जी का जन्म हुआ था। जब ये बहुत छोटे थे उसी समय माता और पिता दोनों ही इन्हें छोड़कर स्वर्ग सिधारे, और बड़े कष्ट झेल कर किसी प्रकार दादी ने इनका पालन पोषण किया था।

बचपन में तुलसीदास का नाम 'राम बोला' था और वे लिखते हैं :—

राम को गुलाम, नाम रामबोला राख्यो राम।
राम बोला नाम, हों गुलाम राम साहि को॥

आचार्य नृसिंह जी से सोरों में इन्होंने विद्या प्राप्त की और गुरू जी से राम की कथा बड़ी लग्न से सुना करते थे।

सोरों से पश्चिम, गंगा जी के तट पर उस पार बदरिया ग्राम के दीनबन्धु पाठक व दयावती की पुत्री रत्नावली से इनका विवाह हुआ। चार साल पश्चात् द्विरागमन और कुछ समय के अनन्तर एक पुत्र रत्न प्रसव हुआ जिसका नाम तारापति रक्खा गया किन्तु थोड़े ही समय में उसका देहान्त हो गया।

सम्वत् १६२४ वि० के श्रावण मास में रत्नावली पति की आज्ञा से अपने पिता के घर भाई के रक्षा बाँधने गई थीं। तुलसीदास जी पौराणिक वृत्ति में निपुण हो चुके थे और किसी गाँव में कथा सुनाने चले गए। ग्यारह दिन पश्चात् लौटने पर सुनसान घर का उचाटपन वे न देख सके और रात्रि में चढ़ी गंगा को पार करके बदरिया पहुँच गए।

अवसर पाकर रत्नावली ने पति की सेवा करते हुए उनके प्रेम को सराहा और कहा कि जगदीश्वर के प्रेम में मनुष्य संसार सागर को भी पार कर लेता है। यह बात तुलसीदास जी के जी पर ऐसी लगी कि बुद्धि का विकास हो गया। नारी प्रेम भगवत प्रेम में बदल गया। रत्नावली उन्हें निद्रित जान अपने शयनागार को चली गई पर उसी रात तुलसीदास जी किसी समय वैरागी होकर चल दिए। प्रातःकाल सर्वत्र खोज की गई पर कहीं पता न चला। उस दिन से फिर वे सोरों कभी लौट कर नहीं आए। रत्नावली कवियित्री थीं उन्होंने लिखा है :—

बरस बारहीं कर गह्यो, सोलह गवन कराय।
सत्ताइस लागत करी, नाथ 'रतन' असहाय॥
'दीनबन्धु' कर घर पली, दीनबन्धु की छांह।
तौउ भई हौं दीन अति, पति त्यागी मो बांह॥

तुलसीदास जी राजापुर, हाजीपुर आदि स्थानों में निवास करते हुए काशी पहुँचे और वहाँ विशेष कर रहे। जिस घाट पर वे काशी में रहते थे, वह उनके नाम से 'तुलसी घाट' कहलाता है। यहीं सम्वत् १६८० वि० की श्रावण शुक्ला सप्तमी को ६१ या ६७ साल की अवस्था में गोस्वामी जी का स्वर्गवास हुआ।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने सोरों से बाहर रहते हुए ख्याति कमानी आरम्भ की थी इससे जहाँ जहाँ वे रहे थे—जैसे राजापुर,हाजीपुर,हस्तिनापुर, तारी—लोग वहाँ वहाँ का ही उन्हें निवासी समझते हैं। किसी ने कान्यकुब्ज और किसी ने सरयूपारी उन्हें बना दिया है। किसी-किसी ने रत्नावली के आचरण पर भी दोषारोपण किया है। इस सारे अनिष्ट का कारण उनकी पूर्व जीवनी से लोगों का अपरचित होना है।

गोस्वामी जी के समकालीन गोकुलनाथ जी रचित प्रसिद्ध पुस्तक 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता' बताती है कि तुलसीदास जी नन्ददास जी के

बड़े भाई थे। नन्ददास जी गोकुलनाथ जी के शिष्य थे। इस वार्त्ता में यह भी लिखा है कि तुलसीदास जी नन्ददास जी से मिलने मथुरा आए थे। उस समय कहा जाता है कि गोवर्धननाथ की शोभा देखकर तुलसीदास ने कहा था :—

कहा कहों छवि आजु की भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवै, धनुष बाण लो हाथ॥

इस पर गोवर्धननाथ जी ने राम बन कर उन्हें दर्शन दिया था।

नन्ददास जी के पुत्र कृष्णदास जी थे। उन्होंने अपनी जीवनी में पद्य में लिखा है कि 'सोरों' के निकट रामपुर ग्राम में सुकुल उपाधिधारी सनाढ्य वंश में पं० सनातनदेव जी के पुत्र पं० परमानन्द जी हुए और उनके पुत्र सच्चिदानन्द हुए, एवं सच्चिदानन्द जी के पण्डित आत्माराम जी और पण्डित जीवाराम जी हुए। पण्डित आत्माराम जी के पुत्र गोस्वामी तुलसीदास जी हुए जिन्होंने रामचरित मानस रचा। पण्डित जीवाराम जी के प्रथम पुत्र महाकवि नन्ददास जी हुए जिन्होंने वल्लभ सम्प्रदाय ग्रहण करके 'रास पञ्चाध्यायी' की रचना की। कृष्ण भक्त महाकवि नन्ददास जी ने अपने ग्राम रामपुर का नाम श्याम पुर कर दिया।

एक साधारण बात कहने पर पति को खोदेने वाली रत्नावली को बड़ा दुःख था। उन्होंने प्रेम बढ़ाने को जो बात कही थी उसने उनके लिए सारा प्रेम ही नष्ट कर दिया इस पर उन्होंने कहा है :—

हाय सहज ही हों कही, लह्यो बोध हृदयेस।
हों रत्नावलि, जँचि गई पिय हिय काँच बिसेस॥
भल चाहति रत्नावली, विधिवस अनभल होय।
हों पिय प्रेम बढ़यो चह्यो, दियो मूल तें खोय॥

नन्ददास जी से मिलने पर जब गोस्वामी तुलसीदासजी ने रत्नावली के विरह का हाल सुना तब उन्होंने रत्नावली को उनके द्वारा संदेश भेजा कि यदि तुम रघुनाथ का स्मरण करती हो तो मैं तुम्हारे निकट ही हूँ। रत्नावली ने इस घटना को इस प्रकार कहा है:—

मोह दीनों संदेश पिय, अनुज 'नन्द' के हाथ।
'रतन' समुझ जनि पृथक मोह,जो सुमिरत रघुनाथ॥

चैत्र कृष्ण अमावस्या सम्वत् १६५१ वि० को देवी रत्नावली ने सोरों में नश्वर देह का त्याग किया।

व० द०—सोरों गंगा जी के तट पर बसा है और तीर्थ धाम होने के कारण यात्रियों की भीड़ रहती है। यहाँ अनेकों उत्तम घाट और विशाल मन्दिर हैं और बराह भगवान का मन्दिर प्रसिद्ध है।

जिस मकान में गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म हुआ था वह मकान मुहल्ला 'योग मार्ग' में है। गदर सन् १८५७ ई० के पहले यह स्थान नन्ददास जी के वंशधरों के पास था पर अब मुसल्मानों के पास है। पूर्व काल में नाज की मण्डी और अन्य आबादी इसी ओर थी, पर अब यह जगह वीरान सी हो रही है।

देवी रत्नावली परम पतिव्रता थीं और इस प्रताप से जिस रोगी को वे धूल दे देती थीं वह उसी से अच्छा हो जाता था। उनके स्वर्गवास हो जाने पर भी विश्वास रखने वाले रोगी इस घर की धूलि को शरीर में लगाते थे। अब भी लोग इस मकान की धूलि को कर्णमूल आदि रोगों में लेप करते हैं और प्रायः आरोग भी हो जाते हैं। गोस्वामी जी के सगे चचेरे भाई नन्ददास जी के पुत्र कृष्णदास जी के वंशधरों के दो घर अब भी इस मकान के पास हैं। भगीरथ जी के मन्दिर के चढ़ावे से इनकी जीविका चलती है और यह लोग गोस्वामी जी के वंशज कहलाते हैं।

सोरों में तुलसीदास जी के गुरू नृसिंह जी का मन्दिर और कूप आज भी प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इन्हीं के समीप गुरू नृसिंह की पाठशाला थी जहाँ गोस्वामी जी ने विद्या पढ़ी थी। गुरू नृसिंह जी की वन्दना में तुलसीदास जी ने कहा है :—

> बन्दौं गुरु पद कंज, कृपासिंधु 'नर रूप हरि'।
> महा मोह तम पुंज, जासु बचन रबि कर निकर॥

नन्ददास जी ने अपने व अपने पूर्वजों के निवास स्थान रामपुर का नाम ही श्यामपुर नहीं किया वरन वहाँ तालाब बनवाया था जिसका नाम भी उन्होंने कृष्णसागर रक्खा था। यह अब भी हीन दशा में विद्यमान है। उसके किनारे नन्ददास जी, बल्देव जी का मेला छठ को कराया करते थे, और यह अब भी भाद्रपद में बल्देव छठ को लगता है। यह ग्राम सोरों से डेढ़ मील पूर्व में है। बदरिया ग्राम गंगा जी के दूसरे तट पर सोरों से पश्चिम में मौजूद है। पिछली कितनी ही शताब्दी में भारतवर्ष में गोस्वामी तुलसीदास जी के समान महा पुरुष नहीं पैदा हुआ है। जितनी प्रतियाँ 'राम चरित मानस' की बिकी हैं उतनी संसार में किसी भी पुस्तक, बाइबिल

तक की नहीं बिकी है। इसी से इस ग्रंथ के महत्त्व का पता चलता है।

७०६ स्वम्भूकूट—(देखिए सम्मेद शिखर)

७०७ स्यालकोट—(पाकिस्तानी पंजाब में एक ज़िले का सदर स्थान) स्यालकोट का प्राचीन नाम शाकल था जिसका महाभारत में वर्णन है। यह मद्रदेश की राजधानी थी।

मद्रदेश व्यास नदी से लेकर झेलम नदी तक फैला हुआ था। पाण्डु की द्वितीय पत्नी माद्री जिनसे नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए यहीं की थीं। प्रसिद्ध है कि माद्री के भ्राता शल्य ने स्यालकोट बसाया था। बौद्ध ग्रन्थों में इस स्थान का नाम शागल है।

सम्राट मिलिन्द (१४०-११० बी० सी०) की यह राजधानी थी। उन दिनों इस देश का नाम यवन था। बौद्ध महात्मा नागसेन और सम्राट मिलिन्द से यहीं वह प्रसिद्ध वार्त्तालाप हुआ था जिसका बौद्ध ग्रन्थों में उल्लेख है।

प्रसिद्ध देवी सावित्री की, जिन्होंने सत्यवान से विवाह किया था, यही जन्मभूमि है।

गुरु नानक का यहाँ निवास स्थान था।

प्रा० क०—ह्वाँनचाँग ने यहाँ की यात्रा ६३३ ई० में की थी। उन दिनों यह स्थान उजाड़ हो चुका था पर उसका घेरा ३½ मील का था और उस समय भी एक मील के घेरे में इसकी आबादी थी।

जब सिकन्दर अपनी सेना गंगा जी की ओर ला रहा था उसको सूचना मिली कि साँगलवासी उससे युद्ध करेंगे। सिकन्दर पीछे लौट पड़ा और इस स्थान को जीत कर तब आगे बढ़ा।

सन् ६५ या ७० ई० में रसालू ने स्यालकोट को सुधारा। रसालू की राजधानी इसी स्थान पर थी। उनको शालिवाहन भी कहते थे। उनकी वीरता की सैकड़ों कहानियाँ पंजाब के हर विभाग में लोग कहते हैं। कहा जाता है कि स्यालकोट को शालिवाहन पुर कहते थे। यहाँ का कोट राजा शालिवाहन ने ही बनवाया था।

५१० ई० में मिहिरकुल ने इस स्थान को अपनी राजधानी बनाया था।

[सती सावित्री, प्रसिद्ध तत्वज्ञानी राजर्षि अश्वपति की एकमात्र कन्या थीं। अपने वर के खोज में जाते समय उन्होंने निर्वासित और वनवासी राजा द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान को पति रूप से स्वीकार कर लिया और दोनों का व्याह हो गया।

सत्यवान अग्निहोत्र के लिये जंगल में लकड़ियाँ काटने जाया करते थे। एक दिन वहाँ उन्हें यमराज ने दबा लिया। अपने पतिव्रत धर्म के प्रताप से सावित्री भी यम के साथ हो ली और न केवल सत्यवान को मृत्यु के फन्दे से छुड़ा लाई, वरन अपने अन्धे सास ससुर की आँखें, खोया हुआ राज पाट और अपने लिए सौ पुत्रों का वरदान भी ले आई। यह था भारतीय सतीत्व शक्ति का अमोघ सामर्थ्य।]

व० द०—गुरु नानक के निवास स्थान पर यहाँ प्रतिवर्ष एक प्रसिद्ध मेला होता है। 'दरबार बावली साहब' नामक एक ढका हुआ कूप यहाँ है जिसको गुरु नानक ने अपने एक क्षत्रिय शिष्य द्वारा बनवाया था।

७०८ स्वर्गारोहिणी—(देखिये गंगोत्री)

७०९ स्वर्ण भद्रकूट—(देखिये सम्मेद शिखर)

ह

७१० हत्या हरण—(देखिये नीमसार)

७११ हरद्वार—(संयुक्त प्रान्त के सहारनपुर ज़िले में प्रसिद्ध तीर्थ स्थान) हरद्वार के प्राचीन नाम गंगाद्वार, मायापुरी, मयूर और हरिद्वार हैं। यहाँ श्री गंगाजी पहाड़ से बाहर निकली हैं।

इस स्थान पर महर्षि भरद्वाज पधारे थे।

यहाँ घृताची अप्सरा को देखकर महर्षि भरद्वाज का वीर्यपात हुआ था जिससे द्रोण का जन्म हुआ।

अर्जुन ने उलूपी (नाग राजकन्या) के साथ यहाँ विहार किया था।

हरद्वार से एक मील दक्षिण-पश्चिम गंगाजी के दाहिने किनारे पर हरद्वार की पुरानी बस्ती मायापुरी है। मायापुरी, प्रसिद्ध सात पुरियों में से एक है।

हरद्वार से ३ मील दक्षिण गंगाजी के दाहिने किनारे पर कनखल क़स्बा है। कनखल भगवान सनत्कुमार का स्थान था।

दक्ष प्रजापति ने कनखल में यज्ञ किया था। उनके मुख से अपने पति महादेव की निन्दा सुन कर योगाग्नि से सती यहाँ भस्म होगईं थीं।

ऋषि दधीचि इस यज्ञ में यहाँ पधारे थे और शिव निन्दा सुनकर रुष्ट हो चले गए थे।

भगवान रुद्र ने यहाँ आकर इस यज्ञ को विध्वंस किया था। दक्ष का सिर काट कर अग्नि में डाल दिया गया था।

देवताओं को वीरभद्र से यहाँ पराजय हुई थी।

प्रह्लाद ने कनखल में भद्रकाली और वीर भद्र का पूजन किया था।

हरद्वार से ४ मील पर राहुमाद (रैला) में अष्टावक्र जी का आश्रम था।

प्रा० क०—(व्यास स्मृति, चौथा अध्याय) गङ्गाद्वार तीर्थ करने से सब पाप छूट जाते हैं।

(महा भारत, आदि पर्व, १३१ वां अध्याय) गङ्गाद्वार में गङ्गा किनारे घृताची अप्सरा को देखने पर महर्षि भरद्वाज का वीर्य गिर पड़ा, जिस से द्रोण का जन्म हुआ।

(२१५ वां अध्याय) अर्जुन एक दिन गङ्गाद्वार में स्नान कर रहे थे, उस समय पाताल की रहने वाली नाग राज पुत्री उलूपी उनको जल में खींच ले गई। अर्जुन ने नागपुत्री के घर में एक रात्रि रह कर उससे विहार किया जिससे पीछे एक पुत्र जन्मा।

(वन पर्व, ८४ वां अध्याय) गङ्गा द्वार के कोटि तीर्थ में स्नान करने से पुण्डरीक यज्ञ का फल होता है। आगे सप्त गङ्गा, त्रिगङ्गा और शक्रावर्त तीर्थों में जाकर विधिवत पितर और देवताओं का पूजन करने से उत्तम लोक मिलते हैं। वहाँ से चलकर कनखल में स्नान करे जहाँ तीन दिन रहने से पुरुष को अश्वमेध यज्ञ का फल और स्वर्ग लोक मिलता है।

(८५ वां अध्याय) गङ्गा में जहाँ स्नान करे वहाँ ही कुरुक्षेत्र के समान फल मिलता है परन्तु कनखल में स्नान करने से विशेष फल होता है।

(९० वां अध्याय) उत्तर दिशा में वेग से पहाड़ को तोड़ कर गङ्गा निकली हैं। उस स्थान का नाम गंगाद्वार है। उस देश में ब्रह्मर्षियों से सेवित सनत्कुमार का स्थान पवित्र कनखल तीर्थ है।

(१३५ वां अध्याय) सब ऋषियों के प्यारे कनखल तीर्थ में महा नदी गङ्गा बह रही है। पूर्व समय में भगवान सनत्कुमार वहां सिद्ध हुए थे।

(शल्यपर्व, ३८ वां अध्याय) दक्ष प्रजापति ने जब गंगाद्वार में यज्ञ किया था तब सुरेणु नामक सरस्वती वहाँ आई थीं जो शीघ्रता से बह रही हैं।

(लिङ्ग पुराण, ९९ वां १०० वां अध्याय) दक्ष प्रजापति अपने यज्ञ में शिव की निन्दा करने लगे; सती ने अपने पिता के मुख से शिव जी की निन्दा सुन कर योग मार्ग से अपना शरीर दग्ध कर दिया। हिमालय पर्वत मे हरद्वार के समीप कनखल तीर्थ में दक्ष का यज्ञ हो रहा था। वीर भद्र ने वहाँ जाकर समस्त देवताओं को परास्त कर दक्ष का शिर काट अग्नि में दग्ध कर दिया।

(यही कथा महा भारत शान्ति पर्व २८२-२८४ अध्याय और शिव पुराण दूसरा खण्ड २२-३६ अध्याय में बहुत विस्तार से दी गई है।)

(वामन पुराण, ८४ वां अध्याय) प्रह्लाद ने कनखल में जाकर भद्र काली और वीरभद्र का पूजन किया।

(शिव पुराण, ८ वां खंड १५ वां अध्याय) कनखल क्षेत्र में जहाँ शिव जी ने दक्ष का यज्ञ विध्वंस कराया, वे लिङ्ग रूप से स्थित हुए और दक्षेश्वरनाम से प्रसिद्ध हैं। उनके निकट सती कुंड है।

(वामन पुराण के चौथे अध्याय में, वाराह पुराण के २१ वें अध्याय में और पद्म पुराण के ५ वें अध्याय में सती के शरीर त्यागने की कथा भिन्न भिन्न कल्प की अनेक प्रकार से है।)

(महा भारत, अनुशासन पर्व, २५ वां अध्याय) गंगाद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नील पर्वत और कनखल इन पाँच तीर्थों में स्नान करने से मनुष्य पाप रहित होकर सुरलोक में गमन करता है।

(शिव पुराण, ८ वां खंड, १५वां अध्याय) बिल्वेश्वर लिङ्ग की पूजा से धर्म की वृद्धि होती है। बिल्व पर्वत के ऊपर भी बेल का वृक्ष है, उसके नीचे बिल्वेश्वर शिव लिङ्ग स्थापित है जिनके दर्शन से मनुष्य शिव समान हो जाता है।

दक्षेश्वर के निकट नील शैल के ऊपर नीलेश्वर शिव लिङ्ग है जिसके देखने से पाप दूर हो जाता है। उसी के निकट भीम चंडिका का स्थान है। उसके समीप उत्तम कुंड है जिस में स्नान करने से बड़ा आनन्द होता है।

(पद्म पुराण, सृष्टि खंड, ११ वां अध्याय) मायापुरी के निकट हरद्वार है।

(पद्म पुराण स्वर्ग खण्ड ३३ वां अध्याय, व मत्स्य पुराण १७५ वां अध्याय, व गरुड़-पुराण पूर्वार्द्ध २१ वां अध्याय) गङ्गा सब जगह तो सुलभ हैं परन्तु गंगाद्वार, प्रयाग और गंगा सागर इन तीन जगहों में दुर्लभ हैं।

पद्म पुराण, गरुड़ पुराण, मत्स्य पुराण, अग्नि पुराण, स्कन्द पुराण तथा कूर्म पुराण में हरद्वार, गंगाजी, माया पुरी व कनखल की महिमा का वर्णन है।

व० द०—हरद्वार में इस समय पाँच मुख्य तीर्थ हैं—

हरि की पैड़ी, कुशावर्त, बिल्वक, नील पर्वत और कनखल।

हरि की पैड़ी यहाँ का मुख्य स्नान घाट है और उत्तम पक्की सीढ़ियों का बना है। जूता पहिन कर घाट पर जाने की आज्ञा नहीं है और प्रति दिन घाट के धोए जाने का प्रबंध है।

हरि की पैड़ी से दक्षिण, गंगा का घाट पत्थर से बँधा हुआ है। इस स्थान को कुशावर्त कहते हैं। मेष की संक्रान्ती के दिन यहाँ पिण्ड दान के लिए बड़ी भीड़ रहती है।

हरि की पैड़ी से एक मील पश्चिमोत्तर पहाड़ी के नीचे विल्वक तीर्थ है। यहाँ एक चबूतरे पर नीम के वृक्ष के नीचे (जहाँ पहिले बेल का वृक्ष था) विल्वेश्वर शिव लिङ्ग है। दूसरी ओर पहाड़ी के नीचे गौरी कुण्ड नामक कूप है जिसका जल आचमन किया जाता है।

हरद्वार की हरि की पैड़ी से तीन मील दक्षिण गंगा जी के दाहिने अर्थात् पश्चिमी किनारे पर कनखल है। कनखल में बहुत से मन्दिर हैं जिन में दक्षेश्वर शिव का मन्दिर सब में प्रधान है। यह मन्दिर कस्बे के दक्षिण में है। यहाँ सती ने अपने शरीर को दाह दिया था और महादेव जी ने दक्ष के यज्ञ का नाश किया था। मन्दिर के पीछे सती कुण्ड है जहाँ सती का दाह होना बतलाया जाता है। कनखल में गंगा जी के तीर सती घाट के निकट, पूर्व समय की सतियों के अनेक स्थान हैं।

कनखल के सामने दक्षिण गंगा के बाँए किनारे नील पर्वत नामी एक पहाड़ी है जिसके नीचे गंगा जी की एक धारा को नील धारा कहते हैं। पहाड़ी के नीचे गौरी कुण्ड के पास एक छोटे मन्दिर में नीलेश्वर शिव लिङ्ग है।

नीलेश्वर से दो मील दूर चंडी पहाड़ी पर चंडी देवी का मन्दिर है।

हरद्वार से एक मील दक्षिण-पश्चिम गंगा के दाहिने, पवित्र सप्त पुरियों में से एक, और हरद्वार की पुरानी बस्ती, माया पुर है। अब यह बस्ती हीन दशा में है। यहाँ समय समय पर पुराने सिक्के अब तक मिला करते हैं।

हरद्वार में अनेकानेक उत्तम धर्म शालाएँ होने के कारण यात्रियों को ठहरने का कष्ट नहीं होता। पंजाब के यात्री जितने इस तीर्थ को आते हैं उतने और किसी तीर्थ को नहीं आते। प्रति दिन हरद्वार में मेला हो गा लगा रहता है और नगर उन्नति कर रहा है।

मेष की संक्रान्ती को प्रथम गंगा जी प्रकट हुई थीं इसलिए उस तिथि में प्रति वर्ष गंगा स्नान का बड़ा मेला होता है। प्रति अमावस्या को, विशेष

करके सोमवती अमावस्या और महा वारूणी आदि पर्वों में हरद्वार में गंगा स्नान की बड़ी भीड़ होती है। १२ वर्ष पर जब कुम्भ राशि के बृहस्पति होते हैं, तब हरद्वार में कुम्भयोग का बड़ा मेला होता है। यहाँ के मेले में लाखों आदमी सारे देश से आते हैं। ठीक समय पर स्नान करने के लिए बड़े बड़े झगड़े और लड़ाइयाँ होती हैं, और युद्ध हुए हैं। सन् १७६० ई० के स्नान के अन्तिम दिन सन्यासियों और वैरागियों में लड़ाई हुई थी जिसमें लगभग १८०० आदमी मारे गए थे। सन् १७९५ में सिक्ख यात्रियों ने ५०० सन्यासियों को मार डाला था। अब ऐसे अवसरों पर स्नान करने के लिए पृथक् पृथक् समाजों के लिए पृथक् पृथक् समय नियत कर दिया जाता है और सुप्रबन्ध हो जाने के कारण विकट समस्या उपस्थित नहीं होने पाती।

७१२ हरिपर्वत—(देखिए कश्मीर)

७१३ हरिहरक्षेत्र—(देखिए सानपुर)

७१४ हस्तिना पुर—संयुक्त प्रान्त के मेरठ ज़िले में एक स्थान)

दुष्यन्त के पुत्र भरत (जिनके नाम से भारतवर्ष है) के प्रपौत्र महाराज हस्ती ने हस्तिना पुर बसाया था।

यहाँ श्री शान्तिनाथ (१६ वें तीर्थङ्कर) श्री कुंथनाथ (१७ वें तीर्थङ्कर) और श्री अरहनाथ (१८ वें तीर्थङ्कर) के गर्भ, जन्म, दीक्षा और कैवल्य ज्ञान कल्याणक हुए थे। श्री मल्लिनाथ (१९ वें तीर्थङ्कर) का समोसरण यहाँ आया था।

इस नगर में श्री श्रेयांश राजा हुए थे जिन्होंने चतुर्थकाल में श्री ऋषभ देव आदि तीर्थङ्कर को आहार दान देकर सब से प्रथम आहार दान देने की प्रवृत्ति इसी नगर में चलाई।

हस्तिनापुर कौरवों और फिर पाण्डवों की सुविख्यात राजधानी थी।

श्रीकृष्ण आदि के कार्यक्षेत्र और महाभारत की बहुत सी कथाओं का विशेष स्थान यही है।

यहीं श्रीकृष्ण दूत बनकर दुर्योधन के पिता, धृतराष्ट्र, की सभा में आये थे, और यहीं पाण्डवों ने जुए में अपना सारा राजपाट खोया था, और द्रौपदी को बाज़ी लगा कर उन्हें भी हार गये थे।

श्री भीष्म पितामह का निवास स्थान यहीं था और अपने पिता शान्तनु की सत्यवती से विवाह करने की इच्छा पूरी कराने को, आजन्म स्वयम् विवाह न करने की और राज पाट न लेने की उन्होंने प्रतिज्ञा की थी।

द्रोणाचार्य, विदुर, आदि धृतराष्ट्र की सभा में यहाँ रहा करते थे।

प्रा० क०—(महाभारत, आदिपर्व, १५ वाँ अध्याय) पुरुवंश— पुरु से : वीं पीढ़ी में दुष्यन्त हुए।

भरत
|
भुमन्यु
|
सुहोत्र
|
हस्ती
|
विकुंठन
|
अजमीढ़
|
संवरण
|
कुरु
:
शान्तनु (कुरु से ७ वीं पीढ़ी में हुए)

भीष्म | विचित्रवीर्य | चित्राङ्गद

(व्यास से विचित्रवीर्य व चित्रांगद की विधवाओं तथा एक दासी से उत्पन्न हुए)

धृतराष्ट्र | पाण्डु | विदुर

धृतराष्ट्र — दुर्योधन आदि १०१ पुत्र

पाण्डु — युधिष्ठिर | भीम | अर्जुन | नकुल | सहदेव

अर्जुन
|
अभिमन्यु
|
परीक्षित
|
जन्मेजय
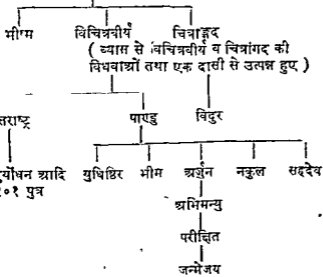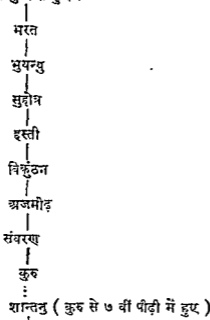
महाभारत और पुराणों में हस्तिनापुर का बहुत वर्णन आता है और सारा महाभारत का आधार यहीं से है। उस सारी कथा का यहाँ दुहराना निरर्थक है, सभी उससे परिचित है।

द्रौपदी व्याह लाने पर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को हस्तिनापुर का आधा राज्य देकर उनसे दूसरे स्थान पर राजधानी बना कर रहने को कहा था, और युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) बसा कर वहाँ राज्य करना आरम्भ किया पर कुरुक्षेत्र के महाभारत युद्ध में कौरवों को मारकर पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ छोड़ प्राचीन हस्तिनापुर को ही राजधानी कायम रक्खा। और श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्र को इन्द्रप्रस्थ प्रदान कर दिया।

जन्मेजय के पोते निचक्षु ने जलमग्न होने पर राजधानी को हस्तिनापुर से हटाकर कौशाम्बी में स्थापित किया था।

[श्री शान्तिनाथ (सोलहवें तीर्थङ्कर) की माता ऐरा और पिता विश्वसेन थे। इनका चिन्ह हिरण है।

श्रीकुंथनाथ (सत्रहवें तीर्थङ्कर) की माता श्रीमती और पिता सूरसेन थे इनका चिन्ह बकरा है।

श्री अरहनाथ (अठारहवें तीर्थङ्कर) की माता मित्रा और पिता सुदर्शन थे। इनका चिन्ह मच्छ है। इन तीनों तीर्थङ्करों के गर्भ, जन्म, दीक्षा कैवल्यज्ञान का स्थान हस्तिनापुर, और निर्वाण का स्थान पार्श्वनाथ है।]

व० द०—हस्तिनापुर मेरठ से २२-मील पूर्वोत्तर बूढ़ी गङ्गा के किनारे पर है। यहाँ जैनियों की दो विशाल धर्मशालाएँ हैं और श्री शान्तिनाथ, श्री कुंथनाथ, श्री अरहनाथ व श्री मल्लिनाथ तीर्थङ्करों के चार मन्दिर १,॥ और ३ कोस की दूरी पर बने हैं। कार्त्तिक सुदी ८ से १५ तक दिगम्बर जैनियों का यहाँ बहुत बड़ा मेला और १५ को रथोत्सव होता है।

बाकी सब प्रकार से यह स्थान ऊजड़ पड़ा है। बूढ़ी गंगा पर एक स्थान द्रौपदीघाट कहलाता है। कहा जाता है कि गढ़मुक्तेश्वर, जो मेरठ से २६ मील दक्षिण-पूर्व में है, एक समय हस्तिनापुर का एक मुहल्ला था। हस्तिनापुर से गढ़ मुक्तेश्वर तक टीलों के निशान चले गए हैं।

अब हस्तिनापुर के भले दिन आ रहे हैं। स्कूल, अस्पताल और अन्य इमारतें बन रही हैं। नगर बसाया जा रहा है क्योंकि गंगा खादर आबाद रहा है।

७१५ हाजीपुर—(बिहारप्रान्त के मुजफ्फरपुर ज़िले में एक बड़ा कस्बा) इस स्थान के पुराने नाम विशाला या विशालाक्षेत्र थे।

श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मण, सीता स्वयम्बर में मिथिला जाते समय यहाँ ठहरे थे।

हाजीपुर नगर के पश्चिम भाग में श्रीरामचन्द्र जी का सुन्दर मन्दिर है। कहा जाता है कि इसी स्थान पर वे और लक्ष्मण जी ठहरे थे।

७१६ हारितआश्रम—(देखिए यकलिङ्ग)

७१७ हिंडौन—(देखिए मुल्तान)

७१८ हिङ्गुलाज—(विलोचिस्तान के दक्षिण, करांची से पारस की खाड़ी तक जाते हुए मेकरान तट में एक स्थान)

यहाँ पुराण वर्णित दुर्गादेवी का एक महास्थान है।

(देवी भागवत, ७ वाँ स्कन्ध, ३८ वां अध्याय) हिंगुलाज में महा स्थान है।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्ण जन्म खण्ड, ७६ वां अध्याय) आश्विन शुक्ल पक्ष - को हिंगुलाज तीर्थ में श्री दुर्गाजी का दर्शन करने से फिर जन्म नहीं होता अर्थात् मोक्ष हो जाता है।

यात्रीगण करांची से १३ मकाम में हिंगुलाज पहुँचते हैं। भोजन का सामान करांची से ऊँटों पर ले जाना होता है। हिंगुलाज गुफा में देवी का स्थान है जहाँ दिन में भी दीप जलाया जाता है और एक या दो पुजारी रहते हैं।

७१९ हुगलापीक—(देखिए लङ्का)

७२० हुसेन जोत—(देखिए सहेट महेट)

७२१ हृषीकेश—(संयुक्तप्रान्त के देहरादून जिले में एक स्थान)

यहाँ रैभ्यमुनि ने तपस्या की थी।

इसके प्राचीन नाम कुब्जाम्रक और कुब्जागार भी हैं।

यहाँ भक्त प्रह्लाद पधारे थे।

भरत जी ने यहाँ तप किया था।

यहाँ से २ मील दूरी पर लक्ष्मण जी ने तपस्या की थी।

वराह पुराण वर्णित देवदत्त का यह आश्रम था।

प्रा० क०—(स्कन्द पुराण, केदार खण्ड दूसरा भाग, १६ वां अध्याय) विष्णु भगवान् ने १७ वें मन्वन्तर में मधु और कैटभ दोनों राक्षसों को मार कर उनके मेद से पृथिवी को बनाया। उसके उपरान्त वे पृथिवीतल के गौरवों

क्षेत्रों म भ्रमण करते हुए गङ्गा द्वार मे गए। वहाँ बड़े तेजस्वी रैभ्यमुनि बहुत काल से तप कर रहे थे। विष्णु भगवान् ने आम्र वृक्षों में प्राप्त होकर रैभ्य मुनि को दर्शन दिया। मुनि बोले कि हे भगवान्! यदि आप प्रसन्न हैं तो इस स्थल पर आप नित्य निवास करें। भगवान् ने कहा कि ऐसा ही होगा। कुब्ज रूप तुम ने आम्र वृक्ष में प्राप्त मुझको देखा, इस कारण से इस स्थान का कुब्जाम्रक नाम होगा। हृषीक अर्थात् इन्द्रियों को जीत कर तुमने मेरे दर्शन के लिए तप किया अथवा मैं जो हृषीकेश हूं यहाँ प्राप्त हुआ इस कारण से इस तीर्थ का नाम हृषीकेश भी होगा। त्रेता मे राजा दशरथ के पुत्र भरत, जो हमारे चतुर्थांश हैं हमको यहाँ स्थापित करेंगे। वहीं मूर्ति कलियुग मे भरत के नाम से प्रसिद्ध होगी जो प्राणी सतयुग में वराह रूप से, त्रेता म कार्तिक रूप से, द्वापर में वामन रूप से और कलयुग मे भरत रूप से स्थित मुझको यहाँ नमस्कार करेगा उसको निसन्देह मुक्ति मिलेगी।

(१७ वा अध्याय) सुन्दरी से लेकर हेमावती नदी तक कुब्जाम्रक क्षेत्र है।

(वराह पुराण, १२२ वाँ अध्याय) विष्णु भगवान् ने रैभ्यमुनि के निकट के आम्र वृक्ष पर बैठ कर उनको दर्शन दिया। भगवान् के भार से वह वृक्ष नम्र होकर कुबड़ा हो गया इस कारण उस तीर्थ का नाम कुब्जाम्रक करके प्रसिद्ध हो गया।

(वामन पुराण, ७६ वा अध्याय) प्रह्लादजी कुब्जाम्रक तीर्थ मे गए। वह उस पवित्र तीर्थ मे स्नान और हृषीकेश भगवान् का पूजन करके वहाँ से बद्रिकाश्रम चले गए।

(कूर्म पुराण, उपरिभाग, ३४ वा अध्याय) जिस समय भगवान् शङ्कर ने दक्ष प्रजापति का यज्ञ विध्वंश किया उसी समय चारों ओर से एक योजन विस्तार का वह क्षेत्र होगया और उसी समय से पुरुषोत्तम भगवान् वहाँ निवास करते हैं।

(नरसिंह पुराण, ६५ वा अध्याय) कुब्जागार म ही भगवान् का नाम हृषीकेश है।)

(स्कन्द पुराण, केदार खण्ड दूसरा भाग, ३१ वा अध्याय) कुब्जाम्रक तीर्थ के उत्तर ऋषि पर्वत के निकट गगा के पश्चिम तट पर मुनियों का तपोवन है। उस स्थान के नीचे के भाग की एक गुफा म शेष जी स्वयम् निवास करते हैं।

(२३ वां अध्याय) कुब्जाम्रक से डेढ़ कोस उत्तर गंगा के तट पर शिव जी विद्यमान हैं। श्री लक्ष्मण जी ने यहाँ जाकर १२ वर्ष निराहार शिव का तप किया और वे वहाँ अपने पूर्ण अंश से स्थित हो गए। उनके नाम भाग में लक्ष्मणेश्वर शिव (प्रतिमा रूप) विराजमान हैं।

(शिव पुराण, ८ वा खण्ड, १५ वां अध्याय) कुब्जाम्रक तीर्थ और पूर्ण तीर्थ के पास गंगा के बीच सोमेश्वर महादेव हैं। गंगा के पश्चिमीय तट पर तपोवन है। यहाँ लक्ष्मण जी ने बड़ा तप किया था और शिवजी की कृपा से पवित्र हो गए।

व० द०—भरत जी का शिखरदार मन्दिर हृषीकेश के मन्दिरों में प्रधान है। मन्दिर प्राचीन है। लोग कहते हैं कि भरत जी की मूर्ति को ईसा की नवीं शताब्दी में श्री शङ्कराचार्य ने स्थापित किया था।

हृषीकेश से १ मील उत्तर शत्रुघ्न जी का एक छोटा मन्दिर है और यहाँ से १ मील पर शिखरदार मन्दिर में दो हाथ ऊँची गौराङ्ग लक्ष्मण जी की मूर्ति है। एक गुम्बजदार मन्दिर में लक्ष्मणेश्वर महादेव और उनके चारों ओर दस दूसरे शिव लिङ्ग हैं।

हृषीकेश में कई धर्मशाले हैं। यह स्थान बड़ा रमणीय और शान्तिमय है। यहाँ से १२ मील पर हरद्वार है।

त्र

७२२ त्र्यम्बक—(बम्बई प्रान्त के नासिक ज़िले में एक क़स्बा)

महर्षि गौतम ने यहाँ बहुत काल तक तपस्या की थी।

इसका प्राचीन नाम गौतम क्षेत्र तथा ब्रह्मगिरि है।

चैतन्य महा प्रभु ने यहाँ की यात्रा की थी।

इस स्थान पर शिवजी के १२ ज्योतिर्लिङ्गों में से त्र्यम्बकेश्वर शिव लिङ्ग है।

प्रा० क०—(पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, ११ वां अध्याय) त्र्यम्बक तीर्थ में त्रिलोचन महादेव सदा निवास करते हैं।

(कूर्म पुराण ब्राह्मी संहिता, उत्तरार्द्ध, ३४ वां अध्याय) त्र्यम्बक तीर्थ में रुद्र की पूजा करने से ज्योतिष्टोम यज्ञ का फल मिलता है।

(सौर पुराण, ६६ वा अध्याय) गोदावरी नदी के निकास स्थान पर त्र्यम्बक नामक शिव लिंग है। उसके निकट ब्रह्मगिरि पर स्नान, जप, दान तथा ब्रह्म यज्ञ करने से सब का फल अक्षय होता है।

(वायु पुराण, ३० वां अध्याय) गौतम ऋषि ने दडक वन मे घोर तप करके ब्रह्मा जी से ऐसा वर माँग लिया कि हमारे यहाँ अन्न इत्यादि सब पदार्थ सर्वदा परिपूर्ण रहें।

(शिव पुराण, ५२ वा अध्याय) पूर्वकाल में महर्षि गौतम ने अपनी पत्नी अहल्या के साथ दक्षिण दिशा में ब्रह्मगिरि के पास दश सहस्र वर्ष तक तप किया था। पृथिवी मडल में गौतम का वन सब से श्रेष्ठ हुआ। बहुत से महर्षि अपने शिष्यों और स्त्री पुत्रों के सहित वहा आकर निवास करने लगे। उन्होंने वहाँ धान की खेती भी की।

च० द०—त्र्यम्बक कस्बे के आस पास द्वितीया के चन्द्रमा के आकार म १२०० फीट से १५०० फीट तक ऊँची पहाडियों की श्रेणियाँ हैं। त्र्यम्बक की पास की पहाडी से सुप्रसिद्ध गोदावरी नदी निकली है। यहाँ शिव के १२ ज्योतिर्लिङ्गों में से त्र्यम्बक शिव का सुन्दर मन्दिर बना हुआ है। त्र्यम्बक तथा नासिक में कुम्भ योग का बडा मेला होता है। इस मेले के समय भारतवर्ष के सब प्रान्तों से सब सम्प्रदाय वाले लाखों यात्री त्र्यम्बक म आकर स्नान करते हैं।

त्र्यम्बक बस्ती के पास कुशावर्त कुण्ड नामक एक चौकोना तालाब है। गोदावरी नदी का जल पर्वत के शिखर पर से उनके भीतर आता है और भूगर्भ में बहता हुआ उस स्थान से ६ माल दूर चक्रतीर्थ मे जाकर प्रकट होता है। कुशावर्त से पूर्व २२५ फीट लम्बे घेरे के भीतर लगभग ८० फीट ऊँचा त्र्यम्बकेश्वर शिव का शिखरदार मन्दिर है।

गौतम आश्रम—न्याय दर्शन के निर्माता गौतम ऋषि का मुख्याश्रम अहल्या कुण्ड तीर्थ में बिहार मे था, पर इनके आश्रम गोदना (जिला छपरा बिहार प्रान्त) मे रेवलगज के पास, अहरौली म (बिहार प्रान्त) बक्सर के पास, और त्र्यम्बक मे भी थे।

७०३ त्रिचिनापल्ली—(मद्रास प्रान्त म एक जिला का सदर स्थान) रावण के सेनापति त्रिशिरा का यह निवास स्थान था। इसके प्राचीन नाम त्रिशिरापल्ली और तृष्णापल्ली है।

पाँड्य और चोला राज्य की यह राजधानी थी। त्रिचिनापल्ली के मध्य में एक पहाड़ी है जिस पर मन्दिर बना है और चारों ओर पहाड़ी के नगर बसा है। यह पहाड़ी का मन्दिर (rock temple) प्रसिद्ध है।

७२४ त्रियुगी नारायण—(संयुक्त प्रान्त में हिमालय पर्वत पर टेहरी राज्य में एक स्थान)

इस स्थान पर शिवजी का विवाह पार्वती से हुआ था।
यहाँ ब्रह्मादिक देवताओं ने हरि का यज्ञ किया था।
इस स्थान का प्राचीन नाम नारायण क्षेत्र है।

त्रियुगी नारायण से लगभग २ मील की दूरी पर शाकम्भरी दुर्गा का स्थान है जहाँ भगवती ने एक हजार वर्ष तक तप किया था।

त्रियुगी नारायण से थोड़ी दूरी पर गौरी कुण्ड है जहाँ श्री गौरी जी ने ऋतु स्नान किया था।

इसी स्थान पर उनसे स्कन्द का जन्म हुआ था।

गौरी कुण्ड से लगभग ३ मील पर मुण्डकटा गणेश है जहाँ श्री महादेव ने गणेश जी का सिर काटा था।

प्रा० क० (महाभारत, अनुशासन पर्व, ८४ वा अध्याय) हिमालय पर्वत पर भगवान रुद्र के साथ रुद्राणी देवी का विवाह हुआ था।

(स्कन्द पुराण, केदार खण्ड, प्रथम भाग, ८३ वा अध्याय) केदार मण्डल में त्रिविक्रमा नदी के तट के ऊपर वेद शाल पर राज पर्वत पर नारायण क्षेत्र है। वहाँ ब्रह्मादिक देवताओं ने हरि का यज्ञ किया था। वहाँ सर्वदा अग्नि विद्यमान रहती है। उसी स्थान पर गौरी का महादेव से विवाह हुआ था। वहाँ पापी मनुष्य भी १० रात्र उपवास करके प्राण त्यागने पर वैकुण्ठ पाता है।

(महाभारत वनपर्व, ८४ वाँ अध्याय) शाकम्भरी देवी का स्थान तीनों लोकों में विख्यात है। हजार वर्ष तक भगवती ने शाक खाकर तप किया था। देवी की भक्ति से पूर्ण मुनीश्वर वहाँ आए। भगवती ने उनका शाक से उनका भी सत्कार किया। उसी दिन से देवी का नाम शाकम्भरी हुआ। शाकम्भरी देवी के स्थान में जाकर पवित्र और ब्रह्मचारी रहकर तीन दिन तक शाक खाकर रहना चाहिए।

परिशिष्ठ नम्बर १

महापुरुषों की सूची

अ

अगस्त्य—पुष्कर, अयोध्या, गया, गोकर्ण, नासिक, भविष्य बद्री, घुस मेश्वर, कोल्हापुर, रामेश्वर।

अग्नि—कश्मीर, गोकर्ण, बीदर, भविष्यबद्री, सोमनाथपट्टन, श्री नगर।

अङ्कुश—पावागढ़।

अङ्ग—जाजपुर।

अङ्गद—नागान।

अङ्गद—करतारपुर, खुदूरसाहेब, मत्ते की सराय।

अङ्गिरा—गोलगढ़।

अजातशत्रु—राजगृह, नाथ नगर।

अजितनाथ—अयोध्या, सम्मेद शिखर।

अदिगोर्नद—कशमार।

अदिति—अमिन।

अनङ्गभीमदेव—जगन्नाथ पुरी।

अनन्तनाथ—अयोध्या, सम्मेद शिखर।

अनन्ता—मथुरा।

अनसूया—चित्रकूट।

अनाथपिंडका—सहेट महेट।

अनिरुद्ध—रुमिया।

अनिरुद्ध—शोणितपुर।

अनुविन्द—उज्जैन।

अभिनन्दननाथ—सम्मेद शिखर।

अभिमन्यु—अमिन।

अभ्रदारिका—रसाड।

अमरदास—बासिर, गोयन्दवाल।

अमरसिंह—उज्जैन।

अम्बरीप—अम्बर, अयोध्या, बालाजी, मथुरा।

अरन्डेल—मद्रास।

अरहनाथ—हस्तिनापुर, सम्मेद शिखर।

अरुणऋषि—बीदर।

अर्जुन—इन्द्रप्रस्थ, कपिला, कुनिन्द, कुरुक्षेत्र, द्वारिका, दिव्यप्रयाग, मैसूर, रत्नपुर, राजगृह, विराट, सोमनाथ पट्टन, कटाछराज।

अर्जुन (गुरु)—गोइँदवाल, अमृतसर।

अल्काट—मद्रास।

अलवासुर—मथुरा।

अशीनर—नगरिया।

अशोक—असरूर, आगरा, उज्जैन, कन्नौज, रुमिया पादीपुर, सोमम, गुपुआर्डीह, गया, टइवामहन्त, पटना, सारनाथ, सुमारन, नगरा, महायान

ए

एकनाथ—पैठन।
एलाचार्य—पोनूर।

ऐ

ऐनीबेसेन्ट—बनारस, मद्रास।

क

कएव—गोलगढ, मन्दावर।
कनक मुनि—खुपुआडीह।
कनिष्क—पेशावर, सुल्तानपुर।
कपालस्फेट—रामेश्वर।
कपिल—सिद्धपुर, भुइलाडीह, गङ्गा सागर, कपिलधारा।
कबन्ध—अानागन्दा।
कबीर—बनारस, शुक्रतीथ, मगहर।
कमलावती—बसाढ़।
करुणावती—चित्तौड।
कर्ण—नाथनगर, कुतवार, कर्ण प्रयाग, कर्नाल, तुलसीपुर।
कर्दमऋषि—सिद्धपुर, राजिव।
कर्मदेवी—चित्तौड।
कर्माबाई—जगन्नाथ पुरी।
कल्कि (अवतार)—सम्भल।
कलिङ्ग—जाजपुर।
कश्यप—कश्मीर, गोलगढ, मुल्तान, राजगृह, शोणितपुर।
कश्यपबुद्ध—बाँसडीला, टँडवा महन्त।
कस्सपगोत्त—काटमाँडू।
कहामान—रामेश्वर।
काक भुशुण्ड—निलगिरि, ।
कात्यायन—पटना, रामम, उल्लाव, सुल्तानपुर।
कात्यायनी—विन्ध्याचल।
कामता प्रसादसिंह (सरकार साहेब)—मुरार
कामदेव—कारो, गोकर्ण, गोपश्वर।
कार्तवीर्य अर्जुन—मान्धाता।
कार्तिकेय—केदारनाथ।
कालनेमि—भविष्य बद्री।
काल भैरव—रामेश्वर, बनारस।
कालयवन—मुचकुन्द।
कालिदास—उज्जैन।
कालियानाग—मथुरा।
किनाराम अघोरी—बनारस।
किरातार्जुन—कोलर।
कुकाली—सहेट महेट।
कुण्ड—बनारस।
कुन्ति भोज—कुतवार।
कुन्ती—कुतवार, आरा, पाण्डुकश्वर।
कुन्थनाथ—हस्तिनापुर, सम्मेद शिखर।
कुबेर—कैलाशगिरि, मान्धाता, श्रीनगर।
कुमार मणि भट्ट (कवि)—मथुरा।
कुमारिल भट्ट—इलाहाबाद।
कुम्भकर्ण—गोकर्ण, चूलगिरि, लङ्का।
कुम्भा—चित्तौड़।
कुरु—कुरुक्षेत्र, हस्तिनापुर।
कुलभूषण—रामकुण्ड।

कुश—सुल्तानपुर, उज्जैन, नीमसार, बिठूर।
कुश (दैत्य)—द्वारिका।
कुशध्वज—सरिसा।
कुशाम्ब—कौसम।
कूर्मदास—पैठन।
कूर्मावतार—कुमायूं गढ़वाल।
कृष्ण (अवतार)—उज्जैन, कम्पिला, कामन, कुण्डनपुर, कुरुक्षेत्र, गोहाटी, जगन्नाथपुरी, द्वारिका, बक्सर घाट, बेटद्वारिका, मूलद्वारिका, गोमन्तगिरि, मथुरा, रतन पुर, राज-गृह, रामेश्वर, शोणित पुर, हस्तना पुर, सोमनाथ पट्टन, मुचकुन्द, गिरनार, गहमर, पुण्डर पुर।
कृष्णादास—कातवा।
कृष्ण मूर्ति—मदन पल्ली, मद्रास, बनारस।
कृष्णा कुमारी—चित्तौड़।
केदार—केदारनाथ।
केरल—मदुरा।
केशवचन्द्र सेन—कलकत्ता।
केशवदास (कवि)—ओड़छा।
केशी—मथुरा।
कैकेयी—अयोध्या।
कैटभ—कनौसी,।
कोरा—वराह क्षेत्र।
कोल—मदुरा।
कोलदैत्य—अलीगढ़।
कोलासुर—श्री नगर।
कौशल्या—अयोध्या।
कौशिकी—विन्ध्याचल।
कंस—मथुरा।
ककुचन्दबुद्ध—भुइलाडीह, नगरा।

ख

खर—नासिक।
खाण्डव—शिव प्रयाग।

ग

गजन (कवि)—बनारस।
गजासुर—बनारस।
गणेश—त्रियुगी नारायण, बनारस।
गय—गया।
गर्गऋषि—गगासो।
गरुड़—गोकर्ण, बालाजी।
गाधि—कन्नौज।
गान्धारी—कन्धार।
गान्धी (महात्मा)—पोर बन्दर, इन्द्रपाथ।
गालव मुनि—इलाहाबाद, गलता, रामेश्वर, चित्रकूट।
गुजरी देवी—पटना।
गुण प्रभा—मन्दावर।
गोरखनाथ—गोरखपुर, बनारस।
गुरुदत्त मुनि—सैदप्पा।
गुह—सिंगरौर।
गोवर्धनाचार्य—लखनौती।
गोविन्द प्रभु—काठमुरे।
गोविन्द साहब—कोटवा।
गोविन्दसिंह—पटना, अविचलनगर, अमृतसर, आनन्दपुर।
गौतमऋषि—अहल्या कुण्डतीर्थ,

नासिक, राजगृह, नयम्भर, गोदना।
गौतमस्वामी—गुणावाँ।
गौराङ्ग महाप्रभु—नदिया।
ग्वाल (कवि)—मथुरा।
ग्वालिया—ग्वालियर।

घ

घटखर्पर—उज्जैन।
घन आनन्द (कवि)—इन्द्रपाथ।
घाव—कन्नौज।
घुश्मा—घुसमेश्वर।
घृताची—हरद्वार।

च

चञ्चल कुमारी—चित्तौड।
चण्ड—चित्तौड।
चण्डक—महाथानडार।
चन्दीदास—नातवा।
चन्द्रकेतु—मुल्तान।
चन्द्रगुप्त—पटना, शुक्रतीर्थ।
चन्द्रप्रभु—चन्द्रपुरी, सम्मेद शिखर।
चन्द्रमणि—कसिया।
चन्द्रमा—नारायणसर, सोमनाथ पट्टन।
चन्द्रवर्मा—महियर वा मैहर।
चन्द्रसेन—उज्जैन।
चरणदास स्वामी—डेहरा, दिल्ली, मथुरा।
चाणक्य—शाहढेरी, पटना, शुक्र तीर्थ।
चाण्डूर—मथुरा।
चारुशीर्ष—गारुर्ग।
चित्ररेखा—उर्सीमठ।
चित्रांगद—हस्तिनापुर।
चित्रांगदा—चन्देरी।
चैतन्य (महाप्रभु)—उड़पीपुर, नदिया, कातवा, जगन्नाथपुरी, नयम्भर, कुमायूं गढ़वाल।
चोल—मदुरा।
च्यवन—मान्धाता, चौसा।

ज

जगजीवनदास—कोटवा।
जगपाल—राजिम।
जगनिक (कवि)—महियर वा। मैहर।
जटायु—नासिक।
जनक—सीतामढ़ी, अहल्या कुण्ड तीर्थ, गोदना।
जनमेजय—ताहरपुर, हस्तिनापुर।
जह्नु ऋषि—जहांगीरा।
जबल—नासिक।
जमदग्नि—जमनियाँ।
जम्बूस्वामी—मथुरा।
जयगोपाल (कवि)—बनारस।
जयदेव—केन्दुली, लखनौती।
जयद्रथ—सिन्धु।
जयन्त—चित्रकूट।
जयमिनि—देवबन्द।
जरासन्ध—राजगृह, गिरिव्रज, तुलसीपुर, गोमन्तगिरि।
जलन्धर—जालन्धर।
जल्हन—लाहौर।
जवाहरलाल नेहरू—इलाहाबाद।
जानकी—सीतामढ़ी, अयोध्या,

इलाहाबाद, चित्रकूट, कालिंजर नासिक, सिंगरौर, देवप्रयाग, रामेश्वर, नीमसार, बिठूर।
जासश्रुति—रामेश्वर।
जीत (राजकुमार)—सहेट महेट।
जीवेन्द्रस्वामी—मनारगुड़ी।
जैगविव्य—बनारस, मथुरा।

ट

टप्पारुद्र—कनहट्टी।
टोडरमल—लाहरपुर।

(ढ)

ढुंढिराज—बनारस।
ढुंढी—शिवप्रयाग।

त

तक्ष—शाहढेरी।
ताड़िका—बक्सर।
तानसेन—ग्वालियर।
ताम्रध्वज—रतनपुर।
तारन स्वामी—सेमरखेड़ी।
ताराबाई—चित्तौड़।
तिरुमलई नायक—मदुरा।
तुकाराम—देहू।
तुलसीदास—सोरों, बनारस, बलिया।
तेगबहादुर—अमृतसर, इन्द्रपाथ, पटना।
तोषनिधि (कवि)—सिंगरौर।

द

दत्तात्रेय—गिरनार, कोल्हापुर, चित्रकूट।
दधीचि—नीमसार, कुरुक्षेत्र, हरद्वार।
दन्तवक्र—रींवा, मथुरा।
दमघोष—चन्देरी।
दमनक—बीदर।
दमयन्ती—बीदर।
दयानन्द सरस्वती—मोरवी, अजमेर मथुरा।
दशरथ—अयोध्या, दोहथी।
दक्ष—हरद्वार।
दादूजी—अहमदाबाद, विरहना।
दारुक—नागेश।
दारुका—नागेश।
दालभ्य—डलमऊ।
दिलीप—अयोध्या।
दिल्लू (राजपाल)—इन्द्रपाथ
दीनदयालगिर (कवि)—बनारस।
दीप्ततपा—रामेश्वर।
दुन्दभीअसुर—आनागन्दी।
दुर्गा—हिंगुलाज, बनारस, तुलजापुर।
दुन्दुभिस्सर—काठमांडू।
दुर्योधन—कुरुक्षेत्र, हस्तिनापुर।
दुर्वासा—चित्रकूट, गोलगढ़, द्वारिका।
दुष्यन्त—इलाहाबाद।
दूषण—नासिक।
दूषणदैत्य—उज्जैन।
देव (कवि)—ओड़छा।
देवकी—मथुरा।
देवदत्त—सहेट महेट, भुइलाडीह, राजगृह।
देवदत्त—हृषीकेश।

देवदास—बनारस।
देवयानी—देवयानी।
देवशर्मा—देवप्रयाग।
देवहुती—सिद्धपुर।
देवापि—कलापग्राम।
देवेन्द्रनाथठाकुर—कलकत्ता।
देषभूषण—रामकुण्ड।
दण्डी—कांची।
दन्तवक्र—रींवा।
द्रुपद—कम्पिला।
द्रोणाचार्य—कम्पिला, काशीपुर, गुड़ गाँव, रामनगर, हरद्वार।
द्रौपदी—कम्पिला, इन्द्रपाथ, हस्तिनापुर, विराट, कामोद।

ध

धनञ्जय—अयोध्या।
धन्वन्तरी—उज्जैन।
धरनीदास—माँझी।
धर्म—रामेश्वर।
धर्मनाथ—नौराही, सम्मेदशिखर।
धर्मेश्वर—रामेश्वर।
धृतराष्ट्र—हस्तिनापुर।
धृष्टकेतु—चन्देरा।
धेनुकासुर—मथुरा।
धोयी—लखनौती।
ध्रुव—बिठूर, बद्रीनाथ, मथुरा।

न

नङ्गानग—सोनागिरि।
नन्द—नन्दप्रयाग, मथुरा।
नमिनाथ—सीतामढ़ी, सम्मेद शिखर।
नर—बद्रीनाथ।
नरकासुर—गोहाटी।
नर नारायण—केदारनाथ, बनारस।
नरसिंह (अवतार)—जोशीमठ, मुल्तान, मगलगिरि।
नरसी मेहता—जूनागढ़।
नरहरि सुनार—पढ़रपुर।
नल (वानर)—रामेश्वर।
नल (राजा)—नरवार, ऊखीमठ, अयोध्या, बीदर, सरहिन्द।
नव निहाल सिंह—अमृतसर।
नहुष—नन्दप्रयाग, इलाहाबाद।
नागसेन—स्यालकोट।
नागार्जुन—नागार्जुनी पर्वत, नड़गार्जा।
नानक(गुरु)—ननकाना साहेब, इमनाबाद, करतारपुर, गोयन्दवाल, सुल्तानपुर, स्यालकोट।
नामदेव—पढ़रपुर।
नारद—गोलागढ, जगनाथ पुरी, जोशीमठ, नारायणसर, बद्रीनाथ, मथुरा, रुद्रप्रयाग।
नारायण—कुरुक्षेत्र, केदारनाथ, नारायणसर, बद्रीनाथ।
निकुम्भ—बनारस।
निचक्षु—हस्तिनापुर, कौसम।
निजानन्दाचार्य—अमरकण्टक।
निम्बार्क—मथुरा।
नीलादेवी—बालाजी।
नग—द्वारिका।
नेमिनाथ—द्वारिका, गिरनार।

नैमिष—नीमसार।

प

पतंजलि—चिदम्बरम।

पद्मपाद आचार्य—जगन्नाथपुरी

पद्मप्रभु—कोशम, फफोसा, सम्मेद शिखर।

पद्मसम्भव—रुआलसर।

पद्मावती—चित्तौड़।

पद्माधाय—चित्तौड़।

परमेष्ठी दर्जी—इन्द्रपाथ।

परशुराम(अवतार)—ज़मानिया, उत्तर काशी, कुरुक्षेत्र, सङ्गमेश्वर, कोलर, मान्धाता।

पराशरमुनि—कालपी, बद्रीनाथ, महेन्द्रपर्वत।

परीक्षित—सक्करताल, हस्तिनापुर, ताहरपुर।

पलटूदास—अयोध्या।

पशुपतिनाथ—काठमाण्डू।

पस्तकाप्य मुनि—नाथ नगर।

पाणिनि—लाउर, शाहढेरी।

पाण्डव—आरा, गङ्गासागर, बद्रीनाथ, देवबन्द, नीमसार, विराट, सिद्धपुर, कामोद, गङ्गोत्री, हस्तिनापुर, कटासराज, बरनावा, कम्पिला, कुरुक्षेत्र, केदारनाथ, गया, जाजपुर, पाण्डुकेश्वर।

पाण्डु—हस्तिनापुर, पाण्डुकेश्वर।

पाण्ड्य—मदुरा।

पार्वती—पटना, बनारस, नीमसार, त्रियुगीनारायण, मल्लिकार्जुन, रुद्रप्रयाग, नागेश, गौरीकुण्ड, गङ्गेश्वरी घाट।

पार्श्वनाथ—नैनागिर, बनारस, राम नगर, सम्मेदशिखर।

पार्श्विक—पेशावर।

पाल काप्यमुनि—चम्पानगर।

पुङ्ग—जाजपुर।

पुण्डरीक—पंढरपुर।

पुरु—मौग।

पुरु—इलाहाबाद।

पुरुरवा—कलापग्राम, कुरुक्षेत्र, रामेश्वर, इलाहाबाद।

पुलहऋषि—शालग्राम।

पुष्कर—चारसदा।

पुष्पदन्त—खोरवन्दो, सम्मेद शिखर।

पूतना—मथुरा।

पूर्णवर्धन—सहेट महेट।

पूर्व मैत्रायणी पुत्र—मथुरा।

पृथा—चित्तौड़।

पृथु—कुरुक्षेत्र, बिठूर।

पृथ्वीराज (महाराज)—इन्द्रपाथ, अजमेर, कन्नौज, चुनार, तालवड़ी।

पृथ्वीराज—चित्तौड़।

प्रजापति—इलाहाबाद।

प्रतापसिंह—चित्तौड़।

प्रद्युम्न कुमार—गिरनार, पौदुआ।

प्रमिला—कुमायूं गढ़वाल।

प्रलम्ब—मथुरा।

प्रसेनजित—सहेट महेट।

प्रह्लाद — मुलतान, इलाहाबाद, उज्जैन, कामाख्या, जोशीमठ, बालाजी, सोमानाथ पट्टन, हरिद्वार, हृषीकेश

भगवती प्रसादसिंह (महाराजा)—
सहेट महेट ।
भगवानदास (डाक्टर)—बनारस ।
भगीरथ—अयोध्या, गङ्गोत्री ।
भट्टनारायण—राँगामाटी ।
भद्रकाली—गोकर्ण, बनारस ।
भद्रबाहु—बड़नगर, वमिलपुर ।
उज्जैन, श्रवणबेल गुल ।
भरत—इलाहाबाद ।
भरत—अयोध्या, इलाहाबाद, हरी
क्रैप, चित्रकूट, बिठूर, सिंगरौर,
सालग्राम ।
भरद्वाज—इलाहाबाद, हरद्वार ।
भर्तृहरि (राजा)—चुनार, उज्जैन ।
भर्तृहरि (कवि)—चीमलपुर ।
भवभूति—कन्नौज, नरवार ।
भस्मासुर—भेतगांव, तीर्थपुरी ।
भावविवेक—धरणीकोटा ।
भास्करानन्द—बनारस ।
भीम (राजा)—बीदर ।
भीमसिंह—चित्तौड़ ।
भीमसेन—आरा, भीमताल विराट,
हस्तिनापुर, राजगृह ।
भीष्म—कुंडनपुर, हस्तिनापुर ।
भूषण (कवि)—तिकवाँपुर ।
भृगु—ऊर्जवगांउ, गोलगढ़, बलिया,
बालाजी, शुक्लतीर्थ ।
भैरव—बनारस, बैजनाथ ।
भोज—उज्जैन, धार, मालवा, भोपाल ।
भौमासुर—गोहाटी ।

म

मल्किम—काठमाँडू ।
मतिराम (कवि)—तिकवांपुर ।
मत्स्यावतार—कश्मीर ।
मदनमोहन मालवीय—इलाहाबाद,
बनारस ।
मधु—मथुरा, बनौसी ।
मधुकरशाह (महाराज)—ओड़छा ।
मनोरथ—सहेटमहेट, पेशावर ।
मयदानव—मेरठ ।
मयूरध्वज—रतनपुर, तमलुक, बसाढ़ ।
मरु—कलापग्राम ।
मरुत—पाँडुकेश्वर ।
मल्लिनाथ—सीतामढ़ी ।
सम्मेदशिखर—हस्तिनापुर ।
मल्लिवेणाचार्य—एडैयालम ।
महाकश्यप—कुरकिहार, कसिया, पड़
रौना, राजगृह ।
महामाया—काँगड़ा ।
महावीर स्वामी—चम्पानगर, भद
रिया, कुंडलपुर, पावापुरी, राजगृह
नाथनगर, नवल ।
महिष—मान्धाता ।
महिष्मान—मान्धाता ।
महिषासुर—आबूपर्वत, रामेश्वर, तुल
जापुर ।
महेन्द्र—उज्जैन, लङ्का ।
मातङ्ग ऋषि—अनागन्दी, गया ।
माद्री—स्यालकोट, पाँडुकेश्वर ।
माधवाचार्य—उडुपीपुर ।

माघी—इलाहाबाद ।
मान्धाता—अम्बर, ऊखामठ, मान्धाता ।
मायादेवी—बाराइहेन ।
मारीच—गोकर्ण, नासिक ।
मार्कण्डेय—मार्कण्ड, जगन्नाथपुरी मान्धाता, सालग्राम ।
मिलिन्द—ओपियन, स्यालकोट ।
मीराबाई—कुडकीग्राम, चित्तौड़ द्वारिका, मथुरा ।
मुचकुन्द—नगर, मुचकुन्द ।
मुद्गल—बडागाँव, सहेट महेट, मथुरा ।
मुद्गल पुत्र—मुङ्गेर ।
मुद्गलमुनि—कुरुक्षेत्र, रामेश्वर, मुङ्गेर ।
मुरादैत्य—गढ़मर ।
मूलकदास—कडा ।
मेघनाद—लङ्का, चूलगिरि ।
मेगलान—साँची ।
मण्डनमिश्र—राजगृह, मान्धाता । मन्दोदरी—लङ्का, मेरठ ।

य

यग—बीदर ।
ययाति—इलाहाबाद, कश्मीर, देवयानी ।
ययातिकेशरी—जगन्नाथपुरी, आनपुर, भुवनेश्वर ।
यशोदा—मथुरा ।
यशोवर्धन—उज्जैन ।
यामुनाचार्य—मदुरा, २ ९ ।
याज्ञवल्क्य—[illegible] ।

युधिष्ठिर—गुन्गोव, गङ्गासागर, पाण्डुकेश्वर, बद्रीनाथ, रामेश्वर, हस्तिनापुर, सिद्धपुर, तख्ते भाई ।
युवनाश्व—अम्बई, ऊखामठ ।

र

रघु—अयोध्या ।
रघुनाथ (कवि)—बनारस ।
रणजीतसिंह (महाराजा)—अमृतसर, गुजराँवाला ज्वालामुखी, तरुतारन, लाहौर ।
रवीन्द्रनाथ ठाकुर—कलकत्ता ।
रसखान (कवि)—इन्द्रप्रस्थ ।
रसरंग (कवि)—लखनऊ ।
रसालू—स्यालकोट ।
राकानी—पंढरपुर ।
रानपाल (दिल्लू)—इन्द्रप्रस्थ ।
राजशेखर—कन्नौज ।
राजसिंह—चित्तौड़ ।
राजीवतेलिन—राजिम ।
राजुलोचन—राजिम ।
राधिका—बरसान, मथुरा ।
रामकृष्ण (परमहंस)—कामारपुकुर कलकत्ता ।
रामगोपाल मिश्र—काल्पी, सहेट महेट ।
रामचन्द्र(अवतार)-अयोध्या, भवानी, अहल्याकुण्डतीर्थ, रामपुर, नौगढ़ी, लङ्का, सिगरौर, बिठूर, श्वानागादी, इलाहाबाद, चित्रकूट, धाराप, देवप्रयाग, नासिक, नीमा, पुष्कर,

पटना, बक्सर, बिठूर मुङ्गेर, वैद्यनाथ, राजिम, रामटेक, रामेश्वर, श्रीनगर, श्रीरंगम, बालाजी।
रामतीर्थ—महरालीवाला।
रामदास— कोल्हापुर, जाम्बगाँव, नासिक, लाहौर, अमृतसर, गोयन्दवाल।
राममोहनराय—राधानगर, बनारस, पटना।
रामानन्द—इलाहाबाद, गंगासागर, बनारस।
रामानुजाचार्य — भूतपुरी, काँची, मलकोटा श्रीरंगम, बालाजी।
रावण—गोकर्ण, नासिक, वैद्यनाथ, लंका, रावणह्रद।
राहुल—मथुरा, मुइलाडीह।
राहुलता—सहेट महेट।
रुक्माङ्गद—वेसनगर, सक्रायमपट्टन, अयोध्या।
रुक्मिणी—कुंडिनपुर, द्वारिका।
रुक्मिणी देवी—मद्रास।
रेणुकाचार्य—कोल्हापुर, काँची, सोमनाथ पट्टन।
रेवत—शाहदेरी।
रेवत—द्वारिका।
रेवती—द्वारिका।
रैक्वमुनि—रामेश्वर।
रैदास—बनारस।
रैभ्यमुनि—हृषीकेश।
रोमपाद—नाथनगर।
रोमहर्षण—नीमसार।
रोहिताश्व—रोहतास।

ल

ललित किशोरीसाह कुन्दनलाल (कवि) —लखनऊ।
ललितादेवी—नीमसार।
लव—नीमसार, पावागढ़, बिठूर, लाहौर, सहेट महेट।
लवण—मथुरा।
लक्ष्मण—अयोध्या, अहल्याकुण्ड तीर्थ, आनागन्दी, इलाहाबाद, देवप्रयाग, नीमसार, पटना, पुष्कर, बक्सर, बिठूर, लखनऊ, लङ्का, सिंगरौर, रामेश्वर, हृषीकेश, बालाजी, सोनपुर, चित्रकूट।
लक्ष्मणसेन—लखनौती।
लक्ष्मी—कोल्हापुर, बद्रीनाथ, बालाजी, रामेश्वर।
लाक्ष (लाखा)—चित्तौड़।
लेडविटर—मद्रास।
लोपमुद्रा—रमेश्वर।
लोचनदास—कोग्राम।
लोमश—नागार्जुनी पर्वत, जाजपुर, बद्रीनाथ, रूआनसर।

व

वचनचूरामणि—कुदरमाल।
वज्र—इन्द्रप्रस्थ।
वत्स—कोसम।
वन्दरनाथमयन्द—आनागन्दी।
वभ्रुवाहन—चन्देरी।
वरदत्तमुनि—गिरनार, नैनागिरि।
वराहमिहिर—कम्पिला, उज्जैन।

वीर (कवि)—इन्द्रप्रस्थ ।
वीरभद्र—बनारस, हरद्वार ।
वीरसिंह—रंगामाटी ।
वीर सिंह देव (महाराजा)—ओड़छा ।
वीर सिंह बघेल—मगहर ।
वीरा—चित्तौड़ ।
वृत्रासुर—कुरुक्षेत्र ।
वृन्द—सोमनाथ पट्टन ।
वृहद्बल—अयोध्या ।
वृहद्रथ—कौआकोल पहाड़ ।
वैखानस—पांडुकेश्वर ।
वैतालभट्ट—उज्जैन ।
वैवस्वतमनु—अयोध्या, बद्रीनाथ ।
व्याघ्रपद—चिदम्बरम ।
व्यास—काल्पी, बद्रीनाथ, हस्तिनापुर, कैलासगिरि ।
व्यासदास—ओड़छा ।

श

शकुन्तला—मन्दावर ।
शङ्करदेव—बटद्रवा ।
शन्तनु—हस्तिनापुर ।
शबरी—आनागन्दी, नासिक ।
शम्बरासुर—पांडुआ ।
शम्बूक—रामटेक ।
शम्भाजी—कोल्हापुर ।
शम्भु कुमार—गिरनार ।
शर्मिष्ठ—देवयानी ।
शल्य—स्यालकोट ।
शशाँक—रँगामाटी ।
शत्रुघ्न—अयोध्या, कामाख्या, चित्रकूट, जगन्नाथपुरी, राजिम, विठूर, हृषीकेश, मथुरा ।
शान्ता—अयोध्या ।
शान्तिनाथ — हस्तिनापुर, सम्मेद शिखर ।
शांडिल्य ऋषि—शरदी ।
शालिवाहन—पैठन ।
शाल्व—अलवर ।
शिल्ह—श्री नगर ।
शिव—उत्तर काशी, अमर कण्टक, उज्जैन, कटाक्षराज, कश्मीर, काठमांडू, गोलागोकर्णनाथ, गोकर्ण, काटली, कालिंजर, कांची, कुरुक्षेत्र, शङ्कर तीर्थ, शोणितपुर, हरद्वार, केदारनाथ, कैलासगिरि, गोपेश्वर, मणिचूड़ा, चिदम्बरम, जगन्नाथपुरी, घुसमेश्वर, तेवर, नागेश, नीमसार, बनारस, भुवनेश्वर, भेतगांव, मल्लिकार्जुन, मार्कण्ड, मान्धाता, वैद्यनाथ, रुद्रप्रयाग, रामेश्वर, शिव प्रयाग, शुक्रतीर्थ, सोमनाथ पट्टन, त्रयम्बक, त्रियुगी नारायण, कारों, माही नदी का मुहाना ।
शिवगुरु—काटली ।
शिवदयालसिंह (स्वामीजी महाराज)—आगरा ।
शिवाजी—कोल्हापुर, सतारा, सूरत ।
शिशुपाल—चन्देरी ।
शीतलनाथ—साँची, सम्मेद शिखर ।
शुकदेव—सक्करताल, मीत मढ़ी ।

शुक—बालाजी ।
शुद्धोधन—भुइलाडीह ।
शूरसेन—मथुरा, बटेश्वर ।
शूर्पणखा—नासिक ।
शृङ्गी ऋषि—श्रीङ्गेरी, अयोध्य, मकनपुर, सिंगरौर ।
शेष—बालाजी ।
शौनिक—नीमषार ।
शंकराचार्य (जगद्गुरु)—काटली, इलाहाबाद, केदारनाथ, जोशीमठ, देव-प्रयाग, बद्रीनाथ, बनारस, मल्लिकार्जुन, श्रीङ्गेरी, मान्धाता, शरदी, तुलजपुर, कश्मीर, द्वारिका ।
शकु—उज्जैन ।
शखमुनि—रामेश्वर ।
शखासुर—बेटद्वारिका ।
श्रवणऋषि—दोहथी ।
श्रावस्त—सहेटमहेट ।
श्रीचन्द—नानकाना साहब ।
श्रीधर (कवि)—इलाहाबाद ।
श्रीधरदास—लखनौती ।
श्रीहर्ष—रांगामाटी ।
श्रेयांशनाथ—सारनाथ,सम्मेद शिखर ।

स

सगर—अयोध्या, अर्जम गांव ।
सङ्घभद्र—मदावर ।
सङ्घमित्र—लंका ।
सतरूपा—सिद्धपुर ।
सती—कड़ा, कामाख्या, ज्वालामुखी, हरद्वार, नीरग्राम, सिरीकोल, सरदि, तुलजपुर, तुलसीपुर, कलकत्ता, गोहाटी, कश्मीर, पारशुरामपुर, उदयपुर, वैद्यनाथ, कणकाली, नासिक, पटना, इलाहाबाद, जगन्नाथपुरी, कोग्राम, कागड़ा ।
सत्यभामा—गोहाटी ।
सत्यवती—कन्नौज ।
सत्यसंघ—श्रीनगर ।
सदानद शिवयोगी—मल्लिकार्जुन ।
सनत्कुमार—गोकर्ण, हरद्वार ।
समर सिंह—चित्तौड़ ।
समुद्रगुप्त—पटना ।
सम्बन्ध—मदुरा ।
सम्भवनाथ—सहेट महेट, सम्मेद शिखर ।
सम्दार (कवि)—बनारस ।
सव वर्म्मा—शुक्ल तीर्थ ।
सहदेव—रींवा, सङ्गम, हस्तिनापुर, राजगृह, आना गर्न्दी ।
सहदेव (राजा)—चुनार ।
सांगाराणा—चित्तौड़, आबू पर्वत ।
सागरदत्त मुनि—तारङ्गा ।
सानवासी—मथुरा ।
सान्दीपनमुनि—उज्जैन ।
सावित्री—स्यालकोट ।
साम्ब—बनारस, मथुरा, सोमनाथ पट्टन, गोलागढ ।
सारिपुत्र—बड़ागाव, मथुरा, शुघ, सहेटमहेट, सांची ।

सालिकराम—(रायबहादुर, हुजूर महाराज)—आगरा ।
सिकन्दर—मोग, शाहदेरी ।
सिद्धांतिमुनि—एडैयालम ।
सीता—सीतामढ़ी, अयोध्या, इलाहाबाद, कालिंजर, चित्रकूट, देवप्रयाग, नासिक, नीमसार, बालाजी, बिठूर, रामेश्वर, सिंगरौर, लङ्का ।
सीरध्वज—सीतामढ़ी, अहिल्या-कुंड-तीर्थ ।
सुखदेव (कवि) -कम्पिला ।
सुग्रीव—अनागन्दी, रामेश्वर ।
सुचरित—रामेश्वर ।
सुजनसिंह—चित्तौड़ ।
सुतीक्ष्ण—रामेश्वर, नासिक ।
सुदत्त—सहेट महेट ।
सुदर्मा—घुसमेश्वर ।
सुदर्शनसेठ -पटना ।
सुदामा—पोरबन्दर ।
सुदेपण—जाजपुर ।
सुदेहा—घुसमेश्वर ।
सुपरबुद्ध—बाराहक्षेत्र, भुइलाडीह ।
सुपार्श्वनाथ—बनारस, सम्मेद-शिखर ।
सुबाहु—बनारस ।
सुव्रतनाथ—राजगृह, सम्मेद-शिखर ।
सुभद्र—कसिया ।
भद्रा—जगन्नाथपुरी ।
भाषचन्द्रघोष—भुवनेश्वर ।
सुभद्रांगी—नाथनगर ।
सुमति—रामेश्वर ।
सुमति (रानी)—ऊर्जमगांव ।
सुमतिनाथ—अयोध्या, सम्मेद-शिखर ।
सुमित्रा—अयोध्या ।
सुशर्मीचन्द—कांगड़ा ।
सुशर्मा—जालन्धर ।
सुहोत्र—हस्तिनापुर ।
सुहृय—जाजपुर ।
सूदन (कवि)—मथुरा ।
सूरदास—सोही ।
सूर्य—अमिन, कर्ण, प्रयाग, कनारक, बनारस, काश्मीर, मथुरा, रामेश्वर ।
सूर्यसेन—ग्वालियर ।
श्रीहर्ष—कन्नौज ।
सोनकोलविस—नाथनगर ।
सोम—इलाहाबाद, मथुरा ।
सोमशर्मा—अमरकंटक ।
संग्रामसिंह—चितौड़ ।
संयोगिता—कन्नौज ।
संवरण—हस्तिनापुर ।
संभवनाथ—सहेट महेट, सम्मेद-शिखर ।
स्वधा—बाराहक्षेत्र ।
स्वपय—रामेश्वर ।
स्वामिकार्तिकेय—कुरुक्षेत्र, मल्लिकार्जुन, त्रियुगी नारायण ।
स्वामिनारायण—छपिया ।
स्वायम्भुव—नाथनगर ।

स्वायम्भुवमनु—विठूर ।

ह

हठी (कवि)—मथुरा ।
हनुमान—आनागन्दी, बनारस भविष्यबद्री, रामेश्वर, लङ्का, अयोध्या ।
हमीर—चित्तौड़ ।
हरदौल—ओरछा ।
हरिकेश—बनारस ।
हरिकृष्ण—अमृतसर, इन्द्रपाथ, देहरापतालपुरी ।
हरिगोविंदसिंह—अमृतसर, देहरापतालपुरी ।
हरिदास —मथुरा ।
हरिनाथ (कवि)—बनारस ।
हरिरामदास—सिंहथल ।
हरिराय—अमृतसर, आनन्दपुर, देहरापतालपुरी ।
हरिश्चन्द्र—अयोध्या, बनारस वाराहक्षेत्र ।
हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु)—बनारस ।
हरीसिंह—लाहौर ।
हर्षवर्धन--कन्नौज ।
हलायुध—लखनौती ।
हस्ती—हस्तिनापुर ।
हारितऋषि—यकलिङ्ग ।
हस्वरोमा—सीतामढ़ी ।
हितहरिवंश—बाद, मथुरा, देववन्द ।
हिरण्यकशिपु—मुल्तान, मल्लिकार्जुन ।
हिरण्यवर्ण—चिदम्बरम ।
हेमचन्द्राचार्य—अनहिलपटन ।
हेमावती—महियर ।

क्ष

क्षपणक—उज्जैन ।
क्षुप—कुरुक्षेत्र ।
क्षेम—नगरा ।

त्र

त्रिपुरासुर—तेवर ।
त्रिशिरा—त्रिचनापल्ली ।
त्रिशंकु—अयोध्या ।
त्रिमिरा - नासिक ।

ज्ञ

ज्ञानेश्वर—आलन्दी, पैठन ।

———

परिशिष्ट नम्बर २

प्राचीन स्थानों के आधुनिक नाम और भौगोलिक स्थिति

अ

१ अगस्त्यआश्रम — अवाहितपुरी नासिक से २४ मील दक्षिण पूर्व।

२ अगस्त्यतीर्थ—रामेश्वर में एक तीर्थ।

३ अग्रवन—आगरा।

४ अग्नितीर्थ—रामेश्वर में एक तीर्थ।

५ अग्निपुर—मान्धाता, इन्दौर से ४० मील दक्षिण।

६ अङ्गप्रदेश—विहार प्रान्त में भागलपुर तथा मुंगेर के जिले।

७ आंचरवती—अवध की राप्ती नदी।

८ अचिन्त या

९ अचिन्त्य — अजन्ता, हैदराबाद राज्य में।

१० अच्छोद सरोवर—अच्छावत, कश्मीर में।

११ अजमती—अजया नदी, बंगाल में।

१२ अजितवती—गंडक, कसिया (जिला देवरिया) के पास से बहने वाली छोटी नदी।

१३ अजिरवती—अवध की राप्ती नदी।

१४ अञ्जन गिरि—सुलेमान पर्वत की एक शृंखला-पंजाब के उत्तर पूर्व में।

१५ अधिराज प्रदेश—रीवाँ राज्य।

१६ अनन्तशयन—पद्मनाभपुर, त्रावणकोर में।

१७ अनूप देश—दक्षिण मालवा जिसकी राजधानी माहिष्मती थी।

१८ अनोमा नदी—ओमी नदी, बस्ती जिला में।

१९ अन्धनद—ब्रह्मपुत्रा नदी।

२० अन्त्रेयी (अंत्रेयी)—अत्रै नदी, दीनाजपुर जिला में।

२१ अपराजिता—अयोध्या।

२२ अपरान्त—

२३ अपरान्तक—

२४ अभिसार या

२५ अभिसारि देश—कोंकण और मलाबार प्रदेश, दक्षिण भारत में। पेशावर के पश्चिम उत्तर का प्रदेश।

२६ अमरावती—१—बेजवाड़े से १८ मील पश्चिम तथा धरणिकोट (धनकट) से दक्षिण की ओर स्थित गाँव व स्तूप :

२-नगर हाड़—जलालाबाद से

दो मील पश्चिम।

२७ अमृतवापिका—रामेश्वर में एक तीर्थ।

२८ अरण्य—उज्जैन और बरार के दक्षिण का देश,

२९ अराष्ट्र—पंजाब।

३० अरुणा गिरि—तिरुवन्न मलाई या त्रिनामली मद्रास प्रान्त में।

३१ अरुणा नदी—कुरुक्षेत्र के समीप पंजाब में स्थित सरस्वती नदी की शाखा।

३२ अरुणाचल—तिरुवन्नमलाई या त्रिनामली, मद्रास प्रान्त में।

३३ अरुण श्रम—कैलाश की पश्चिमी श्रृंखला।

३४ अरुणोद—गढवाल, अलकनदा नदी जिस प्रदेश में बहती है।

३५ अर्कक्षेत्र—कोनारक, उड़ीसा में।

३६ अर्धगंगा नदी—कावेरी।

३७ अर्बुदगिरि—आबू पर्वत।

३८ अवधपुरी—अयोध्या।

३९ अवन्त दक्षिणापथ—मांधाता के चारों ओर का प्रदेश। मान्धाता इन्दौर के दक्षिण में है।

४० अवन्ति—उज्जैन, तथा उसके आस पास का प्रदेश। सातवीं व आठवीं शताब्दी ईस्वी में यह प्रदेश मालवा कहलाता है जब से मालवों ने इसे जीता।

४१ अवान्तिकक्षेत्र—अवनिग्राम, मैसूर के कोलार जिले में।

४२ अविचल कूट—सम्मेद शिखर।

४३ अविमुक्त क्षेत्र—काशी (बनारस)।

४४ अश्मक—महाराष्ट्र।

४५ अश्मण्वती नदी—काबुल नदी।

४६ अश्वक—महाराष्ट्र।

४७ अश्वकच्छ—कच्छ।

४८ अश्वतीर्थ—गंगा और काली नदी का संगम।

४९ अश्वत्थामागिरि — आसेरगढ़ बुरहानपुर से ११ मील उत्तर, मध्यप्रान्त में।

५० अष्टापद पर्वत—कैलास पर्वत, तिब्बत के दक्षिण पश्चिम में।

५१ अष्टावक्र आश्रम—रैल, हरद्वार से ४ मील।

५२ अष्टिग्राम—रावल, मथुरा जिले में यमुना तट पर।

५३ अस्सक—महाराष्ट्र।

५४ असिक्नि—चिनाब नदी, पंजाब में।

५५ अस्मक—महाराष्ट्र।

५६ अहिच्छत्र,

५७ अहिछत्र या

५८ अहिक्षेत्र— राम नगर, बरेली से २० मील

आ

५९ आकर—पूर्वी मालवा जिसकी राजधानी विदिशा थी।

६० आगरावत—पूरा तथा पश्चिमी मालवा।

६१ आदि बद्री (अदबद्रा)—अ नगर का एक गाँव, गढवाल में।

६२ आनन्दकूट — सम्मदशिखर।

६३ आनन्दपुर — र नगर, उत्तर गुजरात में।

६४ आनर्तदेश—१—उत्तर गुजरात जिसकी राजधानी आनन्तपुर थी २—गुजरात व मालवा का भ ग जिसका राजधानी कशस्थला (द्वारिका) थी।

६५ आन्ध्र—१—गोदावरी तथा कृष्णा क बीच का भूमाग २—तैलङ्गाना, हैदराबाद क दक्षिण।

६६ आपगा—कुरुक्षत्र का एक नदा सभवत आधवती।

६७ आपापुरी१—विहार से ७ मील दक्षिण पूर्व एक गाँव,गहारग्रा त में २ हरौना,जिला देवरिया म।

६८ आपतनेजग्न—हरौना, वहराइच जिले में।

६९ आभानगर—ताहरपुर, बुलन्द शहर जिले म।

७० आभीर—१—सिंधनदा क पूर्व का देश •—सोमनाथ क पास गुजरात का भूभाग ३—तासी से देवगढ तक का प्रदेश ४—गुजरात का दक्षिणा भाग।

७१ आमलितला—ताम्रपर्णी नदी के किनारे, जिला तिनवेली मद्रास में, एक गाँव।

७२ आमेर—अम्बर, जयपुर में।

७३ आयुध—झेलम और सिंधु नदियो क बीच का प्रदेश।

७४ आरट्ट—पजाब।

७५ आरण्यक—उज्जैन और विदर्भ (बरार) के दाक्षण का देश।

७६ आयावर्त—हिमालय और विन्ध्य के बाच का भूभाग।

७७ आरामनगर—आरा, बिहार में

७८ आलवि—ऐव इटावा से २७ मील।

७७ आवगाण—अफगानिस्तान।

८० आशापल्लि—अहमदाबाद।

८१ आत्रेयी—अत्रे नदी, दीनाजपुर जिला में।

इ

८२ इन्द्रकाल पवत—शिवप्रयाग के पास एक पर्वत, गढवाल में।

८३ इन्द्रपुर—इदोर, जिला बुलद शहर म।

८४ इन्द्रप्रस्थ—पुराना दिल्ली, इन्द्र पाथ।

८५ इन्द्रशिला गुहा — गिरियक पहाडी, राजगिर से ६ मील।

८६ इलवलपुर — एलोरा, हैदरा बाद में।

८७ इक्षु—काबुल नदी।

८८ इक्षुमता—काली नदी, कुमाऊँ और रुहेलखण्डमें बहनेवाली।

उ

८९ उचनगर—बुलन्दशहर, संयुक्त प्रान्त में।

९० उज्जयन्त — गिरिनार पहाड़, काठियावाड़ में।

९१ उज्जयिनी—उज्जैन।

९२ उडूपी क्षेत्र—उडूपीपूर, मद्रास में।

९३ उत्कल देश—उड़ीसा।

९४ उत्तरकुरु—गढ़वाल का उत्तरी भाग तथा हूण देश।

९५ उत्तर कोशल—बहराइच का ज़िला और उसके पास का देश जिसकी राजधानी श्रावस्ती (सहेट महेट) थी।

९६ उत्तर गोकर्ण तीर्थ—गोला गोकर्ण नाथ, जिला खेरी में।

९७ उत्तर गोकर्ण क्षेत्र—गोला गोकर्ण नाथ, खेरी ज़िला में।

९८ उत्तरापथ—कश्मीर तथा काबुल का देश।

९९ उत्तानिका नदी—रामगंगानदी।

१०० उत्पलारण्य वा

१०१ उत्पलावत कानन—बिठूर, कानपुर जिले में।

१०२ उत्पलावती नदी—[illegible] नदी, तिन्नावल्ली जिला मद्रास में।

१०३ उदण्डपुर — बिहार नगर, बिहार में।

१०४ उदयगिरि—भुवनेश्वर से ५ मील दूर एक पहाड़, उड़ीसा में।

१०५ उद्यान—पेशावर के उत्तर में स्वात नदी के किनारे का प्रदेश।

१०६ उपमल्लक- मल्लका(malacca)।

१०७ उपवंग—गंगा के डेल्टे के पूर्व का मध्य भाग।

१०८ उमावन—ऊखीमठ, रुद्रप्रयाग के उत्तर।

१०९ उरगपुर — उरयिपुर, जिला त्रिचनापल्ली में।

११० उरसा—हजारा जिला।

१११ उशीनर गिरि — सिवालिक पहाड़ी, हरद्वार के पास।

ऊ

११२ ऊखल क्षेत्र—सोरों, एटा जिला में।

११३ ऊदम नगर वा

११४ ऊदा नगेरी—असरूर, गुजरां‑वाला जिला में।

११५ ऊरविल्व—बोध गया।

ऋ

११६ ऋषभ पर्वत—मदुरा की पलनी पहाड़ियाँ।

११७ ऋषिकुल्या — रिशि कुल्लिया नदी गंजाम में।

११८ ऋषिगिरि—राजगिरि के समीप एक पहाड़।

११९ ऋषि पट्टन—सारनाथ, बनारस के पास।

१२० ऋषिपर्वत—हृषीकेश, जिला सहारनपुर में।

१२१—ऋष्यमूक—अनागंदी से ८ माल दूर एक पहाड़, जिला बिलारी में।

१२२—ऋष्यशृंग आश्रम—ऋषीकुंड, भागलपुर से २८ मील पश्चिम।

१२३ ऋक्ष पर्वत—विंध्य का पूर्वी भाग।

ए

१२४ एकचक्र—चक्रनगर, इटावा से १६ मील दक्षिणपूर्व।

१२५ एकाम्रकानन वा

१२६ एकाम्र क्षेत्र—भुवनेश्वर, उड़ीसा में।

१२७ एरन्डी—उरि, नर्मदा की सहायक नदी।

१२८ एलपुर—एलोरा, हैदराबाद में।

ऐ

१२६ ऐरावती—रावी नदी।

ओ

१३० ओंकार चक्र वा

१३१ ओंकार पुरी—नर्मदा पर। मान्धाता, इन्दौर से ४० मील दक्षिण।

१३२ ओड्र—उड़ीसा।

१३३ ओपियाँ—अलसन्द, काबुल से २७ मील उत्तर।

औ

१३४ औदुम्बर—कच्छ, जिसका राजधानी कोटेश्वर थी।

क

१३५ कङ्काली टीला—मथुरा के पास, एक स्थान।

१३६ कण्व आश्रम—१-मालिनी नदी (चुका) के तट पर जिला बिजनौर में : २-चम्बल नदी के किनारे, कोटा से ४ मील दक्षिण पूर्व : ३-नर्मदा के तट पर।

१३७ कनक—श्रावणकोर।

१३८ कन्दगिरि—कन्देरी, बम्बई प्रान्त में।

१३६ कपिलवस्तु—१-भुइलाडीह, बस्ती शहर से १५ मील पश्चिमोत्तर :
२-निगलीवा, नैपाल की सीमा से ३८ मील पश्चिमोत्तर नैपाल में :
३-तिलौरा, निगलीवा से ३½ मील दक्षिण पश्चिम

१४० कपिशा—काबुल नदी के उत्तर का प्रदेश : उत्तरी अफ़गानिस्तान।

१४१ कपिस्थल तीर्थ—कैथल, जिला कर्नाल में।

१४२ कमन्तलपुरी—कुतवार, ग्वालियर में।

१४३ कमन्तीपुरी—डोंगरगढ़, रायपुर जिले में।

१४४ कम्पिल्यपुर—कंपिल्य या कंपिला, जिला फरूखाबाद में।

१४५ करकल्ल—करांची।

१४६ करकोटक—कड़ा, जिला इलाहाबाद में।

१४७ करवीर—कोल्हापुर।

१४८ करुष—रीवाँ राज्य:बघेल खंड।

१४९ कर्णसुवर्ण—राँगामाटी, ज़िला मुर्शिदाबाद में।

१५० कर्णावती नगरी – अहमदाबाद।

१५१ कर्णावती नदी – केननदी, बुन्देलखन्ड में।

१५२ कर्तृपुर – इस देश में गढ़वाल, अल्मोड़ा तथा काँगड़ा के जिले सम्मिलित थे।

१५३ कर्दम आश्रम – सितपुर या सिद्धपुर, गुजरात में।

१५४ कलदि – केरल (मलाबार) में एक स्थान।

१५५ कलापग्राम – बद्रिकाश्रम के निकट हिमालय में एक ग्राम।

१५६ कलिंग – उत्तरी सरकार।
उड़ीसा के दक्षिण और द्राविड़ के उत्तर समुद्र तट तक का देश।

१५७ कलिंग नगर – भुवनेश्वर, उड़ीसा में। (महाभारत के समय उड़ीसा का बहुत भाग कलिंग में सम्मिलित था)।

१५८ कलिन्द – हिमालय में चन्दरपूंछ शृंखला पर पहाड़ी देश।

१५९ कल्पस्थल – केदारनाथ में एक तीर्थ।

१६० कल्पेश्वर – केदारनाथ में एक तीर्थ।

१६१ कश्यपपुर – मुलतान, पाकिस्तानी पंजाब में।

१६२ कश्यपमीर—कश्मीर।

१६३ काकजोल—पूर्निया, माल्दा और भागलपुर के जिले।

१६४ काकनाद—साँची, भोपाल में।

१६५ काकन्दी नगरी वा—

१६६ काकन्दीपुरी—खुखुन्दो, गोरखपुर जिले में।

१६७ काञ्चीवरम्—कांची, मद्रास प्रांत के चिङ्गिलपट ज़िला में।

१६८ कादम्बवन—कामाँ, भरतपुर में।

१६९ कान्तीपुर वा—

१७० कान्तीपुरी—कुतवार, ग्वालियर में।

१७१ कान्यकुब्ज—कन्नौज, ज़िला फ़र्रुखाबाद में।

१७२ कान्यपुष्कर—पुष्कर में एक तीर्थ, अजमेर के समीप।

१७३ कामकोष्ठी वा

१७४ कामकोष्णी — कुम्भकोणम मद्रास में।

१७५ कामगिरि—कामाख्या, आसाम में।

१७६ कामरूप—आसाम।

१७७ कामशैल—कामाख्या, आसाम में।

१७८ कामाश्रम — कारों, जिला बलिया में।

१७९ काम्बोज—अफगानिस्तान।

१८० काम्यवन वा

१८१ काम्यकवन—कामवन, भरतपुर में ।
१८२ काराष्ट्र—वेदवती तथा कोयना नदी के मध्य का देश ।
१८३ कारूप—१ - रीवां राज्य २- शाहाबाद जिला, बिहार प्रान्तमें ।
१८४ कार्तिकेयपुर—वैद्यनाथ, कुमायूं में ।
१८५ कालऊखल—कड़ा, इलाहाबाद जिला में ।
१८६ कालकवन—राजमहल पहाड़, बिहार में ।
१८७—कालगिरि—नीलगिरि पर्वत, मद्रास में ।
१८८ कालचंपा—चंपानगर, भागलपुर से ४ मील पश्चिम ।
१८९ कालिकावर्त—मथुरा में एक स्थान ।
१९० कालिञ्जर—कालिंजर, बुन्देलखण्ड में ।
१९१ कालिन्दी—यमुना नदी ।
१९२ कालीदह—मथुरा का एक तीर्थस्थल ।
१९३ काशी—बनारस ।
१९४—काश्यपी गंगा—साबरमती नदी, गुजरात में ।
१९५ काष्ठ मंडप—काठमांडू, नैपाल में ।
१९६—किन्दुविल्व ग्राम—केन्दुली, जिला वीर भूमि, बंगाल में ।
१९७—किंपुरुष देश—नैपाल ।
१९८ किरीट कोण—डाहपाड़ा नगर के पास, मुर्शिदाबाद जिला में एक स्थान ।
१९९ किष्किंधा वा
२०० किष्किंधापुर—अनागन्दी के निकट विलारी जिला में किष्किंधा नामक गाँव ।
२०१ कीकट — मगध-दक्षिण विहार । कुल विहार भी मगध कहलाता था ।
२०२ कीरग्राम—वैजनाथ, पंजाब में ।
२०३ कुक्कुटपादगिरि— कुरकिहार, गया जिला में ।
२०४ कुंण्डग्राम—वैशाली (बिसाढ़), मुजफ्फरपुर जिला में ।
२०५ कुण्डनपुर वा
२०६ कुण्डलपुर—कोंडावीर, बरार १ - कुण्डपुर अमरावती से ४० मील पूर्व : २. कोंडावीर, बरार में : ३. देवलवाड़ा, मध्यप्रांत के चाँदा जिला में ।
२०७ कुन्तलपुर वा
२०८ कुन्तलपुरी—कुवत्तूर, मैसूर में ।
२०९ कुन्थलगिरि—रामकुंट, हैदराबाद के उसमानाबाद जिले में ।
२१० कुब्जा—नर्मदा की सहायक नदी ।
२११ कुब्जागार—हृषीकेश, जिला सहारनपुर में ।

२१२ कुब्जाम्रक वा

२१३ कुब्जाम्रक देश—हृषीकेश से उत्तर की ओर एक स्थान।

२१४ कुभा—काबुल नदी।

२१५—कुमारवन—कुमायूँ गढ़वाल।

२१६ कुमारी—कन्याकुमारी अन्तरीप, त्रावणकूर में।

२१७ कुमुद वन—मथुरा में एक स्थान।

२१८ कुरु—गंगा यमुना के बीच मेरठ के पास का देश।

२१९ कुरुजाङ्गल या

२२० कुरुवन— कुरुक्षेत्र का एक भाग, हस्तिनापुर के उत्तर पच्छिम सरहिन्द के पास का जंगल या देश जिसकी राजधानी बिलासपुर थी और पीछे थानेश्वर हुई।

२२१ कुरुक्षेत्र—थानेश्वर जिला में प्रसिद्ध तीर्थ। सरस्वती और दृष्द्वती नदियों के बीच का देश जिसमें कर्नाल, सोनपत और पानीपत सम्मिलित थे।

२२२ कुलिका—बड़गावा, राजगिरि से ७ मील उत्तर।

२२३ कुलिन्ददेश—गढ़वाल तथा सहारनपुर के पास का देश।

२२४ कुल्यणक क्षेत्र — सोमनाथ पट्टन, काठियावाड़ में।

२२५ कुशपुर वा

२२६ कुशभवनपुर — सुलतानपुर, अवध में।

२२७ कुशस्थल—कन्नौज, जिला फर्रुखाबाद में।

२२८ कुशस्थलि—द्वारिका

२२९ कुशागारपुर,

२३० कुशाग्र नगर वा

२३१ कुशाग्रपुर—राजगिरि, विहार में।

२३२ कुशावती— १ द्वारिका २ सुलतानपुर (अवध): ३- डभोई। भड़ोच से ३८ मील उत्तर पूर्वः ४- कसूर, लाहौ से ३२ मील-दक्षिण पूर्व।

२३३ कुशग्रामिका,

२३४ कुशीनगर,

२३५ कुशी नगरी वा

२३६ कुशी नारा—कसिया, गोरख पुर से ३७ मील पूर्व।

२३७ कुसुमपुर—पटना।

२३८ कुहु—काबुल नदी।

२३९ कूर्मवन—कुमायूँ गढ़वाल।

२४० कूर्मक्षेत्र—एक तीर्थ स्थान चिकाकोलसे ८ मील पूर्व, जिला गंजाम मद्रास में।

२४१ कूर्माचल—कुमायूँ गढ़वाल।

२४२ कृतमालानदी—वैगानदी, मदुरा के पास मद्रास में।

२४३ कृतवती—साबरमती नदी, गुजरात में।

२४४ कृष्णगिरि—काराकोरम पर्वत. हिन्दूकुश पर्वत के पास।

२४५ कृष्णा गंगा—यमुना नदी ।
२४६ केकय—व्यास तथा सतलज के मध्य का प्रदेश ।
२४७ केतुमाल वर्ष—तुर्किस्तान ।
२४८ केदाराचल – केदारनाथ ।
२४६ केरल—मलाबार, ट्रावणकोर और कनारा का भूभाग ।
२५० केशीतीर्थ—मथुरा में एक तीर्थ ।
२५१ कैलाश—कैलाश पर्वत, तिब्बत के दक्षिण पश्चिम में ।
२५२ कोकामुख क्षेत्र—वाराह क्षेत्र, नैपाल राज्य में धवलगिरि शिखर पर ।
२५३ कोटि तीर्थ—इस नाम के तीर्थ रामेश्वर,हरद्वार, उज्जैनी, मथुरा व कुरुक्षेत्र में हैं ।
२५४ कोणादित्य वा
२५५ कोणार्क—कोनारक,उड़ीसा में ।
२५६ कोयल—अलीगढ़ ।
२५७ कोल गिरि—कोडगु, मद्रास प्रान्त में ।
२५८ कोलाहलपर्वत—ब्रह्मयोनि पहाड़, गया जिला में ।
२५६ कोलाहलपुर—कानर, मैसूर में ।
२६० कोली — वाराहक्षेत्र, जिला बस्ती में ।
२६१ कोशल (उत्तर)—अवध ।
कोशल (दक्षिण)—गोंडवाना, मध्य प्रान्त में ।
२६२ कोशलपुरी—अयोध्या ।
२६३ कौंडिन्यपुर—१—देवल वाड़ा, मध्य प्रान्त में:२ कुंडपुर,—अमरावती से ४०मील पूर्व:३—कोड़ावीर, बरार में ।
२६४ कौनिद देश—गढवाल तथा सहारन पुरकेआस पास का देश ।
२६५ कौशाम्बी वा
२६६ कौशाम्बी नगर—कोसम, इलाहाबाद जिला में ।
२६७ कौशिकी कच्छ—पुर्निया का जिला ।
२६८ क्रोड़देश—कुर्ग ।
२६६ क्रौञ्चपर्वत—कैलाश पर्वत का वह स्थान जिस पर मान सरोवर स्थित है, दक्षिण पश्चिम तिब्बत में ।

ख

२७० खज्जुरपुर—खजुराहो, बुंदेलखण्ड में ।
२७१ खड्गतीर्थ—अहमदाबाद में एक तीर्थ स्थान ।
२७२ खदिरवन—मथुरा में एक वन ।
२७३ खरकी—औरंगाबाद, हैदराबाद में ।
२७४ खलातिकपर्वत—बराबरपहाड़ी, गया जिला में ।
२७५ खाण्डव प्रस्थ— इन्द्रपाथ, पुरानी दिल्ली ।
२७६ खाण्डव वन—दिल्ली के आस पास का देश ।

२७७ खीर ग्राम—खीर गाँव, बर्दवान से २० मील उत्तर।

२७८ खेटक—कैर, अहमदाबाद से २० मील दक्षिण।

ग

२७६ गंगाद्वार—हरद्वार।

२८० गजेन्द्रमोक्ष—१—सोनपुर, गंगा और गन्डक के संगम पर, विहार में :
२—मद्रास में तिनावली से २० मील पश्चिम, ताम्रपर्णी के किनारे एक तीर्थ।

२८१ गन्धमादन पर्वत—कैलास पर्वत की एक शाखा, वद्रिकाश्रम इसी पर है।

२८२ गन्धर्वदेश—कन्धार।

२८३ गन्धवती—शिप्रा नदी की एक शाखा।

२८४ गम्भीरा—शिप्रा नदी की एक शाखा।

२८५ गया तीर्थ—१—रामेश्वर में एक तीर्थ २—गया :

२८६ गयानाभि—जाजपुर, उड़ीसा में।

२८७ गर्गाश्रम—१—गर्गासो, जिला रायबरेली में :
२—लोधमूसा पहाड़ी, कुमायूँ में।

२८६ गाकुग—१—कलिंग और मगध के मध्य का देश:
२—बंगाल का एक भाग।

२६० गालव आश्रम—१—गलता, जयपुर से ३ मील: २—गालव आश्रम, चित्रकूट पर।

२६१ गिरिकर्णिका — साबरमती नदी, गुजरात में।

२६२ गिरि नगर — गिरनार, काठियावाड़ में।

२६३ गिरियक—राजगिरि से ४½ मील पूर्व एक पहाड़ी।

२६४ गिरिव्रज वा

२६५ गिरि व्रजपुर—राज गिरि।

२६६ गिरिराज — गोवर्धन, मथुरा में।

२६७ गुडिच क्षेत्र — जनकपुर, जगन्नाथ पुरी में।

२६८ गुनकाशी — १-ऊखीमठ् वा शोणितपुर, कुमायूँ में :
२-भुवनेश्वर, उड़ीसा में।

२६६ गुरुग्राम—गुड़गाँव, पंजाब में।

३०० गुरुपादगिरि—गुरुपा पहाड़ी, गया में।

३०१ गुह्य क्षेत्र—गंगासागर, बंगाल में।

३०२ गृद्धकूट पर्वत वा

३०३ गृद्ध गुहा — गिरियक पहाड़ी, राजगिरि से ढाई मील दक्षिण पूर्व।

३०४ गोकर्ण—गोंदिया, बम्बई में।

३०५ गोकर्ण तीर्थ—गोला गोकर्णनाथ।

३०६ गोकुल—गोकुल, मथुरा में।

३०७ गोपगिरि—ग्वालियर।

३०८ गोपाद्रि—१ ग्वालियर : २- *शंकराचार्य पर्वत, श्रीनगर के* पास (कश्मीर)।

३०९ गोरक्षाश्रमतीर्थ --- त्रियुगी नारायण।

३१० गोवर्धन — गोवर्धन पहाड़ी, मथुरा के पास।

३११ गोशृंग पर्वत या

३१२ गोस्थल—

१—नरवर के पास मध्यप्रान्त में एक पहाड़ी :

२—पूर्वी *तुर्किस्तान में कोहमरी।* यह तीर्थस्थान था :

३—काठमाडू के पास नैपाल में गोपुच्छ पहाड़।

३१३ गौड़ (उत्तर)—कोशल, जिसकी राजधानी श्रावस्ती (सहेटमहेट) थी।

गौड़ (दक्षिण)--कावरी नदी का तट।

गौड़ (पूर्व)—बंगाल, जिसकी *राजधानी लखनौती थी।*

गौड़ (पश्चिम) — गोंडवाना (मध्य प्रान्त)।

३१४ गौड़ा—गोंडा जिला, अवध में।

३१५ गौतम आश्रम या

३१६ गौतम क्षेत्र—१—अहिआरी, जनकपुर से २४ मील दक्षिण पश्चिम।

२—गोदना, रेवलगंज के पास, छपरा जिले में।

३—अहरौली, बक्सर के पास :

४—*त्रयम्बक, नासिक से १८* मील।

३१७ गौतमी—गोदावरी नदी।

३१८ गौतमीतीर्थ—१—अहिआरी, जनकपुर से २४ मील दक्षिण पश्चिम : २—गोदना, रेवलगंज के पास छपरा जिले में : ३—अहरौली, बक्सर के पास : ४—त्रयम्बक, नासिक से १८ मील :

३१९ गौरी—पंजकोरा नदी, काबुल नदी की सहायक।

३२० गौरीतीर्थ—त्रियुगी नारायण, *गढ़वाल में एक तीर्थ स्थान।*

३२१ गौरीशङ्कर—माउन्ट एवरस्ट, नैपाल में।

घ

३२२ घर्घरा—घाघरा नदी।

३२३ घारापुरी — एलीफेन्टा द्वीप, बम्बई से ६ मील।

३२४ घृष्णेश्वर — घुसमेश्वर, हैदराबाद में।

च

३२५ चक्रतीर्थ—निम्नलिखित तीर्थों के अन्तरगत एक तीर्थ—१—कुरुक्षेत्र, २—प्रभास, ३—त्रयम्बक, ४—काशी, ५—रामेश्वर।

३२६ चक्रनगर—किलमर, वर्धा से *१७ मील उत्तर पूर्व, मध्य प्रान्त* में।

ढ

३८४ ढुण्ड प्रयाग — शिवप्रयाग, गढ़वाल में।

त

३८५ तगर—तेर, हैदराबाद के जिला द्रुग में।

३८६ तण्डीर देश—भूतपुरी, मद्रास प्रान्त के चिङ्गिलपट ज़िला में।

३८७ तपनि—ताप्ती नदी।

३८८ तपोगिरि—रामटेक, नागपुर के पास।

३८९ तपोवन—नासिक के पास एक तीर्थ।

३९० तमसा नदी—टौंस नदी।

३९१ तलकाड़ — तलकाड़, कावेरी के तट पर मैसूर में।

३९२ तक्षशिला — शाहढेरी, जिला रावलपिण्डी में।

३९३ ताड़का वन—बक्सर के पास एक स्थान।

३९४ तापसाश्रम—पंढरपुर, जिला शोलापुर, बम्बई में।

३९५ तापी—ताप्ती नदी।

३९६ तामसवन—व्यास और सेरवरी नदी के सगम पर का सुलतानपुर, पजाब में।

३९७ ताम्रपर्णी—१—लंका: २—मद्रास के तनावली जिला में ताँबरवर्ली नदी।

३९८ ताम्रलिप्ति—तमलुक, जिला मिदनापुर बगाल में।

३९९ तालवनपुर—तलकाड़, कावेरी के तट पर, मैसूर में।

४०० तिलप्रस्थ—तिलपत, दिल्ली की कुतुबमीनार से १० मील दक्षिण पूर्व।

४०१ तीर भुक्ति—तिरहुत।

४०२ तीर्थ पुरी—कैलाश के पश्चिम में एक स्थान।

४०३ तीर्थराज—प्रयाग या इलाहाबाद।

४०४ तुखार—१—बलख और बदख्शाँ: २—यूहेशी।

४०५ तुङ्गनाथ—ऊखीमठ के दक्षिण, कुमायूं में एक तीर्थ स्थान।

४०६ तुंगवेणी—तुंगभद्रा नदी।

४०७ तुरुष्क—पूर्वी तुर्किस्तान।

४०८ तुलजाभवानी—तुलजापुर, खन्डवा के पास।

४०९ तेलिङ्गना या

४१० तैलङ्ग—गोदावरी और कृष्णा के बीच का देश।

४११ तैलपर्णी—पेन्नैरनदी, मद्रास में।

४१२ तोसली—धौली, उड़ीसा में।

द

४१३ दण्डकारण्य—महाराष्ट्र व नागपुर। जनस्थान इसका एक भाग था।

४१४ दन्तपुर या

४१५ दन्तुर—जगन्नाथपुरी

४१६ दन्तुरा नदी—वैतरणी, बेसीन के उत्तर में।

४१७ दर्भवती – दभोई, बड़ोदा से २० मील दक्षिण पूर्व।

४१८ दर्शनपुर—दिस, बनास नदी के किनारे गुजरात में।

४१६ दशान या

४२० दशार्ण—मालवा का पूर्वी भाग व भूपाल पच्छिमी दशार्ण थे, और मध्यप्रान्त का छत्तीस गढ़ पूर्वी दशार्ण था।

४२१ दक्षिण कोशल — गोंडवाना, मध्य प्रान्त में।

४२२ दक्षिण गिरि—१—साँची और उसके आस पास का प्रदेश : २—भोपाल राज्य।

४२३ दक्षिण गोकर्ण तीथ—वैद्यनाथ, उड़ीसा में।

४२४ दक्षिण गगा—गोदावरी नदी।

४२५ दक्षिण मथुरा—मदुरा, मद्रास में।

४२६ दक्षिण खण्डखण्ड—वैद्यनाथ, उड़ीसा में।

४२७ दक्षिण सिंधु—चंबल की सहायक नदी।

४२८ दारुवन या

४२६ दारुकावन—औंद, हैदराबाद में।

४३० दालभ्य आश्रम—डलमऊ, जिला रायबरेली में।

४३१ दाहल—बुन्देलखण्ड और मध्य प्रान्त का एक भाग जो चेदि राज्य था।

४३२ दीपवती—दिवर टापू, गोवा के उत्तर में।

४३३ दीर्घपुर—डिग, भरतपुर में।

४३४ दुर्वासाश्रम—१—खल्ली पर्वत पर जिला भागलपुर में : २—दुबाउर की पहाड़ी पर गया जिले में : ३— गोलगढ़, काठियावाड़ में।

४३५ दूधगंगा—दौली नदी, गढ़वाल में।

४३६ दृषद्वती—घग्घ नदी जो अम्बाला और सरहिंद के बीच बहती थी।

४३७ देवगिरि या

४३८ देव पर्वत—१—दौलताबाद, हैदराबाद में : २—अरावली पर्वत का एक भाग : ३—देवगर पहाड़ी, मालवा में।

४३९ देवराष्ट्र—महाराष्ट्र।

४४० देवीका—१—सरयू नदी, अवध में : २—पजाब की एक नदी।

४४१ देवी कोट—१—शोणितपुर, कुमायूँ में :२—देवी कोट, कावेरी तट पर मद्रास में।

४४२ देवीपाटन—तुलसीपुर, बलरामपुर से उत्तर, गोंडा जिला में।

४४३ द्राविड़ देश—मैसूर से कन्या कुमारी तक का देश।

४४४ द्रोणाचल—दूनागिरि पर्वत, कुमायूँ में।
४४५ द्वारावती—१—द्वारिका : २—स्याम देश : ३—डोरसमुद्र, मैसूर में।
४४६ द्वारासमुद्र—हुलावीड, जो बारहवीं शताब्दी में मैसूर की राजधानी था।
४४७ द्वारिकेश्वरी—दलकिसोर नदी, बंगाल में।
४४८ द्वितवर कूट—सम्मेद शिखर।
४४९ द्वैतवन—देवबन्द, जिला सहारनपुर में।
४५० द्वैपायनह्रद—थानेश्वर के समीप उत्तरी भाग में एक झील।

ध

४५१ धनकटक—धरणीकोट, कृष्णा नदी के तट पर जिला गुन्टुर में।
४५२ धनपुर—जौहरगंज, जिला गाजीपुर में।
४५३ धनुतीर्थ या
४५४ धनुष्कोटी तीर्थ—रामेश्वर से १२ मील एक तीर्थ।
४५५ धर्मस्थान — १—सहेट महेट, बलरामपुर से ६ मील : २—कालीकट।
४५६ धर्मपुर — धरमपुर, नासिक के उत्तर में।
४५७ धर्मक्षेत्र—कुरुक्षेत्र।
४५८ धर्मारण्य—कण्व आश्रम, कोटा से ४ मील दक्षिण पूर्व राजपूताना में।
४५९ धवलकूट या
४६० धवलगिरि — धौली पहाड़ी, उड़ीसा में।
४६१ धारानगर या
४६२ धारापुर—धार या धाड़, मालवा में।
४६३ धुंधरा—ग्रामेर, जयपुर में।
४६४ धूतपाप—धोपाप, सुलतानपुर से १८ मील दक्षिण पूर्व।
४६५ ध्रुवघाट या
४६६ ध्रुवतीर्थ—मथुरा में एक तीर्थ।

न

४६७ नगर कोट— काँगड़ा या कोट काँगड़ा।
४६८ नन्दनस्थान—पुष्कर में एक स्थान।
४६९ नन्दगिरि — नन्द दुर्ग पर्वत, मैसूर में।
४७० नरनारायणआश्रम—बद्रीनाथ।
४७१ नलपुर—नरवर, ग्वालियर से ६० मील दक्षिण पश्चिम।
४७२ नलिनी—ब्रह्मपुत्रा नदी।
४७३ नवकुलल —१—रेणुक, आगरा के समीप : २—सोरों : ३— काशी : ४—कड़ा (इलाहाबाद के पास) : ५—बटेश्वर : ६—कालिंजर : ७ उज्जैन : ८ काली।
४७४ नवगांवार—कन्धार।
४७५ नव देवकुल—नेवाल, उन्नाव से ३३ मील दक्षिण पश्चिम।

४७६ नवद्वीप—नदिया, बंगाल में।
४७७ नवराष्ट्र—नौसरी, भड़ौच जिला में।
४७८ नागतीर्थ—पुष्कर में एक तीर्थ।
४७६ नागपर्वत—पुष्कर में एक तीर्थ।
४८० नागपुर — हस्तिनापुर, मेरठ जिला में।
४८१ नाटक—दक्षिणी गुजरात व खानदेश का वह भाग जो माही और ताप्ती नदियों के बीच है।
४८२ नारायणक्षेत्र — त्रियुगी नारायण, गढ़वाल में।
४८३ नारायणी—गण्डकी नदी।
४८४ नालन्द—नालन्दा, बिहार में।
४८५ निगमबोध तीर्थ या
४८६ निगमबोध घाट—पुरानी दिल्ली में एक तीर्थ।
४८७ निचुलपुर—त्रिचनापल्ली, मद्रास में।
४८८ निषध—नरवर, ग्वालियर से ४० मील दक्षिण पश्चिम; और नरवर के पास का प्रदेश।
४८६ निषाध भूमि— प्रथम मारवाड़, और बाद में विंध्य और सतपुड़ा के पास का भूभाग जब निषाध (भील) मारवाड़ से नीचे हटा दिये गये थे।
४६० नीलकंठ तीर्थ — अहमदाबाद में एक तीर्थ।
४६१ नीलगिरि,
४६२ नील पर्वत या
४६३ नीलाचल— १— जगन्नाथपुरी में एक ऊंची भूमि इसी पर जगन्नाथ जी का मन्दिर है: २— गोहाटी की एक पहाड़ी जिस पर कामाख्या देवी का मन्दिर है: ३—हरद्वार की एक पहाड़ी।
४६४ नैमिषकुञ्ज वा
४६५ नैमिषारण्य—नीमसार, सीतापुर जिला में।

प

४६६ पञ्चतीर्थ—हरद्वार के पश्चिम में पाँच सरोवरों का एक समूह।
४६७ पञ्चनद—पंजाब।
४६८ पञ्चनदतीर्थ—हरद्वार के पश्चिम में ५ सरोवरों का एक समूह।
४६६ पञ्चवटी—नासिक।
५०० पद्मपुर—१ नरवर, ग्वालियर राज्य में: २-विजयनगर, नरवर से २५ मील दक्षिण: ३-अमरावती के पास चन्द्रपुर।
५०१ पद्मक्षेत्र—कोनारक, पुरी से २४ मील उत्तर पश्चिम—उड़ीसा में।
५०२ पद्मावती—१-नरवर, ग्वालियर में: २-विजयनगर, नरवर से २५ मील दक्षिण: ३-चन्द्रपुर, अमरावती के पास।
५०३ पम्पा—तुंगभद्रा की सहायक नदी।
५०४ पम्पापुर—विंध्याचल, मिर्जापुर से ५ मील पश्चिम।

५०५ पम्पासर या

५०६ पम्पाक्षेत्र—अनागंदी, तुंगभद्रा के दक्षिण में बिलारी जिले में। यहाँ ऋष्यमूक पर्वत और पंपासर सरोवर हैं।

५०७ पयस्विनी नदी—पापनाशिनी, त्रावणकोर में।

५०८ पयोष्णी नदी—१-पैन-गंगा, मध्यप्रदेश में : २-पूर्ति, त्रावणकोर में : ३-पूर्णा, तापी की सहायक : ४-तापी।

५०९ परलोक—त्रावणकोर।

५१० परशुरामपुर—परशुरामपुर, अवध के प्रतापगढ़ जिला में।

५११ परशुरामक्षेत्र—कोंकण : सूरत और गोवा के बीच का प्रदेश।

५१२ परुष्णी—रावी नदी।

५१३ पर्णाशा—बनास नदी, राजपूताने में।

५१४ पलक्क- देश—नेलोर जिला, मद्रास प्रान्त में।

५१५ पश्चिमोदधि—अरबसागर।

५१६ पाञ्चाल—रुहेल खण्ड और समाव का प्रदेश। आरम्भ में पाञ्चाल देश हिमालय से चम्बल नदी तक फैला था।

५१७ पाटलिपुत्र—पटना।

५१८ पाणिप्रस्थ—पानीपत, पंजाब में।

[५]१९ पाण्ड्य राज्य—त्रिनवली और मदुरा के जिले।

५२० पाण्डुपुर—पण्ढरपुर, शोलापुर जिले में।

५२१ पाताल—१-तत्ता, सिंध में। २—हैदराबाद (सिंध) यहाँ नागोंका राज्य था।

५२२ पातालपुर—१-बलख : २—अक्सु बलख के उत्तर पूर्व।

५२३ पातालवती नदी—चम्बल नदी की एक शाखा।

५२४ पानानृसिंह—मंगलगिरि, मद्रास प्रान्त के कृष्णा जिला में।

५२५ पापनाश या

५२६ पापविनाशन—कर्नाटक के त्रिनवली जिले में एक तीर्थ।

५२७ पापा—बिहार से ७ मील दक्षिण पूर्व एक गाँव, बिहार प्रान्त में।

५२८ पारद—ईरान।

५२९ पारालपुर—देवगढ़, बंगाल में।

५३० पारसमुद्र—लंका।

५३१ पारसिक या

५३२ पारस्य—ईरान।

५३३ पालिबोथा—पटना।

५३४ पावनी—घग्घर व सरस्वती नदी, कुरुक्षेत्र में।

५३५ पावा या

५३६ पावापुर—पडरौना, कसिया से १२ मील उत्तर पूर्व, देवरिया जिला में।

५३७ पावापुरी—बिहार से ७ मील दक्षिण पूर्व एक गाँव।

५३८ पिण्डारक तीर्थ—गोलगढ़ के समीप, द्वारका से १६ मील पूर्व एक तीर्थ।
५३६ पितृ तीर्थ—गया।
५४० पिष्ठपुर — पीठापुर, गोदावरी जिले में।
५४१ पुण्डरीय — शत्रुंजय पहाड़ी, गुजरात में।
५४२ पुण्ड्रदेश — गौड़, पश्चिमी बंगाल।
५४३ पुण्ड्रवर्धन—पाण्डुआ, माल्दा से ६ मील उत्तर।
५४४ पुनक—पूना।
५४५ पुराली—श्रावण कोर।
५४६ पुरुषपुर—पेशावर।
५४७ पुरुषोत्तम पुरी वा
५४८ पुरुषोत्तम क्षेत्र—जगन्नाथ पुरी।
५४६ पुलग्राम—रामेश्वर में एक तीर्थ।
५५० पुष्कर तीर्थ वा
५५१ पुष्कर समिति—पुष्कर, अजमेर से ६ मील।
५५२ पुष्करावर्ती वा
५५३ पुष्कलावती—चारसद्दा, गांधार की प्राचीन राजधानी, पेशावर से १७ मील उत्तर-पश्चिम
५५४ पुष्पपुर—पटना।
५५५ पुण्यवती—बनारस।
५५६ पुण्यवती नदी—ताम्बाई नदी, श्रावणकोर में।
५५७ पूर्णतीर्थ—हृषीकेश, सहारनपुर जिला में।
५५८ पूर्ण दर्व—कालिंजर, बुंदेलखण्ड में।
५५६ पूर्व गंगा—नर्मदा नदी।
५६० पृथूदक—पेहोवा, कर्नाल जिले में।
५६१ पृष्ठ चंपा—बिहार।
५६२ पौंड्र देश—गौड़: पश्चिमी बंगाल।
५६३ प्रजापतीक्षेत्र—इलाहाबाद में झूंसी से लेकर वासुकी ह्रद तक की भूमि।
५६४ प्रतिष्ठान—बिठूर, कानपुर के पास।
५६५ प्रतिष्ठान दुर्ग वा
५६६ प्रतिष्ठानपुर—झूंसी, इलाहाबाद के समीप।
५६७ प्रतिष्ठानपुर दक्षिण—पैठन, हैदराबाद में।
५६८ प्रद्युम्न नगर—पाण्डुआ, हुगली जिला में।
५६६ प्रभावती—काल्पी, जालौन जिला में।
५७० प्रभास—१—सोमनाथ, काठियावाड़ में : २—पभोसा, इलाहाबाद से ३२ मील दक्षिण पश्चिम।
५७१ प्रभासकूट—सम्मेद शिखर।
५७२ प्रमाद वन—चित्रकूट में एक स्थान।
५७३ प्रयाग—इलाहाबाद।

५७४ प्रलम्ब—मदावर, बिजनौर से ८ मील उत्तर।

५७५ प्रवरपुर—श्रीनगर (कश्मीर)।

५७६ प्रागज्योतिषपुर—गौहाटी, आसाम में।

५७७ प्रागदेश—आसाम।

५७८ प्राची सरस्वती नदी — १-सरस्वती, कुरुक्षेत्र में २-पूर्ववाहिनी गंगा, बिठूर में।

५७९ पौण्डरीक—पंढरपुर, शोलापुर जिले में।

५८० पौरव—झेलम और गुजरात के ज़िले।

फ

५८१ फलकीवन—कुरुक्षेत्र में थानेसर से १७ मील दक्षिण पूर्व एक स्थान जहाँ शुक्र तीर्थ है।

५८२ फल्गु—गया के पास नीलाँजना और मोहना की सम्मिलित धार।

५८३ फुल ग्राम—चटगाँव, पाकिस्तानी बंगाल में।

५८४ फेनगिरि—सिंधु नदी के मुहाने के पास एक स्थान।

५८५ फेना—गोदावरी की सहायक नदी।

ब

५८६ बकुलवन — मथुरा में एक स्थान।

५८७ बक्रेश्वर—बक्नाथ, वीरभूमि जिले में।

५८८ बक्रेश्वरी—बाका नदी, बर्दवान जिले में।

५८९ बङ्ग—बंगाल के चार भाग थे—

१—वरेन्द्र – महानदी, ब्रह्मपुत्र, गंगा और कुचबिहार के बीचः

२—बंग — ब्रह्मपुत्र, गंगा, मेगना और रानिया पर्वत के बीच :

३—र ढ़—गंगा, जालिंध, बराकर और राजमहल पर्वत के बीच :

४—बागड़ी गंगा और ब्रह्मपुत्र की जमा की हुई मिट्टी की भूमि से समुद्र तक।

५९० बदृता तीर्थ या—

५९१ बदृवा—काँगड़ा से २२ मील दक्षिण एक स्थान।

५९२ बचमती—वागमती नदी, नैपाल में।

५९३ बद्रिकाश्रम—बद्रीनाथ।

५९४ बनवासी—बनौसी, उत्तरी कनाडा में।

५९५ बनायु—अरब।

५९६ बन्जुला—मंजेरा, गोदावरी की सहायक नदी।

५९७ बन्नू—बन्नू, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त पाकिस्तान में।

५९८ बल्लपुरी—विक्रमपुर, ढाका जिले में।

५९९ बरया—बगाँव, बम्बई प्रान्त में।

६०० बाहरदेश—बीकानेर व भावलपुर राज्य।

६०१ बाणपुर—१-शोणितपुर,कुमायूँ

में: २-बियाना, जयपुर में: ३-महाबलीपुर, कारोमण्डल कोस्ट में।

६०२ बामरी—बेबोलिन।

६०३ बाहु बाहिनी—बागिन नदी, बुन्देलखण्ड में।

६०४ बालोह—बिलोचिस्तान।

६०५ बावेरू—बेबोलिन।

६०६ बाहिष्मती—बिठूर, कानपुर के पास।

६०७ बाहीक—ब्यास और सतलज के बीच का प्रदेश-कैकय के उत्तर में।

६०८ बाहुदा—धुमेला, बुढ़ राती (राती की पुरानी धारा)।

६०९ बिभावरी—बेबोलिन।

६१० बिन्दुसर—१-रुद्र हिमालय पर गंगोत्री से दो मील दक्षिण एक सरोवर:
२-अहमदाबाद के उत्तर पश्चिम सिद्धपुर में एक सरोवर:
३-भुवनेश्वर (उड़ीसा) में एक सरोवर।

६११ बुद्धकाशी—सारनाथ, बनारस के पास।

६१२ बैजयन्ती—बनवासी, उत्तर कनाड़ (कनारा) में।

६१३ बोध—इन्द्रप्रस्थ (इन्द्रनाथ) के आसपास का प्रदेश।

६१४ ब्रज मण्डल—मथुरा के आस पास की पवित्र भूमि।

६१५ ब्रह्म—बर्मा देश।

६१६ ब्रह्म कुण्ड—१-वह कुन्ड जिस से ब्रह्मपुत्रा नदी निकली है: २-रामेश्वर में एक कुन्ड।

६१७ब्रह्मगिरि—त्र्यम्बक, नासिक से २० मील।

६१८ ब्रह्मतीर्थ—१-पुष्कर में एक तीर्थ: २ देव प्रयाग में एक तीर्थ स्थान।

६१९ ब्रह्म देश—बर्मा देश।

६२० ब्रह्मनद—ब्रह्मपुत्रा नदी।

६२१ ब्रह्मपुर—गढ़वाल और कुमायूँ।

६२२ ब्रह्मपुरी—मान्धाता, इन्दौर से ४० मील दक्षिण।

६२३ ब्रह्मर्षि देश—ब्रह्मावर्त और यमुना के बीच का देश।

६२४ ब्रह्मसरतीर्थ—१-गया में एक तीर्थ: २—पुष्कर में एक तीर्थ स्थान।

६२५ ब्रह्मावर्त—सरस्वती और दृषद्वती के बीच का भूभाग। यहीं आर्य्य पहले बसे थे।

६२६ ब्रह्मावर्त तीर्थ—बिठूर, कानपुर के पास।

६२७ ब्राह्मणी—ब्राह्मनी नदी, उड़ीसा में।

भ

६२८ भक्तपुर—भाटगाँव, नैपाल में।

६२९ भद्रिय या—

६३० भद्रिय नगर—भदरिया, भागल-

पुर से ८ मील दक्षिण।

६३१ भद्रवन—मथुरा में एक वन।

६३२ भद्रा—यारकन्द नदी।

६३३ भद्रावती—भटल, चांदा जिला मध्यप्रान्त में।

६३४ भद्रिकापुरी—भदरिया, भागलपुर से ८ मील दक्षिण।

६३५ भरुकच्छ—भड़ौंच।

६३६ भलानसः—बोलन दर्रा।

६३७ भवानी नगर — तुलजापुर, खंडवा से ४ मील।

६३८ भविष्य बद्री—गढ़वाल में एक स्थान।

६३९ भागप्रस्थ—बागपत, मेरठ से ३० मील पश्चिम्।

६४० भागानगर—हैदराबाद (दक्षिण)।

६४१ भाण्डीर वन—मथुरा में एक वन।

६४२ भारतवर्ष—हिन्दोस्तान।

६४३ भार्गव—पश्चिमी आसाम। भरों का देश।

६४४ भार्गवी—पुरी के पास उड़ीसा में दंडामङ्गा नदी।

६४५ भास्कर क्षेत्र—इलाहाबाद।

६४६ भीमतीर्थ—भीमताल, नैनीताल जिला में।

६४७ भीमनगर—कांगड़ा,पंजाब में।

६४८ भीमपुर — बीदर, हैदराबाद में।

६४९ भीमास्थान—तख्तेभाई, पेशावर से २८ मील उत्तर पूर्व।

६५० भीमरथी—भीमा, कृष्णा की सहायक नदी।

६५१ भुस्कार—बुखारा।

६५२ भृगुआश्रम—१-बलिया : २-भड़ौंच।

६५३ भृगुतीर्थ—भेड़ाघाट, जबलपुर से १२ मील पश्चिम।

६५४ भृगुतुंग—गंडकीनदी के पूर्वी तट पर एक पहाड़ी नैपाल में।

६५५ भृगुपुर या

६५६ भृगुक्षेत्र—भड़ौंच।

६५७ भोजकटपुर—भोजपुर, भिलसा से ६ मील दक्षिण पूर्व।

६५८ भोजपाल—भोपाल।

६५९ भोजपुर—भोजपुर, भिलसा से ६ मील दक्षिण पूर्व।

म

६६० मगध—दक्षिण विहार जिसकी राजधानी राजगृह थी। कुल विहार भी मगध कहलाने लगा था।

६६१ मङ्गलतीर्थ—रामेश्वर में एक तीर्थ।

६६२ मच्छेरी—अलवर।

६६३ मञ्जुपाटन—काठमाण्डू के पास एक गाँव।

६६४ मञ्जुला—वंजरा, गोदावरी की सहायक नदी।

६६५ मणिनागतीर्थ — राजगिरि में एक स्थान।
६६६ मणिपुर — १-मन्कर बन्दर, चिकाकोल के दक्षिण में: २-मनालुर,मदुरा के पास: ३-रतनपुर, मध्यप्रांत में।
६६७ मणिमतिपुरी—एलोरा, हैदराबाद में।
६६८ मण्डपपुर—माण्डू, मालवा में।
६६९ मतिपुर—मदावर, बिजनौर से ८ मील उत्तर।
६७० मत्स्यतीर्थ—तुंगभद्रा के समीप तिरुपानन्कुद्रम के पश्चिम एक छोटी झील।
६७१ मत्स्य देश—जयपुर, अलवर और भरतपुर का कुछ अंश।
६७२ मद्र देश—व्यास और सिन्धु नदी के बीच का भूभाग।
६७३ मदन तपोवन — कारों, कुरथाडीह से ८ मील उत्तर बलिया जिले में।
६७४ मदन बनारस—जमनियाँ,गाजीपुर जिला में।
६७५ मद्र था।
६७६ मद्रदेश—रावी व चिनाव के मध्य का देश।
६७७ मधुपुरी—महोली, मथुरा से ५ मील दक्षिण-पश्चिम।
६७८ मधुवन—मथुरा।
६७९ मधुरा था
६८० मधुरानगरी—मथुरा।
६८१ मध्यदेश — सरस्वती, प्रयाग, हिमालय और विंध्याचल के बीच का देश।
६८२ मध्यद्वीप—मार्झी, छपरा जिला में घघरा नदी पर।
६८३ मध्यपुष्कर — पुष्कर में एक सरोवर।
६८४ मध्यमिका—नागरी, चित्तौड़ के पास।
६८५ मध्यमेश्वर—केदारनाथ से १२ मील दक्षिण एक क्षेत्र।
६८६ मध्येम—माम्ही, छपरा जिला में घाघरा नदी पर।
६८७ मन्दराचल—बद्रीनाथ।
६८८ मन्दाकिनि—काली नदी, गढ़वाल में।
६८९ मन्दागिरि—१-भागलपुर की एक पहाड़ी: २—बद्रीनाथ और उसके उत्तर के पर्वत।
६९० मयराष्ट्र—मेरठ।
६९१ मयूर—मायापुर, हरद्वारके पास।
६९२ मरु—राजपूताना।
६९३ मरुधन्व—मारवाड़। प्राचीन काल में कुल राजपूताना भी मरुधन्व कहा जाता था। यह हस्तिनापुर और द्वारिका के रास्ते में था।
६९४ मरुस्थली—राजपूताना।
६९५ मरुद्वध नदी—१—चंद्रभागा, झेलम और चिनाव का संयुक्त प्रवाह: २—चिनाव की एक

सहायक नदी।

६९६ मलकूट—चोलराज्य, तंजोर के चारों तरफ।

६९७ मलयगिरि — ट्रावणकोर की पहाड़ियाँ, पश्चिमी घाट का दक्षिणी हिस्सा।

६९८ मलयालम—मलाबार, कोचिन व ट्रावणकोर का देश।

६९९ मल्लदेश—१—मुलतान का जिला; २—हजारी बाग और मानभूम के जिलों का कुछ भाग; ३—गोरखपुर जिले का अनिरूधवा गाँव, कसिया के समीप।

७०० मल्लपर्वत—पारसनाथ की पहाड़ियाँ, छोटा नागपुर में।

७०१ मल्लार देश—मलाबार।

७०२ महती—माहीनदी, चम्बल की एक शाखा।

७०३ महाकाल तीर्थ,

७०४ महाकालपुरी या

७०५ महाकाल वन—उज्जैन।

७०६ महाकोशल—अमरकंटक, महानदी, वैनगंगा व हरदा नदियों के बीच का देश व मध्य प्रान्त का पूर्वी भाग। इसे दक्षिण कोशल भी कहते थे।

७०७ महाकान्त — बंगाल का एक भाग।

७०८ महाप्रस्थान यात्रा—केदारनाथ।

७०९ महावन – मथुरा में एक स्थान।

७१० महालय तीर्थ—नर्मदा नदी पर, इन्दौर से ४० मील।

७११ महाश्मशान—बनारस।

७१२ महासार—मसार, आरा से ६ मील पश्चिम।

७१३ महाक्षेत्र—बद्रीनाथ।

७१४ महिष—खानदेश, औरंगाबाद वा दक्षिण मालवा के भाग।

७१५ महीधर—महियर, बुंदेल खण्ड में।

७१६ महेन्द्रपर्वत—उड़ीसा से मद्रास तक की पर्वत शृंखला।

७१७ महेश या

७१८ महेश्वर—चुली महेश्वर, नर्मदा के तटपर इन्दौर से ४० मील दक्षिण, मान्धाता से मिला हुआ।

७१९ महोत्सव नगर—महोबा, बुंदेल खण्ड में।

७२० महोदधि—बंगाल की खाड़ी।

७२१ महोदय—कन्नौज, फर्रुखाबाद ज़िला में।

७२२ माणिकनगर या

७२३ माणिकपुर — माणिकयाला, रावलपिण्डी ज़िला में।

७२४ मातङ्ग—आसाम का दक्षिण पूर्वी भाग।

७२५ मातङ्ग आश्रम—संघहस्तीस्तूप या मातंगी, गया जिले में।

७२६ मातृतीर्थ—सिद्धपुर, गुजरात में अहमदाबाद से ६४ मील।

७२७ मानसतीर्थ—रामेश्वर में एक तीर्थ।

७२८ माध्यमिक—नागरी, चित्तौड़ के पास।

७२९ मानसरोवर — कैलशपर्वत पर एक झील, तिब्बत के दक्षिण पश्चिम।

७३० मायापुरी — माया, हरद्वार के पास।

७३१ मारपुर—गाँहुआ, हुगली जिले में।

७३२ मार्कण्डेय तीर्थ या

७३३ मार्कण्डेय क्षेत्र—१—गंगा व सरजू के संगम पर एक तीर्थ : २—गंगा व गोमती का संगम : ३—तिरुकडयूर, तंजोर जिले में।

७३४ मार्तिकावत — मैरता, मारवाड़ में।

७३५ मार्तिकावत देश — जोधपुर, जयपुर और अलवर के कुछ भाग।

७३६ मालव—मालवा।

७३७ माला—छपरा जिला और उसके पास का देश जो गंगा के उत्तर, विदेह के किनारे और मगध के उत्तर पश्चिम में था।

७३८ मालिनी—१-मन्दाकिनी नदी: २-घाघरा नदी की सहायक मालिनी नदी।
:३-चम्पानगर, भागलपुर से ४ मील पश्चिम।

७३९ माल्यवान—तुंगभद्रा के तट पर अनागन्दी पहाड़ी, मद्रास के गिलारी ज़िला में।

७४० माहिषक—१-नर्मदा के किनारे का भूभाग जिसकी राजधानी माहिष्मती (मान्धाता) थी : २-मैसूर राज्य।

७४१ माहिष्मती—मान्धता व महेश्वर नर्मदा नदी पर, इन्दौर से ४० मील दक्षिण।

७४२ माहिष्मतीपुर—मैसूर।

७४३ मिथिला—१-तिरहुत: २-जनकपुर, नैपाल राज्य के दक्षिण भाग में।

७४४ मिश्रधरकूट—सम्मेद, शिखर।

७४५ मित्रवन—१-मुलतान: २-कनारक, उड़ीसा में।

७४६ मीनाक्षी—मदुरा, मद्रास में।

७४७ मुक्तवेणी—हुगली के उत्तर में त्रिवेणी नदी।

७४८ मुद्गल आश्रम,

७४९ मुद्गल गिरि या

७५० मुद्गल पुरी—मुङ्गेर, बिहार प्रान्त में।

७५१ मुचकुंद—धौलपुर से ३ मील पश्चिम एक स्थान व गुफा।

७५२ मुरला—नर्मदा नदी।

७५३ मूलतापी—ताप्ती नदी।

७५४ मूलस्थान—मुलतान, पंकिस्ताना पंजाब में।

७५५ मूषिक—१-सिंध का ऊपरी भाग: २ कोंकण: ३ मलाबार का समुद्री किनारा।

७५६ मेकल—अमर कण्टक, नर्मदा का उद्गमस्थान, बघेलखंड (रीवां) में।

७५७ मेकलानन्दिनी—नर्मदा।

७५८ मैनकप्रभा—सोन नदी।

७५६ मैनेय—तामेश्वर, महायान डीह से ४ मील दक्षिण पश्चिम, बस्ती जिले में।

७६० मैलेय—मलयागिरि, पश्चिमी घाट पर्वत श्रेणी का कावेरी नदी से दक्षिण का भाग।

७६१ मृगदाव—सारनाथ, बनारस के पास।

७६२ मोहनकूट—सम्मेद शिखर।

७६३ मौलिस्थान—मुलतान, पाकिस्तानी पंजाब में।

य

७६४ यमुना तीर्थ—रामेश्वर में एक तीर्थ।

७६५ ययाति नगर—कटक, उड़ीसा में।

७६६ ययातिपुर—१—जाजमऊ, कानपुर से १ मील :
२—जाजपुर, उड़ीसा में।

७६७ यवद्वीप—जावा द्वीप।

७६८ यवन नगर—जूनागढ़, गुजरात में।

७६६ यवनपुर—जौनपुर, संयुक्त प्रान्त में।

७७० यवनानि—यूनान।

७७१ यशोवर्मनपुर—बिहार, बिहार प्रान्त में।

७७२ यष्टीवन—जेठीयन, गया जिले में।

७७३ यज्ञ पर्वत—१-त्रियुगीनारायण (गढ़वाल) में एक पहाड़ी :
२-पुष्कर में एक स्थान।

७७४ यज्ञ पुर—जाजपुर, उड़ीसा में।

७७५ यामुन तीर्थ—प्रयाग में एक तीर्थ।

७७६ येस्सवेल—अहमदाबाद।

७७७ योगबद्री — पाण्डुकेश्वर में योगबद्री तीर्थ, गढ़वाल में।

र

७७८ रघुनाथ पुर — मुलतानपुर, कपूरथला में।

७७६ रङ्गनगर—श्रीरंगम्, मद्रास के त्रिचनापल्ली जिले में।

७८० रथस्था—रास्ती नदी, अवध में।

७ १ रत्नद्वीप—लंका

७८२ रत्न नगर या

७८३ रत्नपुर—रतनपुर, बिलासपुर में १५ मील उत्तर, मध्य प्रान्त में।

७८४ रत्नपुरी — नौराही, फैजाबाद जिला में।

७८५ रमण्य — पेगू तथा इरावदी नदी का डेल्टा।

७८६ रसातल—तुर्किस्तान व पश्चिमी तातार तथा कैसपियन समुद्र का उत्तरी भाग। यह हूण देश था।

७८७ रत्नवन्तपुर — पाँडुआ, बंगाल में।

७८८ राजगृह—राजगिरि, पटने के पास बिहार में।

७८९ राजनगर—अहमदाबाद।

७९० राजपुर—राजमहेन्द्री, कलिंग की राजधानी, मदास में।

७९१ राढ़—बंगाल में गंगा के पश्चिम का प्रदेश, गंगा, जालिंध, वगाकर और राजमहल पर्वत के बीच।

७९२ रामगढ़ गौड़ा—बलरामपुर, अवध में।

७९३ रामगिरि—१-रामटेक, नागपुर से २४ मील उत्तर : २-गिरिनार, काठियावाड़ में।

७९४ रामग्राम—रामपुर देवरिया, बस्ती जिले में।

७९५ रामतीर्थ—रामेश्वर में एक तीर्थ।

७९६ रामदासपुर—अमृतसर।

७९७ रामहृद—थानेश्वर के उत्तरी भाग में एक झील।

७९८ राहुग्राम—रैल, हरद्वार से ४ मील।

७९९ रुतविज—बांवेरा, जयपुर में।

८०० रुद्रगया—कोल्हापुर मे तीर्थ स्थान।

८०१ रुद्रतीर्थ —कश्मीर मे एक तीर्थ।

८०२ रुद्रप्रयाग—रुद्रप्रयाग, ऊखामठ से दक्षिण कुमायूँ में।

८०३ रुद्रमहालय—सिद्धपुर, गुजरात में अहमदाबाद से ६४ मील।

८०४ रुद्रक्षेत्र—बनारस और रुद्रप्रयाग।

८०५ रुद्रालयक्षेत्र—केदारनाथ।

८०६ रेवतीतीर्थ—बनारस में एक तीर्थ।

८०७ रैवतक,

८०८ रैवतक गिरि,

८०९ रैवतगिरि वा

८१० रैवत पर्वत—गिरिनार पहाड़, काठियावाड़ में।

८११ रोहिणी नदी—रोहिन, नैपाल की तराई में।

८१२ रोहित—रोहितास, शाहाबाद जिले में।

८१३ रोहितक—रुहतक, दिल्ली से ४२ मील उत्तर पश्चिम, पजाब में।

८१४ रोहिताश्व—रोहितास, शाहाबाद जिला में।

ल

८१५ ललितकूट—सम्मेद शिखर।

८१६ लवपुर—लाहौर।

८१७ लवना—लूनी नदी।

८१८ लक्ष्मणतीर्थ—रामेश्वर में एक तीर्थ।

८१९ लक्ष्मणपुर—लखनऊ।

८२० लक्ष्मणावती—लखनौती, बंगाल प्रान्त के मालदा जिला में।

८२१ लक्ष्मी तीर्थ— रामेश्वर में एक तीर्थ।

८२२ लाट—दक्षिणी गुजरात और खानदेश का वह भाग जो माही और ताप्ती नदी के बीच में है।

८२३ लुम्बिनी—रुमन देई, नैपाल की तराई में।

८२४ लोकापुर—चाँदा, मध्य प्रान्त में।

८२५ लोध्रकानन — लोधयूसावन, कुमायूँ में।

८२६ लोमश आश्रम — लोमसगिरि, गया जिले में।

८२७ लोहबन—मथुरा में एक स्थान।

८२८ लोहा—अफगानिस्तान।

८२९ लोहित सरोवर — रावण हृद झील, तिब्बत के दक्षिण में।

८३० लोहित्य—ब्रह्मपुत्रा नदी।

८३१ लोहित्य सरोवर—चन्द्र भागा झील, तिब्बत में जहाँ से चिनाव नदी निकलती है।

व

८३२ वंक्षु—काबुल नदी।

८३३ वटपद्रपुर—बड़ौदा।

८३४ वत्स या

८३५ वत्सपत्तन—कोसम, इलाहाबाद के पास।

वन्हिपर्वत—गढ़वाल में श्रीनगर के पास एक स्थान।

८३७ वरदा—वर्धा नदी, मध्यप्रान्त में।

८३८ वरुण हृद—केस्पियन समुद्र।

८३९ वलभी—वामिलपुर या वल, गुजरात का एक बन्दरगाह।

८४० वरुणा—वरना नदी, बनारस में।

८४१ वसतर क्षेत्र—विन्ध्य वासिनी, जिला मिर्जापुर में।

८४२ वसिष्ठाश्रम—१—अयोध्या से एक मील उत्तर २—अबू पर्वत पर, ३—सध्याचल पर्वत पर आसाम में।

८४३ वसुधारा तीर्थ — बद्रीनाथ में एक तीर्थ।

८४४ वाटधान—सतलज नदी के पूर्व का प्रदेश, फीरोजपुर के दक्षिण में।

८४५ वातापिपुर — बादामी नगर, बम्बई प्रान्त के बीजापुर जिले में।

८४६ वारणावत क्षेत्र —१— उत्तर काशी, गढ़वाल में २—बरनवा मेरठ से १९ मील उत्तर पश्चिम

८४७ वाराणसी—काशी।

८४८ वाराहपर्वत—राजगिरि में एक पर्वत।

८४९ वाराहक्षेत्र— १ —बाराभूला, कश्मीर में २—सोरों, जिला एटा में ३ कोकामुख, नैपाल में ४—नागरक्षेत्र, बस्ती जिले में

५—बाघेरा, जयपुर में :
६—नाथपुर, पुर्निया जिले में।

८५० वाहलिका—देव बरनार्क, शाहाबाद जिले में।

८५१ वाल्मीकि आश्रम—१—बलेनी, मेरठ से १५½ मील दक्षिण : २—चित्रकूट : ३—बिठूर, कानपुर के पास : ४—रामनगर, बांदा जिले में : ५—बलिया।

८५२ वाहिष्मती पुर—बिठूर, कानपुर के पास।

८५३ विंगर—अहमद नगर, बम्बई में।

८५४ विजय नगर—विजयानगरम्, मद्रास में।

८५५ विजयवाड़ा वा

८५६ विजियवद—बेज़वाड़ा, मद्रास में।

८५७ विटभय पट्टन—विठा, इलाहाबाद से १० मील।

८५८ विदर्भ देश—बरार, खानदेश और कुछ हैदराबाद और मध्य प्रान्त का भाग।

८५९ विदर्भपुर—बीदर, हैदराबाद में। यह एक समय विदर्भ की राजधानी था।

८६० विदिशा—भिलसा।

८६१ विदेहा—तिरहुत—कोसी, गण्डक, गंगा नदियों व हिमालय के बीच का देश।

८६२ विद्यानगर—विजयनगर, तुंगभद्रा नदी तट पर बिलारी से ३६ मील उत्तर-पश्चिम।

८६३ विनायक द्वार—त्रियुगी नारायण (गढ़वाल) में एक स्थान।

८६४ विनाशिनी—बनास नदी, गुजरात में।

८६५ विनीतपुर—कटक, उड़ीसा में।

८६६ विन्ध्यगिरि वा

८६७ विन्ध्यपर्वत—१—विंध्याचल : २—श्रवणबेल गुल के पास दक्षिण मैसूर में पर्वत श्रेणी।

८६८ विन्ध्यपाद पर्वत—सतपुड़ा पहाड़ी।

८६९ विन्ध्याटवी—खानदेश और औरंगाबाद के कुछ भाग।

८७० विपाशा—व्यास नदी।

८७१ विरजाक्षेत्र—जाजपुर के चारों ओर दस मील तक का क्षेत्र, वैतरणी नदी के किनारे, उड़ीसा में।

८७२ विराट—अलवर और जयपुर का प्रदेश।

८७३ विल्वक—हरद्वार में एक तीर्थ।

८७४ विविक्त पर्वत—भविष्य बद्री, गढ़वाल में।

८७५ विशल्या—नर्मदा की एक शाखा।

८७६ विशाख—१—अवध प्रान्त : २—साकेत की राजधानी, अयोध्या : ३—पांसा गोंडा जिले में, सरयू और घाघरा के संगम पर : ४—लखनऊ।

८७७ विशाखपत्तन — विजिगापट्टम मद्रास में।

८७८ विशाखा—उज्जैन।

८७९ विशाला—१—विसाढ़; मुजफ्फरपुर ज़िला में : २—उज्जैन।

८८० विशाला छत्र— हाजीपुर के समीप का देश, विहार में।

८८१ विश्व नगर — वेस नगर, भिलसा से तीनमील उत्तर, भोपाल में।

८८२ विश्वामित्र आश्रम — बक्सर, शाहबाद जिला में।

८८३ विष्णु गया—लोनर, वरार में।

८८४ विष्णु गृह — तमलुक, बंगाल में।

८८५ विष्णु तीर्थ — श्रीनगर (गढ़वाल) में एक तीर्थ।

८८६ विष्णु पुरी—मान्धाता, इन्दौर से ४० मील दक्षिण।

८८७ विष्णु प्रयाग—जोशीमठ।

८८८ वीणा—कृष्णा नदी।

८८९ वृन्दावन—वृन्दावन।

८९० वृषदर्भा — पंजाब का एक भाग।

८९१ वृषपर्वत—मलावार में काटली के समीप एक पर्वत।

८९२ वृषभ पर्वत—राजगिरि में एक पहाड़ी।

८९३ वृषभानुपुर— बरसाना, मथुरा जिला में।

८९४ वेकटद्रक—, पारंगल, तेलंगना की राजधानी।

८९५ वेगवती —वैगनदी, मदुरा जिले में।

८९६ वेङ्कटगिरि.बा

८९७ वेङ्कटाचल—वालाजी, मद्रास प्रान्त के उत्तरी अर्काट जिला में।

८९८ वेणा—वेनगंगा नदी, मध्य-प्रान्त में।

८९९ वेणी — कृष्णा नदी की एक शाखा।

९०० वेणुवन विहार—राजगिरि के पास वेणु उद्यान में बनवाया हुआ एक विहार।

९०१ वेतालवरद—रामेश्वर में एक तीर्थ।

९०२ वेदगर्भपुरी—बक्सर, शाहाबाद जिला में।

९०३ वेदवती—हगरी, तुंगभद्रा की सहायक नदी।

९०४ वेदश्रुति—अवध की वैता नदी, टोंस और गोमती के बीच में।

९०५ वेदारण्य — तंजोर में एक जंगल।

९०६ वेशनगर — बेसनगर, भिलसा से ३ मील, भोपाल में।

९०७ वेत्रवती—बेतवा नदी।

९०८ वैदूर्यपत्तन—बीदर, हैदराबाद में।

९०९ वैदूर्यपर्वत — १ — मांधाता, नर्मदा नदी पर इन्दौर से दक्षिणः २— पश्चिमी घाट का उत्तरी भाग : ३—सतपुड़ा पहाड़ी।

९१० वैदूर्यमणि पर्वत — मान्धाता, इन्दौर से ४० मील दक्षिण।

९११ वैभारपर्वत—राजगिरि की एक पहाड़ी।

९१२ वैशाली — बिसाढ़, मुजफ्फरपुर जिले में।

श

९१३ शङ्करतीर्थ — पाटन के नीचे वागमती और मणिमती के संगम पर नैपाल में एक तीर्थ स्थान।

९१४ शक्ति भेदनतीर्थ — उज्जैन में एक तीर्थ।

९१५ शतद्रु—सतलज नदी।

९१६ शतशृंग पर्वत— पाण्डुकेश्वर, गढ़वाल में।

९१७ शफरस्थली—गंगा और यमुना के बीच का दोआब।

९१८ शम्बूक आश्रम—रामटेक, मध्य प्रान्त के नागपुर ज़िला में।

९१९ शाक द्वीप—मध्य एशिया का तुर्किस्तान।

९२० शाकम्बरी क्षेत्र—त्रियुगी नारायण (गढ़वाल) से ११ मील पर एक स्थान।

९२१ शाकल — स्यालकोट, पाकिस्तानी पंजाब में।

९२२ शाकम्भ न—भीमताँ।

९२३ शाकुल कूट—सम्मेद शिखर।

९२४ शागल—स्यालकोट, पाकिस्तानी पंजाब में।

९२५ शान्त तीर्थ — गङ्गेश्वरी घाट पर नैपाल में एक तीर्थ।

९२६ शान्ति—साँची, भोपाल में।

९२७ शान्तिपुर— १ —शोणितपुर, कुमायूँ में : २—बियाना, राजपूताना में।

९२८ शान्तिप्रदकूट—सम्मेदशिखर।

९२९ शारदा—सरदी, कामराज के पास कश्मीर में।

९३० शार्ङ्गनाथ— सारनाथ, काशी के पास।

९३१ शालातुर—लाहुर, पाकिस्तानी पंजाब में।

९३२ शालिग्राम क्षेत्र — मुक्तिनाथ, नैपाल में।

९३३ शालिग्रामी—गण्डकी नदी।

९३४ शालिवाहनपुर— पैठन, गोदावरी तट पर औरंगाबाद जिले में, हैदराबाद में।

९३५ शाल्वदेश — अलवर, जयपुर और जोधपुर के कुछ भाग।

९३६ शाल्वनगर दा

९३७ शाल्वपुर—अलवर।

९३८ शिवि —१— मेवाड़, नागरी इसकी राजधानी थी जो चित्तौड़ से ११ मील है : २—ईरान

देश, जहां यूसुफ-ज़ाई रहते हैं, अफगानिस्तान में।

६३६ शिरोवन—तलकाड़, मैसूर से ३० मील दक्षिण पूर्व।

६४० शिवतीर्थ—रामेश्वर में एक तीर्थ।

६४१ शिवपुरी—काशी।

६४२ शिवालय—घुश्मेश्वर, एलोरा (हैदराबाद) में।

६४३ शुद्धपुरी—तेरुपरुर नगर, त्रिचनापल्ली जिला में।

६४४ शूकरक्षेत्र—सोरों, एटा जिला में।

६४५शूद्रक—सिंधु और सतलज के बीच का देश।

६४६ शूरसेन—मथुरा के पास का देश जिसकी राजधानी मथुरा थी।

६४७ शूर्पारक — सोपारा, थाना जिला, बम्बई प्रान्त में।

६४८ शृंगवेर पुर वा

६४९ शृंगीवीरपुर— सिंगरौर, इलाहाबाद के पास।

६५० शोक—१—मार्तण्डपुर, अजमेर से दक्षिण पूर्व: २ — उत्तर मलया।

६५१ शोणगिरि—रामगिरि या रामटेक, नागपुर के पास।

६५२ शोणनद—सोन नदी।

६५३ शोणप्रस्थ— सोनपत, कुरुक्षेत्र (पंजाब) में।

६५४ शोणितपुर—१—शोणितपुर, ऊखामठ से ६ मील, कुमायूँ में: २—बियाना, राजपूताना में।

६५५ शोभावती नगर—१—खुपुवा डीह, जिला बस्ती में: २—अरौरा, नैपाल में।

६५६ श्वेती—स्वात नदी, पाकिस्तान सीमा प्रान्त में।

६५७ श्येनी—केन नदी, बुन्देलखण्ड में।

६५८ श्रमणाचल—सोनगिरि, बुँदेलखण्ड में।

६५९ श्रवण आश्रम—दोहती, फैजाबाद जिले में।

६६० श्रावस्ती—सहेटमहेट, बलरामपुर से ६ मील, जिला बहराइच में।

६६१ श्रीकङ्काली—शिकाकोल, मद्रास प्रान्त के उत्तरी सरकार जिला में।

६६२ श्रीकण्ठ—कुरुवन, सहारनपुर के उत्तर पश्चिम का प्रदेश।

६६३ श्रीमाल—भीनमाल, अबू पर्वत से ५० मील पश्चिम।

६६४ श्रीवर्धनपुर — कण्डी नगर, लंका में।

६६५ श्रीशैलतीर्थ वा

६६६ श्रीशैलपर्वत — मल्लिकार्जुन, मद्रास के कृष्णा प्रान्त जिला में।

६६७ सत्स्थानक — थाना, बम्बई प्रान्त में।

६६८ श्रीहट्ट—सिलहट, आसाम में।
६६६ श्रीक्षेत्र—१ — जगन्नाथपुरी, उड़ीसा में : २—प्रोम, बर्मा में।
६७० श्रुघ्न—सुघ, कालसी के पास पंजाब में।
६७१ श्लेष्मान्तक वन — गोला गोकर्ण नाथ, खीरी ज़िला में।

ष

६७२ षष्टी — सालसट का टापू, बम्बई से १० मील उत्तर।

स

६७३ सङ्कल्प कूट—सम्मेदशिखर।
६७४ सङ्कर्षण पर्वत — चित्रकूट के पास एक पर्वत।
६७५ सङ्काश्य — संकिस्सा, जिला फर्रुखाबाद में।
६७६ सक्तिमती नदी—सकरी नदी, बिहार प्रान्त में।
६७७ सदानीरा—१—करतोया नदी, रंगपुर में : २ — राप्ती नदी, अवध में।
६७८ सन्निहित —.कुरुक्षेत्र में एक सरोवर।
६७६ सप्तगंगा—(१) हरद्वार में एक तीर्थ। (२) सात पवित्र नदियाँ मिलकर सप्त गंगा कही गई हैं—१-गंगा २-गोदावरी ३-कावेरी ४-ताम्रपर्णी ५ सिंधु ६-सरयू ७ नर्मदा।
६८० सप्तगोदावरी — सोलंगीपुर, गोदावरी जिले में।
६८१ सप्तपुरियाँ — १-अयोध्या २-मथुरा ३-माया, हरद्वार के पास ४-काशी ५ काञ्ची (काञ्चीवरम्) ६-उज्जैन ७-द्वारिका।
६८२ सप्तपर—सतारा, बम्बई प्रान्त में।
६८३ सप्तसिन्धु—पञ्जाब।
६८४ समतट— १— पूर्वी बंगाल : २ – गंगा व ब्रह्मपुत्रा का डेल्टा: ३ — कोमिला, नौखाली और सिलहट के जिले।
६८५ समन्तकूट—एडम्स पीक, लंका में।
६८६ समन्त पञ्चक—कुरुक्षेत्र।
६८७ सम्मेदगिरि — सम्मेद शिखर, पारसनाथ की पहाड़ी बिहार के हज़ारीबाग जिले में।
६८८ सरस्वती नदी—१—प्राची सरस्वती, कुरुक्षेत्र में जो सिरमुर की पहाड़ियों से निकलती है। वेदकाल में यह समुद्र में गिरती थी: २—गुजरात की रौनाही नदी जो प्रभास सरस्वती नाम से सोमनाथ के पास बहती है: ३—हेलमण्ड नदी, अफगानिस्तान में।
६८६ सरावती — १ — बाणगंगा, रुहेलखण्ड में बदायूं के पास : २—राप्ती नदी, अवध में।

९९० सलिलराज तीर्थ — सिंधुनदी तथा समुद्र का संगम स्थल।
९९१ सहस्राम्रवन — गिरनार पर्वत, काठियावाड़ में।
९९२ सहस्रार्जुनपुर — मान्धाता, इन्दौर से ४० मील दक्षिण।
९९३ सह्य पर्वत या
९९४ सह्याद्र पर्वत — पश्चिमी घाट का उत्तरी भाग।
९९५ सह्याद्रिजा—कावेरी नदी।
९९६ साकेत—अयोध्या।
९९७ साध्यामृततीर्थ — रामेश्वर में एक तीर्थ।
९९८ साम्बपुर—मुलतान।
९९९ सालकूट—सम्मेदशिखर।
१००० सालग्राम—मुक्तिनाथ, नैपाल में गण्डक नदी के उगम स्थल पर।
१००१ सिद्धनगर — बड़वानी, मध्य भारत में।
१००२ सिद्धपद—सितपुर या सिद्धपुर अहमदाबाद जिले में।
१००३ सिद्धपुर — १ — सितपुर, जिला अहमदाबाद में : २— सिद्धौर, बाराबंकी जिले में।
१००४ सिद्धवर कूट – सम्मेदशिखर।
१००५ सिद्ध क्षेत्र—मुक्तागिरि, मध्य प्रान्त के एलिचपुर ज़िला में।
१००६ सिद्धाश्रम—१—बक्सर, शाहाबाद जिले में : २ — अच्छोद सरोवर, कश्मीर में : ३—द्वारिका के पास एक स्थान।
१००७ सिन्दुरागिरि—रामटेक, मध्य प्रान्त में नागपुर के पास।
१००८ सिन्धु — १ — सिंधु नदी : २— सिंध देश।
१००९ सिरिन्ध्र—सरहिंद, पंजाब में।
१०१० सिंहपुर — कटास या कटाक्ष, झेलम जिले में।
१०११ सिंहपुरी—सारनाथ, बनारस के पास।
१०१२ सिंहल या
१०१३ सिंहल द्वीप—लंका।
१०१४ सीतासर — रामेश्वर में एक तीर्थ।
१०१५ स्त्री राज्य—कुमाँयू गढ़वाल।
१०१६ सुगधा—नासिक, बम्बई में।
१०१७ सुचक्षु—काबुल नदी।
१०१८ सुतुद्रि—सतलज नदी।
१०१९ सुदामापुरी — पोरबन्दर, काठियावाड़ में।
१०२० सुधन्य कटक— धरणी कोट, मद्रास प्रान्त के कृष्णा जिले में।
१०२१ सुन्धदेश—त्रिपुरा और अराकान।
१०२२ सुप्रभकूट—सम्मेद शिखर।
१०२३ सुभद्रा—इरावदी नदी।
१०२४ सुमन कूट—श्रीपद, एडम्स-पीक, लंका में।
१०२५ सुमागधी—सोन नदी।
१०२६ सुमेरु पर्वत — रुद्रहिमालय, गढ़वाल में।

१०२७ सुरभी— सोराव, मैसूर में। सोराव के पास का प्रदेश सुरभी था।
१०२८ सुरभी पट्टन—कुवत्तुर, मैसूर में। यह सुरभी की राजधानी थी।
१०२९ सुरथाद्रि — अमरकण्टक पहाड़।
१०३० सुरा सागर—कैस्पियन समुद्र।
१०३१ सुराष्ट्र—गुजरात और काठियावाड़।
१०३२ सुलक्षिणी—गोगा, गंगा की सहायक नदी।
१०३३ सुलोचना — बनास नदी, गुजरात में।
१०३४ सुवर्णगिरि — मस्की, मैसूर राज्य में। यह उन चार स्थानों में से है जहाँ अशोक के वाद-सराय रहते थे। बाकी तीन हैं— तक्षशिला, उज्जैन, और तोसली (कलिंग) में।
१०३५ सुवर्ण गोत्र — कुमायूँ गढ़-वाल।
१०३६ सुवर्ण ग्राम — सोना गाँव, ढाका जिले में।
१०३७ सुवर्ण भूमि—बर्मा देश।
१०३८ सुवर्ण मानस — सोनाकोसी नदी।
१०३९ सुवर्ण मुखरी — स्वर्णमुखी नदी, मद्रास के उत्तरी अर्काट जिला में।
१०४० सुवर्ण रेखा—१—पलाशिनी नदी गिरनार के पास गुजरात में : २—सुवर्ण रेखा नदी, उड़ीसा में।
१०४१ सुवर्ण शिखर— पाडुकेश्वर, गढ़वाल में।
१०४२ सुवस्तु—१—स्वात देश जहाँ यूसुफजाई रहते हैं, अफ़गा-निस्तान में : २—स्वात देश की स्वात नदी।
१०४३ सुवहा— बनास नदी, राज-पूताने में।
१०४४ सुवामा—रामगंगा नदी।
१०४५ सुशर्मापुर—कोट काँगड़ा।
१०४६ सुशोमा—सिंधु नदी।
१०४७ सुस्तवरकूट—सम्मेदशिखर।
१०४८ सूरजपुर वा
१०४९ सूरपुर — बटेश्वर, आगरा जिला में।
१०५० सूर्यतीर्थ — मथुरा में एक तीर्थ।
१०५१ सूर्यनगर—श्री नगर (कश्मीर)
१०५२ सूर्यपुर—सूरत।
१०५३ सूर्य क्षेत्र—कनारक, उड़ीसा में।
१०५४ सेतव्या—घाँसेडीला, बलराम पुर से ६ मील, गोंडा ज़िला में।
१०५५ सेतु,
१०५६ सेतुबध वा
१०५७ सेतु मूल—रामेश्वर।
१०५८ सोमतीर्थ — १ — सोमनाथ पट्टन (काठियावाड़): २—मथुरा

में एक तीर्थ : ३—कुरुक्षेत्र में एक स्थान जहाँ कर्तिकेय ने तारकासुर को मारा था।

१०५६ सोना प्रान्त—वर्मा देश

१०६० सौराष्ट्र—गुजरात व काठियावाड़।

१०६१ सौवीर—मुलतान जिला और पास का देश।

१०६२ स्तम तीर्थ — कैम्बे, गुजरात में।

१०६३ स्थाणुतीर्थ—कुरुक्षेत्र में एक तीर्थ स्थान।

१०६४ स्थानेश्वर—थानेसर, पंजाब में।

१०६५ स्वम्भुकूट—सम्मेद शिखर।

१०६६ स्यन्दिका—सई नदी, जौनपुर के पास।

१०६७ स्वर्णभद्रकूट—सम्मेद शिखर।

१०६८ स्वामीतीर्थ — मद्रास प्रान्त के कृष्णा जिला में मल्लिकार्जुन से १९ कोस दूर एक तीर्थ स्थान।

ह

१०६९ हनुमत्कुण्ड—रामेश्वर में एक तीर्थ।

१०७० हरमुक — हरमुक पहाड़ी, कश्मीर में।

१०७१ हरक्षेत्र—भुवनेश्वर, उड़ीसा में।

१०७२ हरिवर्ष — इसमें तिब्बत का पश्चिमी भाग, हूण देश व उत्तरी गढ़वाल सम्मिलित थे।

१०७३ हरिहरनाथपुर वा

१०७४ हरिहर क्षेत्र—१—हरिहर छेत्र या सोनपुर, गंगा और गण्डक के संगम पर, बिहार में : २—हरिहर, तुंगभद्रा व हरिदा के संगम पर, मैसूर में।

१०७५ हास्तिनापुर — हस्तिनापुर, मेरठ ज़िला में।

१०७६ हस्तिसोमा—हस्तु नदी, महानदी की सहायक नदी।

१०७७ हाटक—१—हूँण देश जिसमें मानसरोवर झील है : २—गुजरात में एक क्षेत्र जिसमें आनर्त्त देश की राजधानी चमत्कारपुर बसी थी।

१०७८ हारहूण — इण्डस व झेलम नदियों और गंदगढ़ व साल्टरेंज पहाड़ों के बीच का देश।

१०७९ हारित आश्रम — एकलिंग, मेवाड़ में।

१०८० हिंगुला—हिंगलाज, बिलोचिस्तान में।

१०८१ हिड़म्ब—कचार, आसाम में।

१०८२ हिमवन्त—१—नैपाल : २—तिब्बत।

१०८३ हिमवान—हिमालय।

१०८४ हिरण्य पर्वत—मुंगेर, बिहार में।

१०८५ हिरण्यपुरी—हिंडौन, जयपुर में।

१०८६ हिरण्यवती नदी — छोटी गण्डकी नदी।

१०८७ हिरण्यबाहु—सोन नदी।

१०८८ हूण देश—इण्डस व भेलम नदियों और गंदगढ़ व साल्टरेंज पहाड़ों के बीच का देश।

१०८९ हृषीकेश—हृषीकेश, सहारनपुर जिला में।

१०९० हेमकूट या

१०९१ हेम पर्वत — कैलाश पर्वत, तिब्बत के दक्षिण पश्चिम : २—चन्द्रपुच्छ का पर्वत श्रेणी। यहाँ से गंगा और यमुना निकली हैं।

१०९२ हैमवतवर्ष — भारतवर्ष का प्राचीन नाम।

१०९३ हैमवती—रावी नदी, पंजाब में।

१०९४ हैहयदेश—खानदेश, औरंगाबाद और दक्षिण मालवे का भाग।

१०९५ हंसवती—पेगू, बर्मा में।

क्ष

१०९६ क्षत्रिय कुण्ड—विसाढ़, मुजफ्फरपुर जिला में।

१०९७ क्षारसागर—कैस्पियन समुद्र।

१०९८ क्षेमवती—गुटीवा, नैपाल की तराई में।

१०९९ क्षेत्र उपनिवेश — ओपियन, काबुल से २७ मील उत्तर।

त्र

११०० त्रयम्बक — नासिक से १८ मील एक तीर्थ क्षेत्र।

११०१ त्रिऋषि — नैनीताल का तालाब।

११०२ त्रिकलिङ्ग—तैलंगाना, गोदावरी और कृष्णा के बीच का देश।

११०३ त्रिगङ्ग — हरद्वार में एक तीर्थ।

११०४ त्रिगर्त देश — जालधर और लाहौर जिले का एक भाग तथा काँगड़ा। तीन नदियों (सतलज, विपाश, और रावी) से सेवित भूमि।

११०५ त्रिपुरा—१—तेवर, जबलपुर के पास : २—त्रिपुरा राज्य।

११०६ त्रिपुरी—तेवर, जबलपुर के पास।

११०७ त्रिवेणी या

११०८ त्रिवेणी क्षेत्र—प्रयाग में गंगा यमुना और सरस्वती का संगम स्थल।

११०९ त्रिशिरपल्ली — त्रिचनापल्ली, मद्रास में।

१११० त्रिस्रोता —१— तिस्ता नदी, रंगपुर जिले में : २— गंगा नदी।

ज्ञ

११११ ज्ञानधर कूट—सम्मेदशिखर।

श्री रामगोपाल जी मिश्र की अन्य रचनायें

१ माया

(द्वितीय संस्करण—साहित्य मन्दिर प्रेस, पुल झाऊलाल, लखनऊ, से प्राप्त)

माया—यह १०८ पृष्ठों का एक शोकान्त उपन्यास है। गोरखपुर के डिपुटी कलेक्टर, प० रामगोपाल मिश्र बी० एस सी० ने इसकी रचना की है। इसका नायक है चन्द्रमणि और नायिका है तारा। चन्द्रमणि अपने पूर्व वयस में—कुमारावस्था में—'संसार के उपकार" जन की प्रतिज्ञा करता है परन्तु तारा—माया—के फेर म पड़कर अपनी प्रतिज्ञा को भूल जाता है—माया के पाश का बंधुआ होकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी किये बिना ही संसार से सदा के लिये विदा हो जाता है। उसके वियोग में तारा भी कोई दो ही हफ्ते में "शिशु कुमार" अपने इकलौते बेटे को अकेला छोड प्राण त्याग कर देती है। इसी कथानक के आधार पर लेखक महाशय ने यह दिखलाया है कि होनहार मनुष्य भी घटना वश माया के मोह जाल में फँस जाता है। फल यह होता है कि उसकी उच्चाकांक्षाएँ अपूर्ण रह जाती हैं। पुस्तक मनो रञ्जक और शिक्षा प्रद है। *भाषा सरल है। पुस्तक की छपाई अच्छी है।* कागज़ भी अच्छा है। मूल्य ।।)

"सरस्वती"

माया—यह एक शिक्षा पूर्ण उपन्यास है। हम उपन्यास बहुत कम पढ़ते हैं, क्योंकि उपन्यासों में प्राय हमारा चित्त नहीं लगता।..... पर यह उन इने गिने उपन्यासों में से है जिसे हमारे चित्त ने भी पसन्द किया है।

"ज्ञान शक्ति"

२ चन्द्र भवन

(द्वितीय संस्करण—'उदयन', २७१ विट्ठल भाई पटेल रोड, गिरगाँव, बम्बई, में प्राप्त)

चन्द्रभवन—यह एक गूढ़ चरित्र द्योतक करुणा पूर्ण उपन्यास है। उपन्यास साहित्य का बड़ा मधुर अंग है सब तरह स्वाभाविकता ही

उपन्यास की जान है। इस उपन्यास में कहीं कोई घटना फाज़िल नहीं है। इसमें न शब्दाडम्बर है न घटनाओं का तूमार है। जो कुछ है सो सब तुला हुआ; इधर उधर छलकने वाला कहीं कुछ नहीं।.........................

समाज की परम्परा के दुस्सह पीड़न में प्राणियों का जो पिसान होता है वह इसके पन्ने २ में भरा हुआ है। उसका यह चन्द्र भवन जीता जागता फोटो है।......हम अपने पाठकों से अनुरोध करते हैं कि इस चन्द्र भवन को एक बार मंगाकर पढ़ें और पढ़ी लिखी हिन्दू नारी, हिन्दू बालिका और बहू बेटियों को पढ़ने के लिये दें तो उनका और अपना बहुत कुछ सुधार साधन कर सकेंगे। मूल्य केवल १) है।

"आसुम"

"An open Letter to the author of The Hindi Novel

CHANDRA BHAWAN"

(Appeared in the "Leader", Allahabad)

Sir,

I am a stranger to you, but am one of those who have learnt to appreciate your literary productions. Just yesterday I closed reading your Novel CHANDRA BHAWAN. I simply cannot tell you how immensely I enjoyed it. The Novel is extremely illuminating and instructive. Let me offer you my sincerest thanks, and congratulate you most warmly on your ability to write such a story. I must tell you at once that I am a christian. As such, I am merely following the heavenly gleam which is leading me along the path of eternal life. This brief statement of my religious belief and experience embraces a large meaning which is not my intention to set forth in this letter. I wish to say, however, that but

for my religion, which is a matter of eternal interest to me, I am every inch a Hindu. Writings such as yours fill my heart with a peculiar joy by transporting me into the realm of the inner life of the Hindu home for which I have sincerest regard and admiration. I shall try to get hold of every line that you write, and read it. Your language is chaste, your delevation of characters is extremely vivid and your technique is almost perfect. I shall advise my chrisitan brothers and sisters to read it and other books from your pen.

I wish, however, with your permission, to point out a sad mistake in the book which leaves a blemish on the beautiful story. In following the course of events connected with the life of Hemlata after s . e has left her widowed mother and her home abruptly just on the eve of her marriage, you make her go out with the christian *girls of the boarding school, and on the road* you make the christian boys meet the girls and repeat audibly all sorts of low and vulgarly significant couplets. In fact in that scene, you make the christian girls as well as boys behave in a most objectionable manner. Now, may I in all earnestness beg leave to assure you that this is not a true picture. I have lived some years in *life and can claim to have made some study of* the morality of the youths of the Indian christian community. I am conscious of the many faults in them, but I am absolutely sure, as sure as I know that day follows night, that in no city

will you be able to find groups of young boys and girls, kept and taught in mission boarding schools, indulging in such vulgarities. I am mentioning this merely because I wish sincerely that in the great service to the country which you will live to render you may not impart into your writings anything which deviates from truth, which alone can help us to win under all circumstances and in all spheres. You are putting some excellent words into the mouth of Kanak Prabha who, by the way, when she speaks them becomes too wise and erudite for her age and upbringing, to indicate that the various religious leaders, such as Christ, Mohammad, Zoroaster etc., are all equally worthy of worship to her, and so on. I believe this is your own creed. With such a liberal and catholic attitude of mind, please do not let your readers associate any bitterness on your part towards members of another religion.

My own conviction is that christianity, as professed and preached, in spite of its many faults, has really served to do great good, at any rate far greater good than evil, to the people of India. We who are called christians are your own brothers and sisters. Sadly, we have become estranged from your beautiful traditions of family and social life for which, however, your own prejudice, I mean the prejudice of those who are not Christians, is very largely to blame, but we carry in our bosom a heart which throbs

as warmly with love for our motherland as the heart of any true son of soil.

Bareilly,
November 1924. } J. Devadson,

[I set the doubts of my still stranger friend at rest by a reply in "The Leader" that followed a week later, by pointing out that the boys that figure in the book are not X'ian boys but ordinary school lads of low breeding. Paras 2 and 3 of the letter above have no bearing on the subject, but on deciding to reproduce the letter, I did not like to keep back any portion.

Author]

नागरी प्रचारिणी सभा—काशी, ने दोनों पुस्तकों, माया व चन्द्र भवन, को उनके प्रकाशित होने के साल में प्रथम स्थान दिया था। मध्य प्रदेश के शिक्षा विभाग ने उपन्यास होते हुये भी उन्हें अपने पुस्तकालयों में रखने का निश्चय किया।

३ भारतोदय

(द्वितीय संस्करण—'जासूस कार्यालय, बनारस, से प्राप्त)

भारतोदय—यह तीन अङ्क—६१ दृश्य—का एक शिक्षाप्रद अनुपम नाटक, हिन्दू मुसलमान जाति सङ्गठन के विषय में लिखा गया है। किस प्रकार यथार्थ में मेल हो सकता है, कौन बातें किस पथ पर बाधक होती हैं, यथार्थ समस्या क्या है, सारी बातें इस रोचक नाटक को पढ़ते २ स्वयं दृष्टि के आगे घूमने लगती हैं। जाति हितैषी कविताओं ने इस नाटक को अति मनोहर बना दिया है। सब स्थानों में मुक्त कण्ठ से इसकी प्रशंसा हुई है। "जागृत" ने तो अपने सारे ग्राहकों को इसे बांटा है। मूल्य १) है।

will you be able to find groups of young boys and girls, kept and taught in mission boarding schools, indulging in such vulgarities. I am mentioning this merely because I wish sincerely that in the great service to the country which you will live to render you may not impart into your writings anything which deviates from truth, which alone can help us to win under all circumstances and in all spheres. You are putting some excellent words into the mouth of Kanak Prabha who, by the way, when she speaks them becomes too wise and erudite for her age and upbringing, to indicate that the various religious leaders, such as Christ, Mohammad, Zoroaster etc., are all equally worthy of worship to her, and so on. I believe this is your own creed. With such a liberal and catholic attitude of mind, please do not let your readers associate any bitterness on your part towards members of another religion.

My own conviction is that christianity, as professed and preached, in spite of its many faults, has really served to do great good, at any rate far greater good than evil, to the people of India. We who are called christians are your own brothers and sisters. Sadly, we have become estranged from your beautiful traditions of family and social life for which, however, your own prejudice, I mean the prejudice of those who are not Christians, is very largely to blame, but we carry in our bosom a heart which throbs

as warmly with love for our motherland as the heart of any true son of soil.

Bareilly, November 1924. } J. Devadson,

[I set the doubts of my still stranger friend at rest by a reply in "The Leader" that followed a week later, by pointing out that the boys that figure in the book are not X'ian boys but ordinary school lads of low breeding. Paras 2 and 3 of the letter above have no bearing on the sub ject, but on deciding to reproduce the letter, I did not like to keep back any portion.

Author]

नागरी प्रचारिणी सभा—काशी, ने दोनों पुस्तकों, माया व चन्द्र भवन, को उनके प्रकाशित होने के साल में प्रथम स्थान दिया था। मध्य प्रदेश के शिक्षा विभाग ने उपन्यास होने हुये भी उन्हें अपने पुस्तकालयों में रखने का निश्चय किया।

३ भारतोदय

(द्वितीय संस्करण—'नागर कार्यालय, बनारस, से प्राप्त)

भारतोदय—यह तीन अङ्क—२१ दृश्य—का एक शिक्षा प्रद अनुपम नाटक, हिन्दू मुसलमान जाति सङ्गठन के विषय में लिखा गया है। किस प्रकार यथार्थ में मेल हो सकता है, कौन बातें मिल बन कर बाधक होती हैं, यथार्थ समस्या क्या है, सारी बातें इस रोचक नाटक को पढ़ते २ स्वयं दृष्टि के आगे घूमने लगती हैं। जाति हितैषी कविताओं ने इस नाटक को अति सार बना दिया है। सब स्थानों में मुक्त कण्ठ से इसकी प्रशंसा हुई है। "नागर" ने तो अपने सारे ग्राहकों को इसे बांटा है। मूल्य १) है।

poets of the country, except a few who were unavoidably absent, were present. Among those present were Maulana Hasrat Mohani from Cawnpore, Nawab Mirza Sirajuddin Ahmad Sa-yal from Delhi, Nawab Babban Saheb from Lucknow, Nuh Narwi from Nara (Allahabad), Syed Majid Ali Majid, Government Pleader Allahabad, Munshi Sukhdeo Prasad Bismil from Allahabad, Sagher Nizami from Muzaffarnagar, Munshi Nanak Chand Ishrat from Balrampur. Ayan from Meerut, Wasl Bilgrami from Lucknow, Kokab Shahjahanpuri from Shahjahanpur, Munshi Jagat Mohan Lal Ravan from Unao, Khan Bahadur Syed Aulad Hyder Fauk from Arrah, Basit from Biswan, Jamil from Benares. Messages wishing success for the Moshaira were read from Babu Bhagwati Sahai Bedar, Shahjahanpur. Mulla Ramozi, Bhopal, Hafiz Jallundhari, Lahore, Ashik Siddiki, Assam, Khan Bahadur Raza Ali wahshat, Calcutta, M. Wasiul Hasan, Banda and Hazrat Zarif and Shaukat Thanwi, Lucknow. Many poets who could not reach sent their poems to be read in the Mushaira and these included Asghar (Allahabad), Shatir (Bombay), Rahat (Bijnor), Wahshat (Calcutta), Azad (Dehradun) and Sharik (Khildabad, Deccan).

Admission to the hall was by complimentary tickets but visitors had come from Delhi, Lucknow, Allahabad, Basti, Azamgarh, Benaras and numerous other places of Behar and the U. P., and the hall was full to overflowing. The audience was over 2000 and several thousand persons who had applied for passes were unable to procure them for want of accommodation. Among those present in the audience were Mr. Hallows, I. C. S. District Magistrate

Gorakhpur, the Rev. Mr. Pelly, Mr. Slane I.C.S., Pt. Tej Narain Mulla, district and session Judge Allahabad, (later Hon'ble, Justice), Munshi Asghar Husain, district and session Judge Gorakhpur, Major J. B. Vaidya civil Surgeon, Mr. Shivdasani, I.C.S., the Raja Bahadur of Padrauna, Raja Saheb Unwal, the Raja Saheb of Rudrapur, Mr. Ayodhya Dass, M.L.A., Khan Bahadur Mahomed Ismail M.L.A. (later, Hon'ble Justice), Babu Adya Prasad, M.L.C., and Mr. Nasrullah, M.L.C. Europeans and Indians all took their seats on the farsh. The president was seated under a golden canopy. The proceedings began with the secretary's welcome to the poets of all India fame. Ghazal after ghazal was read in an atmosphere *full of enthusiasm, and when Maulana Hasrat Mohani rose* to read cheers rang from all sides of the house. Bismil and Saghar thrilled the audience, and *Sayal, Nooh, Asi, Ishrat* and many others were highly appreciated. The first sitting concluded at 3 a m Ghazals were said in Tarah 'Bas Nahin chalta ki Phir Khanjar Kafe Qatil Men Hai'. (बस नहीं चलता कि फिर खंजर कफ़े कातिल में हैं)

The next day the Mushaira was held under a Shamiana in the open from 11 a.m to 5 p m., primarily for those who were otherwise unable to avail of it. The tarah was 'Zamin Takra Rahi hai Asman se (जिमी टकरा रही है आसमा से). It was warm but the function was well *enjoyed by all. At 5 p.m. a group photograph of the* poets,workers, and *donors* was taken *at the commissioner's* bungalow, and the main sitting of the Mushaira again commenced at 8-30 p m. in the cinema Palace amidst great enthusiasm. cries of 'Wah, wah' rang from

the whole house, The misra tarah was: 'Sharm Bhi Jae to Main Janoon Ki Tanhai hui' (शर्म भी जाये तो मैं जानू कि तनहाई हुई) The Mushaira terminated at 1·30 a.m. on July 18 amid great applause. The show was a function the like of which had not only never been seen by Gorakhpur before, but the great poets who attended declared that never a Mushaira was held on such a grand scale anywhere. It was an equally grand success. Great credit is due to Pandit Ram Gopal Misra, Deputy Collector, who conceived the idea of an All-India Mushaira, organized the entire show, and was its secretary."

६ आगार

(बिक्री के लियेनहीं)

आगार—पुस्तक के "पुष्पाञ्जलि" भाग में लेखक ने पद्य में अपने इष्ट श्री कृष्ण मूर्ति जी के गुण गाये हैं, और "हृदय-तरंग" भाग में छोटी छोटी अद्भुत कहानियाँ हैं। पुस्तक आर्ट पेपर पर छापी गई है और अति सुन्दर है पर बिक्री के लिये नहीं है। लेखक जिन्हे चाहें प्रदान करते हैं।

७ डुकरिया पुराण

('शिशु' ज्ञान मण्डल, कटरा, प्रयाग, से प्राप्त)

डुकरिया पुराण—पुस्तक में बालकों के लिये हास्यप्रद व मनोरञ्जक कहानियाँ सचित्र लिखी गई हैं। बूढ़ों को यह कहानियाँ बालकों से भी अधिक मनोरंजक लगेंगी। एक बेर पुस्तक हाथ में ली तो बिना समाप्त किये नहीं छोड़ी जायेगी। अभी छप रही है।

८ छत्रपति महाराज शिवाजी

(बम्बई टाकीज, Bombay Talkies, बम्बई, से प्राप्त)

यह पुस्तक सिनेमा (cinema) के लिये लिखी गई है और बम्बई टाकीज (Bombay Talkies) से प्राप्त है। अभी छप रही है।

९ हिन्दू चित्रावली (एलबम)

हिन्दू चित्रावली में देवताओं ऋषियों, महापुरुषों व महात्माओं के अच्छे से अच्छे चित्र जो मिल सकते हैं संग्रह किये गये हैं।

विश्व महायुद्ध के कारण, आर्ट पेपर न मिल सकने से अब तक पुस्तक छपकर तैयार नहीं हो सकी। इसके भी चित्रों के छपने में समय लगेगा। पर जहाँ तक हो सकेगा शीघ्रता की जायगी। यह कहा जा सकता है कि इससे अच्छा हिन्दू देवताओं व महात्माओं का एलबम देखने में नहीं आवेगा। प्रयत्न यही किया जा रहा है।

१० व्रतावली

व्रतावली में हिन्दुओं के कुल व्रतों की उत्पत्ति, गूढ मर्म, व विधि का विस्तार पूर्वक वर्णन है। पुस्तक अभी लिखी जा रही है।